१०८ उपनिषद

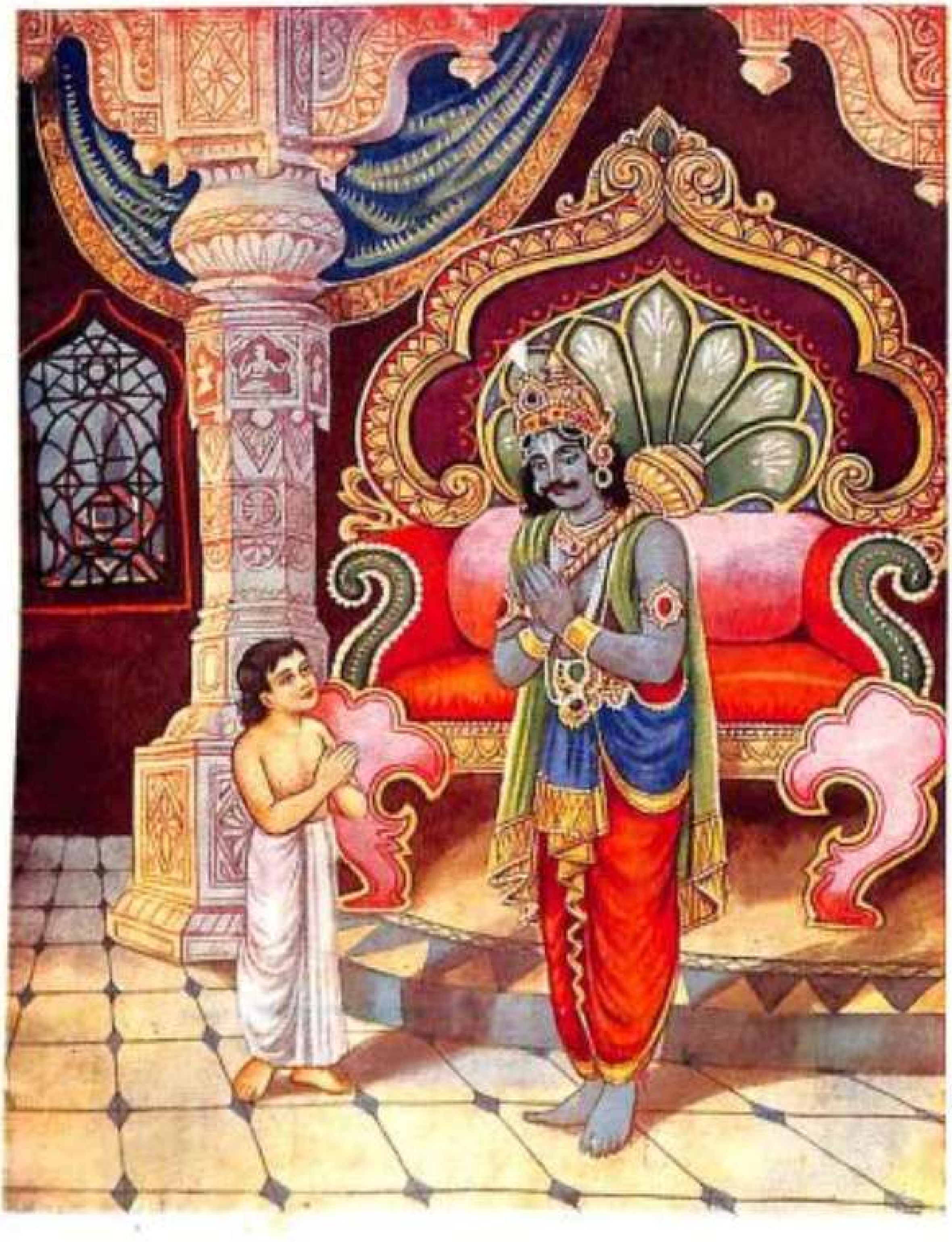

PART - II

(CONTINUED FROM PART - I .)

१०८ उपनिषद

(मुक्ति का उपनिषद में दिया गया क्रम)

108 upanishads

IN HINDI - PART - II.

प्रस्तुतकर्ता : वी.सी.सिंह

PART - II.

031 - क्षुरिक उपनिषद

ॐ ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;
हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;हम एक दूसरे से विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)।
ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!क्षुरिक का अर्थ है चाकू।

यह उपनिषद हमें ज्ञान नामक चाकू का उपयोग करके इस संसार से आसक्ति को काटने का तरीका बताता है और हमें मोक्ष का मार्ग बताता है। इसे "क्षुरिकोपनिषद" कहा जाता है।

मैं आपको क्षुरिकोपनिषद बता रहा हूँ। जिसके उपयोग से हम योग के माध्यम से जागृति प्राप्त कर सकते हैं और जन्महीन अवस्था में पहुँच सकते हैं।

1 श्लोक 2-9 उपलब्ध नहीं हैं।)अत्यंत तीक्ष्ण बुद्धि वाले मन को चाकू की तरह उपयोग करके पैरों के ऊपर स्थित "प्रभाद" नामक गुप्त स्थान पर ध्यान लगाना है और उसे काटकर ऊपर जाना है।

10 तीक्ष्ण बुद्धि के मार्ग का उपयोग करते हुए आपको निरंतर योग का अभ्यास करना होगा और घुटनों के ऊपर स्थित गुप्त स्थान "इंद्र वज्र" तक पहुंचना होगा और ध्यान एवं योग का उपयोग करके उसे अलग करना होगा।

11 फिर आपको जांघों के बीच स्थित प्राणशक्ति को मुक्त करना होगा। कुशल योग का अभ्यास करते हुए आपको उसे अलग करना होगा और ऊपर की ओर जाना होगा।

12 फिर आपको गर्दन के पास नाड़ियों के समूह तक पहुंचना होगा और वहां 101 नाड़ियों का अनुभव करना होगा और सर्वश्रेष्ठ तीन नाड़ियों की पहचान करें। आपको बाईं ओर की रक्षक इड़ा नाड़ी, दाईं ओर की पिंगला नाड़ी को पहचानना होगा और सुषुम्ना नाड़ी की उचित स्थिति को समझना होगा। जो इसे पहचान लेता है, वही वेदों के रहस्यों को समझ पाता है।

13-14 सुषुम्ना नाड़ी वह है जो आपको परम सत्य (ब्रह्म) में मिला देती है और वह किसी भी कमी से रहित है और ब्रह्म का रूप है। 72000 नाड़ियों में से प्रत्येक में एक पदार्थ होता है जो तेल जैसा होता है। इसे ध्यान द्वारा इसमें से निकाला जाता है। केवल सुषुम्ना नाड़ी के मामले में, इस तैलीय पदार्थ को इससे अलग करना संभव नहीं है। 15 जैसे तेल में चमेली के फूल की खुशबू आती है, वैसे ही इस नाड़ी में व्यक्ति द्वारा किए गए अच्छे या बुरे कर्म की खुशबू आती है। इसलिए आपको इस नाड़ी का ध्यान करना होगा। 16 तब इस मनः इन्द्रिय को जीत लेने वाले पुरुष को चाहिए कि वह किसी भी प्रकार की ध्वनि के बिना एक स्थान पर बैठ जाए और योग के दर्शन को समझ ले, कामनाओं से रहित हो जाए और दीपकों के एक साथ जलने पर एक-एक करके बुझने के समान अपने में समा जाए।

17-21 जो व्यक्ति प्राणायाम के गहन अभ्यास और ॐ के ध्यान द्वारा योग को प्राप्त करता है, वह त्याग की कुशल तीक्ष्णता से तीक्ष्ण किए गए अपने अत्यंत तीक्ष्ण मन का उपयोग करके गृहस्थ जीवन के बंधनों को काट देता है और सभी बंधनों से मुक्ति पा लेता है।

22 जो व्यक्ति कामनाओं से मुक्ति पा लेता है, वह अमर अवस्था को प्राप्त हो जाता है। जो व्यक्ति सभी कामनाओं और ममता को काटकर सभी कामनाओं से मुक्ति पा लेता है, वह सभी बंधनों से रहित हो जाता है।

23 ॐ ! वह हम दोनों की एक साथ रक्षा करे, हम दोनों का एक साथ पोषण करे; हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो; हम एक दूसरे से विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)।

ॐ ! मुझमें शांति हो ! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो! यहाँ कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित क्षुरिकोपनिषद समाप्त होता है। [प्रकाशक का नोट: क्षुरिका उपनिषद को मुक्तिका उपनिषद के हमारे संस्करण में कृष्ण-यजुर्वेद उपनिषदों में से एक के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। लेकिन इसे उपनिषदों के एक अन्य प्रकाशन में अथर्ववेद उपनिषदों में से एक के रूप में दिखाया गया है।]

032 - मंत्रिका उपनिषद

ॐ ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है।अनंत अनंत से ही निकलता है।(तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर,वह अनंत (ब्रह्म) ही रह जाता है।

ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. तीन रस्सियों से बंधा हुआ, सूक्ष्म और अविनाशी, तीन मार्ग वाला आठ पैरों वाला निष्कलंक हंस, मैं उसे नहीं देखता, यद्यपि मैं उसे सर्वत्र देखता हूँ।

2. जिस समय सभी जीव (अज्ञान के अंधकार में) भ्रमित हो जाते हैं, जब (तथापि) ढेर रहित अंधकार (ज्ञान के सूर्य द्वारा) छिन्न-भिन्न हो जाता है। सत्व में स्थित ऋषिगण गुणों के क्षेत्र में गुणों से परे परम को देखते हैं।

3 (अ). कुमार आदि ऋषियों द्वारा चिन्तित; निरपेक्ष को अन्यथा अनुभव नहीं किया जा सकता।

3(ख)-4. अजन्मा (माया) को आरोपित करने वाली, अज्ञानी अष्टांगिक अविकारी परिवर्तन की जननी; इस प्रकार इसे विस्तारित किया जाता है और पुनः प्रेरित किया जाता है। ऐसी शक्ति और मार्गदर्शन के अधीन संसार मनुष्य के मूल्यों को जन्म देता है।

5. भगवान की शक्तिशाली माया, जिसमें आदि और अंत दोनों हैं, सृष्टिकर्ता, प्राणियों को अस्तित्व में लाती है;
सफेद, काला और लाल (वह) सभी इच्छाओं को पूरा करती है।

6. (अज्ञानी) इस अनापेक्षित माया का अनुभव करता है (जिसका वास्तविक स्वरूप) कुमार जैसे ऋषियों के लिए भी अज्ञात है। केवल भगवान ही (उसका) स्वतंत्र रूप से अनुसरण करते हुए माया (उसके स्वामी और साथी के रूप में) का आनंद लेते हैं।

7. वह (उसका) आनंद चिंतन और क्रिया दोनों के माध्यम से लेता है। वह सर्वव्यापी है, वह (उसका) पालन करता है जो सभी के लिए समान है, (वांछित वस्तुओं का) देने वाला है और यज्ञकर्ताओं द्वारा भोगा जाता है।

8. उदार (ऋषि) माया के (क्षेत्र में) पक्षी को (कर्मों का) फल खाते हुए देखते हैं। जिन पुजारियों ने अपना वैदिक प्रशिक्षण पूरा कर लिया है, उन्होंने दूसरे को अलग घोषित कर दिया है।

9. ऋग्वेद के आचार्य, शास्त्रों में पारंगत, वही दोहराते हैं जो यजुर्वेदियों ने घोषित किया है सामवेद के पारंगत ऋषि बृहत्साम और रथंतर भी (इस सत्य की पुष्टि करते हैं)।

10. भृगु और भार्गव जैसे (वैदिक) ऋषि - अथर्ववेद के ये अनुयायी, वेद, मंत्र और गुप्त सिद्धांतों का अभ्यास करते हुए, शब्दों के क्रम में, (सभी ने एक ही सिद्धांत प्रस्तुत किया)।

11-13. वफादार सह-शिष्य, दृढ़ और निपुण, लाल बैल, बलिदान अवशेष - ये सभी, इसकी विशालता के संबंध में; तथा काल, प्राण, दैवी कोप, संहारक, महान् ईश्वर, रुद्र, जीवों के रक्षक, पुण्यात्माओं को पुरस्कार देने वाले, जीवों के ईश्वर, विराट, पालनहार और जल (जीवन के) के रूप में, वह सर्वव्यापक है, जिसकी स्तुति मन्त्रों में महिमामंडित प्राणियों द्वारा की गई है और जो अथर्ववेद में सुविदित है।

14. कुछ लोग उसे (महान ईश्वर को) छब्बीसवाँ (तत्त्व) कहते हैं, अन्य उसे सत्ताईसवाँ; अथर्ववेद और अथर्व उपनिषदों के आचार्य गुणों से परे आत्माओं को जानते हैं, जैसा कि सांख्य में वर्णित है।

15. व्यक्त और अव्यक्त को मिलाकर चौबीस गिना गया है। कुछ लोग उसे अद्वैत, द्वैत, त्रिगुण और इसी प्रकार पंचगुण भी कहते हैं।

16. जो लोग ज्ञान की दृष्टि से देखते हैं, वे द्विजों को ब्रह्मा से लेकर दण्ड तक सबमें समाया हुआ, एक ही, सर्वथा शुद्ध, सर्वव्यापक समझते हैं।

17. जिसमें यह शक्ति अनेक रूप में, चराचर और अचल रूप में गुंथी हुई है, उसी में वह भी उसी प्रकार विलीन हो जाती है, जैसे नदियाँ समुद्र में विलीन हो जाती हैं।

18. जिसमें पदार्थ विलीन हो जाते हैं और विलीन होकर अप्रकट हो जाते हैं, उसी में वे पुनः अभिव्यक्ति को प्राप्त होते हैं, वे पुनः बुलबुले की भाँति जन्म लेते हैं।

19. वे 'क्षेत्र' को जानने वाले व्यक्तिगत आत्माओं के द्वारा संचालित कारणों के आधार पर अस्तित्व में आते हैं। ऐसा ही धन्य भगवान है, ऐसा अन्य लोग बार-बार कहते हैं।

20. जो ब्राह्मण ब्रह्म को (केवल) जानते हैं, वे यहीं विलीन हो जाते हैं, और विलीन होकर वे अव्यक्त में स्थित हो जाते हैं। विलीन होकर वे अव्यक्त में स्थित हो जाते हैं, यही गुप्त सिद्धांत है। ॐ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है। अनंत अनंत से ही निकलता है।(तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर,वह अनंत (ब्रह्म) ही रह जाता है।ओम! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यजुर्वेद के शुक्ल पक्ष से संबंधित मंत्रिकोपनिषद यहीं समाप्त होता है

<u>033 - सर्व सार उपनिषद</u>

ॐ ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;हम एक दूसरे से विवाद न करें (या हम किसी से द्वेष न करें)।
ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. ॐ. बंध (आत्मा का बंधन) क्या है? मोक्ष (मुक्ति) क्या है? अविद्या (अज्ञान) क्या है? विद्या (ज्ञान) क्या है? जाग्रत (जागना), स्वप्न (स्वप्न), सुषुप्ति (स्वप्नहीन नींद) और चौथी, तुरीय (पूर्ण) की अवस्थाएँ क्या हैं? अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय कोष (आत्मा के वस्त्र या आवरण) क्या हैं? कर्ता क्या है, जीव क्या है, क्षेत्रज्ञ क्या है, साक्षी क्या है, कूटस्थ क्या है, अन्तर्यामी क्या है? प्रत्यगत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, आत्मा क्या है, माया क्या है? आत्मा का स्वामी शरीर को तथा आत्मा के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं को स्वयं के रूप में देखता है, यह अहंकार ही आत्मा का बंधन है। इसका नाश ही मोक्ष है।

अहंकार का कारण अविद्या है। जिससे यह अहंकार पूर्णतया निवृत्त हो जाता है, वह विद्या है। जब आत्मा मन आदि चार तथा दस इन्द्रियों के द्वारा, सूर्य तथा बाहर दिखाई देने वाली अन्य वस्तुओं के द्वारा सौम्य रूप से प्रभावित होकर, शब्द आदि स्थूल वस्तुओं का अनुभव करती है, तब वह आत्मा की जाग्रत अवस्था है। जब शब्द आदि के अभाव में भी (आत्मा) उनकी कामना से रहित होकर, चारों इन्द्रियों के द्वारा शब्द तथा शेष कामनाओं का अनुभव करती है, तब वह स्वप्न अवस्था होती है।

जब चार तथा दस इन्द्रियाँ क्रिया करना बंद कर देती हैं, तथा पृथक्-पृथक् ज्ञान का अभाव हो जाता है, तब आत्मा की सुषुप्ति अवस्था होती है।

2. जब चेतना का सार तत्व जो तीनों अवस्थाओं के रूप में प्रकट होता है, अवस्थाओं का साक्षी होता है, (किन्तु) स्वयं सकारात्मक या नकारात्मक अवस्थाओं से रहित होता है, तथा पृथक्-पृथक् न होकर एकत्व की अवस्था में रहता है, तब उसे तुरीय, चतुर्थ कहा जाता है। छः कोशों का समुच्चय, जो हैं अन्न के उत्पादों को अन्नमय-कोष कहते हैं। जब प्राण से लेकर चौदह प्रकार की वायुएँ आहारकोष में होती हैं, तब उसे प्राणमय-कोष कहते हैं।

जब आत्मा इन दो कोशों से युक्त होकर मन आदि चार इन्द्रियों के द्वारा इच्छा आदि के कार्य करती है, जिनके विषय शब्द और शेष हैं, तब उसे

मनोमय-कोष कहते हैं। जब आत्मा इन तीन कोशों से युक्त होकर चमकती है और इनके भेदों और अभेदों को जानती है, तब उसे विज्ञानमय-कोष कहते हैं। जब ये चारों कोष अपने-अपने कारण अर्थात् ज्ञान (ब्रह्म) में स्थित रहते हैं, उसी प्रकार जैसे कि सुप्त वट वृक्ष वट के बीज में स्थित रहता है, तब इसे आनन्दमय कोष कहते हैं। जब यह शरीर में सुख-दुःख के भाव का केन्द्र बनकर रहता है, तब यह कर्ता कहलाता है।

सुख का भाव इच्छित वस्तुओं से सम्बन्धित है, और दुःख का भाव अवांछनीय वस्तुओं से सम्बन्धित है। शब्द, स्पर्श, दृष्टि, रस और गन्ध सुख और दुःख के कारण हैं। जब आत्मा अच्छे-बुरे कर्मों के अनुसार अपने वर्तमान शरीर (अपने पिछले शरीर) से सम्बन्ध स्थापित कर लेती है, और अभी तक प्राप्त न हुए शरीर के साथ एकता, सम्बन्ध स्थापित करती हुई दिखाई देती है, तब उसे उपाधियों द्वारा सीमित होने के कारण जीव कहते हैं।

पाँच समूह हैं - मन से शुरू होने वाले, प्राण से शुरू होने वाले, सत्व से शुरू होने वाले, इच्छा से शुरू होने वाले और पुण्य से शुरू होने वाले। इन पाँच समूहों के गुणों से युक्त अहंकार, नित्य प्राप्त आत्मा के ज्ञान के बिना नष्ट नहीं होता। जो आत्मा के समीप होने के कारण अविनाशी प्रतीत होता है और आत्मा से संबंधित है, उसे लिंग-शरीर (सूक्ष्म शरीर) और "हृदय की गाँठ" कहते हैं। जो चेतना उसमें स्वयं को अभिव्यक्त करती है, उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं।

3. जो ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के प्रकटीकरण और तिरोभाव को जानने वाला है, परंतु स्वयं ऐसे प्रकटीकरण और तिरोभाव से रहित है, और स्वयं प्रकाशमान है, उसे साक्षी कहते हैं। जब ब्रह्मा से लेकर चींटी तक सभी प्राणियों की बुद्धि में अविभेदित रूप से देखा जाता है, तब उसे कूटस्थ कहते हैं। जब वह कूटस्थ और अन्य के वास्तविक स्वरूप को समझने का साधन बनकर, जो सीमित सहायक होने के कारण भेद हैं, सभी शरीरों में रत्नों की माला में धागे की तरह गुंथे हुए रूप में प्रकट होता है, तब उसे अंतर्यामिन कहते हैं।

जब आत्मा सभी सीमित सहायक से पूर्णतया मुक्त, तेजस्वी, शुद्ध बुद्धि के स्वरूप में चेतना के एक समरूप पिंड के रूप में, स्वतंत्र रूप में चमकती है, तब उसे "तू" (त्वम्) की सत्ता और प्रत्यगत्मा, आंतरिक-स्व कहा जाता है। सत्य, ज्ञान, अनंत, आनंद, ब्रह्म है। सत्य अविनाशी है; नाम, देश, काल, द्रव्य और कारण के नष्ट हो जाने पर भी जो नष्ट नहीं होता, वह

अविनाशी है, और उसे सत्य, वास्तविकता कहते हैं। और ज्ञान - बुद्धि का वह सार, जिसका न आदि है, न अंत, उसे ज्ञान कहते हैं।

4. और अनंत, अनंत, मिट्टी के रूप में मिट्टी, सोने के रूप में सोना, धागे के कपड़े में धागा, आदि, सर्वव्यापी चेतना, जो अव्यक्त से लेकर सृष्टि की सभी घटनाओं में विद्यमान है, उसे अनंत कहते हैं। और आनंद, आनंद - सुख की चेतना का सार, असीम आनंद का सागर, और अविभाज्य सुख की स्थिति को आनंद कहते हैं। उपर्युक्त चतुर्गुण प्रकृति जिसका सूचक है, तथा जो समस्त देश, काल, द्रव्य और कारण में नित्य है, उसे 'तत्' परमात्मा, परम आत्मा और परब्रह्म या परब्रह्म कहते हैं। 'तू' (जब वह प्रतीत होता है) की सत्ता से तथा 'तत्' (जब वह प्रतीत होता है) की सत्ता से भिन्न, जो आकाश के समान सर्वव्यापी, सूक्ष्म, अपने आप में सम्पूर्ण, शुद्ध सत्ता, 'असि' की सत्ता है।

स्वयंप्रकाशमान, को आत्मा कहा गया है; 'नहीं' की सत्ता को भी आत्मा कहा गया है। जो अनादि, फलदायी, प्रमाण और अप्रमाण दोनों से युक्त है, न सत् है, न असत् है, न सत्-असत् है - अस्तित्वहीन है, क्योंकि उसके मूलाधार की अपरिवर्तनीयता के कारण परिवर्तन का कारण निश्चित हो जाता है; - अस्तित्वमान है, जबकि ऐसा निश्चित नहीं है - (इस प्रकार) जो अपरिभाषित है, उसे माया कहते हैं।

5. मैं न तो शरीर हूँ, न ही दस इन्द्रियाँ, बुद्धि, मन, अहंकार। प्राण और मन से रहित, शुद्ध, मैं सदैव साक्षी हूँ, शुद्ध चेतना हूँ। मैं न तो कर्ता हूँ, न ही भोक्ता, केवल प्रकृति का साक्षी हूँ। मेरी उपस्थिति से शरीर आदि सजीव, निश्चल, शाश्वत, सदा आनन्दित, शुद्ध होकर कार्य करते हैं। मैं ब्रह्म हूँ, जो सभी वेदान्तों से जाना जा सकता है, फिर भी आकाश और वायु के समान अज्ञेय हूँ। मैं न रूप हूँ, न क्रिया, केवल ब्रह्म हूँ। 6. मैं शरीर नहीं हूँ, जन्म, मृत्यु मुझे नहीं आते। मैं प्राण नहीं हूँ - मुझे भूख और प्यास नहीं है; मैं मन नहीं हूँ - मुझे शोक या मोह नहीं है। मैं कर्ता नहीं हूँ - मुझे कोई बंधन या मुक्ति नहीं है। ॐ !

वे हम दोनों की एक साथ रक्षा करें; वे हम दोनों का एक साथ पोषण करें; हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो; हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से द्वेष न करें)। ॐ ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ सर्व-सार उपनिषद समाप्त होता है, जैसा कि कृष्ण-यजुर्वेद में निहित है।

034 - निरालम्ब उपनिषद

ओम! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है।अनंत अनंत से ही निकलता है।(तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर,यह केवल अनंत (ब्रह्म) के रूप में ही रहता है।ओम! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. मैं अज्ञान में डूबे जीवों के दुर्भाग्य को दूर करने के लिए जो कुछ जानना आवश्यक है, उसे उठाऊंगा और उसका उत्तर दूंगा।
2. (1) ब्रह्म क्या है?
(2) ईश्वर कौन है?
(3) जीव कौन है?
(4) प्रकृति क्या है?
(5) परमात्मा कौन है?
(6) ब्रह्मा कौन है?
(7) विष्णु कौन है?
(8) रुद्र कौन है?
(9) इंद्र कौन है?
(10) मृत्यु का देवता कौन है?
(11) सूर्य कौन है ?
(12) चंद्रमा कौन है ?
(13) देवता कौन हैं ?
(14) राक्षस कौन हैं ?
(15) दुष्ट आत्माएँ कौन हैं ?
(16) पुरुष कौन हैं ?
(17) महिलाएँ कौन हैं

(१८) पशु आदि कौन हैं ?
(१९) अचल कौन है ?

(२०) ब्राह्मण आदि कौन हैं ?
(२१) जाति क्या है ?
(२२) कर्म क्या है ?
(२३) अकर्म क्या है ?
(२४) ज्ञान क्या है ?
(२५) अज्ञान क्या है ?
(२६) सुख क्या है ?
(२७) दुःख क्या है ?
(२८) स्वर्ग क्या है ?
(२९) नरक क्या है ?
(३०) बंधन क्या है ?
(३१) मोक्ष क्या है ?
(३२) किसकी आराधना करनी चाहिए ?
(३३) शिष्य कौन है ?
(३४) मुनि कौन है ?
(३५) मोहग्रस्त कौन है ?
(३६) आसुरी कौन है ?
(३७) तप क्या है ?
(३८) परमधाम कौन-सा है ?
(३९) किसकी खोज करनी है ?
(४०) किसका त्याग करना है ?
(४१) संन्यासी कौन है ?

३. (१) ब्रह्म अनिर्वचनीय आत्मा है। वह महत् (सांख्य महात्), अहंकार, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश - स्थूल जगत् तथा कर्म, ज्ञान और साध्य के रूप में प्रकट होता है। वह अद्वैत है और सब बन्धों से रहित है। वह सब शक्तियों से युक्त है और आदि और अन्त से रहित है। उसे शुद्ध, अच्छा, शांत, निर्विकार कहा जा सकता है।

४. (२) ईश्वर ही साक्षात् ब्रह्म है, जो अपनी प्रकृति नामक शक्ति के आधार पर जगत् की रचना करता है और ब्रह्म आदि के आन्तरिक नियंत्रक के रूप में (उनमें) प्रविष्ट होता है, वह ईश्वर है, क्योंकि वह बुद्धि और इन्द्रियों को नियंत्रित करता है।

5. (3) जीव वह है जो ब्रह्मा, विष्णु, ईशान, इंद्र आदि के नाम और रूप के कारण मिथ्या आरोपण द्वारा 'मैं स्थूल हूँ' का स्थापन करता है। (जीव

सोचता है) यद्‌यपि मैं एक हूँ, तथापि शरीर की उत्पत्ति करने वाले कारणों के भेद से जीव अनेक हैं।

6. (4) प्रकृति ब्रह्म की शक्ति मात्र है; वह बौद्‌धिक प्रकृति की है और ब्रह्म से नाना प्रकार के अद्‌भुत जगत् की रचना करने में समर्थ है।

7. (5) परमसत्ता ब्रह्म ही है, जो शरीर आदि से सर्वथा भिन्न है।

8-9. (6-20) ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र, मृत्यु के देवता, सूर्य, चंद्रमा, देवता, दानव, पुरुष, स्त्री, पशु आदि; अचल ब्राह्मण आदि; वही आत्मा हैं।

10. (21) न त्वचा, न रक्त, न मांस, न अस्थि में कोई जाति है; आत्मा को केवल प्रयोग के द्‌वारा जाति दी जाती है।

11. (22) 'मैं इन्द्रियों से किये जाने वाले कर्म करता हूँ' - इस प्रकार आत्मा में केन्द्रित होकर किया गया कर्म ही कर्म है।

12. (23) कर्ता और भोक्ता मानकर जन्म आदि का हेतु मानकर किया गया कर्म बन्धन करता है; अकर्म वह अनिवार्य और सामयिक कर्म है - यज्ञ, व्रत, तप, दान आदि, जो फल की इच्छा किये बिना किये जाते हैं।

13. (24) ज्ञान शरीर और इन्द्रियों को संयमित करने, गुरु की सेवा करने, श्रवण, मनन और ध्यान करने से होने वाला वह प्रत्यक्ष बोध है, जो यह बताता है कि आत्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, जो विषयों और पदार्थों का सार है, जो बर्तन और वस्त्र आदि परिवर्तनशील पदार्थों में भी अपरिवर्तनीय है।

(25) अज्ञान, रस्सी में साँप की भाँति, ब्रह्म का भ्रमात्मक ज्ञान है, जो सबमें व्याप्त है, सर्वव्यापी है, अद्‌वैत है। (यह भ्रमात्मक ज्ञान) बंधन और मोक्ष के अनेक घटकों पर आधारित अनेक आत्माओं से जुड़ा है, जैसे जीवन के पद, जातियाँ, पुरुष, स्त्रियाँ, अचल, मनुष्य, (निम्न) पशु और देवता।

(26) सुख वह आनंदमय अवस्था है, जो सत्ता, बुद्‌धि और आनंद के सार के ज्ञान के बाद आती है।

(27) यह (दुःख) सांसारिक अस्तित्व (या अ-स्व) की वस्तुओं का संकल्प (या सोच) मात्र है।

(28) स्वर्ग पवित्र के साथ जुड़ाव है। 17. (29) अपवित्र सांसारिक लोगों की संगति ही नरक है।

18. (30) बंधन अनादि अज्ञान के अव्यक्त संस्कारों के कारण यह कल्पना करने में है कि 'मैं जन्मा हूँ, आदि।'

19. बंधन अस्तित्व के प्रवाह में डूबने की कल्पना करने में है, जिसमें खेत, बगीचे, घर, बच्चे, पत्नी, भाई, माता और पिता पर अधिकार का दावा है।

20. बंधन कर्म आदि के संबंध में अहंकारी अभिकरण का दंभ है।

21. बंधन आठ शक्तियों, अणिमा आदि की इच्छा से प्रेरित कल्पना है।

22. बंधन देवताओं, मनुष्यों आदि की आराधना की लालसा से प्रेरित कल्पना है।

23. बंधन आठ अंगों, यम आदि सहित योग के अभ्यास की कल्पना (की ओर ले जाने वाली) है।

24. बंधन जातियों और जीवन के पदों से बंधे हुए कर्म और कर्तव्यों की योजना है।

25. आत्मा में संशय, भय आदि गुण होने की कल्पना करना ही बंधन है।

26. ज्ञान प्राप्ति की योजना बनाना, यज्ञ, व्रत, तप और दान करना बंधन है।

27. मोक्ष के लिए स्वयं को समर्पित करने की योजना बनाना बंधन है।

28. बंधन वह है जो केवल कल्पना से उत्पन्न होता है।

29. (31) मोक्ष, शाश्वत और अनित्य के बीच विवेक के माध्यम से उन वस्तुओं के संबंध में स्वामित्व की भावना का क्षीण होना है जो देहान्तर में क्षणिक सुख और दुःख उत्पन्न करती हैं।

30. (32) वह गुरु पूजनीय है जो सभी शरीरों में निवास करने वाले ब्रह्म की ओर ले जाता है।

31. (33) शिष्य वास्तव में ब्रह्म है जो जागरूकता (अपने आधार अर्थात् ब्रह्म) द्वारा नष्ट किए गए संसार के ज्ञान में पूरी तरह से डूबा रहता है।

32. (34) मुनि सबमें अन्तर्यामी रूप में विद्यमान आत्म-चेतना के तत्व को जानने वाला है।

33. (35) मोहग्रस्त वह है जो अहंकार के दंभ से पोषित रहता है।

34. (36) आसुरी तप वह है जो दृढ़ आसक्ति, द्वेष, विनाशकारी हिंसा, पाखण्ड आदि में निहित है; जो उपवास करते हुए पवित्र नामों का जप और अग्निहोत्र करके अपने को कष्ट देता है और जो ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र और ईशान जैसे देवताओं की शक्ति प्राप्त करने की इच्छा से प्रेरित होता है।

35. (37) तपस्या, जगत के मिथ्यात्व के तत्काल बोध की अग्नि में ब्रह्म आदि की शक्ति को प्राप्त करने की इच्छा से निर्मित कल्पना के बीज को जलाना है।
36. (38) परमधाम ब्रह्म की स्थिति है, जो शाश्वत स्वतंत्रता है, जिसमें अंतःकरण, इन्द्रिय और प्राणों के गुणों से परे सत्ता, बुद्धि और आनन्द सम्मिलित हैं।

37. (39) देश, काल और वस्तुओं से अनिर्धारित शुद्ध आत्मा का सार ही खोजने योग्य है।

38. (40) मिथ्या इन्द्रिय और बुद्धि द्वारा अनुभव किए जाने वाले अपने स्वरूप के अतिरिक्त अन्य जगत को सत्य मानने का विचार अस्वीकार करने योग्य है।

39. (41) संन्यासी भ्रमणशील स्वतंत्र तपस्वी है, जिसने अनिर्धारित एकाग्रता (निर्विकल्प-समाधि) में यह निश्चित रूप से जान लिया है कि 'मैं ब्रह्म हूँ'। वह प्रमुख ग्रंथों की विषय-वस्तु के अनुभवात्मक ज्ञान के माध्यम से इस तक पहुँचता है जैसे: 'यहाँ कोई अनेकता नहीं है'; 'यह सब ब्रह्म है'; 'वह तू है', आदि; सभी कर्तव्यों, स्वामित्व की भावना और अहंकार को त्यागने के बाद, और प्रिय ब्रह्म की शरण में जाने के बाद।

वह तपस्वी मुक्त है; वह पूजनीय है; वह योगी है; वह अपार है; वह ब्रह्म है ॐ ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है। अनंत अनंत से ही निकलता है। (तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर, वह अनंत (ब्रह्म) ही रह जाता है। ॐ ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ शुक्ल-यजुर्वेद से संबंधित निरालम्बोपनिषद समाप्त होता है।

035 - शुकराहस्य उपनिषद

ॐ ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;हम एक दूसरे से विवाद न करें (या हम किसी से द्वेष न करें)।
ॐ ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1-19. अब हम रहस्य उपनिषद की व्याख्या करते हैं: दिव्य ऋषियों ने ब्रह्मा की पूजा करते हुए पूछा: हे प्रभु,हमें रहस्य उपनिषद बताइए। उन्होंने कहा, 'पूर्वकाल में सभी वेदों और तपस्या के भंडार व्यास ने शिव से पूछा: हे महान ज्ञान के स्वामी, जिन्होंने (जीवन के बंधन को तोड़ने का) दृढ़ संकल्प किया है। मेरे पुत्र शुक को वेद के संस्कार में दीक्षा देने का समय आ गया है।' शिवजी ने कहा, 'जब मैं एकमात्र ब्रह्म प्रदान कर दूँगा, तब तुम्हारा पुत्र वैराग्य प्राप्त करके स्वयं ही चला जाएगा।' व्यासजी ने कहा: जो भी हो; उपनयन में जब ब्रह्म प्रदान किया जाएगा, तब मेरा पुत्र शीघ्र ही सर्वज्ञ हो जाए और चारों प्रकार के मोक्ष को प्राप्त हो।' तब शिवजी यह सुनकर उपदेश देने के लिए दिव्य आसन पर बैठ गए। सौभाग्यशाली शुकदेव भक्तिपूर्वक वहाँ आए और प्रणव को प्राप्त करके पुनः शिवजी से बोले। शुकजी ने कहा, 'देवताओं में प्रथम, सर्वज्ञ, आप प्रसन्न हों।

ॐ में निहित परम ब्रह्म प्रदान किया गया है; 'तू ही है' आदि विशेष अर्थ, छह अंगों सहित, मैं सुनना चाहता हूँ।' शिवजी ने कहा, 'ठीक कहा, हे ज्ञान के भण्डार, तुमने इच्छित वस्तु, रहस्योपनिषद् नामक वैदिक ग्रन्थों का

रहस्य पूछा है, जिसके छह अंग हैं, जिन्हें जानने से प्रत्यक्ष ही ज्ञान प्राप्त होगा। जिन ग्रन्थों में छह अंग नहीं हैं, उन्हें नहीं पढ़ाना चाहिए। जैसे उपनिषद वेदों का मुकुट हैं, वैसे ही रहस्य भी उपनिषदों का मुकुट है। ब्रह्म का ध्यान करने वाले बुद्धिमान व्यक्ति के लिए तीर्थ, वैदिक कर्म और मंत्र व्यर्थ हैं। प्रमुख ग्रंथों के अर्थ का ध्यान करने से सौ वर्ष की आयु प्राप्त होती है। इसे एक बार बोलने से भी वही मिलता है।

20. ॐ, इस मंत्र के लिए हंस ऋषि हैं, अव्यक्त गायत्री छंद है, देवता परमहंस हैं, हंस बीज है, सामवेद शक्ति है। 'मैं वह हूं' पिन है। इसका प्रयोग किस संदर्भ में है परमहंस की कृपा प्राप्त करने के लिए मुख्य ग्रन्थ का उच्चारण करें। 'सत्य, ज्ञान, अनंत ब्रह्म है।

अंगूठों को प्रणाम करें,शाश्वत आनंद ब्रह्म है' – तर्जनी को स्वाहा।

'ब्रह्म शाश्वत आनंद है,अधिकांशतः' – मध्यमा को वसत्।

'वह जो परिपूर्णता है' – अनामिका को हुं।

'पूर्णता का स्वामी' – कनिष्ठिका को वसत्।

'एक और अद्वैत ब्रह्म है।

हथेलियों के अंदर और बाहर फट्'।

'सत्य, ज्ञान, अनंत ब्रह्म है' – हथेली के अंदर और बाहर फट्।

'सत्य, ज्ञान, अनंत ब्रह्म है – हृदय को प्रणाम करें'।

'शाश्वत आनंद ब्रह्म है' – सिर को स्वाहा – बालों की चोटी को वसत्।

'वह जो परिपूर्णता है' – कवच को हुं – तीनों नेत्रों को वसत्। 'एक और अद्वैत ब्रह्म' - मिसाइल को फट। पृथ्वी, पुराना क्षेत्र, स्वर्ग, ओम, यह अंतरिक्ष की कड़ी है।

21-22. ध्यान: मैं महान शिक्षक को नमन करता हूं, जो बनने और तीन गुणों से परे है, एक, शाश्वत, पवित्र, सभी ज्ञान का साक्षी, आनंद का दाता, दुनिया से परे, आकाश जैसा, प्रमुख ग्रंथों का उद्देश्य। चार प्रमुख मार्ग: (1)

चेतना ब्रह्म है (2) मैं ब्रह्म हूँ (3) वह तू है और (4) यह आत्मा ब्रह्म है। जो लोग पहचान के कथन का पाठ करते हैं, वे सायुज्य (पहचान) में मुक्त हो जाते हैं।

23-24. महान मंत्र 'तत्' में, द्रष्टा हंस है, अप्रकट गायत्री छंद है। परमहंस देवता हैं; हंस बीज हैं; साम-वेद, शक्ति; सोऽहम पिन है; आवेदन मेरी मुक्ति के लिए ध्यान है। उस साधक को अंगूठों को प्रणाम करो, स्वाहा, इसाना, तर्जनी को, वसत्, अघोरा को मध्यमा को, सद्योजात को अनामिका को, हुं; वामदेव को कनिष्ठा को वौसत्; उस आत्मा को, इसाना, अघोरा आदि। फट्। ध्यान: उस चमकते हुए प्रकाश का ध्यान करो जो ज्ञान और उसके विषयों के रूप में है और जो उन दोनों से परे है, निष्कलंक, जागृत, मुक्त और अविनाशी है।

25-26. 'त्वं' के जाप में विष्णु द्रष्टा हैं, गायत्री छन्द है, परमात्मा देवता है, 'ऐं' बीज है, 'क्लिम्' शक्ति है, 'सौः' पिन है, प्रयोग मेरी मुक्ति के लिए जप का है। वासुदेव को अंगूठों को प्रणाम करो: स्वाहा, संकर्षण, तर्जनी को; वसत्, प्रद्युम्न को मध्यमा को; हुं, अनिरुद्ध को अनामिका को; वौसत्, वासुदेव को कनिष्ठा को; वासुदेव और अन्य को नमस्कार। ध्यान: मैं जीव अवस्था, सभी जीवित चीजों में, हर जगह, निष्पक्ष रूप, मन और अहंकार के नियंत्रक 'तू' शब्द की पूजा करता हूं।

27. 'असि' के लिए, द्रष्टा मन है, छंद गायत्री, देवता अर्धनारीश्वर, बीज अव्यक्तदि, शक्ति नृसिंह है, पिन सर्वोच्च आत्मा है। जीव और ब्रह्म की पहचान के लिए प्रयोग दोहराव है। मैं पृथ्वी के युग्म अंगूठों को नमस्कार करता हूं; जल के युग्म तर्जनी को स्वाहा। मध्यमा को वसत्, अग्नि के युग्म; अनामिका को हुं, वायु के युग्म; कनिष्ठा को वौसत्, आकाश के युग्म; हाथ के आगे और पीछे के भाग को फट्, पृथ्वी के युग्म आदि। इसी प्रकार हृदय का अभिषेक भी। भूः, भुवः, स्वः, ॐ। इस प्रकार दिशाएँ संलग्न हैं।

28-29। ध्यान: 'असि का सदैव ध्यान करो, तुम हो। उसमें जीव के विलय का लक्ष्य रखो, जब तक मन तात्पर्य पर लगा रहे।' इस प्रकार प्रमुख ग्रंथों के छह अंग बताए गए हैं।

30-38. अब रहस्यवादी शिक्षाओं के वर्गीकरण के अनुसार तात्पर्य पर श्लोक बताए गए हैं। प्रज्ञान वह है जिसके द्वारा मनुष्य यहाँ सभी वस्तुओं को देखता, सुनता, सूँघता और स्पष्ट करता है, चाहे वे सुखद हों या अप्रिय,

जिससे वह जानता है। चतुर्मुख ब्रह्म, इंद्र और देवता, मनुष्य, घोड़े, गाय आदि में आत्मा एक ब्रह्म है - इसलिए, मुझमें भी प्रज्ञान ब्रह्म है। इस शरीर में प्राणी बुद्धि का साक्षी रहता है और मैं कहलाता हूँ। स्वयं में पूर्ण सत्ता को ब्रह्म कहा जाता है, जिसे अस्मि कहा जाता है। इसलिए, मैं ब्रह्म हूँ।

सृष्टि से पहले और अब भी, दूसरा रहित, नाम और रूप से रहित सत्ता को वह कहा जाता है। यहाँ तू कहलाने वाला अस्तित्व इन्द्रियों से परे एक है। इस एकता का अनुभव किया जाना चाहिए। अहंकार से लेकर शरीर तक का आंतरिक स्वत्व इसे (आयाम) कहा जाता है क्योंकि यह स्वयं प्रकाशमान है और अंतरंग रूप से अनुभव करता है। ब्रह्माण्ड का सत्य ब्रह्म शब्द द्वारा देखे जाने वाले सभी सत्यों के बारे में कहा गया है।

39. मैं आत्मा के दर्शन के अभाव के कारण 'मैं' और 'मेरा' के स्वप्न की स्थिति में था। परंतु जब मेरे स्वभाव का सूर्य प्रत्यक्ष द्वारा स्पष्ट कहे गए प्रमुख ग्रंथों के माध्यम से उदय हुआ, तब मैं जाग उठा।

40-42. इन्द्रिय के दो प्रकार हैं: व्यक्त और निहित। 'तत्त्वम् असि' में व्यक्त अर्थ इन्द्रिय आदि हैं, जो तत्व हैं और 'तुम' (त्वम्) में निहित अर्थ 'वह' है, तत् शब्द में व्यक्त अर्थ प्रभुता आदि है, निहित अर्थ परब्रह्म है जो सत्, चित् और आनन्द है। 'असि' इन दोनों की पहचान कराता है। त्वम् और तद् का अर्थ क्रमशः कार्य और कारण है, जब यह सहायक है; अन्यथा दोनों एक ही सत्, चित् और आनन्द हैं - देश और काल को पृथक करने से ही पहचान हो जाती है, जैसे संसार में 'यह वह देवदत्त है' इस भाव में। जीव में कार्य-अनुबंध है, ईसा में कारण-अनुबंध है - जब दोनों हट जाते हैं, तब केवल पूर्ण ज्ञान ही शेष रह जाता है।

43-45. पहले गुरु से सुनना, फिर उसका चिन्तन और ध्यान - यही पूर्ण ज्ञान का कारण है। अन्य ज्ञान अवश्य ही नष्ट हो जाएगा, जबकि ब्रह्म का ज्ञान ब्रह्म की प्राप्ति कराता है। गुरु को चाहिए कि वह उपनिषद् के शब्दों को अंगों से सिखाए, केवल शब्दों से नहीं - ये ब्रह्मा के शब्द हैं।

46-53. ईश्वर ने कहा, 'हे शुक, व्यास के कहने पर मेरे द्वारा इस प्रकार उपदेश पाकर तुम जीवन्मुक्त हो जाओगे।' वेद के आरम्भ में जो स्वर उच्चारित किया गया है, वह परमेश्वर है। शिव द्वारा इस प्रकार उपदेश पाकर शुक ब्रह्माण्ड से एक हो गया; उठ खड़ा हुआ, शिव को प्रणाम किया और सब कुछ त्यागकर चला गया, मानो परम आत्मा के सागर में तैर रहा

हो। व्यास जी ने उसे संन्यासी की तरह जाते देखा, तो वियोग से व्याकुल होकर पुकारते हुए उसके पीछे चले गए।

सारी दुनिया ने उसकी बात दोहराई। यह सुनकर व्यास जी और उनके पुत्र बहुत प्रसन्न हुए। जो गुरु की कृपा से यह सीख लेता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है और मोक्ष का आनंद लेता है। इस प्रकार उपनिषद। ॐ ! वह हम दोनों की रक्षा करें; वह हम दोनों का पोषण करें; हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो; हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से द्वेष न करें)। ॐ ! मुझमें शांति हो ! मेरे वातावरण में शांति हो ! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो !

कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित शुक्रहस्योपनिषद यहीं समाप्त होता है।

036 - वज्रसूचिका उपनिषद

डॉ. ए. जी. कृष्ण वारियर द्वारा अनुवादित थियोसोफिकल पब्लिशिंग हाउस, चेन्नई द्वारा प्रकाशित ओम! मेरे अंग और वाणी, प्राण, आंखें, कान, जीवन शक्ति और सभी इंद्रियों में शक्ति बढ़े। सभी अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है।
मैं कभी ब्रह्म को अस्वीकार न करूं, न ही ब्रह्म मुझे अस्वीकार करे।

बिलकुल भी अस्वीकार न हो:कम से कम मेरी ओर से तो कोई अस्वीकार न हो।उपनिषदों में बताए गए गुण मुझमें हों,जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।ओम! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर काम करने वाली शक्तियों में शांति हो!

मैं वज्रसूचिका (हीरे की सुई) को स्थापित करूंगा जो अज्ञान को भेदती है, अज्ञानियों को फटकारती है और उन लोगों को अलंकृत करती है जिनके पास आंख के रूप में ज्ञान है। स्मृतियों में वेदों के अनुसार ही कहा गया है कि ब्राह्मण चारों वर्णों में सबसे महत्वपूर्ण है। यह अवश्य पूछा जाना चाहिए कि ब्राह्मण कौन है - आत्मा, शरीर, वर्ण, ज्ञान, कर्म या गुण?

आत्मा ब्राह्मण नहीं है, क्योंकि आत्मा भूत और भविष्य में सभी शरीरों में एक ही है। एक ही व्यक्ति कर्मानुसार अनेक शरीर धारण करता है, न ही शरीर ब्राह्मण है - शरीर चाण्डाल से लेकर उच्च वर्ण तक एक ही है, क्योंकि यह पाँच तत्वों से बना है और इसमें बुढ़ापा, मृत्यु आदि सब एक समान दिखाई देते हैं।

रंग में कोई स्थिरता नहीं है, जैसे ब्राह्मण श्वेत है, क्षत्रिय लाल है, वैश्य पीला है और शूद्र काला है; साथ ही जब पिता का शव जलाया जाता है, तो पुत्र आदि ब्राह्मण की हत्या के दोषी हो सकते हैं। न ही वर्ण ब्राह्मण है। तब वर्णों के भीतर अनेक वर्ण हो जाएँगे। महान ऋषि अनेक हैं: ऋष्यश्रृंग हिरण से, कौशिक ईख से, जम्बूक सियार से, वाल्मीकि चींटी के टीले से, व्यास मछुआरे की लड़की से, गौतम खरगोश की पीठ से, वशिष्ठ उर्वशी से, अगस्त्य घड़े से। ये जन्म से ब्राह्मण नहीं हैं, बल्कि अपने ज्ञान से हैं। न ही ज्ञान ब्राह्मण है: क्षत्रिय और अन्य लोगों में भी ज्ञान है। न ही कर्म: सभी प्राणी...

प्रारब्ध आदि कर्म समान देखे जाते हैं, तथा सभी प्राणी कर्म से प्रेरित होकर कार्य करते हैं। न ही कोई पुण्यात्मा है: स्वर्ण देने वाले बहुत हैं - क्षत्रिय आदि। जिसने हथेली में बेर के समान, द्वितीय रहित, वर्ग, गुण और क्रिया से रहित तथा छह तरंगों (भूख जैसी) के समान दोषों से रहित, अवस्थाओं (जन्म और मृत्यु जैसी) सत्य, ज्ञान और आनन्द के स्वरूप से रहित, योजकों से रहित, सभी विचारों का आधार, सभी प्राणियों में व्याप्त, आकाश की तरह अन्दर और बाहर उपस्थित, अखण्ड आनन्द, (साधारण) ज्ञान से परे, केवल अनुभव से प्राप्त होने वाला, तथा सफल, वासना आदि से रहित, मानसिक संयम से युक्त, लोभ आदि से रहित, पाखण्ड आदि से अछूता मन, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया है। वेद आदि का यही अभिप्राय है। अन्यथा ब्रह्म के स्वरूप को प्राप्त नहीं किया जा सकता। अपने आप को द्वितीय रहित, सत्य, ज्ञान और आनन्द स्वरूप आत्मा के रूप में चिन्तन करना चाहिए। यह उपनिषद है।

ॐ! मेरे अंग और वाणी, प्राण, आंखें, कान, प्राणशक्ति और सभी इंद्रियां शक्तिशाली बनें।सारा अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है।मैं कभी ब्रह्म को अस्वीकार न करूं, न ही ब्रह्म मुझे अस्वीकार करे।बिलकुल भी अस्वीकार न हो:कम से कम मेरी ओर से तो कोई अस्वीकार न हो।उपनिषदों में बताए गए गुण मुझमें हों,जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।
ॐ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ सामवेद में शामिल वज्रसूचिका उपनिषद समाप्त होता है।

037 - तेजो-बिंदु उपनिषद

ॐ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;हम एक दूसरे से विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)।ॐ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

अध्याय - I

1. परम-ध्यान (सर्वोच्च ध्यान) तेजो-बिंदु (आध्यात्मिक प्रकाश का बीज या स्रोत) पर होना चाहिए, जो ब्रह्मांड की आत्मा है, जो हृदय में विराजमान है, जो एक परमाणु के आकार का है, जो शिव से संबंधित है, जो शांत है और जो स्थूल और सूक्ष्म है, साथ ही इन गुणों से ऊपर है।

2. मुनियों और मनुष्यों का ध्यान वही होना चाहिए, जो कष्टों से भरा हो, जिसका ध्यान करना कठिन हो, जिसे समझना कठिन हो, जो मुक्तिदायक हो, जो क्षयरहित हो और जिसे पाना कठिन हो।

3. जिसका आहार संयमित हो, जिसका क्रोध वश में हो, जिसने समाज के प्रति सब प्रकार की प्रीति त्याग दी हो, जिसने अपनी वासनाओं को वश में कर लिया हो, जिसने सब द्वन्द्वों (सर्दी-गर्मी आदि) पर विजय पा ली हो, जिसने अपना अहंकार त्याग दिया हो, जो न किसी को आशीर्वाद देता हो, न किसी से कुछ लेता हो;

4. और जो वहाँ जाता है, जहाँ उसे स्वभावतः नहीं जाना चाहिए और जहाँ उसे स्वभावतः जाना पसंद नहीं होता, वहाँ नहीं जाता - ऐसे व्यक्ति भी मुख में तीन स्थान प्राप्त करते हैं। हंस के तीन स्थान कहे गए हैं।

5. इसलिए उसे सबसे बड़ा रहस्य जानो, वह निद्रारहित और आधाररहित है। वह बहुत सूक्ष्म है, सोमरूप है और भगवान विष्णु का परम स्थान है।

6. वह आसन तीन मुखों, तीन गुणों और तीन धातुओं से युक्त है तथा निराकार, अचल, अपरिवर्तनशील, आकारहीन और आधारहीन है।

7. वह आसन उपाधि रहित है और वाणी और मन की पहुँच से परे है। वह स्वभाव है, जो केवल भाव से ही प्राप्त किया जा सकता है।

8. अविनाशी आसन संगरहित, आनन्दरहित, मन से परे, अनुभव करने में कठिन, मुक्त और अपरिवर्तनशील है। उसका ध्यान मुक्त, शाश्वत, स्थायी मानकर करना चाहिए।

9. यह ब्रह्म है, अध्यात्म है (या आत्मा के रूप में अधिष्ठाता देवता है) और विष्णु का सर्वोच्च स्थान है। यह अकल्पनीय है, चिदात्मा के स्वरूप वाला है और आकाश से ऊपर है।

10. यह शून्य और अशून्य है और शून्य से परे है और हृदय में निवास करता है। इसमें न तो ध्यान है, न ध्याता है, न ध्याया जाने वाला है, न अध्याया जाने वाला है।

11. यह ब्रह्मांड नहीं है। यह सर्वोच्च स्थान है; यह न तो सर्वोच्च है और न ही सर्वोच्च से ऊपर है। यह अकल्पनीय, अज्ञेय, असत्य है और सर्वोच्च नहीं है। 12. यह मुनियों द्वारा अनुभव किया जाता है, लेकिन देवता सर्वोच्च को नहीं जानते। लोभ, मोह, भय, अभिमान, जुनून, क्रोध, पाप;

13. गर्मी, सर्दी, भूख, प्यास, विचार और कल्पना - (ये सभी इसमें मौजूद नहीं हैं)। (इसमें) न तो ब्राह्मण जाति का अभिमान है, न मोक्ष-ग्रन्थ का संग्रह है।

14. (इसमें) न भय है, न सुख है, न दुःख है, न यश है, न अपकीर्ति है। जो इनसे रहित है, वही परम ब्रह्म है।

15. यम (धैर्य), नियम (धार्मिक पालन), त्याग (त्याग), मौन (मौन)
समय और स्थान के अनुसार, आसन (मुद्रा), मूलबन्ध, सभी शरीरों को समान देखना, नेत्र की स्थिति;

16. प्राण-संयम (श्वास का नियंत्रण), प्रत्याहार (इन्द्रियों का वश में करना), धारणा, आत्मध्यान और समाधि - ये क्रमशः (योग के) अंग कहे गए हैं।

17. यम उसे कहते हैं जिसमें मनुष्य अपनी सभी इन्द्रियों (इन्द्रियों और कर्मों) को इस विज्ञान के द्वारा नियंत्रित करता है कि सब कुछ ब्रह्म है; इसका बार-बार अभ्यास करना चाहिए।

18. नियम, जिसमें मन का उसी (आध्यात्मिक) प्रकार के पदार्थों (अर्थात् ब्रह्म) की ओर प्रवाह (या झुकाव) के माध्यम से परम आनंद का आनंद लिया जाता है और एक दूसरे से भिन्न वस्तुओं का त्याग किया जाता है, जिसका अभ्यास ऋषियों द्वारा एक नियम के रूप में किया जाता है।

19. त्याग (त्याग) में, व्यक्ति आत्मा के ज्ञान के माध्यम से ब्रह्मांड की अभिव्यक्ति (या वस्तुओं) को छोड़ देता है जो कि सत् और चित् है। यह महात्माओं द्वारा किया जाता है और तत्काल मोक्ष देने वाला है।

20. मौन (मौन), जिसमें, उस तक पहुँचे बिना, वाणी मन के साथ वापस लौट जाती है, योगियों द्वारा प्राप्त करने योग्य है और अज्ञानियों द्वारा भी इसकी हमेशा पूजा की जानी चाहिए।

21. 'वह' कैसे कहा जा सकता है, जिससे वाणी वापस आती है? इसे ब्रह्मांड के रूप में कैसे वर्णित किया जाए क्योंकि इसका वर्णन करने के लिए कोई शब्द नहीं है?

22. जिसे वास्तव में मौन कहते हैं और जो स्वभावतः ही समझा जाता है। बालकों में मौन तो होता है, परन्तु शब्दों सहित (अव्यक्त) और ब्रह्म के जानने वालों में मौन तो होता है, परन्तु शब्दों सहित नहीं।

23. जिसके आदि, मध्य और अन्त में कोई पुरुष नहीं है, तथा जिसके द्वारा यह सब (ब्रह्माण्ड) पूर्णतया व्याप्त है, उसे 'एकांत आसन' जानना चाहिए।

24-25. ब्रह्म और अन्य सभी प्राणियों की माया पलक झपकते ही हो जाती है। उसे आसन जानना चाहिए, जिसमें सहजता और बिना थके ब्रह्म का ध्यान होता है; उसी को काल कहते हैं, वही अनन्त आनन्द है और वही अद्वय है। अन्य सब सुखों का नाश करने वाला है।

26. वह सिद्धासन (सिद्ध-आसन) कहलाता है, जिसमें सिद्धों (मानसिक व्यक्तियों) ने अनन्त एक को समस्त तत्त्वों से युक्त ब्रह्माण्ड के आधार के रूप में अनुभव करने में सफलता प्राप्त की है।

27. वह मूलबन्ध कहलाता है, जो समस्त लोकों का मूल है तथा जिसके द्वारा मूल चित्त (बन्ध) बँधा हुआ है। राजयोगियों को इसका सदैव अभ्यास करना चाहिए।

28. जब मनुष्य को यह ज्ञात हो जाए कि योग के अंग एक ही ब्रह्म की ओर संकेत करते हैं, तो उसे उस सम (या एकरूप) ब्रह्म में लीन हो जाना चाहिए; यदि ऐसा न हो, तो वह समता प्राप्त नहीं होती। तब सूखे वृक्ष के समान सर्वत्र एकरूपता आ जाती है।

29. अपनी दृष्टि को आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण करके, मनुष्य को जगत को ब्रह्म से परिपूर्ण देखना चाहिए। वह दृष्टि बहुत उत्तम है। वह (सामान्यतः) नासिका की नोक पर केन्द्रित होती है।

30. परन्तु उसे उस स्थान (ब्रह्म) की ओर निर्देशित करना चाहिए जहाँ द्रष्टा, दृश्य और दृष्टि नाक की नोक की ओर नहीं, बल्कि उस ओर होगी।

31. इसे प्राणायाम (श्वास का संयम) कहते हैं, जिसमें चित्त की सभी अवस्थाओं में ब्रह्म के ज्ञान के द्वारा (मन की) क्रियाओं का संयम होता है।

32. ब्रह्माण्ड की वास्तविकता की धारणा को रोकना निःश्वसन कहलाता है। 'मैं ब्रह्म हूँ' की धारणा प्रेरणा है।

33. इस धारणा को बिना किसी उत्तेजना के (लंबे समय तक) धारण करना श्वास का रुकना है। ऐसा ही ज्ञानी पुरुषों का अभ्यास है।

34. अज्ञानी अपनी नाक बंद कर लेते हैं। इसे प्रत्याहार कहना चाहिए, जिसके द्वारा इन्द्रिय के विषयों में भी आत्मा को देखा जाता है और मनस के द्वारा चित्त को प्रसन्न किया जाता है। इसका बार-बार अभ्यास करना चाहिए।

35. जहाँ-जहाँ मन जाता है, वहाँ-वहाँ ब्रह्म को देखने से धारणा का अर्थ है वह अवस्था, जहाँ व्यक्ति सद्विचार में लीन हो जाता है।

36. 'मैं ब्रह्म ही हूँ', और किसी सहारे से रहित हूँ। यह ध्यान परम आनन्द देने वाला है।

37. पहले अपरिवर्तन की अवस्था में होना और फिर ब्रह्म के (सत्य) स्वरूप के ज्ञान के कारण उस अवस्था को भी पूरी तरह भूल जाना - इसे समाधि कहते हैं।

38. इस प्रकार के आनन्द का अभ्यास बुद्धिमान व्यक्ति को तब तक करना चाहिए (या भोगना चाहिए) जब तक कि उसका ज्ञान स्वयं एक क्षण में प्रत्यग (आत्मा) की अवस्था के साथ एक न हो जाए।

39. तब यह योगराज सिद्ध हो जाता है और बिना किसी सहायता के (अपने से बाहर) हो जाता है। तब वह अवर्णनीय और अकल्पनीय अवस्था को प्राप्त होता है।

40. जब समाधि का अभ्यास किया जाता है, तो निम्नलिखित बाधाएँ बहुत जोर से उठती हैं - सही जिज्ञासा का अभाव, आलस्य, भोग की प्रवृत्ति;

41. विषय-वासना, तमोगुण, व्याकुलता, अधीरता, पसीना और अन्यमनस्कता। ब्रह्म के जिज्ञासुओं को इन सब बाधाओं को पार कर लेना चाहिए।

42. भाव-वृत्तियों (सांसारिक विचारों) से मनुष्य उनमें प्रविष्ट होता है। शून्य-वृत्तियों (शून्य या खाली विचारों) से मनुष्य उनमें प्रविष्ट होता है। परंतु ब्रह्म की वृत्तियों से पूर्णता प्राप्त होती है।

43. इसलिए इस साधन (ब्रह्म के) से पूर्णता प्राप्त करनी चाहिए। जो इस ब्रह्म की वृत्ति को, जो अत्यंत पवित्र करने वाली और श्रेष्ठ है, त्याग देता है, वह मनुष्य पशु के समान व्यर्थ ही जीता है।

44. परंतु जो इस वृत्ति (ब्रह्म की) को समझ लेता है और समझकर उसमें उन्नति करता है, वह अच्छा और धन्य मनुष्य बनता है, तीनों लोकों द्वारा पूजित होने का पात्र बनता है।

45. जो लोग (अपने पिछले कर्मों के) परिपक्व होने से बहुत विकसित हो जाते हैं, वे ब्रह्मपद को प्राप्त होते हैं; अन्य लोग केवल शब्दों का उच्चारण करने वाले हैं।

46. जो ब्रह्म के विषय में तर्क करने में चतुर हैं, परंतु ब्रह्म से संबंधित क्रिया से रहित हैं और जो संसार में बहुत आसक्त हैं - वे निश्चय ही अपने अज्ञान के कारण बार-बार (इस संसार में) जन्म लेते हैं;

47. (पूर्ववर्ती) कभी भी, आधे क्षण के लिए भी, ब्रह्म की वृत्ति के बिना नहीं रहते हैं, जैसे ब्रह्मा आदि, सनक आदि, शुक आदि।

48. जब कोई कारण परिवर्तन के अधीन होता है, तो उसका (कार्य के रूप में) भी कारण अवश्य होता है। जब कारण का सत्य में अस्तित्व समाप्त हो जाता है, तो कार्य भी सम्यक् विवेक से नष्ट हो जाता है। तब वह पदार्थ (या सिद्धांत) जो शब्दों के दायरे से परे है, शुद्ध रहता है।

49. उसके बाद, उनके शुद्ध मन में वृत्ति ज्ञान उत्पन्न होता है; पारमार्थिक शक्ति के ध्यान के द्वारा,
दृढ़ निश्चय उत्पन्न होता है।

50. दृश्य को अदृश्य अवस्था में लाने के बाद, व्यक्ति को सभी चीजों को ब्रह्म के रूप में देखना चाहिए। बुद्धिमानों को चाहिए कि वे अपनी बुद्धि को चित् के सार से परिपूर्ण करके सदैव आनंद में रहें। इस प्रकार प्रथम अध्याय समाप्त होता है।

अध्याय - II तब कुमार ने शिव से पूछा: "कृपया मुझे चिन्मात्र की प्रकृति, अर्थात् अद्वैत सार के बारे में समझाएँ"। महान शिव ने उत्तर दिया:

1-23. "अद्वैत सार दृश्य है। यह संसार है, यह अस्तित्व है, यह आत्मा है, यह मंत्र है, यह क्रिया है, यह आध्यात्मिक ज्ञान है, यह जल है। यह पृथ्वी है, यह आकाश है, यह पुस्तकें हैं, यह तीन वेद हैं, वह ब्रह्म है, वह धार्मिक व्रत है, वह जीव है, वह अज (अजन्मा) है, वह ब्रह्मा है, वह विष्णु है, वह रुद्र है; वह मैं हूँ, वह आत्मा है, वह गुरु है।

वह लक्ष्य है, वह यज्ञ है, वह शरीर है, वह मनस है, वह चित्त है, वह सुख है, वह विद्या है; वह अविभाज्य है, वह सनातन है, वह सर्वोच्च है, वह सब कुछ है। हे छह मुख वाले, उससे भिन्न कुछ भी नहीं है। कोई नहीं, उसके

सिवाय कोई नहीं; वह मैं हूँ। वह स्थूल है, वह सूक्ष्म है, वह जानने योग्य है, वह तू है; वह रहस्यपूर्ण है; वह ज्ञाता है; वह अस्तित्व है, वह माता है, वह पिता है, वह भाई है, वह पति है, वह सूत्र (आत्मा) है, वह विराट है।

यह शरीर है, यह सिर है, यह आंतरिक है, यह शाश्वत है, यह पूर्ण है, यह अमृत है, यह गोत्र है, यह गृह है, यह धारण करने योग्य है, यह चंद्रमा है, यह तारे हैं, यह सूर्य है, यह पवित्र स्थान है। यह क्षमा है, यह धैर्य है, यह गुण है, यह साक्षी है। यह मित्र है, यह सगे-संबंधी है, यह सहयोगी है, यह राजा, नगर, राज्य और प्रजा है। यह ॐ है, जप है, ध्यान है, यह आसन है, इसमें प्रवेश करने योग्य है, यह हृदय है, यह ज्योति है, यह स्वर्ग है और यह आत्मा है।

24. “समस्त अद्वैत और अद्वैत तत्व को चिन्मात्र समझना चाहिए। चिन्मात्र ही परम चैतन्य है और यह अद्वैत तत्व ही वास्तविक तत्व है।
25. जो परिवर्तन करने वाले हैं, उन्हें छोड़कर जो केवल चैतन्य वाले हैं, वे सभी चिन्मात्र हैं। यह सब चिन्मात्र है।

26. वह चिन्मय है; आत्मा की स्थिति को चिन्मात्र और अद्वैत तत्व कहते हैं।
सारा जगत चिन्मात्र है।तुम्हारी स्थिति और मेरी स्थिति चिन्मात्र है।

27.आकाश, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, ब्रहमा, विष्णु, शिव और जो कुछ भी है या नहीं है, वह सब चिन्मात्र है।

28.जो अद्वैत तत्व है, वह चिन्मात्र है।भूत, वर्तमान और भविष्य सब चिन्मात्र है।

29.द्रव्य और काल चिन्मात्र हैं।ज्ञान और ज्ञेय चिन्मात्र हैं।ज्ञाता चिन्मात्र है।
सब कुछ चिन्मात्र है।

30.प्रत्येक वाणी चिन्मात्र है।अन्य सब चिन्मात्र है।असत् और सत् चिन्मात्र है।

31.आदि और अंत चिन्मात्र हैं;जो आदि और अंत में है, वह सदा चिन्मात्र है।

गुरु और शिष्य चिन्मात्र हैं। यदि द्रष्टा और दृश्य चिन्मात्र हैं, तो वे सदैव चिन्मय हैं।

32. सभी अद्भुत वस्तुएँ चिन्मात्र हैं। (स्थूल) शरीर चिन्मात्र है, सूक्ष्म और कारण शरीर भी। चिन्मात्र से परे कुछ भी नहीं है।

33. मैं और तू चिन्मात्र हैं। रूप और अरूप चिन्मात्र हैं। सद्गुण और दुर्गुण चिन्मात्र हैं। शरीर चिन्मात्र का प्रतीक है।

34. संकल्प, ज्ञान, मंत्र और अन्य, मंत्रों में आह्वान किए गए देवता;

35. आठ दिशाओं के अधिष्ठाता देवता, प्रत्यक्ष और परम ब्रह्म, चिन्मात्र के अलावा कुछ भी नहीं हैं। चिन्मात्र के बिना कुछ भी नहीं है।

36-38. चिन्मात्र के बिना माया कुछ भी नहीं है। चिन्मात्र के बिना पूजा कुछ भी नहीं है। ध्यान, सत्य, कोश आदि, आठ वसु, मौन, अ-मौन और विषयों के प्रति उदासीनता - ये सब चिन्मात्र के बिना कुछ भी नहीं हैं। सब कुछ चिन्मात्र से है। जो कुछ भी देखा जाता है और जिस प्रकार भी देखा जाता है - वह अब तक चिन्मात्र ही है।

39-41 जो कुछ भी है और चाहे वह कितना भी दूर क्यों न हो, वह चिन्मात्र ही है। जो भी तत्व हैं, जो कुछ भी माना जाता है और जो कुछ भी वेदान्त है - ये सब चिन्मात्र ही हैं। चिन्मात्र के बिना न गति है, न मोक्ष है और न कोई लक्ष्य है। सब कुछ चिन्मात्र ही है। ब्रह्म जो अखण्ड अद्वैत तत्व है, वह चिन्मात्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

42. हे प्रभु! आप ही अखण्ड अद्वैत तत्व हैं, जो ग्रंथों में, मुझमें, आपमें और शासक में कहा गया है। जो इस प्रकार 'मैं' को एकरूप (सर्वत्र व्याप्त) रूप में देखता है, वह इस अध्यात्मज्ञान के द्वारा तुरन्त ही मुक्त हो जाता है। वह इस अगाध अध्यात्मज्ञान से अपना गुरु स्वयं ही है। इस प्रकार दूसरा अध्याय समाप्त होता है।

अध्याय - III
कुमार ने अपने पिता से (फिर से) कहा: “कृपया मुझे आत्मा की प्राप्ति के बारे में समझाएँ”। जिस पर महान शिव ने कहा

१-३. “मैं परब्रह्म का स्वरूप हूँ। मैं परम आनंद हूँ। मैं केवल दिव्य ज्ञान का स्वरूप हूँ। मैं एकमात्र परम, एकमात्र शांति, एकमात्र चिन्मय, एकमात्र असंयमित, एकमात्र स्थायी और एकमात्र सत्व हूँ। मैं वह 'मैं' हूँ जिसने 'मैं' को त्याग दिया है। मैं वह हूँ जो कुछ भी नहीं है। मैं चिदाकाश से भरा हुआ हूँ।

४. मैं एकमात्र चौथा हूँ। मैं चौथी (तुर्य की स्थिति) से ऊपर एकमात्र हूँ। मैं (शुद्ध) चेतना का स्वभाव हूँ। मैं हमेशा आनंद-चेतना का स्वभाव हूँ।

५-७. मैं अद्वैत का स्वभाव हूँ। मैं हमेशा शुद्ध स्वभाव का हूँ, केवल दिव्य ज्ञान का स्वभाव, सुख का स्वभाव, आनंद की प्रकृति की कल्पनाओं, इच्छाओं या रोगों से रहित, परिवर्तन या भेदभाव से रहित और शाश्वत एक सार और चिन्मात्र का स्वभाव हूँ।

8. मेरा वास्तविक स्वरूप अवर्णनीय है, अनंत आनंद का है, सत् और चित् से ऊपर का आनंद है और अंतःकरण का भी आनंद है। मैं मनस और वाणी की पहुँच से परे हूँ।

9. मैं आत्मिक आनंद, सच्चा आनंद और अपनी आत्मा के साथ खेलने वाला हूँ; मैं आत्मा और सदाशिव हूँ।

10. मेरा स्वभाव आत्मिक आध्यात्मिक तेज है। मैं आत्मा की ज्योतियों का सार हूँ। मैं आदि, मध्य या अंत से रहित हूँ। मैं आकाश के समान हूँ।

11. मैं केवल सत्, आनंद और चित् हूँ जो बिना शर्त और शुद्ध है। मैं सच्चिदानंद हूँ जो शाश्वत, प्रबुद्ध और शुद्ध है।

12. मैं सदा शाश्वत शेष (सर्प-काल) के स्वभाव का हूँ। मैं सदा सबसे परे हूँ। मेरा स्वभाव रूप से परे है। मेरा रूप सर्वोच्च आकाश है।

13. मेरा स्वभाव पृथ्वी के आनंद का है। मैं सदा वाणी से रहित हूँ। मेरा स्वरूप सर्वाधार (सबका आधार) है।

14-15. मैं शरीर से रहित, विचार से रहित, चित्त के विकारों से रहित, चिदात्मा का एकमात्र सार, सबकी दृश्यता और दर्शन के स्वरूप से परे हूँ। मेरा स्वरूप सदैव पूर्ण है।

16. मैं सर्वस्व, ब्रह्म और चेतना से सदैव पूर्णतया संतुष्ट हूँ; मैं 'मैं' हूँ। मेरा स्वरूप पृथ्वी का है।

17-21. मैं महान आत्मा और परमसत्ताओं में भी परमसत्ता हूँ; मैं कभी अपने से भिन्न, कभी शरीरधारी, कभी शिष्य और कभी लोकों के आधार के रूप में प्रकट होता हूँ। मैं तीनों काल से परे हूँ, वेदों द्वारा पूजित हूँ, विज्ञानों द्वारा निर्धारित हूँ और चित्त में स्थित हूँ। मुझसे कुछ भी छूटा हुआ नहीं है, न पृथ्वी और न ही यहाँ कोई अन्य वस्तु। ऐसा जानो कि मुझसे बाहर कुछ भी नहीं है। मैं ब्रह्म हूँ, सिद्ध हूँ, नित्य शुद्ध हूँ, अद्वैत हूँ। ब्रह्म, बुढ़ापे या मृत्यु से रहित।

२२-२५। मैं स्वयं चमकता हूँ; मैं अपना आत्मा हूँ, अपना लक्ष्य हूँ, स्वयं आनंदित हूँ, स्वयं में क्रीड़ा करता हूँ, मेरा अपना आध्यात्मिक तेज है, मैं अपनी महानता हूँ और अपने आत्मा में क्रीड़ा करने का आदी हूँ, अपने आत्मा को देखता हूँ, और अपने में सुखपूर्वक बैठा हूँ। मेरे पास मेरा अपना आत्मा अवशेष के रूप में है, मैं अपनी चेतना में रहता हूँ, और अपने आत्मा के राज्य में सुखपूर्वक क्रीड़ा करता हूँ। अपने आत्मा के वास्तविक सिंहासन पर बैठकर, मैं अपने आत्मा के अलावा किसी और चीज़ के बारे में नहीं सोचता।

२६-३२। मैं अकेला चिद्रूप हूँ, अकेला ब्रह्म हूँ, सच्चिदानंद हूँ, अद्वितीय हूँ, आनंद से परिपूर्ण हूँ और एकमात्र ब्रह्म हूँ और हमेशा कुछ भी नहीं हूँ, मेरे पास अपने आत्मा का आनंद है, बिना शर्त वाला आनंद है, और मैं हमेशा आत्म-आकाश हूँ। मैं ही चिद्-आदित्य (चेतना-सूर्य) के समान हृदय में स्थित हूँ। मैं अपनी आत्मा में ही संतुष्ट हूँ, मेरा कोई रूप नहीं है, न ही कोई क्षय है, मैं रहित हूँ, प्रथम हूँ, मुझमें कोई शर्त नहीं है, मैं मुक्त हूँ, मैं आकाश से भी सूक्ष्म हूँ, मैं आदि-अंत से रहित हूँ, मैं सर्वप्रकाशमय हूँ, महान से भी महान आनन्द हूँ, मैं एकमात्र सत्स्वरूप हूँ, शुद्ध मोक्षस्वरूप हूँ, सत्य और आनन्दस्वरूप हूँ, मैं ज्ञान और आनन्द से पूर्ण हूँ, केवल ज्ञानस्वरूप हूँ और सच्चिदानंदस्वरूप हूँ। यह सब केवल ब्रह्म ही है। ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई नहीं है और वह 'मैं' हूँ। मैं ही ब्रह्म हूँ, जो सत् और आनन्दस्वरूप है और पुरातन है।

33. 'तू' और 'वह' शब्द मुझसे भिन्न नहीं हैं। मैं चेतनास्वरूप हूँ। मैं ही महान शिव हूँ।

34. मैं अस्तित्वस्वरूप से परे हूँ। मैं सुखस्वरूप हूँ। क्योंकि ऐसा कुछ भी नहीं है जो मुझे साक्षी मान लो, मैं साक्षी भाव से रहित हूँ।

35. मैं विशुद्ध ब्रह्मस्वरूप होने के कारण सनातन आत्मा हूँ। मैं ही आदिशेष (आदि शेष) हूँ। मैं ही शेष हूँ।

36. मैं नाम और रूप से रहित, आनन्दस्वरूप, इन्द्रियों से अप्राप्य और समस्त प्राणियों का स्वभाव हूँ।

37-39. न मुझे बंधन है, न मोक्ष। मैं सनातन आनन्दस्वरूप हूँ। मैं ही आदिचेतन हूँ, अखण्ड और अद्वैत तत्त्व हूँ, वाणी और मन की पहुँच से परे हूँ, सर्वत्र आनन्दस्वरूप हूँ, सर्वत्र परिपूर्णता का स्वभाव हूँ, पार्थिव आनन्दस्वरूप हूँ, सर्वत्र संतोषस्वरूप हूँ, परम अमृतस्वरूप हूँ और एक और अद्वितीय सत् अर्थात् ब्रह्म हूँ।
इसमें कोई संदेह नहीं है।

40-43. मैं सर्वशून्यस्वरूप हूँ। मैं वही हूँ जो वेदों द्वारा दिया गया है। मैं मुक्ति और मोक्ष का, निर्वाण सुख का, सत्य और ज्ञान का, सत् और आनंद का, चतुर्थ से परे, कल्पना से रहित और अज (अजन्मा) के स्वभाव का हूँ। मैं वासना या दोष से रहित हूँ। मैं शुद्ध, प्रबुद्ध, शाश्वत, सर्वव्यापी और ॐ के महत्व का, निष्कलंक और चित् का स्वभाव हूँ। मैं न तो विद्यमान हूँ और न ही अस्तित्वहीन हूँ।

44-45. मैं किसी भी चीज़ का स्वभाव नहीं हूँ। मैं क्रियाहीन स्वभाव का हूँ। मैं बिना अंगों वाला हूँ। मेरा कोई स्वरूप नहीं है, कोई मन नहीं है, कोई इन्द्रिय नहीं है, कोई बुद्धि नहीं है, कोई परिवर्तन नहीं है, तीनों शरीर नहीं हैं, न ही जाग्रत, स्वप्न या स्वप्नहीन सुषुप्ति अवस्थाएँ हैं।

46. मैं न तो तीन पीड़ाओं का स्वभाव हूँ और न ही तीन इच्छाओं का। मोक्ष प्राप्ति के लिए न तो मुझे चिदात्मा में श्रवण है और न ही मनन। 47. मेरे जैसा और न ही मुझसे भिन्न कुछ है। मेरे भीतर कुछ भी नहीं है। तीनों शरीरों में से मेरा कोई नहीं है।

48. मनस का स्वरूप असत्य है, बुद्धि का स्वरूप असत्य है, अहम् का स्वरूप असत्य है; परंतु मैं असंयमित, नित्य और अजन्मा हूँ।

49. तीनों शरीर असत्य हैं, तीनों काल असत्य हैं, तीनों गुण असत्य हैं, परंतु मैं सत् और शुद्ध स्वभाव वाला हूँ।

50. जो सुना जाता है वह असत्य है, सभी वेद असत्य हैं, शास्त्र असत्य हैं, परंतु मैं सत् और चित् स्वभाव वाला हूँ।

51. मूर्तियाँ (ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की सीमाएँ) असत्य हैं, सारी सृष्टि असत्य है, सभी तत्त्व असत्य हैं, परंतु जान लो कि मैं महान सदाशिव हूँ।

52. गुरु और शिष्य मिथ्या हैं, गुरु का मंत्र मिथ्या है, जो दिखाई देता है वह मिथ्या है, परंतु मुझे सत्य जान।

53. जो कुछ सोचा जाता है वह मिथ्या है, जो कुछ विधिपूर्ण है वह मिथ्या है, जो कुछ लाभदायक है वह मिथ्या है, परंतु मुझे सत्य जान।

54. पुरुष (अहंकार) को मिथ्या जानो, भोगों को मिथ्या जानो, देखी और सुनी हुई वस्तुओं को मिथ्या जानो, तथा ताने-बाने से बुनी हुई इस सृष्टि को भी मिथ्या जानो।

55-56. कारण और अकारण मिथ्या हैं, खोई हुई या प्राप्त हुई वस्तुएँ मिथ्या हैं। दुःख और सुख मिथ्या हैं, सब और सब मिथ्या हैं, लाभ और हानि मिथ्या हैं, जय और पराजय मिथ्या हैं।

57-59. सब शब्द, सब स्पर्श, सब रूप, सब रस, सब गंध और सब अज्ञान मिथ्या हैं। सब कुछ सदैव मिथ्या है - संसारिक अस्तित्व मिथ्या है - सभी गुण मिथ्या हैं। मैं सत् स्वरूप हूँ। व्यक्ति को केवल अपनी आत्मा को ही जानना चाहिए। व्यक्ति को सदैव अपनी आत्मा के मंत्र का अभ्यास करना चाहिए।

60-69. 'मैं ब्रह्म हूँ' यह मंत्र (अहम ब्रह्मास्मि) दृष्टि के सभी पापों को दूर करता है, अन्य सभी मंत्रों को नष्ट करता है, शरीर और जन्म के सभी पापों को, यम के पाश को, द्वैत के दुःखों को, भेद के विचार को, विचार के दुःखों को, बुद्धि के रोग को, चित्त के बंधन को, सभी रोगों को, सभी शोकों को, क्रोध की शक्ति को, चित्त के विकारों को, संकल्प को, करोड़ों पापों को, सभी कर्मों को और आत्मा के अज्ञान को नष्ट करता है।

70-71. 'मैं ब्रह्म हूँ' मंत्र अवर्णनीय आनंद देता है, अजाद (जड़ता रहित या अविनाशी) की स्थिति देता है और गैर-आत्मा के राक्षस को मारता है। 'मैं ब्रह्म हूँ' वज्रपात गैर-आत्मा के सभी पहाड़ों को साफ कर देता है

72. 'मैं ब्रह्म हूँ' यह चक्र असुरों का नाश करता है। 'मैं ब्रह्म हूँ' यह मंत्र सभी (व्यक्तियों) को मुक्ति प्रदान करता है।

73. 'मैं ब्रह्म हूँ' यह मंत्र आध्यात्मिक ज्ञान और आनंद देता है। सात करोड़ महान मंत्र हैं और सौ करोड़ जन्मों के व्रत हैं।

74. अन्य सभी मंत्रों को त्याग कर, मनुष्य को हमेशा इस मंत्र का अभ्यास करना चाहिए। उसे तुरंत मोक्ष प्राप्त होता है और इसमें संदेह का एक कण भी नहीं रहता।इस प्रकार तीसरा अध्याय समाप्त होता है।

अध्याय - IV

कुमार ने महान भगवान से पूछा: "कृपया मुझे जीवन्मुक्ति (अवतरित मोक्ष) और विदेहमुक्ति (निराकार मोक्ष) की प्रकृति समझाएँ।" जिस पर महान शिव ने उत्तर दिया:

1. "मैं चिदात्मा हूँ। मैं पर-आत्मा हूँ। मैं निर्गुण हूँ, महान से भी बड़ा हूँ। जो केवल आत्मा में स्थित रहता है, उसे जीवन्मुक्त कहते हैं।

2. जो यह अनुभव करता है कि ‘मैं तीनों शरीरों से परे हूँ, मैं शुद्ध चेतना हूँ और मैं ब्रह्म हूँ’, उसे जीवन्मुक्त कहते हैं।

3. जो यह अनुभव करता है कि ‘मैं आनंदमय और परम आनंदमय हूँ, और मेरे पास न तो शरीर है और न ही कोई अन्य वस्तु है, केवल इस निश्चय के अलावा कि ‘मैं ब्रह्म हूँ’।

4-6. जीवन्मुक्त वह कहा गया है, जिसके अपने में 'मैं' नहीं है, बल्कि जो केवल चिन्मात्र (परम चेतना) में रहता है, जिसका अन्तःकरण केवल चेतना है, जो केवल चिन्मात्र का ही स्वरूप है, जिसका आत्मा सर्वगुण सम्पन्न है, जिसका सबमें आत्मा शेष है, जो आनन्द में समर्पित है, जो अविभाज्य है, जो चेतना के स्वरूप से परिपूर्ण है, जिसका आत्मा शुद्ध चेतना का स्वरूप है, जिसने (विषयों के प्रति) सब आसक्तियों को त्याग दिया है, जिसे अप्रतिबन्धित आनन्द है, जिसका आत्मा शान्त है, जिसके

मन में (अपने को छोड़कर) कोई दूसरा विचार नहीं है और जो किसी भी वस्तु के अस्तित्व के विचार से रहित है।

7-11(अ)। उसे जीवन्मुक्त कहा गया है जो यह अनुभव करता है कि: 'मेरे पास न तो चित्त है, न बुद्धि, न अहंकार, न इन्द्रिय, न शरीर, न प्राण, न माया, न राग और न क्रोध, मैं महान हूँ, मेरे पास इन वस्तुओं या संसार का कुछ भी नहीं है और मुझमें न पाप है, न गुण, न आँख, न मन, न कान, न नाक, न जीभ, न हाथ, न जाग्रत, न स्वप्न, न कारण अवस्था या चतुर्थ अवस्था।'
\
11(बी)-30(ए)। उसे जीवन्मुक्त कहा जाता है, जो यह अनुभव करता है: 'यह सब मन नहीं है, मेरे पास न समय है, न स्थान है, न वस्तु है, न विचार है, न स्नान है, न संध्या है, न देवता है, न स्थान है, न पवित्र स्थान है, न पूजा है, न आध्यात्मिक ज्ञान है, न आसन है, न संबंधी है, न जन्म है, न वाणी है, न धन है, न पुण्य है, न पाप है, न कर्तव्य है, न शुभ है, न जीव है, न तीनों लोक हैं, न मोक्ष है, न द्वैत है, न वेद है, न अनिवार्य नियम है, न निकटता है, न दूरी है, न ज्ञान है, न गोपनीयता है, न गुरु है, न शिष्य है, न न्यूनता है, न अधिकता है, न ब्रह्मा है, न विष्णु है, न रुद्र है, न चंद्रमा है, न पृथ्वी है, न जल है, न वायु है, न आकाश है, न अग्नि है, न कुल है, न लक्ष्य है, न सांसारिक अस्तित्व है, न ध्यानी है, न ध्यान की वस्तु है, न मनुष्य है, न सर्दी है, न गर्मी है, न प्यास है, न भूख है, न मित्र नहीं, शत्रु नहीं, माया नहीं, विजय नहीं, भूत, वर्तमान या भविष्य नहीं, कोई दिशा नहीं, कहने या सुनने जैसा कुछ नहीं, जाने (या प्राप्त करने) जैसा कुछ नहीं, चिंतन करने, आनंद लेने या याद रखने जैसा कुछ नहीं, आनंद नहीं, कामना नहीं, योग नहीं, तल्लीनता नहीं, वाचालता नहीं, वैराग्य नहीं, बंधन नहीं, प्रेम नहीं, आनंद नहीं, तुरन्त आनंद नहीं, विशालता नहीं, लघुता नहीं, लम्बाई नहीं, लघुता नहीं, वृद्धि नहीं, कमी नहीं, अध्यारोप नहीं, अपवाद नहीं, एकता नहीं, अनेकता नहीं, अन्धापन नहीं, नीरसता नहीं, कौशल नहीं, मांस नहीं, रक्त नहीं, लसीका नहीं, त्वचा नहीं, मज्जा नहीं, अस्थि नहीं, त्वचा नहीं, सात धातुओं में से कोई नहीं, श्वेतता नहीं, लाली नहीं, नीलापन नहीं, ऊष्मा नहीं, लाभ नहीं, महत्त्व नहीं, महत्त्व नहीं, मोह नहीं, दृढ़ता नहीं, रहस्य नहीं, न कोई जाति, न त्यागने योग्य, न ग्रहण करने योग्य, न उपहास करने योग्य, न नीति, न धार्मिक व्रत, न दोष, न विलाप, न सुख, न ज्ञाता, न ज्ञान, न जानने योग्य, न आत्मा, न कुछ तुम्हारा है, न मेरा, न तुम, न मैं, न बुढ़ापा, न जवानी, न पुरुषत्व; परन्तु मैं निश्चय ही ब्रहम हूँ। 'मैं निश्चय ही ब्रहम हूँ। मैं चित्त हूँ, मैं चित्त हूँ।'

30(ख)-31. वह जीवन्मुक्त कहा गया है जो यह जानता है: 'मैं अकेला ब्रह्म हूँ, मैं अकेला चित् हूँ, मैं ही ब्रह्म हूँ।सर्वोच्च'। इसमें कोई संदेह नहीं होना चाहिए; 'मैं स्वयं हंस हूँ, मैं अपनी इच्छा से रहता हूँ, मैं स्वयं के माध्यम से स्वयं को देख सकता हूँ, मैं आत्मा के राज्य में सुखी राज्य करता हूँ और स्वयं में अपनी आत्मा के आनंद का आनंद लेता हूँ।'

32. वह जीवन्मुक्त है जो स्वयं है, सबसे प्रमुख और एक निडर व्यक्ति है जो स्वयं भगवान है और अपने स्वयं में विश्राम करता है।

33. वह विदेहमुक्त है जो ब्रह्म बन गया है, जिसका आत्मा शांत हो गया है, जो ब्रह्मिक आनंद की प्रकृति का है, जो खुश है, जो शुद्ध स्वभाव वाला है और जो एक महान मौनी (मौन का पालन करने वाला) है।

34-37. वह विदेहमुक्त है जो चिन्मात्र में अकेला रहता है, ऐसा विचार भी नहीं करता कि 'मैं सब आत्मा हूँ, वह आत्मा जो सबमें समान है, शुद्ध है, एक से रहित है, अद्वैत है, सब है, केवल आत्मा है, जन्म से रहित है और मृत्यु से रहित है - मैं ही अविनाशी आत्मा हूँ, जो लक्ष्य है, क्रीड़ा करने वाला, शांत, आनंदित, प्रिय और बंधन रहित मोक्ष हूँ - मैं ही ब्रह्म हूँ - मैं ही चित् हूँ।'

38. वह विदेहमुक्त है जो 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस विचार को त्यागकर आनंद से भर जाता है।

39-47(अ). वह विदेहमुक्त है, जो समस्त पदार्थों के होने या न होने की निश्चितता को त्यागकर शुद्ध चिदानंद है, जो 'मैं ब्रह्म हूँ' (या) 'मैं ब्रह्म नहीं हूँ' इस विचार को त्यागकर अपनी आत्मा को किसी भी वस्तु में, कहीं भी, किसी भी समय नहीं मिलाता, जो सत्य की शांति में सदा मौन रहता है, जो कुछ नहीं करता, जो गुणों से परे चला गया है, जिसका आत्मा ही सब कुछ, महान् और तत्त्वों को शुद्ध करने वाला हो गया है, जो काल, द्रव्य, स्थान, स्वयं या अन्य भेदों के परिवर्तन को नहीं पहचानता, जो 'मैं', 'तू', 'यह' या 'वह' का भेद नहीं देखता, जो काल के स्वभाव वाला होते हुए भी काल से रहित है, जिसका आत्मा शून्य, सूक्ष्म और विश्वव्यापी होते हुए भी उनसे रहित है, जिसका आत्मा दिव्य होते हुए भी देवों से रहित है, जिसका आत्मा मापनीय होते हुए भी माप से रहित है, जिसका आत्मा जड़ता से रहित है और प्रत्येक के भीतर है, जिसका आत्मा संकल्प से रहित है, जो सदैव यह सोचता है कि 'मैं चिन्मात्र हूँ, मैं केवल परमात्मा हूँ, मैं केवल आध्यात्मिक ज्ञान का स्वरूप हूँ, मैं केवल सत् का स्वरूप हूँ, मैं इस संसार

में किसी भी चीज़ से नहीं डरता', तथा जो देव, वेद और विज्ञान की धारणा से रहित है, 'यह सब चेतना आदि है', तथा सभी को शून्य मानता है।

47(ख)-48. वह विदेहमुक्त है जिसने अपने को केवल चैतन्य ही जान लिया है, जो अपने आत्मा के सुख-उद्यान में सुखपूर्वक स्थित है, जिसका आत्मा असीम प्रकृति का है, जो छोटे और बड़े की धारणा से रहित है तथा जो चतुर्थ अवस्था का चौथा और परम आनंद है।

49-53(क)। वह विदेहमुक्त है जिसका आत्मा नामहीन और निराकार है, जो आनंद की प्रकृति और तुर्य से परे की स्थिति की प्रकृति का महान आध्यात्मिक ज्ञान है, जो न तो शुभ है और न ही अशुभ, जिसका आत्मा योग है, जिसका आत्मा योग से जुड़ा हुआ है, जो बंधन या मुक्ति से मुक्त है, गुण या अगुण से रहित है, देश, काल आदि से रहित है, साक्षी और साक्षी से रहित है, छोटे या बड़े से रहित है और ब्रह्मांड या यहां तक कि ब्रह्म की प्रकृति के ज्ञान से रहित है, लेकिन जो अपने स्वभाव में अपनी आध्यात्मिक चमक पाता है, जो अपने आप में आनंद पाता है, जिसका आनंद शब्दों और मन की सीमा से परे है और जिसका विचार परे से परे है।

53(बी)-54। वह विदेहमुक्त कहा जाता है जो चित्त के परिवर्तनों से परे चला गया है (या पूरी तरह से महारत हासिल कर ली है), जो ऐसे परिवर्तनों को प्रकाशित करता है और जिसका आत्मा किसी भी परिवर्तन से रहित है। ऐसी स्थिति में वह न तो देहधारी है, न अदेहधारी। यदि ऐसा विचार क्षण भर के लिए भी मन में आ जाए, तो वह सब से घिरा हुआ है।

55-62। वह विदेहमुक्त है, जिसका अन्यों के लिए अदृश्य बाह्य आत्मा ही परमानंद है, जो सर्वोच्च वेदान्त की ओर उन्मुख है, जो ब्रह्म-अमृत का पान करता है, जो ब्रह्म-अमृत को औषधि के रूप में धारण करता है, जो ब्रह्म-अमृत के प्रति समर्पित है, जो उस रस में निमग्न है, जो ब्रह्म-आनंद की कल्याणकारी पूजा करता है, जो ब्रह्म-अमृत के रस से तृप्त नहीं होता, जो ब्रह्म-आनंद को अनुभव करता है, जो ब्रह्म-आनंद में शिव-आनंद को पहचानता है, जिसमें ब्रह्म-आनंद के सार का तेज है, जो उससे एक हो गया है, जो ब्रह्म-आनंद के घर में रहता है।

ब्रह्मानंद, ब्रह्मानंद के रथ पर सवार हुआ है, जिसके पास अविचल चित्त है, जो उससे एक है, जो (सबको) धारण कर रहा है, उससे पूर्ण है, जो उससे युक्त होकर मेरे साथ संगति करता है, जो उस आनंद को पाकर आत्मा में स्थित रहता है और जो यह सोचता है कि 'यह सब आत्मा का ही स्वरूप है,

आत्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, सब आत्मा है, मैं आत्मा हूँ, महान आत्मा हूँ, परम आत्मा हूँ और आनंदस्वरूप आत्मा हूँ।'

63-68(क)। जो यह सोचता है कि 'मेरा स्वरूप पूर्ण है, मैं महान आत्मा हूँ, मैं सर्व-संतुष्ट और स्थायी आत्मा हूँ। मैं सबके हृदय में व्याप्त आत्मा हूँ, जो किसी वस्तु से कलंकित नहीं है, परन्तु जिसमें कोई आत्मा नहीं है; मैं वह आत्मा हूँ जिसका स्वरूप अपरिवर्तनशील है, मैं शांत आत्मा हूँ; और मैं अनेक आत्माएँ हूँ।' जो यह नहीं समझता कि यह जीवात्मा है और वह परमात्मा है, जिसका आत्मा मुक्त और अमुक्त दोनों प्रकार का है, किन्तु उसमें मुक्ति या बंधन नहीं है, जिसका आत्मा द्वैत और अद्वैत दोनों प्रकार का है, किन्तु उसमें द्वैत और अद्वैत नहीं है; जिसका आत्मा सर्व और असर्व दोनों प्रकार का है, किन्तु उससे रहित है; जिसका आत्मा प्राप्त और भोग्य पदार्थों से उत्पन्न होने वाले सुख का है, किन्तु उससे रहित है; तथा जो किसी भी संकल्प से रहित है - ऐसा पुरुष विदेहमुक्त है।

६८(ख)-७९। जिसका आत्मा अविभाज्य, निष्कलंक, ज्ञानवान, पुरुष, आनन्द आदि से रहित, अमृत के स्वभाव वाला, तीनों कालों के स्वभाव वाला, किन्तु उनसे रहित है; जिसका आत्मा सम्पूर्ण और अप्रमाणिक है, यद्यपि प्रमाण के अधीन है, किन्तु बिना प्रमाण के; जिसका आत्मा नित्य और साक्षी है, किन्तु नित्यता और साक्षी से रहित है; जिसका आत्मा अद्वय के समान है, जो स्वयं प्रकाशमान है, जिसका आत्मा विद्या और अविद्या से रहित है, जिसका आत्मा बद्ध या अबद्ध नहीं है, जो इस या उच्चतर लोकों से रहित है, जिसका आत्मा साम से आरंभ होने वाले छह पदार्थों से रहित है, जो मोक्ष प्राप्ति के साधक की योग्यताओं से रहित है, जिसका आत्मा स्थूल, सूक्ष्म, कारण और चतुर्थ शरीर से रहित है, तथा अन्न, प्राण, मन और विज्ञान कोशों से रहित है; जिसका आत्मा आनंद कोश के समान है, परंतु पांच कोशों से रहित है; जिसका आत्मा निर्विकल्प, संकल्प से रहित, दृश्य या श्रव्य के लक्षणों से रहित और अविराम समाधि के कारण शून्य के स्वभाव वाला है, जो आदि, मध्य और अंत से रहित है; जिसका आत्मा प्रज्ञान शब्द से रहित है, जो 'मैं ब्रह्म हूँ' इस भाव से रहित है, जिसका आत्मा 'तू है' इस भाव से रहित है, जो 'यह आत्मा है' इस भाव से रहित है, जिसका आत्मा ॐ द्वारा वर्णित वस्तु से रहित है, जो वाणी या तीनों अवस्थाओं से परे है तथा अविनाशी और चिदात्म है, जिसका आत्मा वह नहीं है जिसे आत्मा द्वारा जाना जा सके तथा जिसके आत्मा में न प्रकाश है, न अंधकार। ऐसा व्यक्ति विदेहमुक्त है।

80-81। केवल आत्मा को देखो, उसे अपना जानो। स्वयं अपनी आत्मा का आनंद लो और शांति से रहो। हे षट्मुख! अपनी आत्मा में संतुष्ट रहो, अपनी आत्मा में विचरण करो और अपनी आत्मा का आनंद लो। तब तुम विदेहमुक्ति को प्राप्त हो जाओगे। इस प्रकार चौथा अध्याय समाप्त होता है।

अध्याय - 5 निदाघ नामक ऋषि ने पूज्य ऋभु को संबोधित करते हुए कहा: "हे प्रभु, कृपया मुझे आत्मा और गैर-आत्मा का भेद समझाइए।" ऋषि ने इस प्रकार उत्तर दिया:

1-4(क)। "सभी वाक (वाणी) की सबसे दूर की सीमा ब्रह्म है; सभी विचारों की सबसे दूर की सीमा गुरु है। जो सभी कारणों और प्रभावों की प्रकृति का है, लेकिन फिर भी उनसे रहित है, जो संकल्प रहित है, सभी आनंद और शुभ की प्रकृति का है, जो आनंद की प्रकृति का महान है, जो सभी प्रकाशकों को प्रकाशित करता है और जो नाद (आध्यात्मिक ध्वनि) के आनंद से भरा है, किसी भी आनंद और चिंतन से रहित है और नाद और कलाओं (भागों) से परे है - वह आत्मा है, वह 'मैं' है, अविनाशी है।

4(ख)-5(क)। आत्मा और अनात्मा के समस्त भेदों से रहित, विषमता और समरूपता से रहित, निश्चलता और अनिश्चलता से रहित - वही नाद के अंत में स्थित एक ज्योति है।

5(ख)-6. महावाक्यार्थ (अर्थात् महावाक्यों के अर्थ) तथा 'मैं ब्रह्म हूँ' की धारणा से दूर, शब्द और अर्थ की धारणा से रहित या रहित, तथा नाशवान और अविनाशी की धारणा से रहित - वही नाद के अंत में स्थित एक ज्योति है।नाद का।

7. 'मैं अखण्ड अद्वैत तत्त्व हूँ' अथवा 'मैं आनन्दमय हूँ' इस धारणा से रहित तथा सब से परे एक के स्वभाव वाला - 'वह एक है' नाद के अन्त में ज्योति।

8. जो आत्मा (अर्थात गति) के महत्त्व से रहित है तथा सच्चिदानंद से रहित है - वही आत्मा है, सनातन है।

9. जो वेदों के शब्दों से अपरिभाषित तथा अगम्य है, जिसके न बाह्य हैं, न अन्तरंग तथा जिसका प्रतीक ब्रह्माण्ड या ब्रह्म है - वह निःसंदेह आत्मा है।

10-12(क)। जिसका न शरीर है, न वह तत्त्वों तथा उनके योगों से बना हुआ जीव है, जिसका न रूप है, न नाम, न भोगनेवाला है, न भोक्ता है, न सत् है, न असत्, न धारण है, न पुनर्जनन, न गुण है, न अगुण - वह निःसंदेह मेरा आत्मा है।
\
12(ख)-15(क). जिसके पास न वर्णित है, न वर्णन, न श्रवण है, न मनन, न गुरु है, न शिष्य, न देवों का लोक है, न देवों का, न असुरों का, न कर्तव्य है, न अकर्तव्य, न पवित्र है, न अपवित्र, न काल है, न अकाल, न निश्चय है, न संशय, न मंत्र है, न अमंत्र, न विज्ञान है, न अविज्ञान, न द्रष्टा है, न सूक्ष्म दृष्टि है, न काल का अमृत है - वही आत्मा है।

15(ख)-16(क). निश्चिंत रहें कि अ-आत्मा एक मिथ्या नाम है। अ-आत्मा जैसा कोई मनस नहीं है। अ-आत्मा जैसा कोई जगत नहीं है।

16(ख)-17(क). सभी संकल्पों के अभाव और सभी कर्मों के त्याग के कारण केवल ब्रह्म ही शेष रह जाता है और अ-आत्मा नहीं रहती।

17(ख)-21. तीन शरीर, तीन काल, तीन गुण, तीन दुःख और तीन लोकों से रहित होकर और 'सब ब्रह्म है' इस कथन का पालन करते हुए, यह जान लो कि चित्त के अभाव में कुछ भी जानने योग्य नहीं है; शरीर के अभाव में बुढ़ापा नहीं है; पैरों के अभाव में गति नहीं है; हाथों के अभाव में कोई क्रिया नहीं है; प्राणियों के अभाव में मृत्यु नहीं है; बुद्धि के अभाव में सुख नहीं है; न पुण्य है, न पवित्रता है, न भय है, न मंत्रों का जप है, न गुरु है, न शिष्य है। एक के अभाव में दूसरा नहीं है। जहाँ दूसरा नहीं है, वहाँ पहला नहीं है।

22. जहाँ केवल सत्य है, वहाँ असत्य संभव नहीं है; जहाँ केवल असत्य है, वहाँ सत्य संभव नहीं है।

23. यदि तुम किसी शुभ वस्तु को अशुभ मानते हो, तो अशुभ से पृथक शुभ की कामना की जाती है। यदि तुम भय को अभय समझो, तो भय अभय से ही उत्पन्न होगा।

24. यदि बंधन मुक्ति बन जाए, तो बंधन के अभाव में मुक्ति नहीं होगी। यदि जन्म का अर्थ मृत्यु हो, तो जन्म के अभाव में मृत्यु नहीं होगी।

25. यदि 'तू' का अर्थ 'मैं' हो, तो 'तू' के अभाव में 'मैं' नहीं है।यदि 'यह' का अर्थ 'वह' हो, तो 'वह' के अभाव में 'यह' नहीं है।

26. यदि अस्तित्व का अर्थ अ-अस्तित्व हो, तो अ-अस्तित्व का अर्थ अस्तित्व होगा। यदि प्रभाव का अर्थ कारण हो, तो प्रभाव के अभाव में कारण नहीं है।

27. यदि द्वैत का अर्थ अद्वैत हो, तो द्वैत के अभाव में अद्वैत नहीं है। यदि दृश्य हो, तो चक्षु (या दृष्टि) है; दृश्य के अभाव में चक्षु नहीं है।

28. यदि द्वैत का अर्थ अद्वैत हो, तो द्वैत के अभाव में अद्वैत नहीं है। 28. अन्तर के अभाव में बाह्य नहीं है। यदि पूर्णता हो, तो अपूर्णता संभव है। अतः यह सब कहीं नहीं है।

29. न तू है, न मैं, न यह है, न ये हैं। सत्य में तुलना की कोई वस्तु नहीं है।

30. अजन्मा में कोई उपमा नहीं है। उसमें विचार करने के लिए कोई मन नहीं है। मैं परम ब्रह्म हूँ। यह जगत् ब्रह्म ही है। तू और मैं ब्रह्म ही हैं।

31. मैं केवल चिन्मात्र हूँ, अ-आत्मा नहीं है। इस पर निश्चिंत रहो। यह जगत् (वास्तव में) है ही नहीं। यह जगत् (वास्तव में) है ही नहीं। यह कहीं उत्पन्न नहीं हुआ, कहीं रहता ही नहीं।

32. कुछ लोग कहते हैं कि चित्त ही जगत् है। बिल्कुल नहीं। इसका अस्तित्व ही नहीं है। न जगत्, न चित्त, न अहंकार, न जीव का अस्तित्व है।

33-34. न माया की रचना है, न माया का अस्तित्व है। भय (वास्तव में) अस्तित्व में नहीं है। अभिनेता, क्रिया, श्रवण, विचार, दो समाधियाँ, मापक, माप, अज्ञान और अविवेका - इनमें से कोई भी नहीं ये वस्तुतः कहीं भी विद्यमान नहीं हैं।

35-38. इसलिए चारों चर विचार और तीन प्रकार के सम्बन्ध नहीं हैं। न गंगा है, न गया है, न सेतु है, न तत्व है, न पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश है, न देवता है, न चारों दिशाओं के रक्षक हैं, न वेद हैं, न गुरु हैं, न दूरी है, न समीपता है, न काल है, न मध्य है, न अद्वैत है, न सत्य है, न

असत्य है, न बन्धन है, न मोक्ष है, न सत् है, न असत् है, न सुख है, न वर्ण है, न गति है, न जाति है और न सांसारिक व्यापार है।
39. सब कुछ ब्रह्म ही है, अन्य कुछ भी नहीं है - सब कुछ ब्रह्म ही है, अन्य कुछ भी नहीं है। तब ऐसा कुछ भी नहीं है (अथवा कथन) कि 'केवल चैतन्य ही है'; तब ऐसा कोई कथन नहीं है कि 'चित् मैं हूँ'।

40-42 . तब ऐसा कथन नहीं है कि 'मैं ब्रह्म हूँ'; न तो दिन है, न रात है, न स्नान है, न चिंतन है, न मोह है, न अमोह है, ये सब हैं। यह जान लो कि वह अ-आत्मा नहीं है।

43. वेद, विज्ञान, पुराण, कार्य और कारण, ईश्वर और जगत् तथा तत्व और मनुष्य - ये सब मिथ्या हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है।

44. बंधन, मोक्ष, सुख, सगे-संबंधी, ध्यान, चित्त, देवता, दानव, गौण और प्रधान, उच्च और निम्न - ये सब मिथ्या हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है।

45. मुख से जो कुछ कहा जाता है, संकल्प से जो कुछ चाहा जाता है, मन से जो कुछ सोचा जाता है - ये सब मिथ्या हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है।

46-47. बुद्धि से जो कुछ निश्चय किया जाता है, चित्त से जो कुछ जाना जाता है, धर्मग्रंथों से जो कुछ चर्चा की जाती है, आंख से जो कुछ देखा जाता है और कान से जो कुछ सुना जाता है तथा कान, आंख और अंग जो कुछ सत् रूप में विद्यमान हैं - ये सब मिथ्या हैं।

48-51(क)। जो कुछ अमुक रूप में वर्णित है, जो कुछ अमुक रूप में सोचा जाता है, 'तू मैं हूँ', 'वह यह है', 'वह मैं हूँ' जैसे सभी विद्यमान विचार तथा मोक्ष में जो कुछ घटित होता है, तथा सभी संकल्प, मोह, मायावी आरोपण, रहस्य तथा भोग और पाप की सभी विविधताएँ - ये सब मिथ्या हैं। इसी प्रकार अ-आत्मा भी मिथ्या है। मेरा और तेरा, मेरा और तेरा, मेरे लिए और तेरे लिए, मेरे द्वारा और तेरे द्वारा - ये सब मिथ्या हैं।

51(ख)-52(क)। (कथन) कि विष्णु पालक हैं, ब्रह्मा सृष्टिकर्ता हैं, रुद्र संहारकर्ता हैं - ये निःसंदेह मिथ्या हैं।

52(ख)-54(क)। स्नान, मंत्रोच्चार, जप, होम, वेदों का अध्ययन, देवों की पूजा, मंत्र, तंत्र, सत्पुरुषों की संगति, गुणों के दोषों का प्रकटीकरण, अंतःकरण का कार्य, अविद्या का परिणाम और करोड़ों अण्डे - ये सब मिथ्या हैं।

54(ख)-55। जो कुछ भी सभी आचार्यों के मतानुसार सत्य कहा गया है, जो कुछ भी इस संसार में दिखाई देता है और जो कुछ भी विद्यमान है - ये सब मिथ्या हैं।

56-58(क)। जो कुछ भी वाणी से कहा जाए, जो कुछ भी किसी के द्वारा ज्ञात, बोला, भोगा, दिया या किया जाए, जो भी अच्छा या बुरा कर्म किया जाए, जो कुछ भी सत्य माना जाए - इन सबको मिथ्या जानो।

58(ख)-59. केवल आप ही दिव्य आत्मा हैं और आकाश रूप के परम गुरु हैं, जो (इसके लिए) योग्यता से रहित है और सभी प्राणियों के स्वभाव से रहित है। आप ब्रह्म हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

60. आप काल हैं; और आप ब्रह्म हैं, जो नित्य और अविवेकी है। आप सर्वत्र हैं, सभी रूपों में हैं और चेतना से पूर्ण हैं।

61. आप सत्य हैं। आप सिद्धियों को प्राप्त करने वाले हैं और आप ही पुरातन, मुक्ति, मुक्ति, आनंद का अमृत, ईश्वर, शांत, रोगरहित, पूर्ण और महान से भी महान ब्रह्म हैं।

62-64. आप निष्पक्ष, सत् और पुरातन ज्ञान हैं, जिन्हें 'सत्य' आदि शब्दों से पहचाना जाता है। आप सभी अंगों से रहित हैं। आप नित्य विद्यमान हैं - आप ब्रह्मा, रुद्र, इंद्र आदि के रूप में प्रकट होते हैं, आप ब्रह्मांड के भ्रम से ऊपर हैं - आप सभी तत्वों में चमकते हैं - आप सभी में संकल्प से रहित हैं - आप शास्त्रों के अंतर्निहित अर्थ के माध्यम से जाने जाते हैं; आप हमेशा संतुष्ट और शांत रहते हैं।सुखपूर्वक (अपने आप में) विराजमान; तू गति आदि से रहित है, सब वस्तुओं में तू किसी भी लक्षण से रहित है; सब वस्तुओं में तू हर समय विष्णु तथा अन्य देवताओं द्वारा चिन्तित रहता है।

65-69। तू चित् का स्वभाव है, तू अप्रतिबंधित चिन्मात्र है, तू आत्मा में ही स्थित है, तू सब कुछ से रहित तथा गुणों से रहित है, तू आनन्द है, महान है, अद्वितीय है, सत् तथा असत् की स्थिति है, ज्ञाता है, ज्ञेय है, द्रष्टा है, सच्चिदानंद का स्वभाव है, देवों का स्वामी है, सर्वव्यापी है, अमर है, चल है, अचल है, सबमें तथा सबमें अचंचलता तथा अचंचलता है, केवल सत् है, सबमें सामान्यतः पाया जाने वाला सत् है, नित्यसिद्ध स्वरूप है, फिर भी सब सिद्धियों से रहित है।

70-73। ऐसा कोई अणु नहीं है, जिसमें तुम प्रवेश न कर सको; फिर भी तुम उससे रहित हो। तुम अस्तित्व और अनस्तित्व से रहित हो, साथ ही लक्ष्य और विषय से भी रहित हो। तुम अपरिवर्तनशील, क्षयहीन, सभी नादों से परे, काल या कष्ट से रहित और ब्रह्मा, विष्णु और शिव से रहित हो। तुम प्रत्येक की प्रकृति को देखते हो और प्रत्येक की प्रकृति से ऊपर हो। तुम स्वयं के आनंद में डूबे हुए हो। तुम स्वयं के राज्य के सम्राट हो और फिर भी स्वयं की धारणा से रहित हो। तुम पूर्णता और अपूर्णता की प्रकृति के हो।

74. ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे तुम देखते हो जो तुम्हारे भीतर न हो। तुम अपने स्वभाव से बाहर नहीं निकलते। तुम प्रत्येक की प्रकृति के अनुसार कार्य करते हो। तुम प्रत्येक की प्रकृति के अलावा कुछ नहीं हो। इसमें कोई संदेह मत करो कि 'तुम मैं हूँ'। 75. यह ब्रह्मांड और इसमें मौजूद हर चीज़, चाहे वह द्रष्टा हो या दृश्य, खरगोश (या एक भ्रम) के सींगों जैसा है।

76-89(a). पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मानस, बुद्धि, अहंकार, तेजस, लोक और ब्रह्माण्ड का क्षेत्र, विनाश, जन्म, सत्य, पुण्य, पाप, लाभ, इच्छाएं, जुनून, क्रोध, लोभ, ध्यान का विषय, ज्ञान, गुरु, शिष्य, सीमा, आरंभ और अंत, शुभ, भूत, वर्तमान और भविष्य, लक्ष्य और लक्ष्य का विषय, मानसिक संयम, जिज्ञासा, संतोष, भोक्ता, भोग, आदि, योग के आठ अंग, यम, आदि, आना-जाना (जीवन का), आरंभ, मध्य और अंत, जिसे लिया और छोड़ा जा सके, हरि, शिव, अंग, मानस, तीन अवस्थाएं, चौबीस तत्त्व, चार साधन, एक ही वर्ग या विभिन्न वर्गों में से एक, भूः और अन्य लोक, सभी जातियां और जीवन के क्रम जिनमें प्रत्येक के लिए निर्धारित नियम हैं, मंत्र और तंत्र, विज्ञान और अविद्या, सभी वेद, जड़ और अचेतन जड़त्व, बंधन और मोक्ष, आध्यात्मिक ज्ञान और अज्ञान, प्रबुद्ध और अज्ञानी, द्वैत और अद्वैत, सभी वेदान्तों और शास्त्रों का निष्कर्ष, सभी आत्माओं और केवल एक आत्मा के अस्तित्व का सिद्धांत, जो कुछ भी चित्त द्वारा सोचा जाता है, जो कुछ भी संकल्प द्वारा इच्छा की जाती है, जो कुछ भी बुद्धि द्वारा निर्धारित किया जाता है, जो कुछ भी

कोई सुनता और देखता है, जो कुछ भी गुरु निर्देश देता है, जो कुछ भी सभी अंगों द्वारा महसूस किया जाता है, जो कुछ भी मीमांसा में चर्चा की जाती है, जो कुछ भी न्याय (दर्शन) और वेदों के दूसरी ओर पहुँचे हुए महात्माओं द्वारा निर्धारित किया जाता है, यह कथन कि 'शिव दुनिया को नष्ट करते हैं, विष्णु इसकी रक्षा करते हैं और ब्रह्मा इसकी रचना करते हैं', जो कुछ भी पुराणों में पाया जाता है, जो कुछ भी वेदों द्वारा निर्धारित किया जाता है और सभी वेदों का संकेत है - ये सभी एक खरगोश के सींग के समान हैं। 89 (बी)। 'मैं शरीर हूँ' अवधारणा को आंतरिक अंग के रूप में कहा जाता है। 90. 'मैं शरीर हूँ' यह धारणा महान् सांसारिक सत्ता कही गयी है; 'मैं शरीर हूँ' यह धारणा सम्पूर्ण विश्व को समेटती है।

91-96. 'मैं शरीर हूँ' यह धारणा हृदय की गाँठ, अज्ञान, असत्, अविद्या, द्वैत, सत् जीव और अंगों सहित कही गयी है, यह निश्चय ही महान् पाप है और कामनाओं की तृष्णा के दोष से उत्पन्न रोग है।

97. जो संकल्प है, तीनों दुःख, काम, क्रोध, बन्धन, समस्त दुःख, समस्त दोष और नाना प्रकार के काल - इन्हें तू मनस का फल जान।

98-104. मनस ही सम्पूर्ण जगत्, सदा-भ्रमित करने वाला, सांसारिक अस्तित्व, तीनों लोक, महान् दुःख, वृद्धावस्था तथा अन्य, मृत्यु तथा महान् पाप, संकल्प, जीव, चित्त, अहंकार, बंधन, अंतःकरण तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध, पाँच कोश, जाग्रत, स्वप्न तथा स्वप्नरहित सुषुप्ति अवस्थाएँ, आठ दिशाओं के रक्षक, वसु, रुद्र, आदित्य, दृश्य, जड़, युग्म तथा अज्ञान - ये सभी मनस की उपज हैं।

105. निश्चिंत रहो कि संकल्प में कुछ भी वास्तविकता नहीं है। सारा जगत, गुरु, शिष्य आदि, नहीं हैं, हाँ, नहीं हैं।
इस प्रकार पाँचवाँ अध्याय समाप्त होता है।

अध्याय - VI
1-9(क)। ऋभु ने फिर कहा: "सब कुछ सचिन्नमय (सत् और चेतना से पूर्ण) जानो। यह सब में व्याप्त है। सच्चिदानंद अद्वैत है, क्षयरहित है, अकेला और सबसे भिन्न है। यह 'मैं' है। यह अकेला आकाश और 'तू' है। यह मैं हूँ। इसमें न मन है, न बुद्धि, न अहंकार, न चित्त, न इनका संग्रह - न तू, न मैं, न कुछ और, न सब कुछ। केवल ब्रह्म है। वाक्य, शब्द, वेद, अक्षर, आरंभ, मध्य या अंत, सत्य, नियम, सुख, दुःख, अस्तित्व, माया,

प्रकृति, शरीर, मुख, नाक, जिह्वा, तालु, दांत, होठ, माथा, निःश्वसन और प्रेरणा, पसीना, अस्थि, रक्त, मूत्र, दूरी, समीपता, अंग, उदर, मुकुट, हाथ-पैरों की गति, शास्त्र, आज्ञा, ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान, जाग्रत, स्वप्न और स्वप्नरहित सुषुप्ति और चौथी अवस्था - ये सब मेरे नहीं हैं। सब कुछ सचिन्मय से गुंथा हुआ है।

9(ख)-29. शरीर, तत्त्व, आत्मा से सम्बन्धित कोई गुण नहीं, जड़, दर्शन, तैजस, प्रज्ञा, विराट, सूत्रात्मा, ईश्वर, आना-जाना, लाभ, हानि, ग्राह्य, त्याज्य, निन्दा, शुद्ध, अशुद्ध, स्थूल, दुबला, दुःख, काल, देश, वाणी, सब, भय, द्वैत, वृक्ष, घास, पर्वत, ध्यान, योगसिद्धि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, पक्षी, पशु, अंग, लोभ, मोह, अभिमान, द्वेष, राग, क्रोध, स्त्री, शूद्र, जाति, पराया, भक्ष्य, भोग्य, वृद्धि, ह्रास, वेदों में विश्वास, वाणी, सांसारिकता, असाधुता, लेन-देन, मूर्खता, नाप, माप, भोग्य, मित्र, पुत्र, आदि नहीं, पिता, माता, या बहन, कोई जन्म या मृत्यु नहीं, कोई वृद्धि नहीं, शरीर या 'मैं' नहीं, कोई खालीपन या पूर्णता नहीं, कोई आंतरिक अंग या सांसारिक अस्तित्व नहीं, कोई रात नहीं, कोई दिन नहीं, कोई ब्रह्मा, विष्णु या शिव नहीं, कोई सप्ताह, पखवाड़ा, महीना या वर्ष नहीं, कोई अस्थिरता नहीं, कोई ब्रह्मलोक, वैकुंठ, कैलास और अन्य नहीं, कोई स्वर्ग नहीं, इंद्र, अग्निलोक, अग्नि नहीं, यमलोक, यम, वायुलोक, दुनिया के संरक्षक, तीन लोक - भूः, भुवः, स्वः, पाताल या पृथ्वी की सतह नहीं, कोई विज्ञान नहीं, अज्ञान नहीं, माया, प्रकृति, जड़ता, स्थायित्व, क्षणभंगुरता, विनाश नहीं, गति, दौड़ना, ध्यान की वस्तु, स्नान, मंत्र या वस्तु, कोई आराध्य वस्तु नहीं, अभिषेक या जल से घूंट नहीं, कोई फूल, फल, चंदन नहीं, भगवान के सामने लहराया गया प्रकाश नहीं, स्तुति, साष्टांग प्रणाम या परिक्रमा नहीं, यहां तक कि अलग होने की कोई विनती नहीं, भोजन, अर्पण किया हुआ भोजन, यज्ञ, कर्म, गाली, स्तुति, गायत्री और संधि (संयोग काल, जैसे संध्या, आदि), कोई मानसिक स्थिति नहीं, विपत्ति, बुरी इच्छा, बुरी आत्मा, चांडाल (नीची जाति का व्यक्ति), पुलकसा, असहनीयता, अकथनीयता, किरात (शिकारी), कैतव (राक्षस), पक्षपात, पक्षपात, अलंकार, प्रमुख, या अभिमान, कोई अनेकता नहीं, कोई एकता नहीं, स्थायित्व, त्रय, चतुर्भुज, महानता, लघुता, परिपूर्णता या भ्रम नहीं, कोई कैतव, बनारस, तप, कुल, परिवार, सूत्र, महानता, दरिद्रता, लड़की, वृद्धा या विधवा नहीं, कोई प्रदूषण, जन्म, अंतर्मुखता या भ्रम नहीं, कोई पवित्र वाक्य, पहचान या सिद्धियाँ, अणिमा आदि नहीं।

30. सब कुछ चेतना मात्र होने के कारण किसी भी चीज़ में कोई दोष नहीं है। सब कुछ सत् स्वरूप होने के कारण सच्चिदानंद ही है। 31. ब्रह्म ही सब

कुछ है, अन्य कुछ नहीं है। अतः 'वह' 'मैं' है, 'वह' 'मैं' है, 'वह' ही 'मैं' है। 'वह' ही 'मैं' है। 'वह' ही 'मैं' है। सनातन ब्रह्म ही 'मैं' है।

32-33. मैं ही ब्रह्म हूँ, जो संसार के अधीन नहीं है। मैं ही ब्रह्म हूँ, बिना किसी मनस, बुद्धि, इन्द्रिय या शरीर के। मैं ही ब्रह्म हूँ, जो बोधगम्य नहीं है। मैं ही ब्रह्म हूँ, जीव नहीं हूँ। मैं ही ब्रह्म हूँ, जो बदलने योग्य नहीं है।
34. मैं ही ब्रह्म हूँ, जड़ नहीं हूँ। मैं ही ब्रह्म हूँ, मेरी मृत्यु नहीं है। मैं ही ब्रह्म हूँ, मेरे प्राण नहीं हैं। मैं ही ब्रह्म हूँ, जो महान से भी महान हूँ।

35. यह ब्रह्म है। महान ही ब्रह्म है। सत्य ही ब्रह्म है। यह सर्वव्यापी है। काल ही ब्रह्म है। काल ही ब्रह्म है। सुख ही ब्रह्म है। यह स्वयं प्रकाशित है।

३६. एक ब्रह्म है। दो ब्रह्म है। मोह ब्रह्म है। साम आदि ब्रह्म हैं। दुष्टता ब्रह्म है।
ब्रह्म। अच्छाई ही ब्रह्म है। वह संयम, शांति, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान स्वरूप है।

37. लोक ब्रह्म है। गुरु ब्रह्म है। शिष्य ब्रह्म है। वह सदाशिव है। (जो) पहले है, वह ब्रह्म है। (जो) बाद में होगा, वह ब्रह्म है। पवित्रता ही ब्रह्म है। शुभ और अशुभ दोनों ब्रह्म हैं।

38. जीव सदैव ब्रह्म है। मैं सच्चिदानंद हूँ। सभी ब्रह्म स्वरूप हैं। जगत को ब्रह्म स्वरूप कहा गया है।

39. ब्रह्म स्वयं है। इसमें कोई संदेह नहीं है। स्वयं से बाहर कुछ भी नहीं है। चेतना स्वरूप का ॐ अक्षर ही ब्रह्म है। सब कुछ स्वयं है।

40-45. मैं ही सम्पूर्ण जगत् और सर्वोच्च आसन हूँ, गुणों को पार कर चुका हूँ और महान्, परम ब्रह्म, गुरुओं का गुरु, सबका आधार और आनन्द का आनन्द हूँ। आत्मा के अतिरिक्त कोई जगत् नहीं है। जगत् आत्मा के स्वरूप वाला है।

४६-५२(क)। आत्मा के बिना कहीं भी (या कोई स्थान) नहीं है। आत्मा से भिन्न घास भी नहीं है। ब्रह्म से भिन्न भूसा भी नहीं है। सम्पूर्ण जगत् आत्मा के स्वरूप वाला है। यह सब ब्रह्म के स्वरूप वाला है। असत् ब्रह्म के स्वरूप वाला नहीं है। ब्रह्म से भिन्न घास भी नहीं है। ब्रह्म से भिन्न कोई

आसन नहीं है, ब्रह्म से भिन्न कोई गुरु नहीं है, ब्रह्म से भिन्न कोई शरीर नहीं है। मैं-पन या तू-पन के समान ब्रह्म से भिन्न कुछ भी नहीं है।

५२(ख)-५७। इस जगत् में जो कुछ भी दिखाई देता है, लोग जो कुछ भी कहते हैं, जो कुछ भी सर्वत्र भोगा जाता है - ये सब असत् (अवास्तविक) ही हैं। कर्ता, कर्म, गुण, रुचि, स्वाद और लिंग से उत्पन्न होने वाले भेद - ये सब असत् से उत्पन्न होते हैं और सुखदायी हैं। काल, पदार्थ, कर्म, यश-पराजय और अन्य जो कुछ भी है, उससे उत्पन्न होने वाले भेद - ये सब असत् हैं। अंतःकरण असत् है। इन्द्रियाँ असत् हैं। सभी प्राण, इन सबका संग्रह, पाँच कोश, पाँच देवता, छह परिवर्तन, छह शत्रु, छह ऋतुएँ और छह स्वाद असत् हैं।

58. मैं सच्चिदानंद हूँ। जगत् जड़ है। मैं ही आत्मा हूँ, चित् और आनंद हूँ। संसार के दृश्य भिन्न नहीं हैं।

59. मैं आनंदस्वरूप और अचिन्त्य चित्स्वरूप सत्य हूँ।

60. यह सब ज्ञानस्वरूप है। मैं अद्वय हूँ, ज्ञान और आनंद से युक्त हूँ। मैं सब वस्तुओं का प्रकाशक हूँ। मैं सब असत्स्वरूप हूँ। मैं ही सदैव प्रकाशमान रहता हूँ। अतः ऐसे स्वभाव वाला मैं असत् कैसे हो सकता हूँ? जिसे 'तू' कहा गया है, वह चैतन्यस्वरूप तथा चिदाकाशस्वरूप तथा चित्स्वरूप महान् ब्रह्म है। आत्मा ही 'मैं' है। असत् 'मैं' नहीं है। मैं ही कूटस्थ, महान् गुरु तथा सच्चिदानंद हूँ। मैं ही यह जन्मा हुआ ब्रह्माण्ड हूँ। न काल, न ब्रह्माण्ड, न माया, न प्रकृति (मुझमें) है।

64. मैं ही हरि हूँ। मैं ही सगुण रूप में सदाशिव हूँ। मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ। मैं शुद्ध सत्त्व का भोक्ता हूँ।

65-71. मैं ही एकमात्र चित् से पूर्ण सार हूँ। सब कुछ ब्रह्म है और केवल ब्रह्म ही है। सब कुछ ब्रह्म है और केवल चित् है। मैं सर्वव्यापक तथा सर्वसाक्षीस्वरूप हूँ। मैं परम आत्मा, परम ज्योति, परम धन, परम लक्ष्य, समस्त वेदान्तों का सार, समस्त शास्त्रों में वर्णित विषय, योगिक आनन्द का स्वरूप, मुख्य आनन्द का सागर, समस्त ज्ञान का तेज, मुख्य ज्ञान का स्वरूप, चतुर्थ अवस्था तथा अचतुर्थ अवस्था का तेज, किन्तु उनसे रहित, अविनाशी चित्, सत्य, वासुदेव, जन्मरहित तथा अमर ब्रह्म, चिदाकाश, असंयमित, निर्मल, निष्कलंक, मुक्त, सर्वथा मुक्त, निष्प्राण, निराकार

तथा अकृत ब्रह्माण्ड का स्वरूप हूँ। जिस ब्रह्माण्ड को सत्य तथा असत्य माना जाता है, वह वास्तव में अस्तित्व में नहीं है।

72. ब्रह्म शाश्वत आनन्द का स्वरूप है तथा स्वयं भी है। वह अनन्त, अविनाशी, निश्चल तथा एक ही स्वरूप वाला है। 73-75. अगर मुझसे इतर कुछ भी है, तो वह मरुद्यान में मृगतृष्णा की तरह असत्य है। अगर कोई बांझ स्त्री के बेटे से डरे या खरगोश के सींग से शक्तिशाली हाथी मारा जाए, तो दुनिया (वास्तव में) है। अगर कोई (व्यक्ति) मृगतृष्णा का पानी पीकर अपनी प्यास बुझा सकता है, या यदि मनुष्य के सींग से कोई मारा जाए, तो ही वास्तव में ब्रह्माण्ड है। ब्रह्माण्ड सदैव सच्चे गंधर्व नगर में (केवल मिथ्या) रहता है।

76-98. जब आकाश का नीलापन वास्तव में उसमें विद्यमान रहता है, तब ही वास्तव में ब्रह्माण्ड है। जब मोती की चाँदी से आभूषण बनाए जा सकते हैं, जब रस्सी में साँप मनुष्य को डस लेता है, जब स्वर्ण बाण से धधकती हुई अग्नि को बुझाया जा सकता है, जब विन्ध्य (पहाड़ों) के (बंजर) वन में दूधयुक्त भोजन प्राप्त किया जा सकता है, जब (गीले) केले के वृक्षों के ईंधन से भोजन पकाया जा सकता है, जब जन्मी हुई मादा (शिशु) पकने लगती है, जब दही दूध की अवस्था में आ जाता है, या जब दूध (दूध निकाला हुआ) गाय के थनों से वापस चला जाता है, तब ही वास्तव में ब्रह्माण्ड होगा। जब पृथ्वी की धूल समुद्र में उत्पन्न होगी, जब पागल हाथी कछुए के बालों से बंधेगा, जब (पर्वत) मेरु कमल के डंठल में धागे से हिलेगा, जब समुद्र अपनी ज्वार की पंक्तियों से बंधा होगा, जब अग्नि नीचे की ओर लपटेंगी, जब ज्वाला (वास्तव में) ठंडी हो जाएगी, जब कमल प्रज्वलित अग्नि से निकलेगा, जब महान पर्वतों में इंद्रनील (नीलम) उगेगा, जब मेरु कमल-नेत्र में आकर बैठेगा, जब एक पर्वत काली मधुमक्खी की संतान बन सकता है, जब मेरु हिलेगा, जब एक शेर बकरी द्वारा मारा जाएगा, जब तीनों लोक एक अणु के खोखले स्थान में पाए जाएँगे, जब एक तिनके को जलाने वाली आग लंबे समय तक रहेगी, जब एक सपने में देखी गई चीजें जागृत अवस्था में दिखाई देंगी, जब एक नदी की धारा (स्वयं) स्थिर हो जाएगी, जब एक बांझ महिला का प्रसव फलदायी होगा, जब कौआ हंस की तरह चलेगा, जब खच्चर सिंह से लड़ेगा, जब बड़ा गधा हाथी की तरह चलेगा, जब पूर्ण चन्द्रमा सूर्य बन जाएगा, जब राहु (एक नोड) सूर्य और चन्द्रमा को त्याग देगा, जब बेकार (जले हुए) बीजों से अच्छी फसल पैदा होगी, जब गरीब अमीरों के सुख का आनंद लेंगे, जब कुत्तों की बहादुरी से शेर जीत लिए जाएंगे, जब ज्ञानियों का दिल मूर्खों को पता चल जाएगा, जब समुद्र को कुत्ते बिना किसी शेष के पी जाएंगे, जब

शुद्ध आकाश मनुष्यों पर गिरेगा, जब स्वर्ग पृथ्वी पर गिरेगा, जब आकाश में फूल सुगंध बिखेरेंगे, जब शुद्ध आकाश में दिखाई देने वाला जंगल हिलेगा और जब प्रतिबिंब केवल एक गिलास में (बिना पारे या किसी अन्य चीज के) उभरेगा, तब वास्तव में दुनिया है।

99. अज (अजन्मा ब्रह्म) के गर्भ में कोई ब्रह्मांड नहीं है - आत्मा के गर्भ में कोई ब्रह्मांड नहीं है। द्वैत और अद्वैत, जो भेद के परिणाम मात्र हैं, वास्तव में हैं नहीं।

100. यह सब माया का परिणाम है। इसलिए ब्रह्म-भावना होनी चाहिए। यदि 'मैं शरीर हूँ' की धारणा से दुःख उत्पन्न हो, तो 'मैं ब्रह्म हूँ' यह निश्चित है।

101. हृदय की गाँठ ब्रह्म का चक्र है, जो अस्तित्व की गाँठ को काट देती है। जब किसी के मन में संदेह उत्पन्न हो, तो उसे ब्रह्म में विश्वास रखना चाहिए।

102. वह अद्वैत ब्रह्म, जो शाश्वत और अप्रतिबन्धित आनन्दस्वरूप है, वह अ-आत्मा के मुख्य स्वरूप के विरुद्ध आत्मा का रक्षक है।

103. उपर्युक्त उदाहरणों से ब्रह्म का स्वरूप स्थापित होता है। ब्रह्म ही सबका निवास है। जगत् का नाम भी त्याग दो।

104. 'मैं ब्रह्म हूँ' यह निश्चयपूर्वक जानकर 'मैं' को त्याग दो। सब कुछ ऐसे लुप्त हो जाता है, जैसे सोये हुए व्यक्ति के हाथ से फूल लुप्त हो जाता है।

105. न शरीर है, न कर्म है। सब कुछ ब्रह्म ही है। न कोई वस्तु है, न कर्म है, न चारों अवस्थाएँ हैं।

106. विज्ञान के तीन लक्षणों से युक्त सब कुछ ब्रह्म ही है। सब कर्मों को त्यागकर इस प्रकार चिन्तन करो:

107. 'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं ब्रह्म हूँ'। इसमें कोई संदेह नहीं है। मैं चित्स्वरूप ब्रह्म हूँ। मैं सच्चिदानंदस्वरूप हूँ।

108. शंकर के इस महान विज्ञान को किसी साधारण व्यक्ति, नास्तिक, श्रद्धाहीन, बुरे आचरण वाले या दुष्टचित्त व्यक्ति को कभी नहीं समझाना चाहिए।

109. गुरुभक्ति से शुद्ध हुए महापुरुषों को इसका उचित परीक्षण करके इसे देना चाहिए। इसे डेढ़ वर्ष तक पढ़ाना चाहिए।

110. अन्य उपनिषदों द्वारा सुझाए गए अभ्यास को पूर्णतः त्यागकर, सदैव प्रसन्नतापूर्वक तेजोबिन्दु उपनिषद का अध्ययन करना चाहिए।

111. एक बार इसका अध्ययन करने से वह ब्रह्म से एक हो जाता है। इस प्रकार छठा अध्याय समाप्त होता है। ॐ ! वे हम दोनों की एक साथ रक्षा करें; वे हम दोनों का एक साथ पोषण करें; हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो; हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से द्वेष न करें)। ॐ ! मुझमें शांति हो ! मेरे वातावरण में शांति हो ! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो !

कृष्ण-यजुर्वेद में निहित तेजोबिंदु उपनिषद यहीं समाप्त होता है

038 - नाद बिन्दु उपनिषद

ॐ ! मेरी वाणी मन पर आधारित हो (अर्थात् उसके अनुरूप हो);

मेरा मन वाणी पर आधारित हो।

हे आत्म-तेजस्वी, मुझे अपना दर्शन दीजिए।

आप दोनों (वाणी और मन) मेरे लिए वेद के वाहक बनें।

मैंने जो कुछ सुना है, वह मुझसे दूर न हो।

मैं इस अध्ययन के द्वारा दिन और रात को एक साथ (अर्थात् मिटा दूँगा) जोड़ूँगा।

मैं जो मौखिक रूप से सत्य है, वही बोलूँगा;

मैं जो मानसिक रूप से सत्य है, वही बोलूँगा।

वह (ब्रह्म) मेरी रक्षा करें;

वह वक्ता (अर्थात् शिक्षक) की रक्षा करें,

वह मेरी रक्षा करें;

वह वक्ता की रक्षा करें - वह वक्ता की रक्षा करें।

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. 'अ' अक्षर इसका (ॐ पक्षी का) दाहिना पंख, 'उपनिषद्' बायां पंख, 'म' पूंछ और अर्धमात्रा इसका सिर माना गया है।

2. (राजसिक और तामसिक) गुण इसके पैर हैं, जो कमर तक हैं, सत्व इसका मुख्य शरीर है, धर्म इसका दाहिना नेत्र और अधर्म बायां नेत्र माना गया है।

3. भूर्लोक इसके पैरों में, भुवरलोक इसके घुटनों में, सुवरलोक इसकी कमर में और महर्लोक इसकी नाभि में स्थित है।

4. इसके हृदय में जनलोक, कंठ में तपोलोक और भौंहों के बीच माथे के बीच में सत्यलोक स्थित है।

5(अ). फिर सहस्रार (हजार किरणों वाला) से परे की मात्रा (या मंत्र) की व्याख्या की जाती है (अर्थात,) की व्याख्या की जानी चाहिए।

5(बी)-6(ए)। योग में निपुण व्यक्ति जो हंस (पक्षी) पर सवार होकर इस प्रकार (अर्थात, ओम का चिंतन) करता है, वह कर्म के प्रभाव या करोड़ों पापों से प्रभावित नहीं होता है।

६(ख)-७. प्रथम मात्रा के देवता अग्नि हैं; दूसरे के देवता वायु हैं; अगली मात्रा सूर्य के गोले के समान देदीप्यमान है और अंतिम अर्धमात्रा को बुद्धिमान लोग वरुण (जल के अधिष्ठाता देवता) से संबंधित जानते हैं।

८. इनमें से प्रत्येक मात्रा में वास्तव में तीन कलाएँ (भाग) हैं। इसे ओंकार कहते हैं। इसे धारणाओं के माध्यम से जानें, अर्थात बारह कलाओं में से प्रत्येक पर एकाग्रता (या स्वरों या स्वर के अंतर से उत्पन्न मात्राओं की विविधता)।

९-११. प्रथम मात्रा को घोषिनी कहते हैं; दूसरी को विद्युन्माली (या विद्युन्मात्रा); तीसरी को पतंगिनी; चौथी को वायुवेगिनी; पाँचवीं को नामधेया; छठी को ऐन्द्री; सातवीं को वैष्णवी; आठवीं को शंकरी; नौवीं को महाति; दसवीं, धृति (ध्रुव); ग्यारहवीं, नारी (मौनी); और बारहवीं, ब्राह्मी।

12. यदि कोई व्यक्ति पहली मात्रा में (उस पर विचार करते हुए) मर जाता है, तो वह भारतवर्ष में एक महान सम्राट के रूप में फिर से जन्म लेता है।

13. यदि दूसरी मात्रा में, वह एक शानदार यक्ष बन जाता है; यदि तीसरी मात्रा में, एक विद्याधर; यदि चौथी में, एक गंधर्व (ये तीन दिव्य यजमान हैं)।

14. यदि वह पाँचवीं, अर्थात् अर्ध-मात्रा में मर जाता है, तो वह चंद्रमा के लोक में रहता है, जहाँ एक देव का पद बहुत गौरवान्वित है।

15. यदि छठी में, वह इंद्र में विलीन हो जाता है; यदि सातवें में, वह विष्णु के आसन पर पहुँचता है; यदि आठवें में, तो सभी प्राणियों के स्वामी रुद्र।

16. यदि नौवें में, तो महर्-लोक में; यदि दसवें लोक में हो तो जनलोक (ध्रुवलोक) में; यदि ग्यारहवें लोक में हो तो तपोलोक में और यदि बारहवें लोक में हो तो ब्रह्म की शाश्वत स्थिति को प्राप्त होता है।

17. इनसे परे जो परब्रह्म है, जो (उपर्युक्त मात्राओं से परे) शुद्ध, सर्वव्यापक, कलाओं से परे, नित्य देदीप्यमान और समस्त ज्योतियों (प्रकाश) का स्रोत है, उसे जानना चाहिए।

18. जब मन इन्द्रियों और गुणों से परे चला जाता है और लीन हो जाता है, उसका कोई पृथक अस्तित्व और कोई मानसिक क्रिया नहीं रह जाती, तब (गुरु को) उसे (उसके आगे के विकास के बारे में) निर्देश देना चाहिए।

19. उस व्यक्ति को, जो सदैव इसके चिंतन में लगा रहता है और इसमें लीन रहता है, उसे योग का मार्ग अपनाते हुए और समाज के साथ सभी प्रकार के संपर्क से बचते हुए धीरे-धीरे अपने शरीर (या परिवार) को त्याग देना चाहिए।

20. तब वह जीवात्मा और अस्तित्व के बंधनों से मुक्त होकर शुद्ध होकर ब्रह्मपद को प्राप्त होकर परम आनन्द का भोग करता है।

21. हे बुद्धिमान् पुरुष! तू अपना जीवन सदैव परम आनन्द के ज्ञान में व्यतीत कर, अपने सम्पूर्ण प्रारब्ध (पूर्व कर्मों का वह भाग जो अब भोगा जा रहा है) का भोग कर, बिना किसी शिकायत के।

22-23(क). आत्मज्ञान जागृत होने पर भी प्रारब्ध उसे नहीं छोड़ता; किन्तु तत्त्वज्ञान जागृत होने पर उसे प्रारब्ध का अनुभव नहीं होता, क्योंकि शरीर आदि वस्तुएँ असत् हैं, जैसे स्वप्न में देखी हुई वस्तुएँ जागृत होने पर असत् होती हैं।

23(ख)-24. पूर्वजन्मों में किए गए कर्म का वह भाग, जिसे प्रारब्ध कहते हैं, तत्त्वज्ञानी को बिल्कुल प्रभावित नहीं करता, क्योंकि उसका पुनर्जन्म नहीं होता। जैसे स्वप्नावस्था में रहने वाला शरीर असत्य है, वैसे ही यह शरीर भी असत्य है।

25(क)। फिर जो वस्तु मायावी है, उसका पुनर्जन्म कहाँ? जब वस्तु का जन्म ही नहीं है, तो उसका अस्तित्व कैसे हो सकता है?

25(ख)-26(क)। जैसे मिट्टी घड़े का भौतिक कारण है, वैसे ही वेदान्त से पता चलता है कि अज्ञान ही जगत का भौतिक कारण है और जब अज्ञान का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, तब जगत कहाँ?

26(ख)-27। जैसे मनुष्य माया के कारण रस्सी को सर्प समझ लेता है, वैसे ही सत्य को न जानने वाला मूर्ख जगत को सत्य देखता है। जब वह जानता है कि यह रस्सी का टुकड़ा है, तो सर्प का भ्रम दूर हो जाता है।

28-29(क)। अतः जब वह सबका शाश्वत आधार जान लेता है और सारा ब्रह्माण्ड शून्य हो जाता है, तो फिर उसके लिए प्रारब्ध कहाँ है, क्योंकि शरीर तो संसार का ही एक अंग है? इसलिए प्रारब्ध शब्द अज्ञानियों को ज्ञान देने के लिए ही स्वीकार किया जाता है।

२९(ख)-३०. फिर जब समय के साथ प्रारब्ध नष्ट हो जाता है, तब जो ब्रह्म के साथ प्रणव के मिलन से उत्पन्न ध्वनि है, जो स्वयं पूर्ण तेज है, और जो सभी शुभों का दाता है, वह बादलों के बिखरने पर सूर्य की तरह चमकता है।

३१. सिद्धासन में स्थित और वैष्णवी-मुद्रा का अभ्यास करने वाले योगी को हमेशा दाहिने कान से आंतरिक ध्वनि सुननी चाहिए।

३२. जिस ध्वनि का वह इस प्रकार अभ्यास करता है, वह उसे सभी बाहरी ध्वनियों के प्रति बहरा बना देती है। सभी बाधाओं को पार करके, वह पंद्रह दिनों के भीतर तुर्या अवस्था में प्रवेश करता है।

३३. अपने अभ्यास की शुरुआत में, वह कई तेज आवाजें सुनता है। वे धीरे-धीरे पिच में बढ़ती हैं और अधिक से अधिक सूक्ष्म रूप से सुनाई देती हैं।

३४. शुरू में, ध्वनियाँ समुद्र, बादलों, केतली-ढोल और मोतियाबिंद से आने वाली आवाज़ों की तरह होती हैं; मध्य (अवस्था) में वे जो मर्दल (वाद्य), घंटा और सींग से उत्पन्न होते हैं।

35. अंतिम अवस्था में वे जो झनकारती घंटियाँ, बाँसुरी, वीणा (वाद्य) और मधुमक्खियों से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार वह ऐसी अनेक ध्वनियाँ सुनता है जो अधिकाधिक सूक्ष्म होती जाती हैं।

36. जब वह उस अवस्था में पहुँचता है जब महान ढोल की ध्वनि सुनाई देती है, तो उसे केवल अधिकाधिक सूक्ष्म ध्वनियों में भेद करने का प्रयास करना चाहिए।

37. वह अपनी एकाग्रता को स्थूल ध्वनि से सूक्ष्म या सूक्ष्म से स्थूल ध्वनि की ओर परिवर्तित कर सकता है, लेकिन उसे अपने मन को उनसे अन्य ध्वनियों की ओर विचलित नहीं होने देना चाहिए।

38. मन पहले किसी एक ध्वनि पर एकाग्र होकर उसी पर दृढ़तापूर्वक स्थिर हो जाता है और उसी में लीन हो जाता है।

39. वह (मन) बाह्य प्रभावों के प्रति असंवेदनशील होकर ध्वनि के साथ एक हो जाता है जैसे दूध और पानी एक हो जाते हैं और फिर वह तेजी से चिदाकास (आकाश जहाँ चित् प्रबल है) में लीन हो जाता है।

40. योगी को समस्त विषयों के प्रति उदासीन होकर, अपनी वासनाओं को वश में करके, निरंतर अभ्यास द्वारा मन को नष्ट करने वाली ध्वनि पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

41. समस्त विचारों को त्यागकर तथा समस्त कर्मों से मुक्त होकर, उसे सदैव ध्वनि पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए और (तब) उसका चित्त उसमें लीन हो जाता है।

42-43(क)। जिस प्रकार मधुमक्खी अकेले ही शहद पीती है, वह गंध की परवाह नहीं करती, उसी प्रकार चित्त जो सदैव शब्द में लीन रहता है, वह विषय-वस्तुओं की चाह नहीं करता, क्योंकि वह नाद की मधुर गंध से बंधा हुआ है और उसने अपनी चंचल प्रकृति को त्याग दिया है।

43(ख)-44(क)। सर्प चित्त नाद को सुनकर उसमें पूरी तरह लीन हो जाता है और सब कुछ से अचेत होकर शब्द पर ही केन्द्रित हो जाता है।

44(ख)-45(क)। ध्वनि उन्मत्त हाथी - चित्त को नियंत्रित करने के लिए एक तीक्ष्ण अंकुश का कार्य करती है, जो कामुक विषयों के भोग-उद्यान में विचरण करता है।

45(ख)-46(क)। यह चित्त - मृग को बांधने के लिए एक जाल का कार्य करती है। यह चित्त की सागरीय लहरों के लिए एक तट का कार्य भी करती है।

46(ख)-47(क)। प्रणव से आने वाली ध्वनि जो ब्रहम है, तेजोमय प्रकृति की है; मन उसमें लीन हो जाता है; वह विष्णु का सर्वोच्च आसन है।

47(ख)-48(क)। ध्वनि तब तक विद्‌यमान रहती है, जब तक आकाशीय संकल्प नहीं होता। इसके परे, (असब्द) ध्वनिरहित परब्रह्म है, जो परमात्मा है।

48(ख)। जब तक ध्वनि है, तब तक मन रहता है, किन्तु ध्वनि के समाप्त हो जाने पर मन की उन्मनी अवस्था होती है, जिसे मन से ऊपर होना कहते हैं।

49(क) यह ध्वनि अक्षर में लीन हो जाती है, तथा ध्वनिरहित अवस्था ही परमपद है। 49(ख)-50(क) नाद पर निरन्तर ध्यान लगाने से प्राण (वायु) सहित जो मन कर्म-सम्बन्धों को नष्ट कर देता है, वह अदूषित में लीन हो जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं है।

50(ख)-51(क) नादों की असंख्य संख्याएँ तथा बिन्दु - सभी ब्रह्म प्रणव ध्वनि में लीन हो जाते हैं। 51(ख)-52(क) सभी अवस्थाओं तथा सभी विचारों से मुक्त होकर योगी मृत के समान रहता है। वह मुक्त है। इसमें कोई संदेह नहीं है।

52(ख) इसके बाद उसे कभी भी शंख या दुन्दुभि की ध्वनि सुनाई नहीं देती।

53. उन्मनी अवस्था में शरीर निश्चित रूप से लकड़ी के समान होता है, तथा उसे न तो गर्मी लगती है, न सर्दी, न सुख, न दुख।

54. योगी का चित्त यश-अपयश को त्यागकर तीनों अवस्थाओं से ऊपर समाधि में होता है।

55. जाग्रत और सुषुप्ति से मुक्त होकर वह अपनी वास्तविक अवस्था को प्राप्त होता है।

56. जब (आध्यात्मिक) दृष्टि बिना किसी वस्तु को देखे स्थिर हो जाती है, जब वायु (प्राण) बिना किसी प्रयास के स्थिर हो जाता है, तथा जब चित्त बिना किसी सहारे के दृढ़ हो जाता है, तब वह ब्रह्म-प्रणव की आंतरिक ध्वनि का स्वरूप हो जाता है। ऐसा उपनिषद है। ॐ ! मेरी वाणी मन पर आधारित हो; मेरा मन वाणी पर आधारित हो। हे आत्म-तेजस्वी, मुझे अपना दर्शन दीजिए। आप दोनों (वाणी और मन) मेरे लिए वेद के वाहक

बनें। मैंने जो कुछ सुना है, वह मुझसे दूर न हो। मैं इस अध्ययन के द्वारा दिन और रात को एक साथ जोड़ दूँगा (अर्थात् उनका भेद मिटा दूँगा)। मैं वही बोलूँगा जो मौखिक रूप से सत्य है; मैं वही बोलूँगा जो मानसिक रूप से सत्य है। वह (ब्रह्म) मेरी रक्षा करे; वह वक्ता (अर्थात् शिक्षक) की रक्षा करे, वह मेरी रक्षा करे; वह वक्ता की रक्षा करे - वह वक्ता की रक्षा करे। ॐ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ ऋग्वेद में निहित नादबिंदु उपनिषद समाप्त होता है

039 - ध्यान-बिन्दु उपनिषद

ॐ ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;
हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,
हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;
हम एक दूसरे से विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)।

ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. पाप चाहे अनेक योजन (दूरी) तक फैले पर्वत पर भी एकत्रित हो जाए, ध्यान-योग से उसका नाश हो जाता है। ऐसा पाप नाश करने वाला आज तक कोई नहीं मिला है।

2. बीजाक्षर (बीज-अक्षर) परम बिन्दु है। नाद (आध्यात्मिक ध्वनि) उसके ऊपर है। जब वह नाद अक्षर के साथ समाप्त हो जाता है, तब नाद-रहित परम अवस्था होती है।

3. जो योगी नाद से ऊपर जो अनाहत है, उसे सर्वोच्च मानता है, उसके सभी संशय नष्ट हो जाते हैं।

4. यदि एक बाल की नोक को एक लाख भागों में विभाजित किया जाए, तो यह (नाद) उस और भी विभाजित भाग का आधा है; और जब (यह भी) लीन हो जाता है, तो योगी निर्मल ब्रह्म को प्राप्त होता है।

5-6. जो दृढ़ मन वाला है और मोह (इंद्रिय सुखों के) से रहित है और हमेशा ब्रह्म में विश्राम करता है, उसे (मनकों की माला में) सभी प्राणियों को आत्मा में विद्यमान देखना चाहिए जैसे फूलों में गंध, दूध में घी, तिल के बीजों में तेल और क्वार्ट्ज में सोना।

7. फिर जिस प्रकार तेल अपनी अभिव्यक्ति के लिए तिल के बीजों पर और गंध फूलों पर निर्भर करता है, उसी प्रकार पुरुष अपने अस्तित्व के लिए बाह्य और आंतरिक दोनों शरीर पर निर्भर करता है।

8. वृक्ष भागों सहित है और उसकी छाया भागों रहित है, लेकिन भागों सहित और बिना भागों के, आत्मा सर्वत्र विद्यमान है।

9(क). मोक्ष की आकांक्षा रखने वाले सभी लोगों को एक अक्षर (ॐ) का ब्रह्म के रूप में चिंतन करना चाहिए।

9(ख)-10(क)। पृथ्वी, अग्नि, ऋग्वेद, भू: और ब्रह्मा - ये सभी तब (लीन हो जाते हैं) जब अकार (अ), प्रणव (ॐ) का प्रथम अंश (भाग) लीन हो जाता है।

10(ख)-11(क)। अंतरिक्ष, यजुर्वेद, वायु, भुव: और जनार्दन विष्णु - ये सभी (लीन हो जाते हैं)जब उकार (उ) होता है, तो प्रणव का दूसरा अंश लीन हो जाता है।

11(ख)-12(क)। जब मकार (म) होता है, तो द्युर, सूर्य, सामवेद, सुवह और महेश्वर - ये सभी (लीन हो जाते हैं) प्रणव का तीसरा अंश।

12(ख)-13(क)। अकार पीले रंग का होता है और रजोगुणी कहा जाता है; उकार सफेद रंग का होता है और सत्वगुणी होता है; मकर श्याम रंग का और तमोगुणी होता है।

13(ख)-14(क)। जो ओंकार को आठ अंग, चार पाद, तीन स्थान और पाँच देवता नहीं जानता, वह ब्राह्मण नहीं है।

14(ख)-15। प्रणव धनुष है। आत्मा बाण है और ब्रहम लक्ष्य है। मनुष्य को बहुत सावधानी से उस पर निशाना लगाना चाहिए और तब वह बाण की तरह उसके साथ एक हो जाता है। जब उस परम पुरुष को पहचान लिया जाता है, तब सभी कर्म लौट जाते हैं (अर्थात् उस पर प्रभाव नहीं डालते)।

16. वेदों का कारण ओंकार है। स्वरों का कारण ओंकार है। तीनों लोकों में (सभी) इंजन और स्थिर (उनमें स्थित) ओंकार ही कारण है।

17. लघु (ओम का उच्चारण) सभी पापों को जला देता है, दीर्घ (ओम का आधा-मात्रा) क्षय रहित और समृद्धि प्रदान करने वाला है। अर्ध-मात्रा (ओम का आधा-मात्रा) के साथ मिलकर प्रणव मोक्ष प्रदान करने वाला बन जाता है।

18. वह मनुष्य वेदों का ज्ञाता है जो जानता है कि प्रणव के अंत (अर्थात् अर्ध-मात्रा) की पूजा (या जप) तेल के प्रवाह की तरह अखंडित और घंटी की ध्वनि की तरह (गूँजती) होनी चाहिए।

19. ओंकार का ध्यान ईश्वर के रूप में करना चाहिए जो अविचल प्रकाश के समान है, अंगूठे के आकार का है और हृदय कमल के मध्य में स्थिर है।
20. वायु को बायीं नासिका से अन्दर लेकर पेट को भरकर, शरीर के मध्य में स्थित तथा चारों ओर घूमती हुई ज्वालाओं से घिरा हुआ ओंकार का ध्यान करना चाहिए।

21. ब्रहमा को प्रेरणा, विष्णु को श्वास का निरोध तथा रुद्र को निःश्वसन कहा गया है। ये प्राणायाम के देवता हैं।

22. आत्मा को (निचली) अरणि तथा प्रणव को ऊपरी अरणि बनाकर, ध्यान नामक मंथन के अभ्यास द्वारा गुप्त रूप से ईश्वर का दर्शन करना चाहिए।

23. मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुसार श्वास को रोकना चाहिए, साथ ही ओंकार का उच्चारण करते रहना चाहिए, जब तक कि वह पूरी तरह से बंद न हो जाए।

24. जो लोग ओंकार को सबमें रहने वाले, करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशित होने वाले, एकाकी, गमगामा (हमेशा आने-जाने वाले) और गतिहीन होने वाले हंस के रूप में देखते हैं, ऐसे लोग अंत में पाप से मुक्त हो जाते हैं।

25. वह मनस जो तीनों लोकों की सृष्टि, स्थिति और संहार का कर्ता है, तब (परमात्मा में) लीन हो जाता है। वह विष्णु की सर्वोच्च अवस्था है।

26. हृदय कमल में आठ पंखुड़ियाँ और बत्तीस तंतु हैं। सूर्य उसके मध्य में है, चंद्रमा सूर्य के मध्य में है।

27. अग्नि चंद्रमा के मध्य में है, प्रभा अग्नि के मध्य में है। पीठ (आसन या केन्द्र) प्रभा के मध्य में है, जो विविध रत्नों से युक्त है।

28-29. पीठ के मध्य में विराजमान, वक्षस्थल पर श्रीवत्स (काला चिन्ह) और कौस्तुभ (रत्नों की माला) धारण किये हुए, रत्नों और मोतियों से सुशोभित, शुद्ध स्फटिक के समान तथा कोटि चन्द्रमाओं के समान तेज वाले, निष्कलंक भगवान वासुदेव का ध्यान करना चाहिए। उपरोक्तानुसार अथवा निम्न प्रकार से महाविष्णु का ध्यान करना चाहिए।

30-31. अर्थात्, अतसी पुष्प के समान तथा चार भुजाओं से युक्त नाभिस्थान में स्थित महाविष्णु का ध्यान करना चाहिए; फिर श्वास को रोककर हृदय में गौरा (लाल) रत्नों से युक्त कमल पर विराजमान तथा चार मुखों वाले पितामह ब्रह्मा का ध्यान करना चाहिए।

32-34(क)। फिर निःश्वसन द्वारा उसे दोनों भौंहों के बीच तीन नेत्रों वाले शिव का ध्यान करना चाहिए जो शुद्ध स्फटिक के समान चमकते हैं, निष्कलंक हैं, सभी पापों का नाश करने वाले हैं, जो नीचे की ओर मुख किए हुए कमल के समान हैं, जिसका फूल (या मुख) नीचे और डंठल ऊपर है अथवा केले के फूल के समान हैं, जो सभी वेदों के स्वरूप हैं, जिनमें एक सौ पंखुड़ियाँ और एक सौ पत्ते हैं और जिनकी वृषण पूरी तरह फैली हुई है।

34(ख)-35. वहाँ उसे सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि का ध्यान करना चाहिए, जो एक दूसरे के ऊपर स्थित हैं। सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि के समान तेज वाले कमल के ऊपर से होकर तथा उसका ह्रीं बीज लेकर, मनुष्य अपनी आत्मा को दृढ़तापूर्वक ले जाता है।

36. जो तीन आसन, तीन मात्राएँ, तीन ब्रह्म, तीन अक्षर और अर्धमात्रा से संबंधित तीन मात्राएँ जानता है, वही वेदों का ज्ञाता है।

37. जो बिन्दु, नाद और कला से ऊपर के उस तत्व को जानता है, जो तेल के प्रवाह के समान अविरल और घंटे की ध्वनि के समान गूँजने वाला है - वह मनुष्य वेदों का ज्ञाता है।

38. जैसे मनुष्य कमल के डंठल के छिद्रों से जल को अपने मुँह से खींचता है, वैसे ही योग के मार्ग पर चलने वाले योगी को चाहिए कि वह श्वास को खींचे।

39. अर्धमात्रा के रूप में कमल-कोश बनाकर, मनुष्य को सुषुम्ना, इड़ा और पिंगला नाड़ियों के डंठल से श्वास को खींचकर भौंहों के मध्य में लीन करना चाहिए।

40. उसे यह जानना चाहिए कि माथे में भौंहों के मध्य में जो नासिका का मूल भी है, अमृत का स्थान है। वह ब्रह्म का महान स्थान है।

41. आसन, श्वास का संयम, इन्द्रियों का वशीकरण, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के छह अंग हैं।

42. जितने प्राणी हैं, उतने ही आसन हैं; और महेश्वर (महान भगवान) उनकी विशेषताओं को जानते हैं।

43. सिद्ध, भद्र, सिंह और पद्म चार (मुख्य) आसन हैं। मूलाधार पहला चक्र है। स्वाधिष्ठान दूसरा है।

44. इन दोनों के बीच में योनि (पेरिनियम) का स्थान बताया गया है, जो काम (प्रेम के देवता) का रूप है। गुदा के आधार में चार पंखुड़ियों वाला कमल है।

45-46. इसके मध्य में काम नामक योनि है, जिसकी सिद्धों द्वारा पूजा की जाती है। योनि के मध्य में पश्चिम की ओर मुख करके मणि के समान सिर पर विभाजित लिंग है। जो इसे जानता है, वह वेदों का ज्ञाता है।

47. अग्नि के ऊपर और जननेंद्रिय के नीचे एक चतुर्भुज आकृति स्थित है, जो पिघले हुए सोने के आकार की है और बिजली की धारियों के समान चमक रही है। प्राण अपनी स्व (स्वयं) ध्वनि के साथ है, जिसका अधिष्ठान स्वाधिष्ठान है, (या क्योंकि स्व या प्राण इससे उत्पन्न होते हैं)।

48. चक्र स्वाधिष्ठान को जननेंद्रिय ही कहा गया है। नाभि के क्षेत्र में स्थित चक्र को मणिपूरक कहते हैं, क्योंकि वायु मणियों की तरह शरीर को डोरी से छेदती है।

49-50(क)। जीव (अहंकार) अपने पूर्व पुण्य-पाप कर्मों से प्रेरित होकर इस बारह तीलियों वाले महान चक्र में तब तक घूमता रहता है, जब तक वह सत्य को नहीं समझ लेता।

50(ख)। जननेन्द्रिय के ऊपर और नाभि के नीचे पक्षी के अण्डे के आकार का कण्ड है।

51. इससे बहत्तर हजार नाड़ियाँ निकलती हैं। इनमें बहत्तर सामान्यतः ज्ञात हैं।

52-53। इनमें मुख्य दस हैं, जो प्राणों को धारण करती हैं। इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, गांधारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुशा, कुहु और शंखिनी ये दस कही गई हैं।

54-55(क)। नाड़ियों के इस चक्र को योगियों को सदैव जानना चाहिए। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना ये तीन नाड़ियाँ सदैव प्राण को धारण करती हैं तथा इनके देवता चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि हैं। इड़ा बायीं ओर है और पिंगला दाहिनी ओर, जबकि सुषुम्ना बीच में है। ये तीनों प्राण के मार्ग माने जाते हैं।

56(ख)-57 प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान; नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनंजय इनमें से प्रथम पाँच को प्राण आदि कहते हैं और अन्तिम पाँच नाग आदि को वायु (या उपप्राण) कहते हैं। ये सभी एक हजार नाड़ियों के साथ स्थित हैं (या प्रवाहित होती हैं), जो जीवन के रूप में हैं (या उत्पन्न करती हैं)। प्राण और अपान के प्रभाव में रहने वाला जीव ऊपर-नीचे होता रहता है।

59-60(क)। जीव सदैव बायें-दायें मार्ग से चलता रहता है, इसलिए दिखाई नहीं देता। जैसे हाथ के बल्ले से गेंद को पृथ्वी पर पटकने पर वह उछलकर ऊपर आ जाती है, वैसे ही प्राण और अपान द्वारा उछाला जाने पर जीव कभी विश्राम में नहीं रहता।

60(ख)-61(क)। जो यह जानता है कि प्राण सदैव अपान से ही अपने को खींचता है और अपान प्राण से ही अपने को खींचता है, वही योग का ज्ञाता है, जैसे पक्षी डोरी से (अपने को खींचता तो है, पर मुक्त नहीं होता)

61(ख)-63. जीव 'हं' अक्षर से बाहर आता है और 'स' अक्षर से पुनः अन्दर आता है। इस प्रकार जीव सदैव 'हंसा', 'हंसा' मंत्र का उच्चारण करता है। जीव सदैव एक दिन और रात में इक्कीस हजार छह सौ बार मंत्र का उच्चारण करता है। इसे अजपा गायत्री कहते हैं और यह योगियों को सदैव निर्वाण प्रदान करने वाली है।

64-66(क)। इसके विचार मात्र से मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है। न तो भूतकाल में और न भविष्यकाल में इसके बराबर कोई शास्त्र है, न इसके बराबर कोई जप है और न इसके बराबर कोई पुण्य कर्म है। परमेश्वरी (अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति) अपने मुख से उस द्वार को बन्द करके सोती है, जो क्षयरहित ब्रह्म-छिद्र की ओर ले जाता है।

66(ख)-68. मनस और प्राण के साथ अग्नि के संपर्क से जागृत होकर वह सुई का रूप धारण कर लेती है और सुषुम्ना को छेद देती है। योगी को चाहिए कि वह इस बंद द्वार को बड़े प्रयत्न से खोले। तब वह कुण्डलिनी के द्वारा मोक्ष के द्वार को छेद देगा।

69. हाथों की अंगुलियों को दृढ़तापूर्वक मोड़कर, पद्मासन को दृढ़तापूर्वक धारण करके, ठोड़ी को वक्षस्थल पर दृढ़तापूर्वक रखकर तथा मन को ध्यान में स्थिर करके, बार-बार अपान को ऊपर उठाए, उसमें वायु भरे और फिर प्राण को छोड़ दे। तब बुद्धिमान पुरुष को (इस) शक्ति के द्वारा अतुलनीय ज्ञान की प्राप्ति होती है।

70. जो योगी पद्मासन धारण करके नाड़ियों के द्वार पर वायु की आराधना करता है (अर्थात उसे नियंत्रित करता है) और फिर श्वास का संयम करता है, वह निःसंदेह मुक्त हो जाता है।

71-72. थकान से उत्पन्न पसीने को अंगों से मलकर साफ करना, खट्टे, कड़वे और लवणीय भोजन का त्याग करना, दूध और रस का आनंद लेना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, संयमित खान-पान करना और योगाभ्यास में तल्लीन रहना, योगी एक वर्ष से कुछ अधिक समय में सिद्ध हो जाता है। परिणाम के बारे में कोई पूछताछ करने की आवश्यकता नहीं है।

73. कुण्डलिनी शक्ति जब कण्ठ में ऊपर होती है, तो योगी को सिद्धि प्राप्त होती है। प्राण और अपान के मिलन से मल-मूत्र का निष्कासन होता है।

74-75(क)। मूलबंध को हमेशा करने से व्यक्ति वृद्ध होने पर भी युवा बन जाता है। एड़ियों से योनि को दबाना और गुदा को सिकोड़कर अपान को ऊपर खींचना - इसे मूलबंध कहते हैं।

75(ख)-76. उड्डियान बंध इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह एक बड़े पक्षी की तरह है जो हमेशा बिना आराम किए उड़ता रहता है। पेट के पश्चिमी भाग को नाभि के ऊपर लाना चाहिए।

77. यह उड्डियान बंध मृत्युरूपी हाथी के लिए सिंह है, क्योंकि यह आकाश के जल (अथवा अमृत) को बांधता है जो सिर में उत्पन्न होता है और नीचे की ओर बहता है।

78-79(क)। जालंधर बंध गले के सभी कष्टों का नाश करने वाला है। जब यह जालंधर बंध जो गले के कष्टों का नाश करने वाला है, किया जाता है, तब अग्नि पर अमृत नहीं गिरता और न ही वायु चलती है। 79(ख)-80(क)। जब जिह्वा कपाल के छिद्र में पीछे की ओर प्रवेश करती है, तब भौंह में खेचरी नामक दृष्टि मुद्रा होती है।

80(ख)-81(क)। जो खेचरी मुद्रा को जानता है, उसे रोग, मृत्यु, निद्रा, भूख, प्यास या मूर्च्छा नहीं होती।

81(ख)-83(क)। जो इस मुद्रा का अभ्यास करता है, उसे रोग या कर्म प्रभावित नहीं करते; न ही वह काल की सीमाओं से बंधा होता है। चूँकि चित्त ख (आकाश) में गति करता है और चूँकि जीभ ख (अर्थात् मुख के छिद्र) में प्रविष्ट हो गई है, इसलिए इस मुद्रा को खेचरी कहते हैं और सिद्ध इसकी पूजा करते हैं।

83(ख)-84. जिस पुरुष का खेचरी मुद्रा द्वारा उवुला के ऊपर का छिद्र (या मार्ग) बंद हो जाता है (जीभ पीछे की ओर करके) तो वह कभी भी अपना पुरुषत्व नहीं खोता, चाहे वह किसी सुंदर स्त्री से आलिंगन में ही क्यों न हो। जब तक शरीर में बिन्दु (पुरुषत्व) रहता है, तब तक मृत्यु का भय कहाँ?

85-86(क). जब तक खेचरी मुद्रा का अभ्यास होता है, तब तक बिन्दु शरीर से बाहर नहीं जाता। जब बिन्दु मूलाधार क्षेत्र में आ जाता है, तब भी वह योनि मुद्रा द्वारा बलपूर्वक रोका और ऊपर चढ़ाया जाता है।

86(ख)-87. यह बिन्दु दो प्रकार का होता है, श्वेत और लाल। सफ़ेद वाला शुक्ल कहलाता है और लाल वाला रजस से भरपूर होता है। योनि में रहने वाला रजस मूंगे के रंग जैसा होता है।

88. बिंदु जननांगों के स्थान पर रहता है। इन दोनों का मिलन बहुत दुर्लभ है। बिंदु शिव है और रजस शक्ति है। बिंदु चंद्रमा है और रजस सूर्य है।

89-90(क). इन दोनों के संयोग से परम शरीर की प्राप्ति होती है; जब वायु के द्वारा शक्ति को उत्तेजित करके रजस को जगाया जाता है, जो सूर्य के साथ मिलकर एक हो जाती है, तब दिव्य रूप उत्पन्न होता है।

90(ख)-92. शुक्ल चन्द्रमा के साथ और रजस सूर्य के साथ एक हो जाने पर, जो इन दोनों का उचित मिश्रण जानता है, वह योग का ज्ञाता है। संचित मल का शुद्धिकरण, सूर्य और चन्द्रमा का एकीकरण तथा रसों का पूर्णतया सूख जाना, इसे महामुद्रा कहते हैं।

93. ठोड़ी को वक्षस्थल पर रखकर, बायीं एड़ी से गुदा को दबाकर तथा दोनों हाथों से फैले हुए दाहिने पैर के अँगूठे को पकड़कर, पेट में वायु भरकर धीरे-धीरे श्वास बाहर निकालना चाहिए।इसे महामुद्रा कहते हैं, जो मनुष्यों के पापों का नाश करने वाली है।

94. अब मैं आत्मा का वर्णन करूँगा। हृदय के स्थान में आठ पंखुड़ियों वाला कमल है। इसके मध्य में ज्योतिस्वरूप और अणु आकार का जीवात्मा गोलाकार रेखा में घूमता है। इसमें सब कुछ स्थित है। इसमें सब कुछ ज्ञात है। यह सब कुछ करता है। यह सब कुछ अपनी शक्ति से करके यह सब कार्य करता है, (सोचता है) कि मैं करता हूँ, मैं आनंद लेता हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ, मैं अंधा हूँ, मैं लंगड़ा हूँ, मैं बहरा हूँ, मैं गूँगा हूँ, मैं दुबला हूँ, मैं मोटा हूँ, इत्यादि।

जब यह श्वेत वर्ण वाली पूर्व पंखुड़ी पर रहता है, तब इसका मन भक्ति सहित धर्म की ओर होता है। जब यह रक्तवर्ण वाली दक्षिण-पूर्व पंखुड़ी पर रहता है, तब इसका मन निद्रा और आलस्य की ओर होता है। जब यह कृष्णवर्ण वाली दक्षिण पंखुड़ी पर रहता है, तब इसका मन घृणा और क्रोध

की ओर होता है। जब यह दक्षिण-पश्चिमी पंखुड़ी पर रहता है, जो नीला रंग की होती है, तब इसमें पाप या हानिकारक कार्यों की इच्छा होती है। जब यह पश्चिमी पंखुड़ी पर रहता है, जो स्फटिक रंग की होती है, तब इसमें इश्कबाज़ी और मनोरंजन की प्रवृत्ति होती है।

जब यह उत्तर-पश्चिमी पंखुड़ी पर रहता है, जो माणिक्य रंग की होती है, तब इसमें चलने, घूमने और वैराग्य (या उदासीन रहने) की प्रवृत्ति होती है। जब यह उत्तरी पंखुड़ी पर रहता है, जो पित्त (पीले) रंग की होती है, तब इसमें प्रसन्नता और प्रेम की प्रवृत्ति होती है। जब यह उत्तर-पूर्वी पंखुड़ी पर रहता है, जो वैदूर्य (लैपिस लाजुली) रंग की होती है, तब इसमें धन, दान और वासना का संग्रह करने की प्रवृत्ति होती है। जब यह किसी दो पंखुड़ियों के बीच के स्थान में रहता है, तब इसमें वायु, पित्त और कफ (शरीर में) के संतुलन की गड़बड़ी से उत्पन्न होने वाले रोगों से उत्पन्न क्रोध होता है।

जब वह बीच में रहता है, तब वह सब कुछ जानता है, गाता है, नाचता है, बोलता है और आनंदित रहता है। जब आँख दिन भर के काम के बाद पीड़ाग्रस्त होती है, तब पीड़ा दूर करने के लिए वह पहले एक गोलाकार रेखा बनाता है और बीच में धँस जाता है। पहली रेखा बंधुक पुष्प (बस्सिया) के रंग की होती है। फिर निद्रा की अवस्था होती है। निद्रा की अवस्था के बीच में स्वप्न की अवस्था होती है।

स्वप्न की अवस्था के बीच में उसे अनुभूति, वेद, अनुमान, संभावना, (पवित्र) शब्द आदि के विचार अनुभव होते हैं। फिर बहुत थकान होती है। इस थकान को दूर करने के लिए वह दूसरी रेखा का चक्कर लगाता है और बीच में धँस जाता है। दूसरी रेखा इन्द्रगोप (लाल या सफेद रंग की) के रंग की होती है। फिर स्वप्नरहित निद्रा की अवस्था आती है। स्वप्नरहित निद्रा के दौरान उसके मन में केवल परमेश्वर से जुड़ा हुआ विचार होता है। यह अवस्था शाश्वत ज्ञान की प्रकृति की है। तत्पश्चात् वह परम प्रभु (परमेश्वर) का स्वरूप प्राप्त करता है।

फिर वह तीसरे चक्र का चक्कर लगाता है और बीच में डूब जाता है। तीसरा चक्र पद्मराग (माणिक) के रंग का होता है। फिर तुर्या (चौथी) अवस्था आती है। तुर्या में केवल परमात्मा का ही संबंध है। वह शाश्वत ज्ञान का स्वरूप प्राप्त करता है। फिर उसे धीरे-धीरे संयम के साथ बुद्धि की शांति प्राप्त करनी चाहिए। मन को आत्मा में स्थापित करके किसी अन्य विषय में नहीं सोचना चाहिए। फिर प्राण और अपान का मिलन करके वह अपना

लक्ष्य संपूर्ण विश्व पर केंद्रित करता है जो आत्मा का स्वरूप है। फिर तुरीयता (अर्थात चौथे से परे की अवस्था) की अवस्था आती है।

तब उसे सब कुछ आनंदमय प्रतीत होता है। वह (सुख-दुख आदि) युग्मों से परे होता है। जब तक उसे अपना शरीर धारण करना चाहिए, वह यहीं रहता है। फिर वह परमात्मा का स्वरूप प्राप्त करता है और इसी साधन से मुक्ति प्राप्त करता है। आत्मा को जानने का यही साधन है। जब वायु (सांस) जो चार मार्गों के मिलने वाले हॉल से जुड़े महान छेद में प्रवेश करती है, अच्छी तरह से रखे गए त्रिकोण के आधे हिस्से में प्रवेश करती है, तब अच्युत (अविनाशी) दिखाई देता है।

95. उपरोक्त त्रिकोण के ऊपर, व्यक्ति को पृथ्वी आदि (तत्वों) के पांच बीज (बीज) अक्षरों का ध्यान करना चाहिए, साथ ही पांच प्राणों, बीजों के रंग और उनकी स्थिति का भी ध्यान करना चाहिए। 'य' अक्षर प्राण का बीज है और नीले बादल जैसा दिखता है। 'रा' अक्षर अग्नि का बीज है, अपान का है और सूर्य जैसा दिखता है।

96. 'ल' अक्षर पृथ्वी का बीज है, व्यान का है और बन्धुका फूल जैसा दिखता है। 'व' अक्षर पृथ्वी का बीज है, व्यान का है और बन्धुका फूल जैसा दिखता है।जीव (या वायु) का बीज उदान का है और शंख के रंग का है।

97-99(क)। ‘ह’ अक्षर आकाश का बीज है, समान का है और स्फटिक के रंग का है। प्राण हृदय, नाभि, नाक, कान, पैर, अंगुली और अन्य स्थानों में रहता है, बहत्तर हजार नाड़ियों में भ्रमण करता है, अट्ठाईस करोड़ रोमकूपों में रहता है और फिर भी सर्वत्र एक समान रहता है। इसे ही जीव कहते हैं।

99(ख)-101(क)। दृढ़ संकल्प और महान संयम के साथ निःश्वसन आदि तीनों क्रियाएँ करनी चाहिए; और धीरे-धीरे सब कुछ (साँस के साथ) अन्दर खींचते हुए, प्राण और अपान को हृदय कमल की गुफा में बाँधना चाहिए और कण्ठ और जननेन्द्रिय को सिकोड़कर प्रणव का उच्चारण करना चाहिए।

101(ख)-102। मूलाधार से लेकर सिर तक कमल के चमकीले धागे के समान सुषुम्ना है। नाद विनदण्ड में स्थित है, उसके मध्य से निकलने वाली ध्वनि शंख आदि के समान है। 103-104(क)। जब वह आकाश के छिद्र में जाती है, तो वह मोर के समान होती है। चारों द्वारों के बीच खोपड़ी की गुफा के मध्य में आत्मा चमकती है, जैसे आकाश में सूर्य चमकता है।

104(ख)-105। ब्रह्म छिद्र में दो धनुषों के बीच में शक्ति सहित पुरुष को अपनी आत्मा के रूप में देखना चाहिए। तब उसका मनस वहाँ लीन हो जाता है। वह पुरुष कैवल्य को प्राप्त होता है, जो रत्न, चन्द्रमा की रोशनी, नाद, बिन्दु और महेश्वर (महाप्रभु) के आसन को समझता है। ऐसा उपनिषद है। ॐ ! वे हम दोनों की एक साथ रक्षा करें; वे हम दोनों का एक साथ पोषण करें; हम सब मिलजुलकर बड़ी ऊर्जा के साथ काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो; हम एक दूसरे से विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)। ॐ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित ध्यानबिंदु उपनिषद यहीं समाप्त होता है

040 - ब्रह्म विद्या उपनिषद

ॐ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;हम एक दूसरे से विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)।ॐ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!मैं ब्रह्म-विद्या की घोषणा करता हूँ, जो सर्वज्ञता है, जो सर्वोच्च है। यह उत्पत्ति और अंत के रूप में प्रकट होती है - ब्रह्म, विष्णु, महेश्वर।विष्णु अपनी चमत्कारी शक्ति से काम करते हुए, करुणा के माध्यम से, अंतराल पर मनुष्य बन जाते हैं।उनका रहस्य, ओम अग्नि के रूप में, ब्रह्म विद्या में निहित है।अक्षर ओम ब्रह्म है। इस प्रकार, वास्तव में, ब्रह्म-ज्ञानियों को सिखाओ; इस अक्षर का शरीर, स्थान, समय और मृत्यु, मैं घोषणा करूँगा।

I – ओम ध्वनि का शरीर या शरीर:तीन देवता और तीन लोक हैं, तीन वेद और तीन अग्नि हैं। तीन मोर और आधा मोर। उस त्रिअक्षरीय, आनंदमय में।
ऋग्वेद, ग्रहपत्य। पृथ्वी और ब्रह्म ईश्वर के रूप में, वह "अ" ध्वनि का शरीर है, जैसा कि ब्रह्म-ज्ञानियों द्वारा व्याख्या की गई है।यजुर्वेद और मध्य क्षेत्र, और अग्नि दक्षिणा, और पवित्र भगवान विष्णु, यह "उ" ध्वनि

है जो हमें सुनाई गई है।सामवेद और स्वर्ग, आहवनीय अग्नि भी, और ईश्वर, सर्वोच्च (या सर्वोच्च) देवता। इस प्रकार "म" ध्वनि हमें सुनाई गई है।

II – ओम ध्वनि का स्थान:मस्तिष्क-शंख के बीच में, सूर्य की रोशनी की तरह "अ" चमकता है। इसके भीतर चंद्रमा जैसी चमक वाली "उ" ध्वनि स्थित है।

अग्नि की तरह, धुआँ रहित, बिजली की चमक जैसी "म" ध्वनि भी। इस प्रकार तीन मोरा चमकते हैं,जैसे चंद्रमा, सूर्य और अग्नि।

उसके ऊपर एक नुकीली लौ, मशाल की रोशनी की तरह मौजूद है। इसे आधा मोरा के रूप में जानें, जिसके बारे में ऊपर लिखा गया है
शब्दांश।

III – ओम ध्वनि का अंत या काल:फिर भी एक, एक नुकीली लौ की तरह सूक्ष्म, कमल-तंतु की तरह, सूर्य जैसी मस्तिष्क धमनी चमकती है – (इससे होकर) प्रवेश करती है (ओम)।

सूर्य और बहत्तर हजार धमनियों के माध्यम से, सिर को भेदती है और सभी को आशीर्वाद देने वाली बनी रहती है – पूरे ब्रह्मांड में व्याप्त है।

IV – ओम ध्वनि का लुप्त होना, फीका पड़ना या लय:और जिस तरह धातु के बर्तन की ध्वनि – या घंटे की ध्वनि मौन में मर जाती है – उसी तरह वह, जो सर्व की खोज करता है,ओम ध्वनि को मौन में लुप्त होने देता है।
क्योंकि जिसमें ध्वनि लुप्त हो जाती है, वह ब्रहम है, उच्चतर है। हाँ, पूरी ध्वनि ब्रहम है और अमरता की ओर ले जाती है।

ओम शांति! शांति! शांति!

ओम! वह हम दोनों की एक साथ रक्षा करे; वह हम दोनों का एक साथ पोषण करे;हम सब मिलजुलकर बड़ी ऊर्जा के साथ काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो; हम एक दूसरे से विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)। ॐ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित ब्रहम-विद्योपनिषद् यहीं समाप्त होता है।

041 - योग तत्व उपनिषद

ॐ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;
हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,
हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;
हम एक दूसरे से विवाद न करें (या हम किसी से द्वेष न करें)।

ॐ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. अब मैं योग-तत्व (योग-सत्य) का वर्णन उन योगियों के लाभ के लिए करूँगा जो इसके श्रवण और अध्ययन से सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं।

2. विष्णु नामक परम पुरुष, जो महान योगी, महान प्राणी और महान तपस्वी हैं,सत्य के मार्ग में दीपक के रूप में देखे जाते हैं।
3. पितामह (ब्रह्मा) ने जगत के स्वामी (विष्णु) को नमस्कार करके तथा उन्हें यथोचित सम्मान देकर उनसे पूछा कि, "आप हमें योग का वह सत्य समझाइए, जिसमें आठ उपास्य समाहित हैं।"

4. तब हृषिकेश (इन्द्रियों के स्वामी या विष्णु) ने उत्तर दिया कि, "सुनो। मैं उसका सत्य समझाता हूँ। सभी जीवात्माएँ माया के जाल में फँसे हुए सुख-दुःख में डूबी हुई हैं।

5-6. कैवल्य, परमपद, वह मार्ग है, जो उन्हें मुक्ति प्रदान करता है, जो माया के जाल को चीर देता है, जो जन्म, जरा और रोग का नाश करने वाला है तथा जो मृत्यु पर विजय प्राप्त करने में समर्थ बनाता है। मोक्ष का कोई दूसरा मार्ग नहीं है। जो लोग शास्त्रों के जाल में फँस जाते हैं, वे उस ज्ञान से मोहित हो जाते हैं।

7. उस अवर्णनीय स्थिति का वर्णन करना देवताओं के लिए भी असम्भव है। जो स्वयं प्रकाशित है, वह शास्त्रों से कैसे प्रकाशित हो सकता है?

8. जो अंग-भंग है, कलंक से रहित है, जो सब से परे है, क्षय से रहित है, वही पूर्वजन्म के पुण्यों और पापों के फलस्वरूप जीव बनता है।

9. जो परमात्मा का स्थान है, सनातन है, सब पदार्थों से ऊपर है, ज्ञानस्वरूप है, कलंक से रहित है, वह जीव कैसे बना? 10. उसमें जल के समान एक बुलबुला उत्पन्न हुआ, और उसमें अहंकार उत्पन्न हुआ। उसमें एक गेंद (शरीर का) उत्पन्न हुआ।पाँच (तत्वों) से बना हुआ और धातुओं से बंधा हुआ है।

11. जो सुख-दुःख से युक्त है, उसे ही जीव जानो, इसलिए जो शुद्ध है, उस परमात्मा के लिए जीव शब्द प्रयुक्त होता है।

12-13. जो काम, क्रोध, भय, मोह, लोभ, मान, वासना, जन्म, मृत्यु, कृपणता, मूर्च्छा, चक्कर, भूख, प्यास, महत्वाकांक्षा, लज्जा, भय, हृदय की जलन, शोक और प्रसन्नता के कलंकों से मुक्त है, वही केवला है।

14. अतः मैं तुम्हें (इन) पापों के नाश का उपाय बताता हूँ। मोक्ष देने में समर्थ ज्ञान योग के बिना कैसे उत्पन्न हो सकता है?

15. और ज्ञान से रहित होने पर योग भी मोक्ष प्रदान करने में शक्तिहीन हो जाता है। अतः मोक्ष प्राप्ति के पश्चात साधक को योग और ज्ञान दोनों का (दृढ़ता से) अभ्यास करना चाहिए।

16. जन्म-मरण का चक्र ज्ञान से ही आता है और ज्ञान से ही नष्ट होता है। मूलतः ज्ञान ही था। इसे ही मोक्ष का एकमात्र साधन जानना चाहिए।

17-18(क)। वह ज्ञान है जिसके द्वारा मनुष्य कैवल्य के वास्तविक स्वरूप को, जो परमपद है, जो निष्कलंक है, जो अविभाज्य है, जो जन्म, अस्तित्व और मृत्यु से रहित है, जो गति से रहित है, तथा ज्ञान है।

18(ख)-19. अब मैं तुम्हें योग का वर्णन करूँगा। योग अपने कार्यों के आधार पर अनेक प्रकारों में विभाजित है: (अर्थात,) मंत्र-योग, लय-योग, हठ-योग और राज-योग।

20. इन सभी में चार अवस्थाएँ समान हैं: (अर्थात,) आरंभ, घट, परिचय और निष्पत्ति।

21. हे ब्रह्मा, मैं इनका वर्णन तुमसे करूँगा। ध्यानपूर्वक सुनो। मंत्र सहित मातृकाओं (ध्वनियों का उचित उच्चारण) तथा अन्य का बारह वर्ष तक अभ्यास करना चाहिए।

22. फिर धीरे-धीरे उसे अणिमा आदि सिद्धियों सहित ज्ञान की प्राप्ति होती है। दुर्बल बुद्धि वाले तथा योग के लिए सबसे कम योग्य व्यक्ति इसका अभ्यास करते हैं।

23-24(क)। (दूसरा) लय-योग चित्त के अवशोषण की ओर प्रवृत्त होता है तथा इसका वर्णन अनेक प्रकार से किया गया है। (जिनमें से एक है) - चलते, बैठते, सोते, खाते समय भी उस प्रभु का ध्यान करना चाहिए जो अंगों से रहित है। इसे लय-योग कहते हैं।

24(ख)-25. अब हठ-योग का वर्णन सुनो। इस योग के आठ उपबन्ध हैं - यम (धैर्य), नियम (धार्मिक पालन), आसन (मुद्रा), प्राणायाम (श्वास का दमन), प्रत्याहार (इन्द्रियों का वश में करना), धारणा (एकाग्रता), ध्यान, भ्रूमध्य में हरि का चिन्तन तथा समाधि अर्थात् समता की अवस्था।

26-27. महामुद्रा, महाबन्ध और खेचरी, जालन्धर, उड्डियान और मूलबन्ध, दीर्घकाल तक बिना रुके प्रणव (ॐ) का उच्चारण करना तथा परम सत्यों का वर्णन सुनना, वज्रोली, अमरोली और सहजोली, जो त्रिदेव हैं - इन सबका मैं पृथक-पृथक सत्य वर्णन करूँगा। 28-29(क)। हे चतुर्मुख (ब्रह्मा), यम के कर्तव्यों में संयमित आहार - अन्य नहीं - मुख्य है। नियम में अहिंसा सबसे महत्वपूर्ण है।

29(ख)। (मुख्य आसन) चार हैं, सिद्ध, पद्म, सिंह और भद्र।

30-31। हे चतुर्मुख, साधना के आरंभिक चरणों में निम्न बाधाएं आती हैं, (अर्थात) आलस्य, व्यर्थ की बातें, बुरे चरित्रों की संगति, मंत्र प्राप्ति आदि, धातुओं और स्त्री आदि से क्रीड़ा, तथा मृगतृष्णा। इन्हें जानकर बुद्धिमान पुरुष को अपने सद्गुणों के बल से इनका परित्याग कर देना चाहिए।

32. फिर पद्मासन धारण करके प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। उसे एक सुंदर मठ बनाना चाहिए, जिसमें बहुत छोटा सा छेद हो और जिसमें कोई दरार न हो।

33. इसे गोबर या सफेद सीमेंट से अच्छी तरह से लीपना चाहिए। इसे सावधानीपूर्वक कीड़ों, मच्छरों और जूँ से मुक्त करना चाहिए।

34. इसे प्रतिदिन झाड़ू से अच्छी तरह से साफ करना चाहिए। उसमें अच्छी सुगंध भरनी चाहिए, तथा उसमें सुगन्धित राल जलानी चाहिए।

35-36(क) वस्त्र, मृगचर्म तथा कुश घास को एक दूसरे के ऊपर बिछाकर न तो बहुत ऊपर, न बहुत नीचे आसन ग्रहण करके, बुद्धिमान पुरुष को पद्मासन धारण करना चाहिए, तथा शरीर सीधा रखते हुए, हाथ जोड़कर अपने कुलदेवता को नमस्कार करना चाहिए।

36(ख)-40. फिर दाहिने अंगूठे से दाहिनी नासिका को बंद करके धीरे-धीरे वायु को अन्दर खींचना चाहिए।बायीं नासिका से वायु को धीरे-धीरे, बहुत तेजी से नहीं, बल्कि बायीं नासिका से बाहर निकालना चाहिए। फिर दायीं नासिका से पेट भरकर, उसे यथासंभव रोककर रखना चाहिए और फिर बायीं नासिका से बाहर निकालना चाहिए। जिस नासिका से वायु को बाहर निकालता है, उसी नासिका से वायु को खींचकर, उसे यह क्रम अविच्छिन्न रूप से जारी रखना चाहिए। घुटने के चारों ओर हाथ की हथेली से एक चक्कर लगाने में, न बहुत धीरे से, न बहुत तेजी से, तथा अंगुलियों को एक बार चटकाने में जो समय लगता है, उसे एक मात्रा कहते हैं।

41-44. बायीं नासिका से लगभग सोलह मात्रा तक वायु को खींचकर, तथा लगभग चौसठ मात्रा तक उसे (अंदर) रोककर, पुनः दायीं नासिका से लगभग बत्तीस मात्रा तक वायु को बाहर निकालना चाहिए। पुनः दायीं नासिका को पहले की भाँति भरें (तथा शेष क्रिया जारी रखें)। प्रतिदिन चार बार (अर्थात सूर्योदय, मध्याहन, सूर्यास्त और मध्य रात्रि में) अस्सी (समय) तक श्वास को रोकने का अभ्यास करें। लगभग तीन महीने तक लगातार अभ्यास करने से नाड़ियों की शुद्धि होती है। जब नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं, तो योगी के शरीर पर कुछ बाहय लक्षण प्रकट होते हैं।

45-46(क)। मैं उनका वर्णन करना जारी रखूँगा। (वे हैं) शरीर का हल्कापन, चेहरे की चमक, जठराग्नि का बढ़ना, शरीर का दुबलापन और इनके साथ ही शरीर में बेचैनी का न होना।

46(ख)-49. योग में निपुण व्यक्ति को योगाभ्यास के लिए हानिकारक भोजन का त्याग करना चाहिए। उसे नमक, सरसों, खट्टी, गर्म, तीखी या कड़वी सब्जियाँ छोड़ देनी चाहिए; हींग आदि, अग्नि की पूजा, स्त्रियाँ, टहलना, सूर्योदय के समय स्नान, उपवास द्वारा शरीर को क्षीण करना आदि। साधना के प्रारम्भ में दूध और घी का भोजन करना उचित है; गेहूँ, हरी दाल और लाल चावल का भोजन भी उन्नति के लिए अनुकूल कहा गया है। तब वह अपनी इच्छानुसार साँस को रोककर रख सकेगा।

50-53. इस प्रकार अपनी इच्छानुसार साँस को रोककर रखने से केवल कुम्भक (श्वास का रुक जाना, साँस छोड़ना) की प्राप्ति होती है। जब कोई केवल कुम्भक को प्राप्त कर लेता है और इस प्रकार निःश्वसन और साँस का त्याग हो जाता है, तब उसके लिए तीनों लोकों में कुछ भी अप्राप्य नहीं रह जाता। साधना के प्रारम्भ में पसीना निकलता है, उसे पोंछ देना चाहिए। उसके बाद भी साँस रोके रहने के कारण अभ्यासी को कफ हो जाता है। फिर धारणा के अभ्यास को बढ़ाने से पसीना आता है।

54. जैसे मेढक छलांग लगाता है, वैसे ही पद्मासन में बैठा हुआ योगी पृथ्वी पर चलता है। अधिक अभ्यास से वह भूमि से ऊपर उठ सकता है। 55. पद्मासन में बैठा हुआ वह हवा में उड़ता है। उसमें असाधारण कार्य करने की शक्ति उत्पन्न होती है।

56. वह अपने महान कार्यों को दूसरों को नहीं बताता (या नहीं बताना चाहिए)। योगी को कोई भी कष्ट, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, प्रभावित नहीं करता।

57. तब मल और निद्रा कम हो जाती है; उसमें आंसू, आंखों में कफ, लार, पसीना और मुंह में दुर्गंध नहीं आती।

58-60. अधिक अभ्यास से उसे महान शक्ति प्राप्त होती है, जिससे उसे भूचर सिद्धि प्राप्त होती है, जिससे वह इस पृथ्वी पर चलने वाले सभी प्राणियों को अपने वश में कर सकता है; व्याघ्र, सरभ (आठ पैरों वाला एक जानवर), हाथी, बैल या सिंह योगी की हथेली से मारे जाने पर मर जाते हैं। वह प्रेम के देवता के समान सुंदर हो जाता है।

61-62. उसके शरीर की सुंदरता से मोहित होकर सभी स्त्रियाँ उसके साथ संभोग करने की इच्छा करेंगी। यदि वह इस प्रकार संबंध बनाए रखता है,

तो उसका पुरुषत्व नष्ट हो जाएगा; इसलिए स्त्रियों के साथ सभी संभोग को त्यागकर, उसे बड़ी लगन के साथ अपना अभ्यास जारी रखना चाहिए। वीर्य के संरक्षण से, योगी के शरीर में अच्छी गंध फैलती है।

63. फिर उसे एकांत स्थान पर बैठकर अपने पूर्व पापों के नाश के लिए तीन प्लुत-मात्राओं (या लंबे उच्चारण) के साथ प्रणव (ओम) का जाप करना चाहिए।

64. प्रणव (ओम) मंत्र सभी बाधाओं और सभी पापों को नष्ट कर देता है। इस प्रकार अभ्यास करने से वह आरंभ (शुरुआत या पहली) अवस्था को प्राप्त करता है।

65-66. इसके बाद घट (दूसरी अवस्था) आती है - जो सांसों को लगातार दबाने के अभ्यास से प्राप्त होती है। जब प्राण और अपान, मन और बुद्धि, या जीवात्मा और परमात्मा के बीच बिना किसी विरोध के पूर्ण मिलन होता है, तो उसे घट अवस्था कहते हैं। मैं इसके लक्षणों का वर्णन करूँगा

67. अब वह पहले से निर्धारित अवधि का लगभग एक-चौथाई ही अभ्यास करे। दिन और शाम को उसे केवल एक यम (3 घंटे) ही अभ्यास करना चाहिए।

68-69(क). उसे प्रतिदिन एक बार केवल कुम्भक का अभ्यास करना चाहिए। श्वास-प्रश्वास के दौरान इन्द्रियों को विषयों से पूरी तरह हटा लेना प्रत्याहार कहलाता है।

69(ख). वह अपनी आँखों से जो कुछ देखे, उसे आत्मा समझे।

70. वह अपने कानों से जो कुछ सुने, उसे आत्मा समझे। वह अपनी नाक से जो कुछ सूँघे, उसे आत्मा समझे।

71. वह अपनी जीभ से जो कुछ चखे, उसे आत्मा समझे। योगी अपनी त्वचा से जो कुछ भी स्पर्श करे, उसे आत्मा समझे।

72. इस प्रकार योगी को प्रतिदिन एक यम की अवधि तक बड़े प्रयत्न से अपनी इन्द्रियों को बिना थके तृप्त करना चाहिए।

73-74. तब योगी को अनेक अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, जैसे दिव्यदृष्टि, दिव्यदर्शन, क्षण भर में बहुत दूर तक पहुँच जाना, महान

वाणी, कोई भी रूप धारण कर लेना, अदृश्य हो जाना तथा मलमूत्र से लोहे को सोने में बदल देना।

75-76. जो योगी निरंतर योगाभ्यास करता है, उसे आकाश में उड़ने की शक्ति प्राप्त होती है। तब बुद्धिमान योगी को यह सोचना चाहिए कि ये शक्तियाँ योगसिद्धि में बहुत बड़ी बाधाएँ हैं, अतः उसे इनमें कभी रमण नहीं करना चाहिए। योगराज को किसी भी व्यक्ति के सामने अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

77. उसे अपनी शक्तियों को छिपाए रखने के लिए संसार में मूर्ख, मूर्ख या बहरे की तरह रहना चाहिए।

78-79. उसके शिष्य निःसंदेह उससे अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए अपनी शक्तियाँ दिखाने का अनुरोध करते थे। जो व्यक्ति अपने कर्तव्यों में सक्रिय रहता है, वह योगाभ्यास करना भूल जाता है, इसलिए उसे गुरु के वचनों को भूले बिना दिन-रात योगाभ्यास करना चाहिए।

इस प्रकार जो व्यक्ति निरंतर योगाभ्यास में लगा रहता है, उसे घात अवस्था प्राप्त होती है।

80. व्यर्थ की संगति से मनुष्य को कुछ भी लाभ नहीं होता, क्योंकि इससे वह योगाभ्यास नहीं करता। इसलिए उसे बहुत प्रयास के साथ योगाभ्यास करना चाहिए।

81-83(क)। फिर इस निरंतर अभ्यास से परिचय अवस्था (तीसरी अवस्था) प्राप्त होती है। कठिन अभ्यास से वायु (या सांस) अग्नि के साथ विचार के माध्यम से कुंडलिनी को भेदती है और सुषुम्ना में निर्बाध रूप से प्रवेश करती है। जब किसी का चित्त प्राण के साथ सुषुम्ना में प्रवेश करता है, तो वह प्राण के साथ उच्च स्थान (संभवतः सिर) पर पहुंच जाता है।

83(ख)। पांच तत्व हैं: पृथ्वी, अपस, अग्नि, वायु और आकाश।

84-87(क)। पांच तत्वों के शरीर में, पांच गुना धारणा है। पैरों से घुटनों तक पृथ्वी का क्षेत्र माना गया है, यह चतुर्भुजाकार है, पीले रंग का है तथा इसका वर्ण (अक्षर) 'ला' है। पृथ्वी के क्षेत्र (अर्थात् पैरों से घुटनों तक) में 'ला' अक्षर सहित श्वास को ले जाते हुए तथा चार मुखों वाले तथा स्वर्णवर्ण वाले ब्रहम का ध्यान करते हुए, वहाँ दो घण्टे तक धारणा करनी चाहिए। तब उसे पृथ्वी

पर अधिकार प्राप्त हो जाता है। उसे मृत्यु परेशान नहीं करती, क्योंकि उसे पृथ्वी तत्व पर अधिकार प्राप्त हो जाता है।

87(ख)-90. घुटनों से गुदा तक अपस क्षेत्र माना गया है। अपस अर्धचन्द्राकार तथा श्वेत रंग का होता है, तथा इसका बीज अक्षर 'व' है। वह 'वा' अक्षर से श्वास को ऊपर उठाकर, आपस क्षेत्र में, चतुर्भुज और मुकुटधारी भगवान नारायण का ध्यान करे, जो शुद्ध स्फटिक के समान रंग के, नारंगी वस्त्र पहने हुए और क्षयरहित हैं; तथा वहाँ दो घण्टे तक धारणा करने से वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। फिर उसे जल से भय नहीं रहता और वह जल में मरता भी नहीं है।

91. गुदा से हृदय तक अग्नि का क्षेत्र कहा गया है। अग्नि त्रिभुजाकार, लाल रंग की है और उसका (बीज) बीज 'रा' अक्षर है।

92-93(क)। अग्नि क्षेत्र में 'रा' अक्षर से तेजोमय श्वास को ऊपर उठाकर, वह तीन नेत्रों वाले, सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले, मध्यान्ह के सूर्य के समान वर्ण वाले, पवित्र भस्म से लिपटे हुए और प्रसन्न मुख वाले रुद्र का ध्यान करे।

93(बी)-94(ए) वहां दो घंटे तक धारणा का अभ्यास करने से उसका शरीर अग्नि-कुंड में प्रवेश करने पर भी अग्नि से नहीं जलता।

94(ख)-96. हृदय से लेकर भौंहों के मध्य तक वायु क्षेत्र कहा गया है। वायु षटकोणीय, श्याम वर्ण की है तथा 'य' अक्षर से चमकती है। वायु क्षेत्र में श्वास को ले जाते हुए, उसे सर्वज्ञ ईश्वर का ध्यान करना चाहिए, जो चारों ओर मुख वाला है; तथा वहाँ दो घण्टे तक धारणा का अभ्यास करते हुए, वह वायु में तथा फिर आकाश में प्रवेश करता है।

97-98(क)। योगी वायु के भय से मरता नहीं है। भौंहों के मध्य से लेकर सिर के ऊपर तक आकाश क्षेत्र कहा गया है, जो गोलाकार, धुएँ के रंग का तथा 'ह' अक्षर से चमकता है।

98(ख)-101(क)। आकाश में श्वास को ऊपर उठाते हुए, उसे सदाशिव का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए, जो सुख देने वाले हैं, बिन्दु के आकार के हैं, महान देव हैं, आकाश के आकार के हैं, शुद्ध स्फटिक के समान चमकते हैं, मस्तक पर चन्द्रमा का उदयाचल धारण करते हैं, पाँच मुख, दस हाथ और तीन नेत्र वाले हैं, प्रसन्न मुख वाले हैं, सभी शस्त्रों से सुसज्जित हैं, सभी

आभूषणों से सुशोभित हैं, आधे शरीर में उमा (देवी) हैं, कृपा करने में तत्पर हैं और सभी कारणों के कारण हैं।

101(ख)। आकाश में धारणा का अभ्यास करने से, वह निश्चित रूप से आकाश में उड़ने की शक्ति प्राप्त करता है।

102. वह जहाँ भी रहता है, वहाँ परम आनंद का आनंद लेता है। योग में निपुण व्यक्ति को इन पाँच धारणाओं का अभ्यास करना चाहिए।

103. तब उसका शरीर मजबूत हो जाता है और वह मृत्यु को नहीं जानता। वह महामनस्वी पुरुष ब्रह्मा की प्रलय में भी नहीं मरता।

104-105. फिर उसे छः घटिकाओं (2 घंटे, 24 मिनट) तक धारणा करनी चाहिए। आकाश में श्वास को रोककर तथा कामनाओं को पूर्ण करने वाले देवता का ध्यान करना - इसे सगुण ध्यान कहते हैं, जो अणिमा आदि सिद्धियाँ प्रदान करने में समर्थ है। निर्गुण ध्यान में रत व्यक्ति समाधि की अवस्था को प्राप्त करता है।

106. कम से कम बारह दिन में वह समाधि की अवस्था को प्राप्त कर लेता है। श्वास को रोककर बुद्धिमान व्यक्ति मुक्त हो जाता है।

107. समाधि वह अवस्था है, जिसमें जीवात्मा (निम्न स्व) तथा परमात्मा (उच्च स्व) में कोई अंतर नहीं होता। यदि वह अपना शरीर त्यागना चाहे, तो त्याग सकता है।

108-109(अ)। वह परब्रह्म में लीन हो जाएगा और उसे उत्क्रांति (बाहर या ऊपर जाने) की आवश्यकता नहीं होगी। लेकिन यदि वह ऐसी इच्छा न करे और यदि उसका शरीर उसे प्रिय हो, तो वह अणिमा आदि सिद्धियों से युक्त होकर सभी लोकों में निवास करता है।

109(ख)-110. कभी वह देव बन जाता है और स्वर्ग में सम्मानित रहता है; या वह अपनी इच्छा से मनुष्य या यक्ष बन जाता है। वह अपनी इच्छा से सिंह, बाघ, हाथी या घोड़े का रूप भी धारण कर सकता है।

111. महान भगवान बनकर योगी जब तक चाहे तब तक जीवित रह सकता है। केवल क्रियाविधि में अंतर है, लेकिन परिणाम एक ही है।

112-115(क)। बायीं एड़ी को गुदा पर दबाएँ, दायाँ पैर फैलाएँ और उसे दोनों हाथों से दृढ़ता से पकड़ें। सिर को वक्षस्थल पर रखें और धीरे-धीरे वायु अंदर लें। जितनी देर तक रोक सको, श्वास को रोककर रखें और फिर धीरे-धीरे श्वास बाहर छोड़ें। बाएं पैर से अभ्यास करने के बाद दाएं पैर से अभ्यास करें। पहले फैलाए गए पैर को जांघ पर रखें। यह महाबंध है और इसे दोनों तरफ से करना चाहिए।

115(ख)-117(क)। महाबंध में बैठकर योगी को चाहिए कि वह मन लगाकर वायु को अंदर खींचे और कंठ मुद्रा द्वारा वायु के प्रवाह को रोके और दोनों तरफ (कंठ के) तेजी से कब्जा करे। इसे महावेध कहते हैं और सिद्धों द्वारा इसका अक्सर अभ्यास किया जाता है।

117(ख)-118(क)। जीभ को सिर (या गले) के आंतरिक गुहा में डालकर और आंखों को भौंहों के बीच के स्थान पर केंद्रित करके, इसे खेचरी मुद्रा कहा जाता है।

118(ख)-119(क)। गर्दन की मांसपेशियों को सिकोड़कर और सिर को दृढ़ इच्छा के साथ वक्षस्थल पर रखना, इसे जालंधर (बंध) कहते हैं; और मृत्यु के हाथी के लिए सिंह है।

119(बी)-120(ए)। वह बंध जिसके द्वारा प्राण सुषुम्ना से होकर उड़ता है, उसे योगियों द्वारा उड्डियान बंध कहा जाता है।

120(बी)-121(ए)। एड़ी को गुदा के विरुद्ध दृढ़ता से दबाना, गुदा को सिकोड़ना और गुदा को ऊपर खींचना
अपान, इसे योनि-बंध कहते हैं।

121(ख)-122(क)। मूल-बंध के द्वारा प्राण और अपान तथा नाद और बिन्दु एक हो जाते हैं और योग में सफलता देते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

122(ख)-124(क)। जो व्यक्ति उलटे ढंग से (या दोनों ओर से) अभ्यास करता है, जिससे सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, उसकी जठराग्नि बढ़ जाती है। इसलिए साधक को अधिक मात्रा में भोजन एकत्रित कर लेना चाहिए, क्योंकि यदि वह थोड़ी मात्रा में भोजन ग्रहण करेगा, तो (भीतर की) अग्नि क्षण भर में उसके शरीर को भस्म कर देगी।

124(ख)-125। पहले दिन उसे क्षण भर के लिए पैरों को ऊपर उठाकर सिर के बल खड़ा होना चाहिए। उसे इस अवधि को प्रतिदिन धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। तीन महीने में झुर्रियाँ और बालों का सफेद होना दूर हो जाएगा।

126. जो प्रतिदिन केवल एक यम (चौबीस मिनट) का अभ्यास करता है, वह काल को जीत लेता है। जो वज्रोली का अभ्यास करता है, वह योगी बन जाता है और सभी सिद्धियों का भण्डार बन जाता है।

127-128. यदि योग सिद्धियाँ कभी प्राप्त करनी हों, तो वे केवल उसी के पास हैं। वह भूत और भविष्य को जानता है और निश्चय ही वायु में विचरण करता है। जो इस प्रकार अमृत का पान करता है, वह दिन-प्रतिदिन अमर होता जाता है। उसे प्रतिदिन वज्रोली का अभ्यास करना चाहिए। तब उसे अमरोली कहते हैं।

129-131(क)। तब उसे राजयोग की प्राप्ति होती है और निश्चय ही उसे विघ्नों का सामना नहीं करना पड़ता। जब कोई योगी राजयोग द्वारा अपना कर्म पूरा करता है, तब उसे निश्चय ही विषयों के प्रति विवेक और उदासीनता प्राप्त होती है। महान योगी, महान तपस्वी और सर्वश्रेष्ठ पुरुष विष्णु सत्य के मार्ग में दीपक के समान देखे जाते हैं।

१३१(ब)-१३४(क)। जिस स्तन से पूर्वजन्म में दूध पिया था, उसी को अब वह दबाता है और सुख पाता है। जिस जननेन्द्रिय से पूर्वजन्म हुआ था, उसी का भोग करता है। जो कभी उसकी माता थी, वही अब पत्नी है और जो अब पत्नी है, वही माता है। जो अब पिता है, वही पुनः पुत्र होगा और जो अब पुत्र है, वही पुनः पिता होगा। इस प्रकार इस संसार के अहंकार कुएँ के चाक में बाल्टी की भाँति जन्म-मरण के गर्भ में घूमते रहते हैं और संसार का भोग करते हैं।

१३४(ब)-१३६(क)। तीन लोक, तीन वेद, तीन संध्याएँ, तीन स्वर, तीन अग्नि और गुण हैं और ये सब तीन अक्षरों (ॐ) में स्थित हैं। जो अविनाशी को और तीनों (ॐ) का अर्थ समझता है, उसी से ये सब संसार बँधे हुए हैं। यह सत्य है, सर्वोच्च आसन है।

136(ख)-138(क)। जैसे फूल में गंध, दूध में घी, तिल के बीज में तेल और क्वार्ट्ज में सोना होता है, वैसे ही हृदय में कमल स्थित है। इसका मुख नीचे की ओर और तना ऊपर की ओर है।इसका बिन्दु नीचे की ओर है और इसके मध्य में मनस स्थित है।

138(ख)-139(क)। 'अ' अक्षर से कमल विस्तृत हो जाता है, 'उ' अक्षर से वह विभाजित (या खुल) जाता है। 'म' अक्षर से वह नाद प्राप्त करता है और अर्धमात्रा (आधा मीटर) मौन है।

139(ख)-140(क)। योग में रत व्यक्ति सर्वोच्च आसन को प्राप्त करता है, जो शुद्ध स्फटिक के समान है, जिसके कोई भाग नहीं हैं और जो सभी पापों का नाश करता है।

140(ख)-141। जैसे कछुआ अपने हाथ और सिर को अपने भीतर खींचता है, वैसे ही वह वायु को खींचकर उसे शरीर के नौ छिद्रों से बाहर निकालता हुआ ऊपर की ओर और आगे की ओर सांस लेता है।

142. जैसे वायुरोधी बर्तन में रखा हुआ दीपक स्थिर रहता है, वैसे ही जो योग की प्रक्रिया से हृदय में स्थिर दिखाई देता है और जो नौ छिद्रों से बाहर निकलने के बाद भी अशांति से मुक्त है, उसे ही आत्मा कहा गया है। ॐ ! वह हम दोनों की एक साथ रक्षा करे; वह हम दोनों का एक साथ पोषण करे; हम दोनों मिलकर बड़ी शक्ति के साथ काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो; हम आपस में विवाद न करें (या हम किसी से द्वेष न करें)। ॐ ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित योगतत्त्व उपनिषद यहीं समाप्त होता है।

<u>042 - आत्मबोध उपनिषद</u>

ॐ ! मेरी वाणी मन पर आधारित हो (अर्थात् उसके अनुरूप हो);

मेरा मन वाणी पर आधारित हो।

हे आत्मतेजस्वी, मुझे अपना दर्शन दीजिए।

आप दोनों (वाणी और मन) मेरे लिए वेद के वाहक बनें।

मैंने जो कुछ सुना है, वह सब मुझसे दूर न हो।

मैं इस अध्ययन के द्वारा दिन और रात को एक साथ (अर्थात् मिटा दूँगा) जोड़ूँगा।

मैं जो मौखिक रूप से सत्य है, वही बोलूँगा;

मैं जो मानसिक रूप से सत्य है, वही बोलूँगा।

वह (ब्रह्म) मेरी रक्षा करें;

वह वक्ता (अर्थात् शिक्षक) की रक्षा करें,

वह मेरी रक्षा करें;

वह वक्ता की रक्षा करें - वह वक्ता की रक्षा करें।

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

I-1. अंतरतम ब्रह्म अ, उ, म है - ऐसा कहने से योगी जन्म-चक्र से मुक्त हो जाता है। ॐ, शंख, चक्र और गदा से युक्त नारायण को मैं प्रणाम करता हूँ। उपासक वैकुंठ को जाएगा।

1-2-4। ब्रह्मपुर एक कमल है, जो बिजली और दीपक के समान चमकता है। देवकी का पुत्र ब्रह्मण्य (44 संस्कारों वाला ब्राह्मण) है; मधुसूदन, पुंडरीकाक्ष, विष्णु और अच्युत भी हैं। नारायण ही सब प्राणियों में विद्यमान है, कारणहीन पुरुष है।

1-5। दुःख और मोह से रहित विष्णु का ध्यान करने से कोई दुःख नहीं होता - कोई भय नहीं रहता; यहाँ अनेकों को देखने वाला मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है।

1-6-8। हृदय-कमल के मध्य में वह (ब्रह्म) नेत्र के रूप में ज्ञान सहित विद्यमान है; जगत, ज्ञान ब्रह्म में स्थित हैं। वह साधक इस ज्ञान को लेकर इस लोक से चला जाता है, परलोक में सब कामनाओं को प्राप्त करके अमर हो जाता है। जहाँ हमेशा प्रकाश और मूल्य रहता है, वहाँ व्यक्ति अमरत्व प्राप्त करता है - ओम नमः।

II-1-10. माया मुझसे दूर हो गई है, मैं शुद्ध दर्शन हूँ; मेरा अहंकार नष्ट हो गया है, साथ ही संसार, ईश्वर और आत्मा का भेद भी नष्ट हो गया है। मैं सकारात्मक और नकारात्मक नियमों से रहित अंतरात्मा हूँ; मैं व्यापक आनंद हूँ; मैं साक्षी हूँ, स्वतंत्र हूँ, अपनी महानता में प्रवृत्त हूँ; बुढ़ापा और क्षय, विरोधी पक्षों से रहित, शुद्ध ज्ञान, मोक्ष का सागर हूँ; मैं बिना किसी गुण के सूक्ष्म हूँ। मैं तीन गुणों से रहित हूँ, सभी संसार मेरे उदर में विद्यमान हैं; अपरिवर्तनशील चेतना, कारण और क्रिया से परे, मेरा कोई भाग नहीं है, अजन्मा, शुद्ध वास्तविकता हूँ। मैं अनंत ज्ञान हूँ, शुभ, अविभाज्य, दोषरहित, असीम वास्तविकता हूँ।

मुझे आगमों द्वारा जाना जाना है, सभी संसारों को आकर्षित करने वाला हूँ। मैं शुद्ध आनंद हूँ; पवित्रता, एकमात्र, सदा चमकने वाला, अनादि; मैंने सर्वोच्च सत्य को जान लिया है। मैं बिना किसी दूसरे के, विवेक के साथ अपने आप को जानता हूँ। तब भी बंधन और मोक्ष का अनुभव होता है। सर्प और रस्सी के समान जो जगत् वास्तविक प्रतीत होता है, वह चला गया है; जगत् का आधार ब्रह्म ही है, अतः जगत् नहीं है; जैसे गन्ने के स्वाद में शर्करा व्याप्त रहती है, वैसे ही मैं आनन्द से व्याप्त हूँ। ब्रह्मा से लेकर क्षुद्रतम कीड़ा तक तीनों लोक मुझमें कल्पित हैं।

समुद्र में बुलबुले से लेकर लहर तक बहुत-सी वस्तुएँ हैं; परन्तु समुद्र उनकी इच्छा नहीं करता - वैसे ही मुझे संसार की वस्तुओं की कोई इच्छा नहीं है; मैं धनवान के समान हूँ, जो दरिद्रता की इच्छा नहीं करता। बुद्धिमान व्यक्ति अमृत की इच्छा करके विष का परित्याग कर देता है। घड़े को चमकाने वाला सूर्य घड़े के साथ नष्ट नहीं होता; वैसे ही आत्मा शरीर के साथ नष्ट नहीं होती। मेरा न कोई बंधन है, न मोक्ष, न कोई शास्त्र, न कोई गुरु।

मैं माया से परे हो गया हूँ - जीवन चला जाए या मन पर आक्रमण हो जाए - मुझे कोई दुःख नहीं है, क्योंकि मैं आनन्द से भरा हुआ हूँ, मैं अपने आपको जानता हूँ; अज्ञान कहीं भाग गया है - मेरा न कोई कर्तापन है, न कर्तव्य, न

कुल और न गोत्र। ये स्थूल शरीर के हैं, मुझ स्थूल शरीर के नहीं। भूख, प्यास, अन्धापन आदि लिंगदेह के ही हैं।

मंदता, इच्छा आदि कारणदेह के ही हैं। जैसे उल्लू को सूर्य अंधकारमय लगता है, वैसे ही अज्ञानी को ब्रह्म में अंधकार है। जब बादलों से दृष्टि अवरुद्ध हो जाती है, तब वह समझता है कि सूर्य है ही नहीं। जैसे विष से भिन्न अमृत अपने दोषों से प्रभावित नहीं होता, वैसे ही मैं जड़त्व के दोषों को नहीं छूता। छोटा-सा दीपक भी बड़े अंधकार को दूर कर सकता है, वैसे ही थोड़ा-सा ज्ञान भी बड़े-बड़े अज्ञान को नष्ट कर देता है।

जैसे रस्सी में कभी सर्प नहीं होता, वैसे ही मुझमें संसार नहीं है। एक मुहूर्त (थोड़े समय) तक भी इसका अभ्यास करने से मनुष्य फिर लौटकर (इस संसार में) नहीं आता। ॐ! मेरी वाणी मन के अनुसार हो; मेरा मन वाणी के अनुसार हो। हे

आत्म-तेजस्वी, मुझे अपने आप को प्रकट कीजिए। तुम दोनों (वाणी और मन) मेरे लिए वेद के वाहक बनो।मैंने जो कुछ सुना है, वह सब मुझसे दूर न हो।मैं इस अध्ययन के द्वारा दिन और रात को एक साथ जोड़ूँगा (अर्थात् उनका भेद मिटा दूँगा)।मैं जो मौखिक रूप से सत्य है, वही बोलूँगा;मैं जो मानसिक रूप से सत्य है, वही बोलूँगा।वह (ब्रह्म) मेरी रक्षा करे;वह वक्ता (अर्थात् शिक्षक) की रक्षा करे, वह मेरी रक्षा करे;वह वक्ता की रक्षा करे - वह वक्ता की रक्षा करे।ओम! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ ऋग्वेद में निहित आत्मबोधोपनिषद समाप्त होता है।

<u>043 - नारद परिव्राजक उपनिषद</u>

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रभु इन्द्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

I-1. एक बार तपस्वियों में रत्न नारद जी ने तीनों लोकों का भ्रमण करते हुए, अपने निरीक्षण से नये-नये तीर्थस्थानों को पवित्र करते हुए, स्वयं मन की शुद्धि प्राप्त करते हुए, शत्रुता से रहित, शान्त, संयमी, सब ओर से निराश होकर (लोगों का दुःख देखकर) अपने आत्म-निरीक्षण में लगकर, पवित्र स्थान, नैमिष वन को, जो अपने स्व-प्रतिष्ठित धार्मिक अनुष्ठानों के आनन्द के लिए विख्यात है और साधु-पुरुषों से भरा हुआ है, वहाँ उतरकर, मनुष्यों, पशुओं, अश्व-मुख वाले देवताओं, किम्नार देवताओं और अप्सराओं के समूहों को भगवान विष्णु के पराक्रमों पर आधारित, सा, ऋ, ग, म, प, ध और नि नामक संगीतमय गीतों से मोहित कर लिया। जो सांसारिक आसक्तियों से वैराग्य उत्पन्न करते हैं तथा संसार के मार्गों से विमुख हैं।

उनके आगमन पर शौनक आदि महान ऋषिगण, जो बारह वर्ष तक चलने वाले यज्ञ में भाग लेने के लिए वहाँ आये थे, वैदिक विद्या से संपन्न, सर्वज्ञ (तपस्वी कार्यों में), स्थिर तपस्या में रत तथा बुद्धि एवं वैराग्य से संपन्न थे, उनका स्वागत करने के लिए उठे और उन्हें सम्मानपूर्वक बैठाया तथा उनका यथोचित स्वागत किया। तब यद्यपि वे पहले से ही आध्यात्मिक विषयों में सुशिक्षित थे, तथापि संसार के हित के लिए उन्होंने (नारद से)

कहा: 'पूज्य महोदय, ब्रह्माजी के पुत्र, (सांसारिक बंधन से) मुक्ति का उपाय क्या है? कृपया हमें बताएँ।

१-२. इस प्रकार अनुरोध करने पर नारद मुनि ने उनसे कहा: 'उत्तम कुल में जन्मा हुआ, जनेऊ धारण करके, वैदिक अध्ययन में दीक्षित होकर, चालीस पवित्र संस्कारों (अपने माता-पिता के विवाह से लेकर आप्तोर्यम यज्ञ तक) से गुजरकर, बारह वर्षों तक अनुशासित ब्रह्मचारी छात्र के रूप में सभी विद्याओं का पाठ्यक्रम पूरा करके, गुरु की व्यक्तिगत सेवा करते हुए; पच्चीस वर्ष गृहस्थ के रूप में; (अन्य) पच्चीस वर्ष वनवासी (वानप्रस्थ) अवस्था में, सभी (तीनों अवस्थाओं) को निर्धारित तरीके से उचित क्रम में; चार प्रकार के ब्रह्मचर्य, छह प्रकार के गृहस्थ, चार प्रकार के वानप्रस्थ के कर्तव्यों का अच्छी तरह से अध्ययन करके;

उनसे संबंधित सभी उचित कर्तव्यों को पूरा करके; चार अनुशासनों (ब्रह्मविद्या के अध्ययन के लिए) से सुसज्जित; मन, वचन और कर्म से तथा वासनाओं और एषणाओं से मुक्त, शत्रुता से रहित, शान्त और संयमी; ऐसा तपस्वी जब त्याग की सर्वोच्च अवस्था (परमहंस के रूप में) में अविचल रूप से अपने आत्म का ध्यान करता हुआ शरीर त्यागता है, तो वह (पुनर्जन्म से) मुक्त हो जाता है, मुक्त हो जाता है। इस प्रकार उपनिषद का प्रथम उपदेश समाप्त होता है।

II-1. तब शौनक आदि सभी ऋषियों ने पूज्य नारद से प्रार्थना कीः ‘पूज्य महोदय, आप हमें त्याग की विधि बताइए।’ उनकी बात सुनकर नारद बोलेः ‘पितामह (ब्रह्मा जी) के मुख से ही त्याग का स्वरूप जानना उचित है।’ यज्ञ पूर्ण होने पर वे उन सबके साथ ब्रह्माजी के सत्यलोक में गये और उन्हें विधिपूर्वक प्रणाम करके उनकी स्तुति की। उनके कहने पर वे उनके साथ ठीक से बैठ गये और पितामह से बोले, 'आप ही गुरु हैं, आप ही पितामह हैं, आप ही सर्वज्ञ हैं, आप ही सब विद्याओं का रहस्य जानते हैं। अतः आप मेरी रुचि का एक रहस्य बताने की कृपा करें।

आपके अतिरिक्त कौन मुझे प्रिय रहस्य बताने में समर्थ है? वह है भिक्षुओं की क्रमानुसार अवस्थाएँ। कृपया हमें बताइये।' नारदजी के इस प्रकार पूछने पर ब्रह्माजी उन सबको चारों ओर से देखकर कुछ समय तक समाधि में स्थित रहे। इस निष्कर्ष पर पहुँचकर कि वे सांसारिक जीवन की बुराइयों के विरुद्ध उपाय की खोज में हैं, दादाजी ने नारद की ओर मुड़कर कहा: 'मेरे बेटे, मैं अब उस रहस्य को स्पष्ट रूप से समझाऊंगा, जिसे परमपुरुष ने पुरुष-सूक्त स्तोत्र और उपनिषदों के गुप्त सिद्धांत का अतुलनीय रूप

धारण करके पहले सिखाया था। तुम इस उचित आदेश (तप) को, अत्यंत गुप्त रूप से, पूरे ध्यान से सुनो।'

II.2. 'हे नारद, एक अच्छे कुल में पैदा हुआ व्यक्ति, पहले से ही अविवाहित, वैदिक विद्या में दीक्षित होकर (जनेऊ धारण करने के बाद), अपनी माँ और पिता की आज्ञा का पालन करते हुए, (पिता द्वारा प्रारंभिक निर्देश के बाद) एक अच्छे गुरु के पास जाता है, जो महान परंपरा को बनाए रखता है, (वैदिक विद्या में) उसकी आस्था है, वह एक अच्छे कुल में पैदा हुआ है, वेदों में पारंगत है, शास्त्रों में प्रेम रखता है, गुणी है और कुटिल तरीकों से मुक्त है। वह उन्हें प्रणाम करके तथा अवसर के अनुरूप व्यक्तिगत सेवा करके अपनी हृदय की इच्छा (उनके अधीन अध्ययन करने की) से उन्हें अवगत कराएगा।

बारह वर्ष तक विद्या की सभी शाखाओं का अध्ययन करके, उस दौरान व्यक्तिगत सेवा करते हुए, अपने कुल के योग्य सुयोग्य कन्या से उनकी (गुरु की) सहमति से विवाह करेगा। गुरु के घर में इस निवास के पश्चात वह गुरु की स्वीकृति से पच्चीस वर्ष तक गृहस्थ के योग्य जीवन व्यतीत करेगा। दुष्ट ब्राह्मण के दोषों से मुक्त होकर, अपने कुल को चलाने की इच्छा से पुत्र प्राप्त करके तथा गृहस्थ के योग्य पच्चीस वर्ष पूरे करके, वह पच्चीस वर्ष बीतने तक एकाकी वनवासी (वानप्रस्थ) का जीवन व्यतीत करेगा;

शरीर के विभिन्न अंगों को जल से स्पर्श करके दिन में तीन बार स्नान करना, दिन में एक बार चौथे पहर (दिन के समय, अर्थात दोपहर में) भोजन करना, पूर्वकाल की रीति के अनुसार नगर और गांव की यात्रा का त्याग करना, खेती किए हुए अन्न (जैसे गेहूँ और चावल, परंतु केवल जंगली अन्न) का उपयोग किए बिना उचित अनुष्ठान करना, देखे या सुने हुए भोगों (अर्थात इस लोक और परलोक के सुख) की इच्छा से मुक्त होना, चालीस संस्कारों से शुद्ध होना, सभी वस्तुओं से आसक्ति से मुक्त होना, मन की शुद्धता प्राप्त करना, ईर्ष्या, जलन और अहंकार को जलाकर चतुर्विध अनुशासन से संपन्न होना - ऐसा व्यक्ति त्याग का जीवन अपनाने का अधिकारी है। इस प्रकार उपनिषद् का दूसरा उपदेश समाप्त होता है।

तृतीय-१. तब नारद ने पितामह (ब्रह्मा) से पूछाः 'प्रभु, संन्यास क्या है और सांसारिक जीवन का त्याग करने का अधिकारी कौन है?' 'मैं पहले संन्यास के अधिकारी (प्रकार) का वर्णन करूँगा और उसके बाद त्याग की विधि का।

ध्यानपूर्वक सुनोः 'ये (निम्नलिखित व्यक्ति) सांसारिक जीवन का त्याग करने के अधिकारी नहीं हैं।

नपुंसक, पतित (सही आचरण से) व्यक्ति, विकृत व्यक्ति, स्त्रियाँ, बहरा, बालक, गूंगा, विधर्मी, सम्राट, धार्मिक छात्र, वैखानस संन्यासी और हरद्विज (कापालिक?), किराए का शिक्षक, शिश्नहीन व्यक्ति और पवित्र अग्नि को न जलाने वाला, भले ही ये सभी वैराग्य से युक्त हों। भले ही वे संन्यास (जीवन) अपना लें, लेकिन उन्हें महान वैदिक ग्रंथों ('तू ही वह है' आदि) की (शिक्षा) प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं है। जो पहले से ही तपस्वी है, उसे सर्वोच्च प्रकार का तपस्वी (परमहंस) बनने का अधिकार है।

III-2. 'जो दूसरों को अपने द्वारा भय से बचाता है, जैसे वह दूसरों से स्वयं को (भय से) बचाता है, उसे विधि-ग्रंथों में भिक्षुक कहा गया है।

III-3-4. 'नपुंसक, विकृत व्यक्ति, अंधा, बालक, अपराध करने वाला, सदाचार से पतित, हमेशा दूसरे के द्वार पर (सहायता मांगने वाला), वैखानस संन्यासी और हरद्विज, सम्राट, धार्मिक छात्र, विधर्मी, शिश्नहीन, पवित्र अग्नि को न रखने वाला, दो या तीन बार सांसारिक जीवन का त्याग करने वाला, तथा किराए का शिक्षक - ये लोग (मृत्यु से ठीक पहले) संकट में पीड़ित को छोड़कर, संन्यास ग्रहण करने के अधिकारी नहीं हैं।'

III-5. महासंकट के समय त्याग करना आर्यों को किस प्रकार मान्य है ? प्राण के शरीर से निकलने से ठीक पहले का समय महासंकट का समय कहलाता है, अन्य कोई नहीं; यह संकट का अवसर मोक्ष के मार्ग की ओर ले जाता है (विहित प्रशंसामंत्रों के साथ त्याग का आश्रय लेने से)।

III-6. महासंकटग्रस्त (आतुर-संन्यास) द्वारा किए गए त्याग में भी बुद्धिमान पुरुष संसार का त्याग केवल बताए गए मंत्रों का उच्चारण करके तथा मंत्रों का जप करके विधिपूर्वक करेगा।

III-7. महासंकटग्रस्त द्वारा किए गए त्याग में भी प्रशंसा (मंत्रों) में कहीं कोई अंतर नहीं है। धार्मिक क्रिया के बिना कोई मंत्र नहीं बोला जाता; तथा धार्मिक क्रिया मंत्र पर दृष्टि रखती है।

III-8. मंत्र के बिना किया गया कार्य धार्मिक कार्य नहीं है (अर्थात् वह भिन्न है); इसलिए मंत्र का त्याग नहीं करना चाहिए। मंत्र के बिना किया गया धार्मिक कार्य भस्म में आहुति देने के समान है।

III-9. अत्यन्त दुःखी व्यक्ति द्वारा संन्यास, उसके लिए निर्धारित अनुष्ठान को संक्षिप्त करके किया गया बताया गया है; इसलिए आतुर-संन्यास में, हे ऋषि, मंत्रों को (अनुष्ठान के बिना) जपने की विधि है।

III-10. यदि अहिताग्नि-गृहस्थ किसी अन्य प्रांत में रहते हुए संसार से विरक्त हो जाए, तो उसे जल में प्रपत्य यज्ञ को पूर्ण करके फिर सांसारिक जीवन का त्याग करना चाहिए।

III-11. बुद्धिमान व्यक्ति को (प्रशंसा मंत्रों का पूर्वापेक्षित पाठ) मानसिक रूप से, या (प्रजापत्य यज्ञ के दौरान) निर्धारित तरीके से मंत्रों को जपकर, या जल में (आहुति देकर) या वेद में वर्णित तरीके से अनुष्ठान करके संसार का त्याग करना चाहिए। अन्यथा वह पतन की ओर अग्रसर होगा।

III-12. जब मन में सभी विषयों के प्रति निष्कामता उत्पन्न हो जाती है, तब (अधिकार) त्याग की अनुमति देते हैं; अन्यथा वह (पुण्य से) पतित हो जाता है।

III-13. ज्ञानी पुरुष संसार से विरक्त होने पर भिक्षुक बन जाता है; आसक्ति होने पर वह अपने घर में निवास करता है। जो पतित ब्राह्मण आसक्ति होने पर तपस्वी बन जाता है, वह नरक में जाता है।

III-14. वह ब्राह्मण अनुशासित ब्रह्मचारी विद्यार्थी की अवस्था में, बिना विवाह किए ही त्याग कर सकता है, जिसकी जीभ, जननांग, पेट और हाथ अच्छी तरह से सुरक्षित हैं (अर्थात वे पूर्ण नियंत्रण में हैं)।

III-15. सांसारिक जीवन को पूरी तरह से सारहीन देखकर और (सबका) सार पाने की इच्छा से, वे महान वैराग्य से युक्त होकर, बिना विवाह किए ही संसार का त्याग कर देते हैं।

III-16. (सभी गैर-आध्यात्मिक) गतिविधियों की विशेषता सांसारिक मामलों में सक्रिय भूमिका निभाना है; सच ज्ञान त्याग का लक्षण है। अतः बुद्धि को आगे रखकर (अर्थात् उसे प्राथमिकता देकर) बुद्धिमान मनुष्य संसार का त्याग कर देता है।

III-17. जब कोई व्यक्ति यह जान लेता है कि परम सत्य सनातन ब्रह्म ही है, तब वह एकमात्र दण्ड लेकर जटा सहित जटा का त्याग कर देता है।

III-18. जो परमात्मा में आसक्त है, वह परमात्मा से भिन्न अन्य वस्तुओं से विरक्त हो जाता है; समस्त इच्छाओं से मुक्त होकर उसे भिक्षा में दिया गया अन्न खाना चाहिए।

III-19. जो व्यक्ति सम्मान और आदरपूर्वक अभिवादन किए जाने पर बहुत प्रसन्न होता है, उसी प्रकार मार खाए जाने पर भी (बहुत प्रसन्न) होता है, तब वह (सच्चा) भिक्षुक (भिक्षा पर निर्वाह करने वाला) है।

III-20. 'मैं ही अविनाशी अद्वैत ब्रह्म हूँ, जिसे वासुदेव (भगवान विष्णु) कहते हैं' - जिसका दृढ़ भाव इस प्रकार (स्थिर) हो जाता है, वही (सच्चा) भिक्षुक है।

III-21. वह परम आनंद की अवस्था में है, जिसमें शांति, स्थिरता, पवित्रता, सत्य, संतोष, सरलता, किसी भी प्रकार के आधिपत्य और मिथ्याभिमान का अभाव पाया जाता है।

III-22. जब कोई व्यक्ति कर्म, विचार और वाणी से सभी प्राणियों के प्रति कोई बुरी प्रवृत्ति नहीं रखता, तो वह (सच्चा) भिक्षुक बन जाता है।

III-23. दस (सद्गुणों) से युक्त अपने कर्तव्यों का ध्यानपूर्वक निर्वहन करते हुए और उपनिषदों (वेदान्त) का निर्धारित तरीके से अध्ययन करते हुए, द्विज, तीन ऋणों का भुगतान करके, सांसारिक जीवन का त्याग कर सकता है।

III-24. धर्म के दस गुण हैं - संतोष, क्षमा, संयम, अस्तेय, पवित्रता, इन्द्रिय संयम, विनय, शास्त्र-ज्ञान, सत्य और संयम।

III-25. जो व्यक्ति भूतकाल के सुखों को, तथा अभी तक भोग न पाए हुए सुखों को (लालसा के साथ) याद नहीं करता, तथा जो सुख प्राप्त हो चुके हैं, उन पर भी प्रसन्न नहीं होता, वह मोक्ष की अवस्था में रहता है।

III-26. जो व्यक्ति इन्द्रियों की आंतरिक शक्तियों को सदैव भीतर और बाह्य विषयों को बाहर (बिना किसी प्रतिक्रिया के) रखने में समर्थ है, वह मोक्ष की अवस्था में रहता है।

III-27. जिस प्रकार प्राण निकल जाने पर शरीर को सुख-दुःख का अनुभव नहीं होता, उसी प्रकार वह (ऋषि) जीवित रहते हुए भी ऐसा ही रहता है (अर्थात् जब वह प्राण से एक हो जाता है); तब वह मोक्ष की अवस्था में रहता है।

III-28. एक जोड़ी लंगोटी, एक पैबंद लगा हुआ वस्त्र (सर्दी की ठंड से बचने के लिए) तथा एक प्रतीकात्मक डंडा, ये सर्वोच्च कोटि के तपस्वी (परमहंस) के वस्त्र हैं; इससे अधिक वस्त्र धारण करने की अनुमति नहीं है;

III-29. यदि उसके पास सुख-सुविधा के लिए अधिक वस्त्र हों तो वह भयंकर नरक (रौरव) में जाएगा तथा पशु योनि में जन्म लेगा।

III-30. वह गेरू से रंगकर साफ-सुथरे कपड़े के टुकड़ों को तानकर बाहरी वस्त्र पहन सकता है। III-31. एक वस्त्र पहने हुए या बिना वस्त्र पहने हुए भी, उसकी दृष्टि केवल एक ही (अर्थात मोक्ष) पर होगी तथा (सुखों की) लालसा नहीं होगी (परमहंस) वह सदैव अकेला ही विचरण करेगा; वर्षा ऋतु में (अकेला) वह एक ही स्थान पर रहेगा।

III-32. अपने घर-बार, बच्चों, पत्नी, वेद की सभी शाखाओं, यज्ञोपवीत और जनेऊ को त्यागकर तपस्वी अकेले ही यात्रा करेगा (किसी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किए बिना)।

III-33. काम, क्रोध, मान, लोभ और मोह जैसे दोषों को त्यागकर भिक्षुक 'निर्मम' से मुक्त रहेगा। III-34. राग-द्वेष से मुक्त होकर, मिट्टी, पत्थर और सोने को समान दृष्टि से देखकर तथा सभी प्राणियों को कष्ट न देने वाला तपस्वी सभी इच्छाओं से मुक्त रहेगा।

III-35. जब तपस्वी अभिमान और अहंकार से मुक्त हो जाएगा, पीड़ा और दुष्टता से रहित हो जाएगा तथा आत्म-ज्ञान के गुणों से युक्त हो जाएगा, तब उसे मोक्ष की प्राप्ति होगी।

III-36. इन्द्रियों के सुखों में आसक्ति होने से निःसंदेह हानि होती है; उन्हें भली-भाँति रोककर ही मनुष्य परम सुख को प्राप्त होता है।

III-37-38. कामनाएँ भोगने का अवसर देने से शांत नहीं होतीं; वे हवन से प्रज्वलित अग्नि के समान हैं।और भी अधिक बढ़ जाती है। उस पुरुष को जानना चाहिए जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया है, जो सुनने, छूने,

खाने, देखने या सूंघने पर भी न तो प्रसन्न होता है और न ही अप्रिय होता है।

III-39. जिसकी वाणी और मन सदैव शुद्ध और सुरक्षित रहते हैं, वह वेदान्त (उपनिषद) द्वारा बताए गए सभी फलों को प्राप्त करता है।

III-40. मोक्ष की खोज में लगे ब्राह्मण को सम्मान से हमेशा विष की तरह दूर रहना चाहिए; उसे हमेशा अपमान का स्वागत अमृत की तरह करना चाहिए।

III-41. मोहग्रस्त व्यक्ति गहरी नींद सोता है, अच्छे मूड में जागता है और संसार में सुखपूर्वक अपना काम करता है; (लेकिन) अपमान करने वाला दुःखी होता है।

III-42. गाली को धैर्यपूर्वक सहन करना चाहिए और कभी किसी का अपमान नहीं करना चाहिए; न ही इस देहधारी अवस्था में किसी से शत्रुता करनी चाहिए।

III-43. क्रोध के बदले क्रोध नहीं करना चाहिए, गाली मिलने पर सबका कल्याण करने के लिए नम्रता से बोलना चाहिए, ऐसा झूठ कभी नहीं बोलना चाहिए जो शरीर के सात द्वारों को (सांसारिक इच्छाओं को) पोषित करता हो।

III-44. उस परम ज्योति (व्यक्तिगत आत्मा में प्रकट) में आनंद लेते हुए, शांत रहते हुए, इच्छाओं और आशीर्वादों से मुक्त होकर, परम आनंद की खोज करते हुए, उसे (तपस्वी को) केवल आत्मा को अपना साथी बनाकर (भिक्षु की तरह) विचरण करना चाहिए।

III-45-47. वह इन्द्रियों को वश में करके, राग-द्वेष को क्षीण करके तथा जीवों को कष्ट न पहुँचाने से अमरता के योग्य हो जाता है। (यह शरीर) हड्डियों से बना हुआ, स्नायु-बंधों से बंधा हुआ, मांस-रक्त से लिपा हुआ, चर्म से ढका हुआ, दुर्गन्धयुक्त, मल-मूत्र से भरा हुआ, वृद्धावस्था और क्लेश से ग्रस्त, रोगों का निवास, चोट लगने योग्य, वासना से भरा हुआ, अनित्य और तत्वों का निवास (अर्थात शरीर) है, इसे मनुष्य (बिना खेद के) त्याग सकता है।

III-48. यदि कोई मांस, रक्त, मवाद, मल, मूत्र, स्नायु, मज्जा और हड्डियों से बने शरीर में आनंद लेता है, तो वह मूर्ख नरक में भी (आनंदित) होगा।
III-49. 'मैं शरीर हूँ' यह भाव कालसूत्र नामक नरक, महावीचि नरक का जाल और वन(-नरक) की श्रृंखला की ओर ले जाने वाला मार्ग है, जहाँ वृक्षों के पत्ते तलवार के समान तीखे होते हैं।

III-50. यदि सम्पूर्ण विनाश भी सामने हो, तो भी इस (शरीर को आत्मा से एक करना) को हर प्रयत्न से त्याग देना चाहिए; इसे कुलीन व्यक्ति द्वारा स्पर्श (स्वीकार) नहीं किया जाना चाहिए, जैसे कि एक (नीच) आदिवासी महिला कुत्ते का मांस ले जाती है।

III-51. अपने प्रियजनों के प्रति पुण्य कर्म और शत्रुओं के प्रति पाप कर्म (दोनों) को त्यागकर, (मनुष्य) गहन ध्यान (ध्यान-योग) के अभ्यास से शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त करता है।
III-52. इस विधि से, धीरे-धीरे सभी आसक्तियों को त्यागकर, और सभी विपरीत (जैसे सुख और दुःख) के प्रभाव से मुक्त होकर, केवल ब्रह्म में स्थित हो जाता है।

III-53. (तपस्वी) अंतिम आनंद प्राप्त करने के लिए किसी सहायक के बिना अकेले यात्रा करेगा; क्योंकि, एक (ब्रह्म) की पूर्णता को देखकर, वह न तो उसे छोड़ता है और न ही वह (उसके द्वारा) त्यागा जाता है।

III-54. भिक्षापात्र के लिए खोपड़ी, वृक्षों की छाया, फटे-पुराने वस्त्र, एकांत और सब बातों में समता - ऐसे मुक्त पुरुष के लक्षण हैं।

III-55. सब प्राणियों के प्रति दयालु, शांत, त्रिगुणात्मक दण्ड धारण करने वाला, जलपात्र धारण करने वाला, एक (ब्रह्म) में रमण करने वाला - भिक्षुक बनकर वह भिक्षा के लिए गांव में प्रवेश कर सकता है।

III-56. भिक्षुक पहले बताए अनुसार अकेला रहेगा; दो मिलकर जोड़ा कहलाते हैं (एक दूसरे से लगाव रखते हैं); तीन मिलकर गांव कहते हैं (अपने झगड़ों सहित); इन (तीनों) से अधिक मिलकर नगर (हलचल और अव्यवस्था वाला) बन जाता है।

III-57. न तो नगर बनाना चाहिए, न गांव और न जोड़ा; इन तीनों का भाग करने वाला भिक्षु अपने कर्तव्य से विमुख हो जाता है।

III-58. उनके घनिष्ठ संबंध के कारण निस्संदेह राजपुरुषों आदि पर चर्चा होगी, दान में परस्पर भाग्योदय होगा, तथा उनमें स्नेह, चुगली और प्रतिद्वंद्विता होगी।

III-59. वह अकेला और इच्छारहित रहेगा; वह किसी से वार्तालाप नहीं करेगा। वह दूसरों के कथनों का उत्तर देने के लिए सदैव केवल 'नारायण' का उच्चारण करेगा।

III-60. वह एकांत में मन, वचन और कर्म से ब्रह्म का चिंतन करेगा। वह किसी भी तरह से न तो मृत्यु का स्वागत करेगा और न ही जीवन का आनंद उठाएगा।

III-61. वह केवल निर्धारित जीवन अवधि पूरी होने तक ही तप करेगा, न तो मृत्यु का स्वागत करेगा और न ही जीने का आनंद उठाएगा। वह अकेले ही मृत्यु के समय की प्रतीक्षा करेगा, जैसे कोई कर्मचारी आदेश की प्रतीक्षा करता है।

III-62. भिक्षुक को मोक्ष तब मिलता है, जब उसमें निम्न छह लक्षण हों: वह जीभ रहित (भोजन और वाणी का स्वाद लेने में), नपुंसक (संभोग में), लंगड़ा (धक्के में), अंधा (इंद्रिय विषयों को देखने में), बहरा (प्रशंसा या शाप सुनने में) और निष्पाप (बच्चे जैसा)। इसमें कोई संदेह नहीं है।

III-63. वह तपस्वी जीभ रहित कहा जाता है, जो भोजन करते समय उसके स्वाद या अन्य होने का ध्यान नहीं रखता और जो संयम से हितकर और सत्य वचन बोलता है।

III-64. वह नपुंसक है, जो नवजात, सोलह वर्ष की अथवा सौ वर्ष की स्त्री को देखकर अप्रभावित रहता है।

III-65. जब कोई तपस्वी केवल भिक्षाटन तथा प्रकृति की पुकार सुनने के लिए घूमता है और दिन में तेरह या चौदह किलोमीटर से अधिक नहीं चलता, तो वह अवश्य ही लंगड़ा है।

III-66. वह भिक्षुक अन्धा कहा गया है, जिसकी आँखें स्थिर खड़े या चलते समय (विनम्रतापूर्वक झुकी हुई) होती हैं, तथा जो सोलह हाथ जमीन के अतिरिक्त कुछ नहीं देख पातीं।

III-67. हितकर या अन्य, मन को प्रिय लगने वाले या दुःख देने वाले वचनों को सुनकर भी वह उन्हें नहीं सुनता (अर्थात् सम रहता है); ऐसा मुनि बहरा कहा गया है।

III-68. वह भिक्षुक बालक जैसा कहा गया है, जो इन्द्रिय-सुख के विषयों के समीप रहने पर भी सोया हुआ-सा रहता है, यद्यपि उसकी इन्द्रियाँ कुशल और अविचलित रहती हैं।

III-69. नर्तकियों आदि का प्रदर्शन, जुआ, पूर्वकाल की सहेली, आकर्षक रूप से रखे हुए खाद्य पदार्थ, अन्य भोग्य पदार्थ तथा स्त्री-इनसे तपस्वी को सदैव दूर रहना चाहिए।

III-70. तपस्वी को कभी भी अपने मन में इन छः बातों का विचार भी नहीं करना चाहिए- प्रेम, द्वेष, नशा, धोखा, दूसरों को कष्ट देना तथा धोखा देना।

III-71. पलंग, श्वेत वस्त्र, स्त्रियों पर वार्तालाप, अस्थिरता, दिन में सोना तथा गाड़ी-इन छः बातों से तपस्वी का पतन होता है।

III-72. आत्मचिंतन करने वाले को लंबी यात्राओं से बचना चाहिए। तपस्वी को सदैव उपनिषदों का अभ्यास करना चाहिए, जो मोक्ष का साधन है।

III-73. तपस्वी को सदैव तीर्थस्थान का भ्रमण नहीं करना चाहिए, न ही उसे बार-बार उपवास करना चाहिए, न ही उसे हर समय शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए, न ही केवल उनका ही वर्णन करना चाहिए।

III-74. वह सदैव पाप, छल और कपट रहित आचरण करेगा, अपनी इन्द्रियों को सब प्रकार से रोकेगा, जैसे कछुआ अपने अंगों को रोक लेता है।

III-75-76. जब उसकी इन्द्रियाँ और मन शांत हो जाएँगे, आशाएँ और सम्पत्ति से मुक्त हो जाएँगे, सुख-दुःख आदि विपरीतताओं से उदासीन हो जाएँगे, आदरपूर्वक नमस्कार करेंगे और निःस्वार्थ भाव से काम लेंगे, 'अपनापन', अहंकार, अपेक्षाएँ और आशीर्वाद से मुक्त हो जाएँगे और एकान्त में रहेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है। ऐसे ही तपस्वियों के कर्तव्य हैं।

III-77. अनुशासित ब्रह्मचारी विद्यार्थी, गृहस्थ अथवा वनवासी (वानप्रस्थ) जब सदाचारी जीवन जीने में सजग रहता है, कर्म में निपुण होता है, भक्ति और बुद्धि रखता है, तथा स्वेच्छा से वैराग्य प्राप्त कर लेता है, तब वह सांसारिक जीवन का त्याग कर सकता है। यदि उसकी मुख्य रुचि (अपने जीवन की विशेष अवस्था में) है, तो उसे विद्यार्थी अवस्था पूरी करनी चाहिए और गृहस्थ बनना चाहिए; गृहस्थ अवस्था से वनवासी बनने के पश्चात उसे संसार का त्याग करना चाहिए। अथवा अन्यथा वह विद्यार्थी, गृहस्थ अथवा वनवासी अवस्था से सांसारिक जीवन का त्याग कर सकता है।

परन्तु फिर भी जिस दिन संसार से मोहभंग हो जाए, उसी दिन त्याग कर सकता है, चाहे वह त्याग की अवस्था से पहले व्रत न रखने वाला हो या व्रत रखता हो, चाहे उसने अनुशासनपूर्ण शिक्षा पूरी करने के बाद स्नान किया हो या नहीं, चाहे वह अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद अग्नि प्रज्वलित करना छोड़ चुका हो (उत्सन्नग्नि) या वह हो जो (अन्य कारणों से) अग्नि प्रज्वलित नहीं करता (अनाग्निका)। कुछ (विधिवेत्ता) द्विजों को त्याग करने से पहले प्रजापत्य (जिसके अधिष्ठाता ब्रह्मा हैं) नामक यज्ञ करने का विधान करते हैं।
परन्तु (यद्यपि ऐसा कहा गया है) उसे ऐसा नहीं करना चाहिए। उसे केवल अग्नियज्ञ ही करना चाहिए (जिसके अधिष्ठाता अग्निदेव हैं)। क्योंकि अग्नि प्राण है। इस प्रकार वह (तत्पश्चात) वह त्रैधात्वीय यज्ञ करेगा (जिसके अधिष्ठाता देव इन्द्र हैं)। इस (यज्ञ) से तीन प्राण (अग्नि के समान बलवान) हो जाते हैं, अर्थात् सत्व (वीर्य), रजस (रक्त) और तमस् (अंधकारमय)।

III-78. (विहित रीति से यज्ञ करने के पश्चात वह पवित्र अग्नि को सूँघेगा, तथा निम्न मंत्र का उच्चारण करेगा) 'हे अग्नि, यह (प्राण) तुम्हारा स्रोत है; क्योंकि तुम वर्ष के उचित समय पर जन्म लेते हो, तुम तेज से युक्त हो जाते हो। उसे (आत्मा, अपने परम स्रोत को) जानकर तुम (प्राण, अपने स्रोत में) विलीन हो जाओ। तुम हमारे (परम ज्ञान के) धन को बढ़ाओ।' इस प्रकार मंत्र का उच्चारण करते हुए वह अग्नि को सूँघेगा।

यह अग्नि का स्रोत है, यह प्राण वायु है। तुम प्राण में जाओ, तुम अपने स्रोत में जाओ। स्वाहा। केवल इसी (मंत्र) में कहा गया है। आहवनीय (पवित्र अग्नि) से अग्नि प्राप्त करके उसे पहले की तरह सूंघे। यदि अग्नि प्राप्त न कर सके तो जल में आहुति दे। क्योंकि जल में सभी देवता निवास करते हैं। 'मैं सभी देवताओं को आहुति देता हूँ, स्वाहा' यह मंत्र पढ़कर आहुति दे और

आहुति में से बचा हुआ थोड़ा सा भाग घी मिलाकर जल के साथ खाए। घी से मिश्रित आहुति लाभकारी है और मोक्ष प्रदान करने वाली है। ऐसा कहा गया है।

जटा, जनेऊ, माता-पिता, पुत्र, स्त्री, सामान्य कार्य, अध्ययन, तपस्वियों के लिए बताए गए मंत्रों को छोड़कर अन्य मंत्रों का त्याग करके ही बुद्धिमान पुरुष (आध्यात्मिक ज्ञान का ज्ञाता) संसार का त्याग करता है। त्रैधात्वीय यज्ञ से संबंधित मोक्ष के मंत्रों से वह परम मोक्ष को प्राप्त होता है। वह ब्रह्म है; जिसका श्रद्धापूर्वक आश्रय लेना चाहिए। इस प्रकार ही यह (मुक्ति प्राप्त) होती है। इस प्रकार।

III-79. नारद ने फिर पितामह (ब्रह्मा) से पूछा: 'वे (अब) पवित्र
धागे के बिना, ब्राह्मण कैसे हैं?' भगवान ब्रह्मा ने उनसे (इस प्रकार) कहा।

III-80. शिखा (हटाने) के साथ-साथ दाढ़ी बनाते हुए, एक बुद्धिमान व्यक्ति बाहरी (पवित्र) धागे को त्याग देगा। वह धागे के रूप में (अर्थात वह हमेशा) उस पारलौकिक ब्रह्म को धारण करेगा जो अविनाशी है।

III-81. सूत्र को इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह (ब्रह्म) इंगित करता है। सूत्र वास्तव में सर्वोच्च अवस्था है। वह ब्राह्मण (अकेला) वेदों में पूरी तरह से निपुण है जिसने उस सूत्र को जान लिया है।

III-82. योग के ज्ञाता और सत्य के ज्ञाता योगी को वह सूत्र (ब्रह्म) प्राप्त होगा, जिससे सब कुछ बंधा हुआ है, जैसे रत्नों का समूह एक धागे से बंधा हुआ है।

तृतीय-८३। सर्वोच्च योग में स्थित होकर बुद्धिमान पुरुष बाह्य (पवित्र) धागे का परित्याग कर देगा। वह बुद्धिमान है, जिसके पास सूत्र है, ब्रह्म की स्थिति है। उस सूत्र को धारण करने से वह न तो अपवित्र होता है और न ही अशुद्ध।

तृतीय-८४। जो लोग आंतरिक रूप से सूत्र रखते हैं और ज्ञान के पवित्र धागे को धारण करते हैं, वे वास्तव में सूत्र के ज्ञाता हैं; वे (सच्चा) पवित्र धागा पहनते हैं।

तृतीय-८५। जो ज्ञान रूपी जटाधारी हैं, जिनकी मूल स्थिति ज्ञान है, जो ज्ञान के पवित्र धागे को धारण करते हैं, जिनके लिए केवल ज्ञान ही सर्वोच्च है, उनके पास, ऐसा कहा जाता है, शुद्ध ज्ञान है।

तृतीय-८६। वह बुद्धिमान व्यक्ति जिसकी शिखा अग्नि की ज्वाला के समान बुद्धि से युक्त है, और कुछ नहीं, शिखा (शिखा; श्रेष्ठता) का स्वामी कहा जाता है; अन्य वे नहीं जो (केवल) सिर के मुकुट पर बालों का एक गुच्छा धारण करते हैं।

III-87. ब्राह्मण और ऐसे अन्य लोग जो वैदिक अनुष्ठानों में लगे हुए हैं, उन्हें यह (पवित्र) धागा पहनना चाहिए; क्योंकि इसे समारोह का हिस्सा घोषित किया गया है।

III-88. जिसकी शिखा और उसका पवित्र धागा (उस ज्ञान का) ज्ञान से युक्त है, उसमें ब्राह्मण के सभी आवश्यक गुण हैं; ऐसा ही वेद के जानकारों को समझना चाहिए। इस प्रकार।

III-89. इस प्रकार (तपस्वी के कर्तव्यों) को जानकर, एक ब्राह्मण सांसारिक जीवन का त्याग करके, एक वस्त्र धारण करने वाला, मुंडा हुआ भिक्षु बन जाता है, यदि वह (नग्न, अप्रार्थनीय अवधूत तपस्वी का) शारीरिक अभाव सहन करने में असमर्थ है, तो उसे (केवल निर्वाह के लिए साधारण भोजन के अलावा) कोई उपहार नहीं मिलता है। या, निर्धारित नियमों के अनुसार, निर्वस्त्र हो जाना (अर्थात नवजात शिशु जैसा रूप धारण करना), अपने बच्चों, मित्रों, पत्नी, निकट संबंधियों आदि का त्याग करना, अपने वैदिक अध्ययन और अनुष्ठानों का त्याग करना, संपूर्ण संसार, अपनी लंगोटी, प्रतीकात्मक छड़ी और (गर्म) वस्त्र का त्याग करना; (विपरीत, सुख और दुःख आदि) के जोड़ों को सहने में सक्षम होना और सर्दी और गर्मी का ध्यान न रखना।

सुख-दुःख, निद्रा, मान-अपमान, तथा छः मानवीय दुर्बलताएँ (भूख आदि) त्याग देना; निन्दा, अहंकार, प्रतिद्वन्द्विता, अभिमान, मिथ्याभिमान, ईर्ष्या, द्वेष, कामना, द्वेष, सुख, दुःख, प्रेम, क्रोध, लोभ, मोह आदि का परित्याग कर देना; अपने शरीर को शव के रूप में स्मरण रखना; भीतर-बाहर दोनों ही प्रकार से आत्मा के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु का भान न करना; किसी को प्रणाम न करना, न देवताओं की पूजा में स्वाहा का उच्चारण करना, न पितरों के सम्मान में स्वधा का उच्चारण करना; न

स्तुति में लिप्त होना, न निन्दा में; इस प्रकार वह बाह्य प्रभावों से स्वतंत्र हो जाता है।

बिना माँगे मिले हुए भोजन से ही संतुष्ट हो जाता है, सोना आदि (उपहार) स्वीकार नहीं करता। वह न तो देवताओं का आवाहन करता है, न उन्हें वापस भेजने के लिए मंत्रोच्चार करता है; उसके पास मंत्र या अमंत्र, ध्यान या पूजा, उद्देश्य या अनादि, वियोग या मिलन नहीं है; तथा (निवास के संबंध में) दृढ़ मन होने के कारण उसके पास (रात में सोने के लिए) कोई घर नहीं है, सिवाय एक सुनसान घर, पेड़ की छाया, मंदिर, (लंबी) घास का झुरमुट, कुम्हार की झोपड़ी, जहाँ अग्नि जलाई जाती है, दक्षिण-पूर्व दिशा, नदी का रेतीला तट, तहखाना, गुफा या झरने के पास या जंगल में मैदान।

उसके पास श्वेतकेतु, ऋभु, निदाघ, ऋषभ, दुर्वासा, संवर्तक, दत्तात्रेय और रैवतक जैसे तपस्वी (प्राचीन काल के महान ऋषियों की तरह) का कोई विशिष्ट प्रतीक नहीं हो सकता। उसका आचरण (सामान्य लोगों के लिए) बच्चों, पागलों और भूतों के आचरण जैसा नहीं है। यद्यपि वह (पूरी तरह से) समझदार है, लेकिन वह एक पागल व्यक्ति की तरह व्यवहार करता है। स्वाहा कहते हुए वह इन सभी को जल में छोड़ देगा - तीन गुना (प्रतीकात्मक) छड़ी, गोफन (अपने सामान को ले जाने के लिए), (भिक्षा) कटोरा, (पानी) बर्तन, कमरबंद और लंगोटी।

III-90. वह (भिक्षु भिक्षु की तरह) बिना वस्त्र पहने यात्रा करेगा, और इन सभी को जल में छोड़ देगा - कमरबंद, लंगोटी, (प्रतीकात्मक) छड़ी, वस्त्र और जलपात्र।

III-91. वह आत्मा की प्राप्ति की खोज करेगा। वह वस्त्रहीन, विपरीत युग्मों से रहित, किसी भी प्रकार का दान न ग्रहण करने वाला, ब्रह्म के मार्ग में स्थित, शुद्ध मन वाला, निर्धारित समय पर अपने हाथ से या अन्यथा (मुंह में) भोजन करके, बिना भिक्षा मांगे, (भोजन के) लाभ या अस्वीकृति में समभाव रखने वाला, 'अपनापन' से रहित, शुद्ध तेज (अर्थात ब्रह्म) के ध्यान में गहरी रुचि रखने वाला, परम आत्मा (व्यक्तिगत आत्मा के रूप में प्रकट) में समर्पित, अच्छे और बुरे कर्मों के प्रभाव को जड़ से उखाड़ने में गहराई से लगा हुआ, (आत्मा के अलावा अन्य सभी) का त्याग करेगा;

केवल एक विचार अर्थात् परम आनंद का, प्रणव (ओम) रूप ब्रह्म का सदैव स्मरण करते हुए और यह कि मैं केवल ब्रह्म हूँ, वह ततैया के सिद्धांत के

अनुसार तीन गुना शरीर को त्याग देगा (ब्रह्म के साथ एक हो जाना) और केवल त्याग द्वारा शरीर को त्याग देगा। वह स्वयं को पूर्ण करने वाला बन जाता है (अर्थात वह शरीररहित अवस्था में मोक्ष प्राप्त कर लेता है)। इस प्रकार उपनिषद का तीसरा उपदेश समाप्त होता है।

IV-1. जो (तीनों) लोकों, वेदों, इन्द्रियों के विषयों, इन्द्रियों के प्रभाव को त्यागकर केवल आत्मा में स्थित रहता है, वह परम गति को प्राप्त करता है।

IV-2. एक अच्छा तपस्वी अपने नाम, वंश आदि, अपने मूल स्थान, वहाँ रहने की अवधि, शास्त्र के अध्ययन, परिवार, आयु, आचरण और अपने द्वारा किए गए व्रतों के बारे में पूछे गए प्रश्नों का उत्तर कभी नहीं देगा।

IV-3. वह न तो किसी स्त्री से वार्तालाप करेगा और न ही पहले देखी गई किसी स्त्री को याद करेगा; वह उनके विषय में सभी वार्तालापों से दूर रहेगा और कभी भी चित्र में भी किसी स्त्री को नहीं देखेगा।

IV-4. स्त्रियों के सम्बन्ध में (ऊपर वर्णित) चार बातें करने पर तपस्वी का मन अवश्य ही विचलित हो जाएगा; मन की इस उत्तेजना के कारण वह भटक जाता है।

IV-5-6. लोभ, क्रोध, असत्य, छल-कपट, लोभ, मोह, प्रियता, ललित कलाओं के प्रति प्रेम, व्याख्या करने की प्रवृत्ति, कामना, वासना, उपहार स्वीकार करना, अहंकार, अपनापन, वैद्यकीय कार्य, दूसरों पर सही आचरण लागू करना, प्रायश्चित, विदेश यात्रा (अपवित्र स्थानों पर जाना) तथा निषिद्ध मंत्र, जड़ी-बूटी, विष और आशीर्वाद का अभ्यास करने वाला तपस्वी अपने उच्च पद से नीचे गिर जाता है।

चतुर्थ-7. मोक्ष प्राप्ति के लिए तत्पर साधु को 'आओ, जाओ, रुको, स्वागत करो, मित्रो और आदर करो' जैसे शब्द नहीं बोलने चाहिए।

चतुर्थ-8. भिक्षुक को स्वप्न में भी कभी उपहार स्वीकार नहीं करना चाहिए, न ही दूसरों को दान देने के लिए प्रेरित करना चाहिए और न ही दूसरों को उपहार देने या लेने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

चतुर्थ-9. अपनी पूर्व पत्नी, भाई, बच्चों आदि तथा सगे-संबंधियों के बारे में अच्छा या बुरा सुनकर या देखकर उसे अपने ऊपर नियंत्रण रखना चाहिए।

व्याकुल न हो; उसे शोक और मोह का त्याग करना चाहिए।

IV-10-12. चोट से बचना, सत्यनिष्ठा, चोरी न करना, संयम, अपरिग्रह, नम्रता, अवसाद का अभाव, शांति, स्थिरता, सरलता, स्नेह से मुक्ति, आदरणीय बड़ों की सेवा, श्रद्धा, क्षमा, शांति, गुटनिरपेक्षता, धैर्य, मिलनसारिता, सहनशीलता, दया, शील, ज्ञान और बुद्धि, परम आत्मा का चिंतन (योग), बहुत संयमित आहार और संतोष - ये संयमी तपस्वियों की आवश्यक आवश्यकताएं मानी जाती हैं।

IV-13. विपरीत युग्मों के प्रभाव से मुक्त, सदा सत्त्व में स्थित, सबमें समभाव रखने वाला, तप की चतुर्थ अवस्था में स्थित ऋषि, परमहंस, प्रत्यक्ष भगवान नारायण हैं।

IV-14. वर्षा ऋतु को छोड़कर, वह एक रात गांव में और पांच रात शहर में रह सकता है; वर्षा ऋतु में वह चार महीने (गांव या शहर में) रह सकता है।

IV-15. भिक्षुक को गांव में दो रात नहीं रहना चाहिए; यदि वह रहता है, तो स्नेह आदि उसे विचलित करने का अवसर पा सकते हैं; जिससे वह नरक में जाएगा।

IV-16. गांव के बाहर, एकांत स्थान में वह अपना डेरा डाल सकता है और (भिक्षा के लिए) कीड़े की तरह जमीन पर (रेंगते हुए) घूम सकता है; वर्षा ऋतु में वह एक ही स्थान पर रहेगा।

IV-17. एक वस्त्र पहने या बिना वस्त्र पहने, एक (ब्रह्म) में दृष्टि लगाए, इच्छाओं से मुक्त, सत्मार्ग से विचलित न होकर और गहन ध्यान में लगा हुआ वह पृथ्वी पर विचरण करेगा।

IV-18. शुद्ध स्थान में अपने आवश्यक कर्तव्यों का पालन करते हुए भिक्षुक को हमेशा चलते रहना चाहिए, उसकी दृष्टि जमीन पर टिकी होनी चाहिए।

IV-19. वह कभी भी रात्रि, मध्याह्न अथवा संध्या के समय यात्रा नहीं करेगा; न तो निर्जन स्थान पर, न दुर्गम क्षेत्र में, न ही प्राणियों को हानि पहुँचाने वाले स्थान पर।

IV-20. भिक्षुक एक रात गाँव में, दो रात छोटे शहर में, तीन रात बड़े शहर में तथा पाँच रात शहर में रह सकता है। वर्षा ऋतु में वह एक ऐसे स्थान पर डेरा डाल सकता है जहाँ बहुत सारा शुद्ध जल हो।

IV-21. सभी प्राणियों को अपने समान समझकर भिक्षुक पृथ्वी पर ऐसे विचरण करेगा जैसे अंधा, मंदबुद्धि, बहरा, पागल तथा गूँगा व्यक्ति हो।

IV-22. बहुदक भिक्षुक तथा वनवासी को दिन के तीनों समय स्नान करना चाहिए, हंस तपस्वी को दिन में केवल एक बार तथा परमहंस तपस्वी को एक भी बार स्नान नहीं करना चाहिए।

IV-23. एक दण्ड धारण करने वाले तपस्वी को इन सात बातों का पालन करना चाहिए - मौन, योग मुद्रा, गहन ध्यान, धीरज, एकांत, निष्कामता और समता।

IV-24. स्नान आदि के नियमों के अभाव के कारण परमहंस की अवस्था में मनुष्य को केवल मन की समस्त क्रियाओं का त्याग कर देना चाहिए।

IV-25. कृमि (जो सड़े हुए जल में रमण करते हैं) और उन मनुष्यों में क्या अंतर है जो त्वचा, मांस, रक्त, कंडरा, मज्जा, चर्बी, अस्थि, मल, मूत्र और मवाद (से मिलकर बने हुए शरीर) में रमण करते हैं?

IV-26. जहाँ (एक ओर) शरीर है, जो कफ आदि सभी (गंदगी) का एक बड़ा समूह है और जहाँ (दूसरी ओर) शारीरिक तेज, शुभता और व्यक्तिगत आकर्षण जैसे गुण हैं?

IV-27. यदि मूर्ख व्यक्ति अपने शरीर में, जो मांस, रक्त, मवाद, मल, मूत्र, कंडरा, मज्जा और हड्डियों का समूह है, आनंद लेता है, तो वह नरक में भी आनंदित होगा।

IV-28. यद्यपि स्त्रियों के अवर्णनीय क्षेत्र और शुद्ध व्रण में कोई अंतर नहीं है, फिर भी लोग दृष्टिकोण के अंतर से धोखा खा जाते हैं।

IV-29. अपान-वायु से सुगंधित चमड़े का टुकड़ा - जो उसमें आनंद लेता है, उसे नमन! इससे बड़ी उतावलापन क्या है?

IV-30-31. बुद्धिमान तपस्वी को न तो कोई सांसारिक कार्य करना होता है और न ही उसके पास कोई प्रतीक होता है। मुनि जो 'मेरापन' और भय से मुक्त, शांत, विपरीत युग्मों से अप्रभावित, जाति भेद रहित भोजन करने वाला, लंगोटी पहने या बिना वस्त्र पहने, ध्यान में लीन रहता है। इस प्रकार केवल ज्ञान में लीन योगी ब्रह्म से तादात्म्य करने के योग्य है।

IV-32. भले ही वह कोई प्रतीक (जैसे कि लाठी) धारण करता हो, लेकिन उसकी मुक्ति का (वास्तविक) कारण केवल उसका आध्यात्मिक ज्ञान ही है। यहाँ के लोगों के लिए (परमानंद प्राप्ति के मामले में) प्रतीकों का समूह अर्थहीन है।

IV-33. वह ब्राह्मण (ब्रह्म का ज्ञाता) है जो अच्छे या बुरे, अशिक्षित या उच्च विद्वान (शास्त्र में), अच्छे या बुरे चरित्र वाले के बीच (अंतर) को नहीं जानता।

IV-34. इसलिए एक बुद्धिमान (तपस्वी) बिना किसी प्रतीक के, सही आचरण को जानने वाले, ब्रह्म (साक्षात्कार) के व्रत में समर्पित और गुप्त सिद्धांत (यानी उपनिषद) का सहारा लेते हुए चुपचाप विचरण करेगा।

IV-35. वह पृथ्वी पर यात्रा करेगा, सभी लोगों के लिए एक रहस्य, वर्ग या जीवन के स्तर से रहित, जैसे कि वह अंधा, मंदबुद्धि और गूंगा हो।

IV-36. उसे मन में शांत देखकर देवता उसके समान होने की इच्छा करते हैं। चूँकि वह कोई भेद नहीं देखता, इसलिए वह (भेदहीन) परम सुख को प्राप्त करता है। इस प्रकार भगवान ब्रह्मा की शिक्षा। इस प्रकार (यह समाप्त होती है)।
IV-37। तब नारद ने ब्रह्मा (पितामह) से पूछा: 'कृपया हमें त्याग की विधि बताएं'। भगवान ब्रह्मा ने इसे स्वीकार करते हुए कहा 'ऐसा ही हो' घोषित किया: जीवन के चौथे चरण (यानी त्याग) को अपनाने के लिए, चाहे कोई आपातकालीन स्थिति में हो या नियमित क्रम में, उसे पहले सभी पापों (कृच्छ्रप्रयासचित्त) के प्रायश्चित के बाद आठ स्मारक धार्मिक अनुष्ठान (अष्टश्रद्धा) करना चाहिए, आठ अनुष्ठान (देवताओं, ऋषियों, अन्य) दिव्य प्राणियों, मनुष्यों, (पाँच) मूल तत्वों, पितरों, पिता, माता और (स्वयं) की (प्रशमन) करना।

सर्वप्रथम वह सत्य, वसु आदि देवताओं के समूह को प्रसन्न करेगा; ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर (शिव) देवताओं के लिए स्मारक समारोह में; ऋषियों,

दिव्य ऋषियों (जैसे नारद), राजर्षियों (जैसे जनक) और पुरुष-ऋषियों (जैसे याज्ञवल्क्य) के लिए श्राद्ध समारोह में; दिव्य प्राणियों के लिए श्राद्ध में, (आठ) वसुओं, (ग्यारह) रुद्रों और (बारह) आदित्यों (सूर्य) के लिए; पुरुषों के लिए श्राद्ध में, सनक, सनंदन, सनत्कुमार और सनत्सुजात (भगवान ब्रह्मा के पुत्र); तत्वों के लिए श्राद्ध में, पृथ्वी आदि पांच प्राथमिक तत्व, ज्ञानेंद्रियां जैसे आंख और जीवित प्राणियों के चार समूह;

पितरों के लिए श्राद्ध में, पिता, दादा और परदादा के लिए; स्त्री पितरों के श्राद्ध में माता, दादी और परदादी; स्वयं के श्राद्ध में स्वयं, पिता और दादा; यदि पिता जीवित हो तो पिता, स्वयं, दादा और परदादा को छोड़कर। सभी मामलों में वह ब्राह्मणों का सम्मान करेगा, तथा यह व्यवस्था करेगा कि हर बार दो ब्राह्मण उपस्थित रहें। आठ दिनों में या एक दिन में अपने वेद की शाखा से संबंधित मंत्रों के साथ किए जाने वाले आठ श्राद्धों के दौरान मृतक पितरों (पितृयज्ञ) के दैनिक तर्पण के समारोह के लिए निर्धारित तरीके से ब्राह्मणों का सम्मान करने के बाद, एक दिन में एक समारोह या एक ही दिन में आठ समारोहों के विकल्प का पालन करते हुए;

भोजन किए जाने तक नियमों के अनुसार (अनुष्ठान) पूरा करना; पितरों को चावल के गोले चढ़ाना और उपहार और पान के साथ प्रसन्न होकर ब्राह्मणों को विदा करना; शेष अनुष्ठान कार्यों की सफलता के लिए सात बाल बचाकर रखना; द्विज, शेष बचे हुए केशों और दाढ़ी के साथ सात या आठ बाल मुँड़वाकर, तथा शेष कर्मकाण्डों की सफलता के लिए नाखून कटवाकर, मुण्डन के पश्चात स्नान करके, जिसमें बगलों के बाल और सार्वजनिक बाल छूट जाते हैं, तथा (ऊपर वर्णित) सात बालों को सुरक्षित रखना, संध्याकालीन गोधूलि-पूजा पूर्ण करना, एक हजार बार गायत्री मंत्र का उच्चारण करना, वेदों का (दैनिक) अध्ययन-अध्यापन करना, अपना अनुष्ठानिक अग्नि तैयार करना, वेद की अपनी शाखा का पाठ पूर्ण करना, अग्नि में बताए अनुसार (अपनी वैदिक शाखा में) अग्नि में तब तक घी की आहुति देना, जब तक अग्नि और सोम प्रसन्न न हो जाएँ, आहुति देने का कार्य पूर्ण करना, तीन बार जौ का भोजन करना, आदि, जल (आचमन) पीकर अग्नि को प्रज्वलित रखना;

अग्नि के उत्तर में काले मृग की खाल ओढ़कर बैठना, जागते रहना, पुराणों का पाठ सुनना, रात्रि के चौथे पहर में स्नान करना, अग्नि में आहुति उबालना, पुरुष सूक्त का पाठ करते हुए सोलह बार चावल की आहुति देना, विराज अनुष्ठान करना (ताकि सभी पापों से मुक्त हो सकें), विधिपूर्वक जल पीना और नकद उपहार के साथ वस्त्र, सोना, बर्तन और गाय भेंट

करना, (पूर्ववर्ती अनुष्ठान पूरा करना), भगवान को विदा करना भगवान ब्रह्मा, जिनका आह्वान किया गया था, अग्नि को (प्रतीकात्मक रूप से) अपने शरीर पर उपस्थित होने का आह्वान करते हुए (मंत्रों का पाठ करते हुए) – 'मरुत (बिखरी हुई प्राणशक्ति को एकत्रित करें), इंद्र (ऐसा करें), बृहस्पति (ऐसा करें),यह अग्नि (ऐसा करें) साथ ही (दीर्घ) आयु, धन और बल प्रदान करें; वह मुझे दीर्घायु बनाए'।इस प्रकार।

'हे अग्नि, अपने उस शरीर के साथ आइए जो यज्ञ के योग्य है। (आप) मेरे स्वयं हैं, आप मेरे शरीर में चढ़ें, मेरे सामने मनुष्यों के लिए उपयुक्त महान धन लाएँ। यज्ञ का रूप धारण करके, आप मेरे शरीर में, अपने स्रोत में विश्राम करें। हे अग्नि, पृथ्वी से उत्पन्न होकर, आप अपने निवास के साथ आइए; अग्नि का ध्यान करते हुए, उसकी परिक्रमा करने और उसके सामने श्रद्धापूर्वक दंडवत करने के बाद उसे विदाई दें;

सुबह की गोधूलि की पूजा करें; सूर्य को नमस्कार करके, नाभि तक जल में बैठकर, हजार बार गायत्री मंत्र का जाप करके, आठ दिशाओं के रक्षक देवताओं को आदरपूर्वक अर्घ्य देकर, गायत्री को विदा करके, व्याहृतियों (भूर, भुव, सुव) के साथ गायत्री को मिलाकर, धीमे, मध्यम या उच्च स्वर में या मन ही मन (मंत्रों) का जाप करते हुए, 'मैं (अद्भुत जगत के) वृक्ष का उत्प्रेरक हूँ। (मेरे ज्ञान की) कीर्ति पर्वत की चोटी के समान ऊँची है।

मैं ऊँचा और पवित्र हूँ, सूर्य में (अमर आत्मा) के रूप में अमर प्राणी हूँ। (मैं) तेज से युक्त (आत्मा का) धन हूँ। सच्चे ज्ञान से युक्त होकर, मैं अपने अमर स्वभाव में लीन हूँ। इस प्रकार त्रिशंकु (साक्षात्कार प्राप्त आत्मा) के आत्म-साक्षात्कार (वेद पर आधारित) वचन'। 'वह (ॐ) जो वेदों में श्रेष्ठ और सर्वव्यापी है तथा जो अमृतमय शास्त्र से उत्पन्न हुआ है - वह (ॐ), (परम) स्वामी मुझे (सच्ची) बुद्धि प्रदान करे। हे प्रभु, मैं अमरता की ओर ले जाने वाली बुद्धि का स्वामी बनूँ; मेरा शरीर (उच्चतर जीवन में) बहुत सक्रिय हो; मेरी जीभ (वाणी) उच्चतम स्तर की मधुरता से युक्त हो। मैं अपने कानों से (वेदान्तिक ज्ञान की) सम्पत्ति को सुनूँ।

आप ब्रह्म के आवरण हैं, जो सांसारिक बुद्धि से छिपे हुए हैं (इस प्रकार कृपया मुझे फाड़ दें)। शास्त्र के अध्ययन से उत्पन्न मेरी बुद्धि की रक्षा करें'; 'मैं (अब) पत्नी की इच्छा, धन की इच्छा और सांसारिक वैभव की इच्छा से ऊपर उठ गया हूँ'। 'ॐ भूः, मैंने (संसार का) त्याग कर दिया है'। 'ॐ भुवः, मैंने त्याग कर दिया है'। 'ॐ सुवः, मैंने त्याग कर दिया है'। जल

पीना (औपचारिक रूप से, मंत्र का उच्चारण करते हुए) 'सभी प्राणियों को भय से मुक्ति मिले;

सब कुछ स्मृति से उत्पन्न होता है, स्वाहा'; हथेलियों को पूरी तरह से मोड़कर पूर्व दिशा में जल अर्पित करना और शिखा (सात बालों वाली) को उखाड़कर ॐ स्वाहा का उच्चारण करना; पवित्र धागा तोड़ना (मंत्रों का उच्चारण करते हुए) – 'पवित्र धागा अत्यंत पवित्र करने वाला है; यह सर्वप्रथम ब्रह्मा (प्रजापति) के लिए स्वाभाविक है; दीर्घायु को बढ़ावा देने में सबसे प्रमुख है, इसे धारण करो। उज्ज्वल (ताजा) पवित्र धागा (मेरे लिए) शक्ति और तेज हो;

'पवित्र धागा बाहर न रहने दें; आप (हृदय के) मध्य में प्रवेश करके, मुझे अत्यंत पवित्र करने वाला यश, बल, ज्ञान और वैराग्य, और (सच्ची) बुद्धि प्रदान करें'। वह अपनी हथेलियों को मोड़कर जल अर्पित करेगा, और (पवित्र धागा) जल में आहुति देगा, (मंत्र का उच्चारण करते हुए) 'ओम भूः, (प्रार्थना करें) समुद्र तक पहुँचें, स्वाहा'।

तीन बार दोहराते हुए, 'ओम भूः, मैंने त्याग किया है,ओम भुवः, मैंने त्याग किया है,ओम सुवः, मैंने त्याग किया है', वह औपचारिक रूप से पानी पीएगा और 'ओम भूः स्वाहा' का उच्चारण करते हुए अपने वस्त्र और कमरबंद को पानी में त्याग देगा। खुद को याद दिलाते हुए कि उसने सभी (सांसारिक) गतिविधियों से विराम ले लिया है और निर्वस्त्र होकर वह अपने हाथ ऊपर उठाकर और अपने बारे में सोचते हुए उत्तर की ओर चल पड़ेगा।

IV-38. यदि, जैसा कि पहले कहा गया है, वह एक प्रबुद्ध संन्यासी है, तो वह अपने गुरु से प्रणव (ओम) और महान शास्त्रों (जैसे 'तू ही वह है') पर शिक्षा प्राप्त करेगा, एक भिक्षु के रूप में आसान चरणों में यात्रा करेगा, (यह विश्वास करते हुए) कि उसके अलावा कोई भी मौजूद नहीं है और फलों, (खाद्य) पत्तियों और पानी पर निर्वाह करेगा और इस प्रकार पहाड़ों, जंगलों और मंदिरों में विचरण करेगा।

फिर निर्वस्त्र होकर, पूरी पृथ्वी पर यात्रा करना छोड़ कर, उसका हृदय हमेशा आनंद के अनुभव से भरा हुआ, (सांसारिक) कार्यों के पूर्ण विच्छेद से लाभान्वित, फलों, रसदार छालों, पत्तियों, बल्बनुमा जड़ों और पानी के माध्यम से जीवन को केवल मोक्ष प्राप्त करने के लिए बनाए रखते हुए, वह किसी पर्वत गुफा में मुक्ति मंत्र (ओम) का स्मरण करते हुए अपने शरीर को त्याग देगा।

यदि वह आगे अध्ययन करने की इच्छा रखने वाला एक एकान्तवासी (विविधशा संन्यासी) है, तो उसे अपने गुरु आदि विद्वान ब्राह्मणों के साथ आगे बढ़ना चाहिए, तथा एक छड़ी, कमरबंद, लंगोटी, वस्त्र और अन्य सामान प्राप्त करना चाहिए।

अपने गुरुओं द्वारा अर्पित जलपात्र लेकर, 'प्रार्थना करें, प्रतीक्षा करें, धन्य हैं, छड़ी, (गेरू) वस्त्र और जलपात्र लें', वह आध्यात्मिक मार्गदर्शक की उपस्थिति में प्रणव (ओम) और महान शास्त्रों (महावाक्यों) में शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाएगा। फिर वह (प्रतीकात्मक) बांस की छड़ी प्राप्त करेगा, जो ऊपर की नोक से कटी हुई नहीं है, समान आकार की है, चिकनी है, काले रंग से मुक्त है और शुभ दिखती है, पहले औपचारिक रूप से पानी पीएगा और (मंत्र दोहराएगा), 'आप मेरे मित्र हैं।

मेरी ताकत की रक्षा करें। आप, मेरे मित्र, इंद्र के (हथियार) वज्र हैं, (राक्षस) वृत्र का नाश करने वाले हैं। आप मेरी रक्षा करें। जो पाप है उसे रोकें। तत्पश्चात् वह जलपात्र ग्रहण करके पहले प्रणव (तत्पश्चात् मंत्र) 'तुम ही जगत के प्राण हो, तुम ही जल के पात्र हो, तुम ही सदैव शीतल रहते हो' का उच्चारण करेगा। कमरबंद, लंगोटी तथा गेरूआ वस्त्र (उचित क्रम में मंत्र का उच्चारण करते हुए) ग्रहण करेगा, 'कमरबंद, लंगोटी का आधार, ॐ; गुप्तांगों को ढकने वाला, लंगोटी, ॐ; शीत, वायु तथा ताप से रक्षा करने वाला वस्त्र, ॐ;' तथा जल के औपचारिक सेवन से पूर्व योगवस्त्र (ध्यान के लिए प्रयुक्त वस्त्र) धारण करके, वह अपने जीवन के चरण (अर्थात तप) के नियमों का उत्साहपूर्वक पालन करेगा, यह मानते हुए कि उसने (मुक्ति की खोज में) अपने को पूर्ण कर लिया है।

इस प्रकार उपनिषद् का चौथा उपदेश समाप्त होता है।

1. तब नारद जी ने ब्रह्मा जी से पूछा: 'प्रभु, आपने कहा है कि त्याग का अर्थ है सभी क्रियाकलापों से विरत होना। फिर आपने कहा है कि मनुष्य को अपने जीवन के चरण में आचरण में उत्साही होना चाहिए।' तब ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया: 'देहधारी प्राणी के लिए जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और चतुर्थ चरण (तुरीय) ये चार चरण हैं। इनके प्रभाव में आकर जो लोग कर्म, ज्ञान और वैराग्य में लगे रहते हैं, वे अपने आचरण में उनके अनुरूप होते हैं।' 'यदि ऐसा है, प्रभु, त्याग के कितने प्रकार हैं? उनके अभ्यास में क्या अंतर हैं? कृपया हमें पूरी तरह से समझाएँ।' इस पर सहमति जताते हुए ब्रह्मा जी ने उनसे कहा (इस प्रकार)।

2. यदि प्रश्न उठाया जाए कि 'त्याग के प्रकारों में आचरण किस प्रकार भिन्न होता है? (उत्तर है) कि त्याग वास्तव में त्याग है। केवल एक ही है कि वह ज्ञान की अपूर्णता (विद्वत् संन्यास), असमर्थता (विविदिषा-संन्यास) और कर्म में असफलता (अतुरा-संन्यास) के कारण त्रिगुणात्मक हो जाता है और वैराग्य के कारण त्याग, बुद्धि के कारण त्याग, बुद्धि के कारण त्याग और वैराग्य तथा कर्म के त्याग की चार अवस्थाओं को प्राप्त होता है।

V-3. ऐसा ही है। दुष्ट वासना के अभाव से, सुख के विषयों के प्रति उदासीनता से और पूर्वकृत शुभ कर्मों के प्रभाव से जो संसार का त्याग करता है, वह वैराग्य के कारण त्यागी कहलाता है।

V-4. शास्त्रों के ज्ञान के कारण, संसार के पाप-शुभ अनुभवों को सुनकर, दृश्य जगत से विमुख होकर, क्रोध, ईर्ष्या, असहिष्णुता, अहंकार और अभिमान से युक्त समस्त संसार से विरत होकर; स्त्री की इच्छा, धन की इच्छा, सांसारिक यश की इच्छा, शास्त्रों और लोक-सम्मान के प्रति अत्यधिक आदर, इन सब सामान्य बातों को उल्टी के समान त्यागने वाला, चारों अनुशासनों (जैसे विवेक, स्थायी और अनित्य वस्तुएँ) से युक्त - जो इस प्रकार त्याग करता है, वही ज्ञानपूर्वक त्यागी है।

श्लोक 5. जो व्यक्ति सभी शास्त्रों का यथाविधि अध्ययन करके तथा सभी सांसारिक जीवन का अनुभव करके ज्ञान-वैराग्य तथा आत्म-ध्यान से प्रभावित होकर वस्त्रहीन हो जाता है, वही ज्ञान-वैराग्य से त्यागी है। श्लोक

6. ब्रह्मचर्य का अनुशासित अध्ययन पूरा करके, गृहस्थ होकर, वनवासी अवस्था को प्राप्त करके, जो वैराग्य के अभाव में भी जीवन की अवस्थाओं के अनुसार संसार का त्याग करता है, वह (सांसारिक) कर्मों का त्यागी है।
V-7. ब्रह्मचर्य में संसार का त्याग करना और त्याग में निर्वस्त्र हो जाना - ऐसा वैराग्य के कारण त्यागी है। (शास्त्रीय) विद्या के कारण त्यागी, ज्ञान के कारण त्यागी है। अपूर्ण ज्ञान के कारण त्यागी, (सांसारिक) कर्मों का त्यागी है।

V-8. कर्मों का त्याग दो प्रकार का होता है: (किसी) कारण से त्याग और (आकस्मिक) कारण के बिना त्याग। कारण सहित त्याग व्यथित है (और मृत्यु के निकट है); अकारण त्याग नियमित क्रम में त्याग है पीड़ित व्यक्ति सभी प्रारंभिक अनुष्ठानों को छोड़ देता है; यह प्राण के प्रस्थान के समय का त्याग है; यह (किसी) कारण से होने वाला त्याग है। शरीर से

स्वस्थ (परन्तु यह विश्वास) कि निर्मित वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं और इसलिए शरीर आदि सभी वस्तुएँ त्यागने योग्य हैं:

V-9. 'जीवात्मा, ब्रह्म से भिन्न नहीं, शुद्ध आकाश में व्याप्त, सूर्य (वसु), आकाश में स्थित, अग्नि जो (ब्रह्मांड की) वेदी में स्थित है, अतिथि, (यज्ञ के) घर में रहने वाला, मनुष्यों में रहने वाला, श्रेष्ठ (देवताओं) में रहने वाला, सत्य में विश्राम करने वाला, आकाश में (सूर्य के रूप में) रहने वाला, जल में उत्पन्न, पृथ्वी पर (अनाज आदि के रूप में) उत्पन्न, (यज्ञ के) सत्य के रूप में उत्पन्न, पर्वतों में (नदियों के रूप में) उत्पन्न, यह सत्य (ब्रह्म) (वास्तव में) महान है।

V-10. ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य सब कुछ अनित्य है, ऐसा मानकर वह त्याग करता है, वह त्याग बिना किसी कारण के त्याग है।

V-11. त्याग छः प्रकार का होता है - कुटीचक, बहुदक, हंस, परमहंस, तुरीयातीत और अवधूत।

V-12. कुटीचक तपस्वी जटा और जनेऊ धारण करता है, दण्ड और जलपात्र रखता है, लंगोटी और पैबंद लगा हुआ वस्त्र पहनता है, पिता, माता और गुरु की सेवा में तत्पर रहता है, पिठ्ठर, खनित्र और शिखिण के लिए मंत्रों का सहारा लेता है, एक ही स्थान पर भोजन करने का आदी होता है, माथे पर सफेद चन्दन का लंबवत चिन्ह रखता है और तीन गुना दण्ड धारण करता है।

V-13. बहुदक तपस्वी जटा आदि तथा चिथड़ेदार वस्त्र धारण करता है, माथे पर पवित्र भस्म की तीन क्षैतिज रेखाओं से बना चिह्न लगाता है, कुटीचक की तरह सभी को समान रूप से देखता है तथा मधुमक्खी की तरह (विभिन्न) स्थानों से एकत्रित किए गए आठ कौर भोजन पर निर्वाह करता है।

V-14. हंस तपस्वी जटाधारी होता है, माथे पर पवित्र भस्म का क्षैतिज चिह्न या चन्दन का लंबवत चिह्न लगाता है, मधुमक्खी की तरह बिना पूर्व-निर्धारण के एकत्रित किए गए भोजन पर निर्वाह करता है तथा लंगोटी तथा खंडतुण्ड (मुंह को ढकने वाला कपड़ा) पहनता है।

V-15. परमहंस तपस्वी कोई जनेऊ या जनेऊ नहीं पहनते, केवल रात्रि में लिया गया भोजन खाते हैं और पांच घरों से इकट्ठा किया जाता है, उनका हाथ भिक्षापात्र का काम करता है, एक लंगोटी और एक वस्त्र पहनते हैं, एक

बांस का डंडा रखते हैं या एक ही वस्त्र पहनते हैं, पवित्र भस्म (पूरे शरीर पर) लगाते हैं और सब कुछ त्याग देते हैं।

V-16. तुरीयातिता तपस्वी 'गौमुखी' होते हैं (हाथों का उपयोग किए बिना यादृच्छिक रूप से भोजन करते हैं), (केवल) फल खाते हैं या यदि वे पका हुआ भोजन लेते हैं, तो तीन घरों से प्राप्त करते हैं (अर्थात तीन कौर), उनका शरीर केवल जीवित होता है, वे निर्वस्त्र होते हैं और उनका शरीर ऐसा होता है जैसे कि वह एक शव हो (निर्विकल्प-समाधि द्वारा अचेतनता के कारण)।

V-17. अवधूत तपस्वी किसी नियम का पालन नहीं करता, अजगर की तरह सभी वर्गों के लोगों से प्राप्त भोजन पर निर्वाह करता है, सिवाय उन लोगों के जो दोषी या पतित हैं, और केवल अपने आत्मसाक्षात्कार के लिए समर्पित रहता है।

18. यदि कोई (शारीरिक दुर्बलताओं के कारण) (महान्) क्लेश में रहता है, तो उसे (गुरु से प्रणव और महावाक्यों की शिक्षा प्राप्त करके) उचित क्रम में संसार का त्याग करना चाहिए।

19. कुटीचक, बहुदक और हंस तपस्वियों के लिए कुटीचकों के त्याग की विधि उसी प्रकार लागू होती है, जैसे ब्रह्मचर्य आदि चरणों को पूरा करने के बाद त्याग को अपनाया जाता है, (जो चौथे चरण (अर्थात त्याग) पर समाप्त होता है।

20. नियम यह है कि परमहंस आदि तीनों के पास कमरबंद, लंगोटी, वस्त्र, जलपात्र या लाठी नहीं होती; वे सभी वर्गों के लोगों से भिक्षा मांगेंगे और वे वस्त्रहीन रहेंगे। संन्यास की अवस्था में भी वे पूर्ण तृप्ति होने तक (शास्त्र) का अध्ययन कर सकते हैं और उसके बाद कमरबंद, लंगोटी, लाठी, वस्त्र और जलपात्र को जल में त्याग सकते हैं। फिर वस्त्रहीन होने पर पैबंद लगे वस्त्र का कोई चिह्न भी नहीं रहेगा। वे न तो अध्ययन करेंगे और न ही (शास्त्र) की व्याख्या करेंगे।

उनके लिए सुनने योग्य कुछ भी नहीं है। प्रणव (ओम) के अलावा वे तर्कशास्त्र का कोई विज्ञान नहीं सीखेंगे, यहां तक कि मौखिक अधिकार (अर्थात वेद) भी नहीं। वे (पवित्र ग्रंथों) की व्याख्या करते हुए अधिक नहीं बोलेंगे, वे अपने शब्दों से महान लोगों के शब्दों को मूर्ख नहीं बनाएंगे, वे

अपने हाथों से संकेत आदि करके बातचीत नहीं करेंगे, और न ही वे संचार के अन्य विशेष साधनों का उपयोग करेंगे।

वे निम्न वर्ग के लोगों, महिलाओं, पतितों और (विशेष रूप से) अपने मार्ग में महिलाओं से बात नहीं करेंगे। तपस्वी के लिए न तो देवताओं की पूजा करना संभव है, न ही त्योहारों के दौरान (देवताओं के) दर्शन करना और न ही किसी यात्रा पर जाना संभव है।

तीर्थयात्रा। 21. फिर से विभिन्न प्रकार के तपस्वियों के बारे में। कुटीचक को एक घर से भिक्षा मिलती है; बहुदक को मधुमक्खी की तरह शहद इकट्ठा करने की तरह याद्दच्छिक रूप से; हंस को आठ घरों से आठ कौर, परमहंस को पाँच घरों से पाँच कौर, हाथ ही भिक्षापात्र है; तुरीयातीत को गोमुख में डाले गए फल मिलते हैं; अवधूत को अजगर की तरह सभी वर्गों के लोगों से भोजन मिलता है। तपस्वी को एक ही स्थान पर कई रातें नहीं रुकना चाहिए। उसे किसी को प्रणाम नहीं करना चाहिए। तुरीयातीत और अवधूत से कोई भी श्रेष्ठ नहीं है।

जो आत्मा को नहीं जानता, वह सबसे बड़ा होने पर भी सबसे छोटा है। वह नदी को तैरकर पार नहीं करेगा, न ही पेड़ पर चढ़ेगा, न ही गाड़ी में यात्रा करेगा। वह क्रय-विक्रय नहीं करेगा, न ही वस्तु-विनिमय करेगा। वह दिखावा नहीं करेगा, न ही झूठ बोलेगा। तपस्वी के लिए कोई कर्तव्य नहीं है। यदि है, तो उसे धार्मिक अनुष्ठान करने वाले लोगों के साथ मिलना-जुलना होगा (जो अवांछनीय है)। इसलिए तपस्वी को (केवल) ध्यान आदि का अधिकार है।

वि-22. आपातकाल में त्यागी और कुटीचक तपस्वी क्रमशः भूर और भुवर लोकों को प्राप्त करते हैं। बहुदक तपस्वी स्वर्ग (स्वर्ग) को प्राप्त करता है। हंस मुनि तपोलोक (सबसे उच्च स्वर्ग) को प्राप्त करता है। परमहंस ब्रह्म और सत्य (सत्यलोक) के निवास को प्राप्त करता है। तुरीयतीत और अवधूत ततैया और कृमि की उक्ति के अनुसार आत्मा का गहन ध्यान करके (व्यक्तिगत) आत्मा में परम सुख प्राप्त करते हैं।

V-23. 'मृत्यु के समय शरीर त्यागते समय जो भी अवस्था स्मरण की जाती है, (मृत्यु के पश्चात) उसे वही प्राप्त होती है।
शास्त्र की शिक्षा कभी मिथ्या नहीं होती।

V-24. इस प्रकार (विधि) को जानकर, आत्मा के स्वरूप की जांच किए बिना, (तपस्वी) किसी अन्य साधना में अपने को नहीं लगाएगा। ऐसी साधना के फलस्वरूप संबंधित लोकों (जैसे स्वर्ग आदि) की प्राप्ति होती है। ज्ञान और वैराग्य से संपन्न व्यक्ति को अपने में ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है, इसलिए किसी अन्य साधना का पालन नहीं करना पड़ता। (किसी अन्य) साधना का पालन (परम सुख प्राप्त करने के लिए) व्यर्थ होगा।

देहधारी (आत्मा) के लिए (जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति ये तीन अवस्थाएं हैं; जाग्रत अवस्था में (उसमें) व्यक्तित्व (विश्व) को देखने की क्षमता होती है; स्वप्न अवस्था में, प्रकाश का सूक्ष्म सार (तैजस); सुषुप्ति अवस्था में, व्यक्तित्व (प्रज्ञा) पर निर्भर बुद्धि। अवस्था में भेद के कारण, बद्ध भगवान (ईश्वर) में भेद होता है। प्रभाव में भेद के कारण, कारण में भेद होता है। इन (तीन अवस्थाओं) में (ऐसे भेदों) का भौतिक कारण चौदह ज्ञानेन्द्रियों की बाह्य और आंतरिक क्रियाशीलता है।

मानसिक अवस्थाएँ चार हैं, मन (मनस), बुद्धि (बुद्धि), अहंकार (अहंकार) और हृदय (चित्त)। मानसिक अवस्थाओं की क्रियाशीलता में भेद के कारण अभ्यासों में स्पष्ट भेद होता है।

V-25. '(व्यक्तिगत आत्मा को) जाग्रत जानो जब वह आँख में रहता है; जब कंठ में रहता है वह स्वप्न (अवस्था) में प्रवेश करता है; वह हृदय में होता है गहरी नींद में; तुरीय को अविनाशी ब्रह्म जानकर जो मनुष्य जो कुछ भी सुना या देखा जाता है, आदि सब बातों से अचेतन रहता है, वह सुषुप्ति में भी जाग्रत अवस्था में रहता है। स्वप्नावस्था में भी उसकी ऐसी ही स्थिति रहती है। शास्त्र कहते हैं कि वह 'जीवित रहते हुए मुक्त' है।

सभी शास्त्रों का अर्थ यही है कि ऐसा पुरुष ही मोक्ष प्राप्त करता है। भिक्षुक इस लोक या परलोक (अर्थात स्वर्ग) की कामना नहीं करता। यदि उसकी ऐसी अपेक्षा है, तो वह उसी के अनुसार एक हो जाता है। आत्म-अनुसंधान के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों के आचरण से वह व्यर्थ कार्य करता है, जैसे ऊँट केसर के फूलों का बोझ उठाता है। (उसके लिए) न तो योग-विज्ञान का अभ्यास है, न ही भगवान की विद्या का अनुसरण है।

सांख्य, मंत्र और अनुष्ठानों का प्रयोग। यदि कोई तपस्वी (आत्मसाक्षात्कार के अलावा) अन्य विद्या का अभ्यास करता है, तो वह शव को सजाने के समान है। जैसे मोची वैदिक अनुष्ठानों से दूर रहता है, वैसे ही वह (ब्रह्म-विद्या के अभ्यास से) दूर रहता है। उसे प्रणव को दोहराने में अपने

को समर्पित नहीं करना है। वह जो भी कार्य करता है, उसे उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है।

इसलिए अरंडी के तेल में झाग की तरह सब (अनुष्ठानों) को त्यागकर, तथा पूर्ण मन को वश में करके तथा हाथ को (भिक्षापात्र) की तरह उपयोग करते हुए, निर्वस्त्र तपस्वी को उसमें (आत्मसाक्षात्कार में) लगे हुए देखकर, भिक्षुक को (सचमुच) (सांसारिक आसक्तियों) का (त्याग) करना चाहिए। बालक, पागल या प्रेत की तरह भिक्षुक को न तो मृत्यु की इच्छा करनी चाहिए, न जीवन की, बल्कि आज्ञा की प्रतीक्षा करने वाले सेवक की नीति के अनुसार केवल समय का निरीक्षण करना चाहिए। यदि कोई तपस्वी धैर्य, बुद्धि, वैराग्य, शांति आदि गुणों से रहित होकर केवल भिक्षा पर रहता है, तो वह तपस्वियों के आचरण के लिए अभिशाप है।

V-28. (प्रतीकात्मक) दण्ड धारण करने से, (सिर मुंडाने से), (विशेष) वस्त्र पहनने से, (साधुत्व का) पाखण्ड करने से मुक्ति नहीं मिलती।

V-29. जो ज्ञानरूपी दण्ड धारण करता है, उसे 'एकदण्डवाला' कहा जाता है। जो तपस्वी लकड़ी लेकर चलता है, सब प्रकार का भोजन करता है और बुद्धि से रहित है, वह महारौरव नामक भयंकर नरक में जाता है।

V-30. (मठ में) स्थिर स्थिति को महान ऋषियों ने सूअर के मल के समान कहा है;इसलिए, उसे छोड़कर तपस्वी को (परिश्रमी) कीड़े की तरह घूमना चाहिए।

V-31. तुरीयातीत तपस्वी को बिना मांगे ही भोजन और वस्त्र ग्रहण करना चाहिए तथा दूसरों की इच्छा से ही उन्हें ग्रहण करना चाहिए। वह वस्त्रहीन रहेगा तथा दूसरों की इच्छा से ही स्नान करेगा।

V-32. जिस तपस्वी का आचरण स्वप्नावस्था तथा जाग्रतावस्था में भी अच्छा सामंजस्य रखता है, वह श्रेष्ठ माना जाता है; वह वेदान्त का पालन करने वालों में सर्वश्रेष्ठ है।

V-33. भिक्षा न मिलने पर उसे शोक नहीं करना चाहिए; भिक्षा मिलने पर उसे हर्ष नहीं होना चाहिए। भौतिक वस्तुओं के प्रति आसक्ति से दूर रहकर वह केवल अपने आपको (उच्च उद्देश्य के लिए) जीवित रखेगा।

V-34. वह सभी दशाओं में (प्रशंसा करने वाले शिष्यों द्वारा) सम्मानित होने से कतराएगा; जो तपस्वी ऐसे सम्मान का स्वागत करता है, वह मुक्त होते हुए भी (सांसारिक बंधनों से) बंध जाता है।

V-35. तपस्वी को केवल जीविका के लिए ही, अर्थात् द्विजों के घर में, अग्नि-अनुष्ठान के पश्चात् भोजन करने के पश्चात्, उचित समय पर भिक्षा मांगनी चाहिए। 36. हाथ को भोजन का पात्र बनाकर, तपस्वी को दिन में एक बार से अधिक भिक्षा नहीं मांगनी चाहिए। वह खड़े होकर भी भोजन कर सकता है, या चलकर भी भोजन कर सकता है। बीच में जल नहीं पीना चाहिए।

37. (तपस्वी) समुद्र की भाँति शुद्ध विचारों वाले (सदाचार की) मर्यादा में रहते हैं। ये महापुरुष सूर्य की भाँति अपने आचरण का परित्याग नहीं करते।

38. जब तपस्वी गाय की भाँति केवल मुख से भोजन ग्रहण करता है, तब वह सब प्राणियों में समभाव रखता है; तब वह अमरत्व को प्राप्त होता है।

39. भिक्षा के लिए निषिद्ध न किए गए घर में जाना, निषिद्ध घर से दूर रहना। द्वार खुले होने पर घर में प्रवेश करना, द्वार बंद होने पर घर की ओर कभी नहीं जाना।

40. धूल से ढके हुए निर्जन घर में रात भर रहना, अथवा सब प्रकार की रुचि-अरुचि त्यागकर वृक्ष के नीचे आश्रय लेना।

41. सूर्य अस्त होने पर तपस्वी को जहां हो वहीं सो जाना चाहिए, अग्नि और निवास से मुक्त हो जाना चाहिए। जो भी मिलता है, उसी पर निर्वाह करना चाहिए, संयमी और इन्द्रियों को वश में करके।

42. मनुष्य के घर से निकलकर वन में जाकर, ज्ञान और इन्द्रियों को वश में करके, मृत्यु के समय की प्रतीक्षा करते हुए विचरण करने वाला तपस्वी ब्रह्म में लीन होने के योग्य हो जाता है।

43. जो मुनि सब प्राणियों को भय देने से विरत होकर विचरण करता है, उसे किसी भी प्राणी से भय नहीं होता।

44. अहंकार और दंभ से रहित, विपरीतों के प्रभाव से रहित, समस्त संशय दूर हो जाने वाला, (तपस्वी) कभी क्रोध नहीं करता, न किसी से द्वेष करता है, न मिथ्या वचन बोलता है।

V-45. पवित्र स्थानों में विचरण करने वाला, प्राणियों को कष्ट न पहुँचाने वाला तथा उचित समय पर दान ग्रहण करने वाला,(मुनि) ब्रह्मलीन होने के योग्य होता है।

46. वह कभी भी वनवासियों (वानप्रस्थों) और गृहस्थों के साथ संबंध नहीं रखेगा। वह चुपचाप विचरण करने की इच्छा रखेगा। किसी भी प्रकार का आनंद उसके अंदर प्रवेश नहीं करेगा। वह सूर्य द्वारा बताए गए मार्ग पर कीड़े की तरह पृथ्वी पर (बिना किसी जल्दबाजी के) चलेगा।

47. आशीर्वाद देने वाले, हानि पहुंचाने वाले तथा संसार के कल्याण के लिए किए जाने वाले कर्म (तपस्वी) न तो करेगा और न ही दूसरों से कराएगा।

48. वह विधर्मी सिद्धांतों से आसक्त नहीं होगा, न ही जीवनयापन के लिए कोई साधन अपनाएगा। वह किसी भी प्रकार के तर्क-वितर्क में शामिल नहीं होगा, न ही किसी वाद-विवाद में किसी पक्ष का पक्ष लेगा।

49. वह न तो शिष्यों का समूह बनाएगा, न ही बहुत अधिक पुस्तकों का अध्ययन करेगा। वह न तो किसी भाष्य का उपयोग करेगा और न ही कहीं उद्घाटन समारोह आरंभ करेगा।

किसी भी विशिष्ट प्रतीक या उद्देश्य को प्रदर्शित किए बिना, तपस्वी लोगों के सामने अपने को पागल, बालक या गूंगा व्यक्ति के रूप में दिखाएगा, यद्यपि वह (सर्वथा) बुद्धिमान है।

V-51. वह न तो कुछ करेगा, न ही कुछ बोलेगा। उसके मन में अच्छे या बुरे कोई विचार नहीं होंगे। आत्म-आनंदित होकर, मुनि इस जीवन-पद्धति का पालन करते हुए विचरण करेगा।

V-52. वह आसक्ति से मुक्त, अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हुए, आत्म-संयमी, समभाव से खेलते हुए, देश में अकेला विचरण करेगा।
V-53. बुद्धिमान (किन्तु) बालक के समान चंचल, पारंगत किन्तु मंदबुद्धि, (तपस्वी) यात्रा करेगा।विद्वान होकर, वह पागल की भाँति बोल

सकता है। गाय की भाँति भोजन की खोज करता हुआ वह उपनिषदों के मार्ग पर चलेगा।

V-54-55. दुष्ट लोगों द्वारा उपेक्षित, अपमानित, धोखा खाया हुआ, ईर्ष्यालु, पीटा हुआ, बाधा पहुँचाया हुआ या भोजन से वंचित करके कष्ट पहुँचाया हुआ अथवा अज्ञानियों द्वारा मल-मूत्र फेंके जाने और नाना प्रकार से हिलाए जाने पर भी कल्याण चाहने वाला किन्तु संकट में पड़ा हुआ तपस्वी, आत्मबल से अपने को ऊँचा उठाता है। तपस्वी को प्राप्त सम्मान उसके तप (योग) धन की बड़ी हानि करता है, किन्तु अज्ञानियों द्वारा उपेक्षित होने पर भी वह योगाभ्यास में सफलता प्राप्त करता है (क्योंकि वह परीक्षा द्वारा अहंकार से मुक्त हो जाता है)।

योगी सदाचार का उल्लंघन किए बिना इस प्रकार विचरण कर सकता है कि (सामान्य) लोग उसका उपेक्षण करें, किन्तु वे कभी उसका संग न करें। ध्यान में लीन योगी गर्भ, अण्ड आदि प्राणियों को वचन, विचार या शारीरिक क्रिया द्वारा कोई हानि नहीं पहुँचाएँगे। वह सब प्रकार की संगति से दूर रहेगा।

वि-५९. काम, क्रोध, मान, लोभ, मोह आदि सब दोषों का त्याग करके भिक्षुक भय से मुक्त रहेगा।

वि-६०. भिक्षा में दिया हुआ अन्न खाना, मौन रहना, तप, विशेष रूप से ध्यान, सम्यक् ज्ञान और वैराग्य धारण करना - ये भिक्षुक के कर्तव्य माने गए हैं।

वि-६१. गेरूआ वस्त्र धारण करके, सदैव ध्यानयोग में तत्पर रहकर, वह किसी गांव के बाहर, किसी वृक्ष की छाया में अथवा किसी मंदिर में रात्रि विश्राम कर सकता है। वह सदैव भिक्षा पर निर्वाह करेगा तथा कभी भी अकेले घर से प्राप्त भोजन नहीं खाएगा।
वि-६२. एक बुद्धिमान व्यक्ति (संन्यास ग्रहण करने से पहले) तब तक सदैव भ्रमणशील रहेगा जब तक कि उसके मन की शुद्धि न हो जाए; तब शुद्धचित्त वाला व्यक्ति सांसारिक जीवन का त्याग करके इधर-उधर विचरण करेगा।

वि-६३. वह बाह्य तथा आन्तरिक रूप से सर्वत्र भगवान (विष्णु) का दर्शन करता हुआ, वायु के समान शान्त तथा अशुद्धता से रहित होकर हर समय विचरण करेगा।

V-64. सुख तथा दुःख में समभाव रखने वाला, धैर्यवान तथा क्षमाशील, जो हाथ में आये उसे खाने वाला, द्विजों, गाय, घोड़े तथा मृग आदि को समान भाव से देखता हुआ (वह यात्रा करेगा)।

V-65. भगवान विष्णु (जो) परम आत्मा तथा ईश्वर (ईशान) का ध्यान करते हुए, परम आनन्द का चिन्तन करते हुए तथा यह स्मरण करते हुए कि मैं ही ब्रह्म हूँ (वह समय व्यतीत करेगा)।

V-66. इस प्रकार बुद्धिमान होकर, मन को पूर्णतया वश में करके, कामनाओं से विमुख होकर, वस्त्रहीन होकर (अवधूत बनकर), मन, वचन और कर्म से समस्त सांसारिक कार्यों को त्यागकर तथा मायामय जगत से मुख मोड़कर, (ऋषि) ततैया और कृमि की उक्ति के अनुसार अपने आत्म-ध्यान द्वारा (सांसारिक बंधनों से) मुक्त हो जाता है। इस प्रकार उपनिषद् का पांचवां अध्याय समाप्त होता है।

VI-1. तब नारद ने पितामह (ब्रह्मा) से पूछा: 'प्रभु, (ऋषि मोक्ष प्राप्त करते हैं) उस साधना से, ततैया और कीड़े की कहावत के अनुसार। वह साधना कैसे (सम्पन्न) होती है?' भगवान ब्रह्मा ने उनसे कहा: 'वह सत्य वचन से जीवन व्यतीत करेगा, उसका शरीर ज्ञान और वैराग्य (की शक्ति) से विशिष्ट बना रहेगा।'

VI-2. बुद्धि (बुद्धिमान व्यक्ति का) शरीर है; जान लो कि वैराग्य उसका जीवन है; शांति और आत्म संयम उसकी आँखें हैं; मन उसका चेहरा है; बुद्धि उसकी अंगुल (काल) (जो सोलह भागों से मिलकर बनी है, प्राण से शुरू होकर नमन पर समाप्त होती है); पच्चीस तत्व उसके अंग हैं, (जागने आदि की) अवस्थाएँ, उसके पाँच मूल तत्व (पृथ्वी, जल आदि); कर्म, भक्ति, ज्ञान और वैराग्य उसकी जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति और चतुर्थ अवस्था (तुरीय) की शाखाएँ (अर्थात् हाथ) हैं; चौदह इन्द्रियाँ कीचड़ में स्थित (अस्थिर) स्तम्भों के समान हैं। फिर भी, जैसे नाविक कीचड़ से भरी हुई नाव को सुरक्षित निकाल लेता है, जैसे महावत हाथी को (अड़ियल) बना लेता है, वैसे ही वैराग्यवान पुरुष अपनी बुद्धि से इन इन्द्रियों को अपने वश में कर लेगा; और 'मैं' (अर्थात् आत्मा) के अतिरिक्त अन्य सब को मिथ्या और क्षणभंगुर समझकर अपने को सदैव ब्रह्म कहेगा। अपने आत्मा के अतिरिक्त उसे जानने योग्य और कुछ नहीं है।

इस प्रकार 'जीवित रहते हुए मुक्त' (जीवनमुक्त) होकर वह अपने को पूर्ण कर लेने वाले के समान जीता है। वह कभी नहीं कहेगा कि 'मैं ब्रह्म नहीं हूँ', बल्कि जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्थाओं में निरंतर 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा अनुभव करेगा; (फिर) तुरीय अवस्था में पहुँचकर वह तुरीयतीत अवस्था में लीन हो जाएगा।

छठी-3. (तुरीय की चौथी अवस्था में) दिन जाग्रत अवस्था है, रात्रि स्वप्नावस्था है और मध्य रात्रि सुषुप्ति की अवस्था है। एक अवस्था में चार अवस्थाएँ होती हैं। चौदह इन्द्रियों में से, जिनमें से प्रत्येक के अधीन एक-एक कार्य होता है, नेत्र आदि के कार्य (अब वर्णित होंगे)। नेत्र से रूप का, कानों से शब्द का, जीभ से स्वाद का, नाक से गंध का, वाणी से स्पष्ट अभिव्यक्ति का, हाथ से पकड़ का, पैरों से गति का, गुदा से मलत्याग का, जननेन्द्रियों से काम-सुख का और त्वचा से स्पर्श का।

विषयों को समझने वाली बुद्धि इन्हीं (ऊपर वर्णित) पर आश्रित है। (वह) बुद्धि से समझती है। मन (चित्त) से चेतन होती है। वह अहंकार से अभिमानी हो जाता है। इनको विशेष रूप से निर्मित करके जीव शरीर के सचेतन स्वामित्व के कारण ऐसा बन जाता है। जीव शरीर में उसी प्रकार व्याप्त रहता है, जैसे गृहस्थ अपने घर में उसके स्वामित्व के प्रति सचेत होकर विचरण करता है। (हृदय कमल में) मुख (चेतना के) का स्वरूप समझकर अर्थात् वह पूर्व पंखुड़ी में सत्व, दक्षिण-पूर्व में निद्रा और आलस्य, दक्षिण में क्रूरता, दक्षिण-पश्चिम में पाप, पश्चिम में क्रीड़ा, उत्तर-पश्चिम में भ्रमण की प्रवृत्ति, उत्तर में शांति, उत्तर-पूर्व में ज्ञान, पेरिकार्प में वैराग्य और तंतुओं में आत्मा का विचार अनुभव करता है (ज्ञान के उदय के साथ ही ऋषि को केवल तुरीयातीत ब्रह्म की चेतना रह जाती है)। जीवन की अवस्था में प्रथम जाग्रत अवस्था, दूसरी स्वप्नावस्था, तीसरी सुषुप्ति, चौथी तुरीय अवस्था, तथा चौथी के परे की अवस्था (तुरीयतीता) होती है, जब चारों अवस्थाएँ अनुपस्थित होती हैं। आत्मा एक ही है, जिसमें विश्व, तैजस, प्रज्ञा और ततस्थ (निष्क्रिय अवस्था) होती है।

एक ही ज्योतिर्मय सत्ता है, साक्षी, जो सब गुणों से रहित है; ऋषि बोलेगा (अर्थात अनुभव करेगा) कि मैं ही ब्रह्म हूँ। अन्यथा जाग्रत अवस्था में जाग्रत आदि चार अवस्थाएँ, स्वप्नावस्था में स्वप्न आदि चार अवस्थाएँ, सुषुप्ति में सुषुप्ति आदि चार अवस्थाएँ और तुरीय अवस्था में तुरीय आदि चार अवस्थाएँ होती हैं। गुणों से रहित तुरीयतीता अवस्था में ऐसा नहीं होता। स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों की अवस्थाओं में विश्व, तैजस, प्रज्ञा और ईश्वर के समान ही साक्षी भी सभी अवस्थाओं में अकेला ही रहता है।

क्या निष्क्रिय (ततस्थ) ही साक्षी है? ततस्थ साक्षी नहीं है। साक्षी होने के कारण वह अकेला साक्षी नहीं है। जीव अपने कर्म, भोग और अहंकार आदि अवस्थाओं से प्रभावित होता है। जीव से भिन्न जो है, वह (विभिन्न अवस्थाओं से) अप्रभावित रहता है। यदि यह तर्क दिया जाए कि जीव भी अप्रभावित रहता है, तो ऐसा नहीं है। जीव होने की चेतना के कारण शरीर की और शरीर के अधिपत्य के कारण जीव होने की चेतन अनुभूति होती है। जीव की अवस्था में घड़े में स्थित आकाश और सर्वव्यापी आकाश के बीच एक हस्तक्षेप होता है। इस हस्तक्षेप के कारण ही जीव श्वास-प्रश्वास का दिखावा करते हुए (परम साक्षी में) अन्वेषण करता है।

मन्त्र, 'हंस (ब्रह्म), वह मैं हूँ।' इस प्रकार यह अनुभव करके (कि वास्तव में जीव और परम साक्षी में कोई अंतर नहीं है) मनुष्य शरीर की चेतना का परित्याग कर देगा; इस प्रकार वह शरीर की चेतना से मुक्त हो जाता है। ऐसा व्यक्ति ही ब्रह्म कहलाता है।

VI-5. आसक्ति का परित्याग करके, क्रोध पर विजय प्राप्त करके, बहुत संयमित आहार करके, इन्द्रियों को वश में करके तथा अपनी बुद्धि से (शरीर के) द्वारों को अवरुद्ध करके, (तपस्वी) अपने मन को गहन ध्यान की ओर लगाएगा।

VI-6. एकान्त स्थानों में, गुफाओं और वनों में, सदैव सामंजस्य में रहने वाला योगी सदैव अपना ध्यान (आत्मा पर) अच्छी तरह से शुरू करेगा।

VI-7. स्वागत-समारोहों, पितरों के सम्मान में किए जाने वाले समारोहों (श्राद्ध) और यज्ञों में, धार्मिक जुलूसों और उत्सवों में तथा लोगों की सभाओं में अंतिम मुक्ति की इच्छा रखने वाला योग का ज्ञाता कभी उपस्थित नहीं होना चाहिए।

VI-8. ध्यान में लीन योगी को इस प्रकार चलना चाहिए कि लोग उसका अनादर करें और उसका अपमान करें; परंतु वह कभी भी सत्मार्ग से विचलित नहीं होगा।

6-9. तीन संयम हैं - वाणी का संयम, कर्म का संयम और मन का पूर्ण संयम; जो इन तीन संयमों का पालन करता है, वह 'तीनों संयमों का पालनकर्ता' (त्रिदंडिन) है और महान ज्ञानी है।

6-10. वह तपस्वी सबसे श्रेष्ठ माना जाता है, जो अनुष्ठान की अग्नि से धुआं न निकलने और स्वयं जल जाने पर भी मधुमक्खी की तरह विभिन्न विद्वान ब्राह्मणों के घरों से भिक्षा लेने जाता है।

6-11. वह तपस्वी नीच है जो निरंतर (बिना किसी संयम के) भिक्षा के लिए जाता है, उस क्रम (तपस्वियों के) में बिना किसी आन्तरिक इच्छा के रहता है और जिसमें वैराग्य नहीं होता।

6-12. जो यह जानकर कि अमुक घर में भिक्षा विशेष रूप से प्राप्त होती है, वहाँ फिर नहीं जाता, वह तपस्वी ही है, अन्य नहीं।

VI-13-14. वह तपस्वी जाति-पाँति से परे (अतिवर्णाश्रमण) माना जाता है, जो उस परम सत्य को जान लेता है, जो शरीर, इन्द्रिय आदि से रहित है, जो सर्वसाक्षी है, अध्यात्मज्ञान है, आनन्दस्वरूप है और स्वयं प्रकाशमान है। शरीर से सम्बन्धित जाति-पाँति आदि माया द्वारा आविष्कृत हैं।

VI-15. वे (जाति-पाँति) कभी भी मेरे उस आत्मा का भाग नहीं हैं, जो शुद्ध चैतन्यस्वरूप है। जो उपनिषदों के द्वारा इस प्रकार जान लेता है, वह जाति-पाँति से परे माना जाएगा।

VI-16. जिसका आत्मदर्शन करने पर वर्ण और वर्ण के अनुसार आचरण छूट जाता है, वह समस्त वर्ण और वर्ण के बंधनों से परे हो जाता है और आत्मानंद में स्थित रहता है।

VI-17. समस्त वेदों के सत्य के ज्ञाता उस मनुष्य को वर्ण और वर्ण से परे बताते हैं, जो अपने आश्रम और वर्ण से परे अवस्था को प्राप्त होकर अपने आत्म में स्थित हो जाता है।

VI-18. अतः हे नारद! अन्य लोगों की वर्ण और वर्ण भी मोहवश आत्मा पर आरोपित हो गए हैं; यह आत्मज्ञानी द्वारा नहीं किया जाता।

VI-19. हे नारद! जिन्होंने ब्रह्म को जान लिया है, उनके लिए कोई (वैदिक) आदेश, कोई निषेध, कोई बहिष्करण या समावेश का नियम नहीं है; और न ही उनके आचरण को प्रतिबंधित करने वाली कोई अन्य चीज है।

VI-20-21. सब प्राणियों से अनासक्त होकर, ब्रह्माजी के पद से भी रहित होकर, पुत्र, धन आदि सबमें कोमलता न रखकर, मोक्षमार्ग में श्रद्धा

रखकर तथा उपनिषदों का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से युक्त होकर, ब्रहमज्ञानी गुरु के पास उपहार लेकर जाना चाहिए।

VI-22. दीर्घकाल तक ध्यानपूर्वक उनकी सेवा करके उन्हें प्रसन्न करके, उनके द्वारा उपनिषदों के सत्यों का वर्णन बड़े ध्यान से सुनना चाहिए।

VI-23. अहंभाव से रहित, आसक्ति से रहित, सदैव शांतचित्त होकर, अपने स्वरूप में आत्मा का दर्शन करता हुआ।

VI-24. वैराग्य सदैव तभी होता है, जब संसार के दोषों को देखा जाता है। संसार के जीवन से असंतुष्ट व्यक्ति को त्याग अवश्य प्राप्त होता है। इसमें कोई संदेह नहीं है।

VI-25. मोक्ष की सच्ची इच्छा रखने वाले को परमहंस कहते हैं। (इस अवस्था तक पहुँचने से पहले) तपस्वी को उपनिषदों की व्याख्या आदि सुनकर शास्त्र के ज्ञान का अभ्यास करना चाहिए, जो स्पष्टतः मोक्ष का एक साधन है।

VI-26. शास्त्र के ज्ञान (जिससे आत्म-साक्षात्कार होता है) को प्राप्त करने के लिए परमहंस नामक मुनि को शांति, संयम आदि सभी साधनों से युक्त होना चाहिए।

VI-27-29. उपनिषदों के ज्ञान के अभ्यास में गहन रूप से तत्पर, शांत, संयमी, इन्द्रियों को जीतने वाला, निर्भय, सदैव 'मेरेपन' से मुक्त, विपरीत युग्मों से अप्रभावित, आश्रितों या अन्य वस्तुओं से रहित (तपस्वी) फटी हुई लंगोटी पहने और सिर मुंडाए हुए होगा; अथवा वह वस्त्रहीन भी हो सकता है। बुद्धिमान, वेदान्त में पारंगत, योगाभ्यास करने वाला, 'अपनापन' और अहंकार से रहित, मित्रों आदि के प्रति समभाव रखने वाला, सभी प्राणियों के प्रति मैत्रीपूर्ण, केवल ज्ञानी और संयमी व्यक्ति ही (सांसारिक दुखों के सागर को) पार करता है, अन्य कोई नहीं।

VI-30. (नवसिखिया के रूप में) वह अपने बड़ों के कल्याण के लिए समर्पित रहेगा और एक वर्ष तक वहाँ (गुरु के निवास में) निवास करेगा। वह छोटे व्रतों (नियमों) के साथ-साथ महान नैतिक कर्तव्यों (यमों) के पालन में हमेशा सतर्क रहेगा।

VI-31. फिर (वर्ष के अंत में) उत्तम ज्ञान योग प्राप्त करके वह सही आचरण के अनुसार (अर्थात् किसी को विरोध न करते हुए) देश में विचरण करेगा।

VI-32. तत्पश्चात् एक वर्ष के अन्त में वह याज्ञवल्क्य की उत्तम विद्या तथा कुटीचक आदि के संघों का भी परित्याग कर देगा और परमहंस की अवस्था को प्राप्त होगा।

VI-33. गुरुजनों को विदा करके वह समस्त आसक्ति त्यागकर, क्रोध को वश में करके, आहार में संयमी होकर तथा इन्द्रियों को वश में करके देश भर में भ्रमण करेगा।

VI-34. ये दोनों (लोग) अपने कर्मों में असंगति के कारण सुखी नहीं रहते; गृहस्थ व्यक्ति उत्पादक कार्य में संलग्न नहीं रहता और भिक्षुक व्यक्ति काम में व्यस्त रहता है।

VI-35. वह किसी सुंदर युवती को देखकर कामातुर हो जाता है और मदिरा पीकर मतवाला हो जाता है। इसलिए उसे ऐसी स्त्री से दूर रहना चाहिए जो आंखों के लिए विष हो।

VI-36. स्त्रियों से वार्तालाप करना, उन्हें काम पर भेजना, उनका नृत्य, संगीत, हंसी-ठिठोली करना, उनकी निन्दा करना - इनसे (तपस्वी को) दूर रहना चाहिए।

VI-37. हे नारद, यहाँ उसे न तो स्नान करना है, न प्रार्थना करना है, न देवताओं की पूजा करनी है, न हवि देना है, न किसी कार्य की सिद्धि करनी है, न अग्नि-अनुष्ठान आदि करना है।

VI-38. उसे न तो देवताओं की पूजा करनी है, न पितरों को हवि देना है, न तीर्थ यात्रा करनी है, न व्रतों का पालन करना है; न धर्म है, न अधर्म है; न कोई नियम है, न सांसारिक कर्म है।

VI-39-41. योगी को सभी सांसारिक कर्तव्यों का तथा प्रचलित आचरणों का सब प्रकार से त्याग कर देना चाहिए। हे नारद! तुम अपने चित्त को सदैव अन्तर्मुखी, शुद्ध, संयमित मन से युक्त, आत्मा से युक्त, अन्तर्मुखी विषयों से दूर रहकर संसार में स्वतन्त्रता से विचरण करो। अकेले भ्रमण करते हुए वह तपस्वी अराजक देश में विचरण नहीं करेगा। किसी की स्तुति न करे, किसी को प्रणाम न करे, स्वधा न बोले (क्योंकि वह किसी पितरों

की पूजा नहीं करता), अस्थिर (निर्जन घरों) और पर्वतों में निवास करते हुए वह तपस्वी बिना किसी रोक-टोक के विचरण करेगा।

इस प्रकार उपनिषद् का छठा अध्याय समाप्त होता है। सातवाँ-1। तब तपस्वियों के आचरण के सम्बन्ध में पूछे जाने पर ब्रह्माजी ने नारदजी के सामने ही कहा कि तपस्वी वैराग्यवान होकर वर्षाकाल में एक निश्चित निवास में निवास करेगा और आठ महीने तक अकेले ही विचरण करेगा। वह एक स्थान पर (निरंतर) निवास नहीं करेगा।

भिक्षुक भयभीत होकर हिरण की तरह एक स्थान पर नहीं रहेगा। वह (अपने प्रवास को बढ़ाने का कोई प्रस्ताव) स्वीकार नहीं करेगा जो उसके प्रस्थान के विरुद्ध हो। वह अपने हाथों से नदी (तैरकर) पार नहीं करेगा। न ही वह (फलों के लिए) पेड़ पर चढ़ेगा। वह किसी भी देवता के सम्मान में उत्सव नहीं देखेगा। वह एक स्थान से (अकेले) भोजन करके निर्वाह नहीं करेगा। वह किसी देवता की बाहरी पूजा नहीं करेगा।

वह अपने को छोड़कर अन्य सब कुछ त्यागकर, अनेक घरों से भिक्षा में प्राप्त अन्न पर निर्वाह करेगा, जैसे मधुमक्खी मधु इकट्ठा करती है, दुबला हो जाएगा, शरीर में चर्बी नहीं बढ़ेगी, वह मोटा करने वाले घी को रक्त के समान त्याग देगा। वह एक घर में भोजन प्राप्त करना मांस खाने के समान समझेगा, सुगन्धित लेप को अपवित्र वस्तु से लेप करने के समान समझेगा, गुड़ को अपवित्र वस्तु के समान समझेगा, वस्त्र को दूसरे के जूठे बर्तन के समान समझेगा, तेल से स्नान करना स्त्रियों के प्रति आसक्ति के समान समझेगा, मित्रों के साथ रमण करना मूत्र के समान समझेगा, कामना को गोमांस के समान समझेगा, वह स्थान जो पहले अपवित्र व्यक्ति की झोपड़ी के समान समझेगा, स्त्रियों को साँप के समान समझेगा, सोने को घातक विष के समान समझेगा, सभा भवन को श्मशान के समान समझेगा, राजधानी को भयंकर नरक (कुम्भीपाक) के समान समझेगा, तथा एक घर में भोजन को मुर्दे के मांस के लोथड़े के समान समझेगा।

दूसरों को अपने से भिन्न मानकर संसार के आचरण को त्यागकर, अपने मूल स्थान को छोड़कर, पहले से ज्ञात स्थानों का परित्याग करके, भूली हुई वस्तु के पुनः प्राप्त होने के समान आत्मसुख का स्मरण करके, अपने शरीर और मूल स्थान के अभिमान को भूलकर, अपने शरीर को शव के समान त्यागने योग्य मानकर, अपने बच्चों और निकट संबंधियों के स्थान को छोड़कर दूर चला जाएगा, जैसे चोर जेल से छूटने पर दूर चला जाता है।

वह अनायास प्राप्त भोजन पर निर्वाह करने वाला, ब्रह्म और प्रणव का ध्यान करने वाला, समस्त सांसारिक कार्यों से मुक्त, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, मत्सर आदि को जलाकर राख कर देने वाला, सत्व आदि तीनों गुणों से अप्रभावित, भूख, प्यास आदि छः दुर्बलताओं से रहित, उत्पत्ति, अस्तित्व आदि छः अवस्थाओं के कारण परिवर्तन से रहित, सत्यभाषी, शुद्ध, किसी से द्वेष न रखने वाला, एक रात गांव में, पांच रात शहर में, पांच रात तीर्थों में, पांच रात पवित्र नदियों के तट पर पवित्र स्थानों में निवास करने वाला, स्थिर मन वाला, कभी झूठ न बोलने वाला, पर्वत-गुफाओं में निवास करने वाला; वह अकेला ही यात्रा करेगा, (किन्तु वर्षाकाल के चार महीने विश्राम का ध्यान रखते हुए, चतुर्मास्य) वह किसी गांव की ओर किसी अन्य के साथ यात्रा कर सकता है, तथा तीन या चार के साथ किसी शहर की ओर जा सकता है।

(नियम यह है) कि भिक्षुक अकेला ही यात्रा करेगा। वह वहां चौदह अंगों को मुक्त क्रीड़ा करने की अनुमति नहीं देगा। (सांसारिक जीवन की क्षणभंगुर प्रकृति के) पूर्ण ज्ञान से प्राप्त वैराग्य की सम्पत्ति का आनंद लेते हुए, (दृढ़ता से) अपने में यह निश्चय करते हुए कि मेरे अतिरिक्त कोई अन्य नहीं है तथा मुझसे भिन्न कोई भी नहीं है, सर्वत्र अपने ही स्वरूप को देखकर (इस प्रकार) जीते हुए मोक्ष (जीवनमुक्ति) प्राप्त करता है, तथा प्रारब्ध-कर्मण के प्रभाव के अंत तक अपने चतुर्विध स्वरूप (ओतिर आदि) को जानता हुआ, (तपस्वी) अपने शरीर के नष्ट होने तक अपने आत्म का ध्यान करता हुआ रहेगा। (ये हैं) कुटीचक तपस्वी द्वारा दिन के तीन समय (संध्या) में स्नान, बहुदक द्वारा दो बार, हंस द्वारा एक बार, परमहंस द्वारा मानसिक स्नान, तुरीयातीत द्वारा पवित्र भस्म का स्नान (अर्थात लेप) तथा अवधूत द्वारा वायु स्नान।

VII-3. कुटीचक को माथे पर चन्दन का लंबवत चिह्न (उर्ध्वपुण्ड्र) लगाना चाहिए, बहुदक को पवित्र भस्म की तीन क्षैतिज रेखाएँ (त्रिपुण्ड्र), हंस को (या तो) उर्ध्वपुण्ड्र या त्रिपुण्ड्र, परमहंस को पवित्र भस्म का लेप, तुरीयातीत को चन्दन का चिह्न (तिलकपुण्ड्र), अवधूत को बिल्कुल भी नहीं (या) तुरीयातीत और अवधूत को (बिल्कुल भी नहीं)।

VII-4. कुटीचक को प्रत्येक छः ऋतु में एक मुंडन करना होगा, बहुदक को दो ऋतुओं के अंत में एक मुंडन करना होगा, परमहंस को कोई मुंडन नहीं करना होगा, अथवा यदि करना हो तो छः महीने में एक मुंडन करना होगा

(संक्रांति के समय, अयन), तथा तुरीयातित और अवधूत को कोई मुंडन नहीं करना होगा।

VII-5. कुटीचक एक घर में भोजन करता है, बहुदक घर-घर जाकर भिक्षा एकत्र करता है, जैसे मधुमक्खी शहद एकत्र करती है, हंस और परमहंस हाथ को पात्र (अर्थात भिक्षापात्र) के रूप में उपयोग करते हैं, तुरीयातित गौमुख होता है (अर्थात उसके मुख में भोजन रखा जाता है) और अवधूत अनियमित रूप से भोजन करता है (जैसे अजगर करता है)।

VII-6. कुटीचक दो वस्त्र पहनता है, बहुदक एक वस्त्र, हंस एक कपड़ा, परमहंस या तो वस्त्रहीन होता है या एक ही लंगोटी पहनता है, तुरीयातीत और अवधूत वस्त्रहीन होते हैं (अर्थात वे जन्म के समय जैसे थे वैसे ही रहते हैं)। हंस और परमहंस एक (मृग-)त्वचा पहनते हैं, अन्य नहीं।

VII-7. कुटीचक और बहुदक देवताओं की पूजा करते हैं, हंस और परमहंस मानसिक रूप से पूजा करते हैं, तुरीयातीत और अवधूत अनुभव करते हैं, 'वह मैं हूँ' (अर्थात वे व्यक्तिगत आत्मा को सर्वोच्च आत्मा के साथ पहचानते हैं)

VII-8. कुटीचक और बहुदक को मंत्र पढ़ने का अधिकार है, हंस और परमहंस को ध्यान करने का, तुरीयातीत और अवधूत को दोनों में से किसी भी क्रिया का अधिकार नहीं है, (किन्तु) तुरीयातीत और अवधूत को महान वेदान्तिक ग्रन्थों पर शिक्षा देने का अधिकार है; इसी प्रकार परमहंस को भी। कुटीचक, बहुदक और हंस को दूसरों को शिक्षा देने का अधिकार नहीं है।

VII-9. कुटीचक और बहुदक को मनुष्यों के प्रणव (चार मंत्रों से युक्त बाह्य प्रणव) का, हंस और परमहंस को अंतरप्रणव (आठ मंत्रों से युक्त) का, तुरीयातीत और अवधूत को ब्रहमप्रणव (सोलह मात्राओं से युक्त) का ध्यान करना है।

VII-10. कुटीचक और बहुदक वेदान्त की व्याख्या सुनेंगे, हंस और परमहंस उस पर विचार करेंगे, तुरीयातीत और अवधूत उस पर गहन और बारम्बार ध्यान करेंगे। नियम यह है कि ये सभी (तपस्वी) आत्मा का ध्यान करेंगे। इस प्रकार मोक्ष प्राप्ति के इच्छुक साधक सांसारिक जीवन के सागर को पार करने में सक्षम बनाने वाले मुक्ति मंत्र (ओम) का सदैव स्मरण करते हुए 'जीते-जीते मुक्त' रहेंगे; तपस्वी उस विशेष क्रम (तपस्वी के) के नियमों

के अनुसार अंतिम आनंद (कैवल्य) प्राप्त करने के साधनों की खोज करेंगे। इस प्रकार उपनिषद का सातवाँ अध्याय समाप्त होता है।

आठवाँ-1 तब नारद ने भगवान ब्रह्मा से पूछा: 'सांसारिक जीवन के अंत के लिए उद्धारक मंत्र का वर्णन करने की कृपा करें।' इससे सहमत होकर भगवान ब्रह्मा ने इसका वर्णन करना शुरू किया। ओम ब्रह्म है, इसे अनेक पृथक शरीरों (व्यष्टि) से बना हुआ तथा भागों से बना हुआ माना जाता है, जिनमें से प्रत्येक समग्र (समष्टि) के समान ही है। व्यष्टि कौन सी है? समष्टि कौन सी है? संहार प्रणव तथा सृष्टि प्रणव तीन प्रकार के होते हैं:

आंतरिक प्रणव (अंतः प्रणव), बाह्य प्रणव (बाह्य-प्रणव) तथा संयुक्त आंतरिक तथा बाह्य प्रणव (उभयात्मक-प्रणव)। (एक) ब्रह्म-प्रणव (कभी-कभी) आंतरिक प्रणव (आठ मात्राओं से मिलकर बना हुआ) तथा व्यावहारिक प्रणव (व्याहारिक-प्रणव) होता है। बाहरी प्रणव तथा ऋषियों का प्रणव (अर्श-प्रणव)। संयुक्त आंतरिक तथा बाह्य प्रणव विराट-प्रणव है। संहार प्रणव, ब्रह्म-प्रणव तथा अर्धमात्र-प्रणव। (इस प्रकार ब्रह्म प्रणव आठ प्रकार का है :

संहार प्रणव, सृष्टि प्रणव, अंतः प्रणव, बाह्य प्रणव, व्यवहारिक प्रणव, अर्स प्रणव, विराट प्रणव तथा अर्धमात्र प्रणव)। आठवाँ-2. ॐ ब्रह्म है। जान लें कि एक अक्षर वाला ॐ अंतः प्रणव है। यह आठ (मात्राओं) में विभाजित है - स्वर 'अ', स्वर 'उ', व्यंजन 'म', अर्ध अक्षर (अर्ध मात्रा), नाद, बिन्दु, कला तथा शक्ति। अतः यह चार नहीं है (जैसा कि इसकी मुख्य मात्राएँ कही गई हैं)। स्वर 'अ' दस हजार भागों का, स्वर 'उ' एक हजार भागों का, अक्षर 'म' सौ भागों का तथा अर्धमात्र प्रणव असंख्य भागों का होता है। विराट प्रणव सगुण (सगुण) से युक्त है और संहार प्रणव निर्गुण (निर्गुण) है,

उत्पत्ति प्रणव में दोनों (सगुण और निर्गुण) होते हैं। विराट प्रणव प्लूट (प्लूट) है।संहार प्रणव प्लूट-प्लूट है।

आठवीं-3. विराट प्रणव सोलह मात्राओं का है और छत्तीस मूल द्रव्यों से परे है।इसमें सोलह मात्राएँ कैसे हैं? वे इस प्रकार हैं: स्वर 'अ' प्रथम है, स्वर 'उ' द्वितीय है, अक्षर 'म' तृतीय है, अर्धमात्रा चतुर्थ है, बिन्दु पंचम है, नाद छठा है, काल सातवाँ है, कालतीत आठवाँ है, शांति नौवाँ है, संतति दसवाँ है, उन्मनी ग्यारहवाँ है, मनोनमनी बारहवाँ है, पुरी तेरहवाँ है, मध्यमा चौदहवाँ है, पश्यन्ती पंद्रहवाँ है, तथा परा सोलहवाँ है। पुनः ब्रह्म-प्रणव यद्यपि केवल एक ही है, फिर भी गुणों (सगुण और निर्गुण) को प्राप्त

करता है, प्रकृति और पुरुष के दोहरे चरित्र के कारण, जब प्रत्येक में चौसठ मात्राएँ होती हैं, तो वह १२८ मात्राओं को प्राप्त करने की स्थिति प्राप्त करता है।

आठवाँ-४। यह (ब्रह्म-प्रणव) सबका आधार, परम तेज और सबका स्वामी है - इस प्रकार (सत्यदृष्टि वाले मुनि) इसे देखते हैं। यह सब देवताओं से युक्त है और सब जगत का आधार (प्रभु) इसमें स्थित है।

आठवाँ-5। यह सब अक्षरों से युक्त है, यह काल है, यह सब शास्त्रों से युक्त है और मंगलमय (शिव) है। यह सब वेदों में श्रेष्ठ है और सबका सार है। उपनिषद; इसी (ओम, आत्मा) की खोज करनी चाहिए।

आठवीं-६. भूत, वर्तमान और भविष्य ये तीन काल हैं - अविनाशी अक्षर ओम् (इनमें व्याप्त है और इनसे परे है); जान लो कि यह (सबका) आदि है और परम सुख देने वाला है।

आठवीं-७. उसी (ओम) को जो आत्मा है, ब्रह्म शब्द से वर्णित किया गया है। इसी प्रकार उसे एक (बिना किसी दूसरे के), अजर, अमर, ओम् के रूप में अनुभव करके और शरीर के साथ (ब्रह्म पर) ओम् को आरोपित करके उसके साथ एक हो जाता है। तब निश्चय जान लो कि त्रिशरीर वाला आत्मा ही परम ब्रह्म है।

आठवीं-८. विश्वा आदि (विश्व, विराज, ओतिर और तुर्य) के उचित क्रम में परम ब्रह्म का गहन ध्यान करना चाहिए।

आठवीं-९-११. यह आत्मा चार प्रकार की है - जब यह स्थूल रूप में एक व्यक्ति है तो स्थूल पहलू (विश्व के रूप में) का अनुभव करती है, जब यह सूक्ष्म रूप (तैजस) को ग्रहण करती है तो स्वप्न अवस्था में सूक्ष्म रूप में (संसार) का आनंद लेती है, पहचान की स्थिति (प्रज्ञा और ईश्वर की) में (आनंद का आनंद लेती है) और आनंद का आनंद (तुर्या अवस्था में) लेती है। आत्मा चार पादों (तिमाहियों) की है। चार चरणों (विश्व-विश्व, विश्व-तैजस, विश्व-प्रज्ञा और विश्व-तुर्या) से युक्त विश्व पुरुष वैश्वानर है। यह जाग्रत अवस्था में कार्य करता है। यह स्थूल रूपों (अभूतपूर्व संसार) को देखता है और उनका अनुभव करता है। इसमें उन्नीस मुख (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण और चार अन्तः इन्द्रियाँ - मनस, बुद्धि, अहंकार और चित्त) हैं, इसके आठ अंग हैं (आकाश सिर है, सूर्य और

चन्द्रमा दो आँखें हैं, दिशाएँ कान हैं, समुद्र उदर का निचला भाग है, पृथ्वी पैर हैं), यह सर्वत्र घूमता है और इसका स्वामी (प्रभु) है।

आठवाँ-१२-१३। यह विश्व (जित) प्रथम पाद (आत्मा का) है। विश्व (आत्मा का विश्वपद) के चार पहलू हैं - जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्या। जाग्रत अवस्था में यह इन्द्रियों के माध्यम से कार्य करता है और वस्तुओं के दर्शन आदि का अनुभव करता है। यह जाग्रत अवस्था के भीतर जाग्रत होना (जागृत-जागरण) है। वैयक्तिक पहलू में इसका अनुभवकर्ता विश्व-विश्व (आत्मा के विश्वपद का विश्व उपविभाग) है; यह सामूहिक रूप में विराट-विराज है। यह व्यक्तिगत और सामूहिक रूप में ओतिर-ओतिर है।

जब मन इन्द्रियों की क्रियाशीलता के बिना विषयों को ग्रहण करता है, तो वह जाग्रत स्वप्न होता है; इसका अनुभवकर्ता विश्व-तैजस (विश्व का तैजस उपखंड) है। जब कोई किसी भी चीज के प्रति सचेत नहीं रहता, बल्कि अचेतन की तरह रहता है, तो वह जाग्रत सुषुप्ति होती है; इसका अनुभवकर्ता विश्व-प्रज्ञा (विश्व का प्रज्ञा उपखंड) है। जब कोई गुरु की कृपा या अपने अच्छे कर्मों (पुण्य) के फलस्वरूप समभाव में होता है, जैसे कि वह समाधि में हो, और एक दर्शक (साक्षी) की तरह व्यवहार करता है, तो वह जाग्रत अवस्था में तुर्य होता है (जाग्रत-तुर्य)। इसका अनुभवकर्ता विश्व-तुर्य (विश्व का तुर्य उपखंड) है।

आत्मा का दूसरा पाद (तैजस) भी चार पहलुओं (तैजस-विश्व, तैजस तैजस, तैजस-प्रज्ञा और तैजस-तुर्य) से युक्त है और प्राणियों का स्वामी, हिरण्यगर्भ है। यह स्वप्न अवस्था में स्वामी के रूप में कार्य करता है। यह सूक्ष्म रूपों (घटना जगत के) को देखता है और उनका अनुभव करता है। यद्यपि आठ अंगों वाला यह एक है और भिन्न नहीं है, हे नारद (अर्थात शत्रुओं को पीड़ा देने वाला)।

VIII-14-16. [जब स्वप्न अवस्था में आत्मा मन की सक्रिय कार्यप्रणाली के बिना स्वप्न चक्षुओं आदि से वस्तुओं के दर्शन आदि का अनुभव करती है, तब स्वप्न अवस्था के भीतर जाग्रत अवस्था होती है (स्वप्न-जागरण) और इसका अनुभवकर्ता तैजस-विश्व (तैजस का विश्व उपखंड) है। इसका अनुभवकर्ता अनुभवों के सामूहिक पहलू में सूत्र-विराज है स्वप्न-जागरण अवस्था; यह व्यक्तिगत और सामूहिक पहलुओं में अनुज्ञतिर का ओतिर उपविभाग है। जब स्वप्नावस्था में आत्मा स्वप्न-चक्षुओं आदि की क्रियाशीलता के बिना अकेले मन से विषयों का आनंद लेती है, और

स्वप्न-जागरण अवस्था, वह स्वप्न-स्वप्न (स्वप्नावस्था के भीतर स्वप्न देखना) की अवस्था है।

इसका अनुभवकर्ता तैजस-तैजस (आत्मा के तैजस पद का तैजस उपविभाग) है। जब स्वप्न-जागरण और स्वप्न-स्वप्न अवस्थाओं का कोई अनुभव नहीं होता और स्वप्न-चक्षुओं आदि या मन द्वारा कोई बोध नहीं होता और बाह्य वस्तुओं और स्वयं की पूर्ण विस्मृति होती है, तो वह अचेतन अवस्था स्वप्न-सुषुप्ति (स्वप्नावस्था के भीतर गहरी नींद की अवस्था) है। जो आत्मा इस अवस्था का अनुभव करती है, वह तैजस-प्रज्ञा (तैजस का प्रज्ञा उपखंड) है।

आत्मा का पद)। जब किसी के अच्छे कर्मों के फलस्वरूप स्वप्नावस्था की तीन पूर्व अवस्थाओं का बोध नहीं होता और आत्मा स्वप्नावस्था की तुर्या अवस्था में रहती है, जब बाह्य जगत और अंतः इन्द्रियों के सामान्य और विशेष अनुभवों की तटस्थ अवस्था (साक्षी की अवस्था) प्रकाशित होती है, वह अवस्था स्वप्न-तुर्या (स्वप्नावस्था का तुर्या उपविभाग) होती है और जो आत्मा इसका अनुभव करती है, वह तैजस-तुर्या (चतुर्गुण आत्मा के तैजस पद का तुर्या उपविभाग) होती है।

जब कोई सो रहा होता है और न तो किसी कामना की लालसा करता है और न ही कोई स्वप्न देखता है, तो वह स्पष्ट रूप से गहरी नींद है। इस अवस्था में चतुर्गुण प्रज्ञा (जैसे प्रज्ञा-विश्व, प्रज्ञा-तैजस, प्रज्ञा-प्रज्ञा और प्रज्ञा तुर्या) कार्य करती है, जिसे आत्मा का तीसरा पद कहा जाता है। यह आत्मा एक है, गहरी नींद की अवस्था में रहती है, ज्ञान की पूर्णता रखती है, सुख भोगता है, शाश्वत आनंद से युक्त है और सभी प्राणियों के हृदय में रहता है; फिर भी वह आनंद का आनंद लेता है, उसका मुख मन है, वह सर्वव्यापी और अविनाशी है और ईश्वर है।

8-17. वह सबका स्वामी है, सर्वज्ञ है और अवधारणा में सूक्ष्म है। वह सभी प्राणियों में व्याप्त है; वह सभी का आदि स्रोत, उत्पत्ति और विनाश है।

8-18. ये तीनों अवस्थाएँ (जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति) प्राणियों के सभी कार्यों के विनाश (अर्थात आत्म-साक्षात्कार) में बाधा डालती हैं; इसलिए वे सुषुप्ति की स्थिति के समान हैं; यह वास्तव में स्वप्न-सामग्री है और इसे केवल भ्रम कहा गया है। [गहरी सुषुप्ति अवस्था में जब व्यक्ति जाग्रत या स्वप्न दोनों अवस्थाओं में से किसी एक में रहकर गहरी सुषुप्ति अवस्था में जाने की इच्छा करता है और नेत्रों आदि से वस्तुओं के रूप आदि का मिथ्या

बोध अनुभव करता है, तब वह गहरी सुषुप्ति जाग्रत अवस्था होती है; वैयक्तिक रूप में उसका अनुभवकर्ता प्रज्ञा का विश्वा उपविभाग है; समष्टि रूप में वह बीजात्मा का विराज उपविभाग है; वैयक्तिक और समष्टि रूप में सम्मिलित रूप में वह अनुज्ञेयरसोत्तरी होती है।

गहरी सुषुप्ति अवस्था में जब आत्मा बाह्य वस्तुओं के रूप आदि मिथ्या बोध से मुक्त हो जाती है और जाग्रत या स्वप्न दोनों अवस्थाओं में से किसी एक में स्थिति धारण करके वस्तुओं के रूप आदि मिथ्या बोध का अनुभव करती है, तब वह गहरी सुषुप्ति में स्वप्न देखने की अवस्था होती है (स्वप्न-स्वप्न)। तब अनुभव करने वाला आत्मा प्रज्ञा-तैजस (प्रज्ञा का तैजस उपविभाग) है। पुनः सुषुप्ति में जब आत्मा अपने चैतन्य में व्याप्त मिथ्या कर्मों (दर्शन आदि) के साथ पदार्थों के रूप आदि की मिथ्या धारणा का अनुभव करते हुए भी उन्हें स्थिर अनुभव नहीं कर रही होती, तब वह सुषुप्ति के भीतर सुषुप्ति की अवस्था होती है।

तब अनुभव करने वाली आत्मा प्रज्ञा-प्रज्ञा (प्रज्ञा में अन्तर्निहित प्रज्ञा उपविभाग) होती है। पुनः सुषुप्ति की अवस्था में जब आत्मा सुषुप्ति में पिछले तीन चरणों के अनुभवों का साक्षी बनकर आनन्द का आनन्द लेती है, तब वह सुषुप्ति की तुर्य अवस्था होती है और अनुभव करने वाली आत्मा प्रज्ञा-तुर्य (प्रज्ञा का तुर्य उपविभाग) होती है। VIII-19-20. चौथा (तुर्य) यद्यपि चार गुना है (जैसे तुर्य-विश्व, तुर्य-तैजस, तुर्य प्रज्ञा और तुर्य-तुर्य) वास्तव में शुद्ध चेतना का एक सार है, क्योंकि इनमें से प्रत्येक (विश्व, आदि) तुर्य अवस्था में परिणत होता है। (तुर्य अवस्था) ओतिर, अनुज्ञतिर और अनुज्ञान (अर्थात अनुज्ञानिकरस) के रूप में (आत्मा के) भेद का आधार बनती है।

ये तीन अलग-अलग अवस्थाएँ (वास्तव में) सुसुप्त हैं (क्योंकि वे केवल तुर्य-तुर्य का आवरण बनाती हैं जो कि परम आनंद है) और एक आंतरिक स्वप्न-सामग्री से बनी हैं। यह जानते हुए कि (तुर्य तुर्य के अलावा कुछ भी) केवल भ्रम है, अगले क्षण शुद्ध चेतना का एक सार शेष रह जाता है।

VIII-21. [चूँकि तुर्य-तुर्य आनन्द की एक अवस्था है, अतः व्यष्टि, समष्टि, अंशतः व्यष्टि तथा अंशतः समष्टि में उपविभाजन करने में असमर्थ है, अतः तुर्य स्वयं चतुर्गुणी नहीं है, अपितु केवल तीन है (तुर्य-तुर्य को छोड़कर)। तुर्य की इस त्रिगुणात्मक प्रकृति की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है: चूँकि बाह्य वस्तुओं में भेद होते हैं, अतः ब्रहमज्ञ उन्हें अपनी इन्द्रियों से बिना भेद के देखता है; यह अवस्था तुर्य-जागरण है; जो आत्मा

इस अवस्था का वैयक्तिक रूप से अनुभव करता है, वह तुर्य-विश्व है, सामूहिक रूप से वह तुर्य-विराज है, अंशतः वैयक्तिक और अंशतः समष्टि वह अविकल्प-ओतिर है। जब ब्रह्मज्ञ समस्त इन्द्रिय-क्रियाओं से मुक्त होकर केवल अपने मन से ब्रह्म के साथ आत्मा की एकता का अनुभव करता है, तो वह तुर्य-स्वप्न अवस्था है; जो आत्मा इसका अनुभव करता है, वह तुर्य-तैजस है। जब व्यक्ति निर्विकल्प समाधि में होता है और मानो निलम्बित अवस्था में रहता है, तो वह तुर्य-सुस्पष्ट अवस्था होती है।

और अनुभव करने वाला आत्मा तुर्य-प्रज्ञा है।] यहाँ स्पष्ट नियम है कि तुर्य-तुर्य कभी भी स्थूल ज्ञान नहीं है, (क्योंकि यह ओत्रोतिर नहीं है जो विश्व-विश्व और विराज-विराज के समान है, जो जाग्रत-जागरण अवस्था का अनुभव करता है), न ही सूक्ष्म चेतना (क्योंकि यह स्वप्न जागरण अवस्था के तैजस, सूत्र और अनुज्ञातिर से भिन्न है), न ही शुद्ध चेतना (प्रज्ञा), (क्योंकि यह ओतिर-अविकल्प से भिन्न है, जो जाग्रत-जागरण और अन्य अवस्थाओं की उपस्थिति या अनुपस्थिति को प्रकट करने वाले चेतना के रूप के विश्व, विराज और तुर्य के समान है), और न ही कहीं और, हे ऋषि।

VIII-22. यह अचेतन (अपराजना) नहीं है (क्योंकि यह अनुज्ञातिर-ओतिर से बहुत दूर है, तैजस-विश्व और सूत्र-विराज के समान है जो स्वप्न-जागरण अवस्था में बाहय बोध से रहित हैं), न ही स्थूल और सूक्ष्म चेतना दोनों (क्योंकि यह ओतिर-अनुज्ञाकारस के दायरे से बाहर है, जो जाग्रत-स्वप्न अवस्था के विश्व-प्रज्ञा और विराज-बीज से पहचाना जाता है जो सच्चे ज्ञान के प्रांत से बाहर है), न ही अनन्य बुद्धि (क्योंकि यह अनुज्ञातिर अनुज्ञाकारस के दायरे में नहीं है, जो स्वप्न-स्वप्न अवस्था में कार्यरत अनन्य बुद्धि के रूप तैजस-प्रज्ञा और सूत्र-बीज से पहचाना जाता है) और कभी बोधगम्य नहीं होती (क्योंकि यह अनुज्ञातिर-अनुज्ञातिर की सीमा से परे है, जो तैजस-तैजस और स्वप्न-स्वप्न अवस्था में मन द्वारा निर्मित दृष्टि से भ्रमित सूत्र-सूत्र)।

VIII-23. इसे परिभाषित नहीं किया जा सकता (क्योंकि यह अनुज्ञेयकारस-अनुज्ञतिर से भिन्न है, जिसकी पहचान प्रज्ञा-तैजस और बीज-सूत्र से की जाती है, जिसे स्वप्न-स्वप्न अवस्था में आत्मा के अज्ञान के माध्यम से ही जाना जा सकता है), इसे समझा नहीं जा सकता (क्योंकि यह अनुज्ञेयकारस-ओतिर से भिन्न है, जिसकी पहचान प्रज्ञा-विश्व और बीज-विराज से की जाती है, जिसे स्वप्न-जागरण अवस्था में आत्मा के अज्ञान के माध्यम से ही समझा जा सकता है), इसे व्यक्त नहीं किया जा

सकता (क्योंकि यह अनुज्ञेय-अविकल्प से भिन्न है, जिसकी पहचान तैजस-सूत्र-तुरीय से की जाती है, जो स्वप्न-तुर्य अवस्था में स्वप्न जागरण और अन्य अवस्थाओं की उपस्थिति या अनुपस्थिति को प्रकट करता है), यह विचार से परे है (क्योंकि यह अनुज्ञेयकारस-अनुज्ञेयकारस से बाहर है, जिसकी पहचान प्रज्ञा-प्रज्ञा और बीज-विराज से की जाती है) स्वप्न-स्वप्न अवस्था में बीज-बीज, जिसमें केवल यह स्मरण रहता है कि 'मैं उस अवस्था के विषय में कुछ नहीं जानता'), नाम दिए जाने में असमर्थ है (क्योंकि यह अनुज्ञेयकारस-अविकल्प की धारणा से अछूता है, जिसे प्रज्ञा बीज-तुर्य से पहचाना जाता है, जिसे स्वप्न-जागरण और स्वप्न-तुर्य अवस्था में समान अवस्थाओं की उपस्थिति या अनुपस्थिति का साक्षी कहा जा सकता है), यह एक आत्मा में विश्वास का सार भी है (क्योंकि यह अविकल्प-ओतिर की धारणाओं से भिन्न है, जिसे तुर्य-विश्व-विराज से पहचाना जाता है, जो तुर्य-जागरण अवस्था का अनुभव करता है), सांसारिक जीवन का विनाश है (क्योंकि यह अविकल्प-अनुज्ञतिर की गंध भी सहन नहीं कर सकता, जिसे तुर्य-तैजस-सूत्र से पहचाना जाता है, जो कुछ मामलों में सांसारिक जीवन का अंत नहीं करता है और जो अनुभव करता है तुर्य-स्वप्न अवस्था), शान्त है (क्योंकि यह तुर्य-प्रज्ञा-बीज के साथ पहचाने जाने वाले अविकल्प-अनुज्ञैकरस के अनुभव से भिन्न है), शुभ है (क्योंकि यह अशरीरी अवस्था में अंतिम आनंद - कैवल्य - के समान है) और अद्वैत है (क्योंकि यह प्रतिरूप रहित परम अद्वैत अवस्था का रूप है) - इसे (ब्रह्म के जानने वाले) चौथा (तुर्य-तुर्य) मानते हैं; यह ब्रह्म-प्रणव (के समान) है।

इसे ही अनुभव करना चाहिए, किसी अन्य (कहे जाने वाले) तुर्य को नहीं। यह (तुर्य-तुर्य) मोक्ष के बाद साधकों के लिए सहारा है जैसे सूर्य (अद्भुत जगत के लिए); यह स्वयं प्रकाशवान है (क्योंकि यह सूर्य आदि के लिए तेज का स्रोत है); यह ब्रह्म का आकाश है (क्योंकि इसका कोई प्रतिरूप नहीं है); यह सदैव चमकता रहता है, क्योंकि यह पारमार्थिक ब्रह्म है। इस प्रकार उपनिषद का आठवाँ अध्याय समाप्त होता है।

IX-1. तब नारद ने पूछा: 'ब्रह्म का वास्तविक रूप कैसा है?' भगवान ब्रह्मा ने उत्तर दिया (ब्रह्म के वास्तविक रूप की व्याख्या करते हुए)। जो लोग मानते हैं कि वह (पारमार्थिक ब्रह्म) एक है और स्वयं (व्यक्तिगत आत्मा) दूसरा है, वे पशु हैं, यद्यपि अपने (वास्तविक) स्वभाव में पशु नहीं हैं। इस प्रकार (कि व्यक्तिगत आत्मा और ब्रह्म एक समान हैं) का अनुभव करने वाला बुद्धिमान (ऋषि) मृत्यु के जबड़े से मुक्त हो जाता है (अर्थात द्वैत में विश्वास करने से मृत्यु और त्याग-जन्म होता है; अद्वैत में, अमरता होती

है)। लक्ष्य (अंतिम आनंद) तक पहुँचने के लिए कोई अन्य मार्ग ज्ञात नहीं है।

IX-2. काल (कुछ दार्शनिकों का मानना है कि यह सांसारिक जीवन का मूल कारण है), प्रकृति (मीमांसक कहते हैं), संयोग (नास्तिक कहते हैं), (पांच) तत्व (जैन कहते हैं कि यह संसार की शाश्वतता में विश्वास करते हैं)
पदार्थ (प्रकृति) (शाक्तों का कहना है), पुरुष (हिरण्यगर्भ) (योगियों का कहना है) - इस प्रकार (सांसारिक जीवन के कारण पर) चिंतन। इनका संयोजन आत्मा के अस्तित्व के कारण (कारण) नहीं है। आत्मा भी सुख और दुख के अधीन होने के कारण (कारण होने में) असमर्थ है।

IX-3. उन्होंने (ब्रह्म के जानकारों ने) गहन ध्यान के योग का सहारा लेकर स्वयं प्रकाशमान आत्मा की शक्ति (माया) को देखा, जो अपने गुणों (सत्व आदि) से भली-भाँति छिपी हुई है, जो अकेले ही काल और व्यक्तिगत आत्मा सहित इन सभी कारणों को नियंत्रित करती है।

IX-4. (माया ने सगुण-ब्रह्म - ईश्वर के मार्गदर्शन में ब्रह्मांड का निर्माण किया। ब्रह्म स्वयं कोई क्रिया नहीं करता क्योंकि वह निष्क्रिया है)। (उन्होंने) उस (रथ के पहिये के समान संसार) को एक लिंग (माया) में देखा, जो तीन (ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामक देवताओं) से आच्छादित है, जो तीन गुणों से युक्त होने के कारण संसार की रचना, पालन और प्रत्याहार की शक्ति रखता है), सोलह शक्तियों (कलाओं) से युक्त है, जिसमें पचास तीलियाँ और बीस कीलें (इन्द्रियों और उनके विषयों के रूप में) हैं, जिसमें आठ के छह समूह (अष्टक) हैं, अनेक रूपों वाली एक बेड़ी (इच्छा) है, तीन प्रकार के मार्ग हैं, और मोह है जो दो (अच्छाई और पाप, प्रेम और घृणा पर आधारित) का कारण है।

IX-5. हम उस नदी का विचार करते हैं जिसका जल पाँच प्रकार से बहता है, जिसके पाँच कारणों से पाँच भयंकर मुख हैं, जिसकी लहरें पाँच प्राण वायु हैं, जिसका मूल (अहंकार) है जो पाँच ज्ञानेन्द्रियों को नियंत्रित करता है, जिसके पाँच भँवर हैं, जिसके प्रवाह की गति पाँच दुखों से बनी है, जिसके पचास विभाग हैं और जिसके पाँच संधि-स्थल हैं। इस ब्रह्म चक्र में जो सबके जीवन का कारण है, सबके प्रलय का आधार है और व्यापक (आकाश से भी अधिक विशाल) है, हंस (व्यक्तिगत आत्मा के रूप में परमात्मा) घूमता है। अपने को पृथक (व्यक्तिगत आत्मा के रूप में, सर्वव्यापी आकाश के संदर्भ में घड़े में आकाश के रूप में) और ब्रह्म को नियंत्रक आत्मा के रूप में मानकर (वह सांसारिक जीवन के चक्र में घूमता है); और

फिर उसका प्रिय बनकर ('तू ही वह है' और 'मैं ब्रह्म हूँ' में सत्य का बोध होने पर) (जीवात्मा) अमरत्व प्राप्त करता है।
IX-7. यह (जिसे पहले सगुण ब्रह्म या ईश्वर से भिन्न बताया गया है) वास्तव में (उपनिषदों में) परम ब्रह्म के रूप में गाया गया है; उसी पर (प्रणव का सार) त्रय (अधिरोपित है) और वह (प्रचंड जगत का) आधार है जो स्वयं में है; वह अविनाशी है। वेद के ज्ञाता (आत्मा और ब्रह्म के बीच के अंतर को मिथ्या जानकर) और उसके प्रति पूर्णतः समर्पित होकर पारलौकिक ब्रह्म में लीन हो जाते हैं।

IX-8. भगवान एकीकृत (कारण और प्रभाव द्वारा), नाशवान (प्रचंड जगत) और अविनाशी (माया), व्यक्त (प्रकृति) और अव्यक्त (कारण, माया) ब्रह्मांड को धारण करते हैं। व्यष्टि आत्मा सुख-दुख का भोक्ता होने के कारण शक्तिहीन मानी जाती है; स्वयं प्रकाशमान सत्ता को जान लेने पर वह सभी बंधनों से मुक्त हो जाती है।

IX-9. सर्वज्ञ और अज्ञानी दो अनिर्मित सत्ताएँ हैं; पहला भगवान है और दूसरा शक्तिहीन (अनिशा); वस्तुतः एक अनिर्मित (प्रकृति) है जो अनुभव की वस्तुओं और भोक्ता के लिए अभिप्रेत है। (पारलौकिक) आत्मा असीमित और सर्वव्यापी है तथा (कार्यों का) कर्ता नहीं है। जब कोई इन तीनों (ईश्वर, व्यष्टि आत्मा और प्रकृति) को ब्रह्म समझ लेता है (तो वह ब्रह्म बन जाता है)।

IX-10. प्रकृति (प्रधान) नाशवान है; भगवान (हर, जो अज्ञान को दूर करता है) अमर और अविनाशी है। एक स्वयं प्रकाशमान सत्ता नाशवान (प्रकृति) और व्यष्टि आत्मा पर शासन करती है। उस पर बार-बार गहन ध्यान करने और मन की एकाग्रता (योग में, 'मैं वह हूँ') और सच्ची वास्तविकता की अनुभूति से, (अज्ञान के) अंत में सार्वभौमिक भ्रम (माया) का लोप हो जाएगा।

IX-11. स्वयं प्रकाशमान भगवान (आत्मा के समान) को जानने के बाद, मनुष्य सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है; सभी दुखों का नाश हो जाता है और जन्म-मरण का अंत हो जाता है। उस पर गहन ध्यान करने से (कि वह उस वास्तविकता से भिन्न कुछ नहीं है) और जब शरीर (और आत्मा) के बीच का अंतर मिट जाता है, तो (ऋषि) तीसरी परम स्थिति (परमेश्वर की) और (उसमें) अंतिम आनंद (केवल) को प्राप्त करता है, और (इस प्रकार) स्वयं को पूर्ण कर लेता है।

IX-12. इस (ब्रह्म) को (स्वयं के रूप में) अनुभव करना चाहिए, यह शाश्वत है और व्यक्तिगत आत्मा के रूप में मौजूद है; क्योंकि इसके अलावा कुछ भी ऐसा नहीं है जो अनुभव करने योग्य हो। (भ्रामक दृष्टि से) अनुभवकर्ता (व्यक्तिगत आत्मा), वस्तुगत जगत (अनुभव का) और ईश्वर (शासक) को (अलग-अलग) समझकर, (जानें) कि यह सब त्रय (वेदान्त के जानकारों द्वारा) ब्रह्म (एकमात्र) ही घोषित किया गया है।

IX-13. इस ब्रह्म को अनुभव करने का साधन ब्रह्म-विद्या (उपनिषदों की शिक्षा) और तपस्या (अर्थात गहन ध्यान) है; यह (इसकी प्राप्ति के लिए) पूरी तरह से उपनिषदों पर निर्भर है।

IX-14. जो इस प्रकार अपने ही आत्मा को समझकर उसका ध्यान करता है, उसे क्या मोह है, क्या दुःख है, जो एकत्व को देखता है ? इससे विराज, भूत, वर्तमान और भविष्य की पृथकता नष्ट हो जाती है और वे अविनाशी (ब्रह्म) स्वरूप हो जाते हैं।

IX-15. अणु से भी सूक्ष्म, महान से भी महान, आत्मा इस (प्रत्येक) प्राणी के हृदय में स्थित है। सृष्टिकर्ता की कृपा से वासनाओं से मुक्त इस पारलौकिक भगवान को देखता है और (इस प्रकार) दुःख से मुक्त हो जाता है।

IX-16. हाथ-पैरों से रहित, (भगवान) तेजी से चलते हैं और (विषयों को) पकड़ते हैं; बिना आँखों के वे देखते हैं; बिना कानों के वे सुनते हैं। वे जानने योग्य वस्तुओं को जानते हैं (मन के बिना, क्योंकि वे सर्वज्ञ हैं); उन्हें कोई नहीं जानता। (वेदान्त के ज्ञाता) उसे सर्वोपरि पारलौकिक पुरुष (परम चेतना) कहते हैं।

IX-17. ज्ञानी (योगी) उस आत्मा को जान लेने के बाद दुःखी नहीं होता जो अशरीरी, पारलौकिक और सर्वव्यापक है तथा जो (सभी) शरीरों में विद्यमान है जो अनित्य हैं।

IX-18. यह पारलौकिक (सत्ता) सबका आधार (विष्णु के रूप में), जिसकी शक्तियाँ विचार से परे हैं, जिसे सभी उपनिषदों के गूढ़ अर्थों से जाना जा सकता है, और जो (अविनाशी) महान से भी महान है, उसे जानना चाहिए; प्रत्येक (अभूतपूर्व) के अंत में मुक्तिदाता (अर्थात् अविद्या की मृत्यु का अग्रदूत) को जानना चाहिए।

IX-19. (सर्वज्ञ), (अति प्राचीन), प्राणियों में श्रेष्ठ, सबके स्वामी, सभी देवताओं द्वारा पूजित, आदि, मध्य और अन्त से रहित, अनन्त, अविनाशी तथा शिव, विष्णु और ब्रह्मा का आश्रय (अर्थात पर्वत) है।

IX-20. यह समस्त ब्रह्माण्ड जो पाँच तत्वों से बना है और पाँच तत्वों में स्थित है, जो उनके पंचगुणन से अनन्त प्रकार का हो जाता है, उसी (अन्तर्यामी आदि आत्मा) द्वारा व्याप्त है; किन्तु वह पंचगुणित भागों से अगम्य है; (क्योंकि) वह ऊँचे से भी ऊँचा और महान से भी बड़ा है, तथा अपने स्वरूप के तेज से अनन्त शुभ है। (इस प्रकार मुक्ति के साधक को आत्मा को ब्रह्म के रूप में अनुभव करना चाहिए)।

IX-21. न तो वह जो बुरे आचरण से विरत है, न वह जो शान्त नहीं है, न वह जो एकाग्र ध्यान से रहित है, न वह जिसका मन शांत नहीं है, वह केवल शास्त्र के ज्ञान से ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। (जो ऊपर वर्णित बुराइयों से विरत होकर सच्चा ज्ञान (प्रज्ञान) प्राप्त करता है, वह ब्रह्म को प्राप्त करता है)।

IX-22. आत्मा (स्वयं में स्थित) अपने को न तो उस व्यक्ति के सामने प्रकट करती है (जो इसे) आंतरिक रूप से ज्ञानी के रूप में, न बाह्य रूप से ज्ञानी के रूप में, न स्थूल के रूप में, न सूक्ष्म के रूप में, न ज्ञान के रूप में, न अज्ञान के रूप में, न दोनों (बाह्य और आंतरिक) के ज्ञान के रूप में, न बोधगम्य के रूप में, न सांसारिक गतिविधियों से सीधे संबंधित के रूप में। जो इसे इस प्रकार जान लेता है, वह मुक्त हो जाता है; वह मुक्त हो जाता है। ऐसा भगवान ब्रह्मा ने कहा है।

IX-23. भिक्षुक आत्मा के वास्तविक स्वरूप को जानने वाला होता है। भिक्षुक अकेला ही यात्रा करता है (क्योंकि भीड़ में भी द्वैत उसके लिए विदेशी है)। वह भय से भयभीत मृग के समान (संग-संग से रहित) रहता है। वह (दूसरों की उन्नति में) बाधा नहीं डालता। अपने (नंगे) शरीर के अतिरिक्त अन्य सब कुछ त्यागकर, मधुमक्खी की भाँति (विभिन्न स्थानों से भोजन एकत्रित करके) अपना जीवन-निर्वाह करता हुआ, अपने आत्मा का गहन ध्यान करता हुआ तथा अपनी आत्मा से सब वस्तुओं में कोई भेद न देखकर मुक्त हो जाता है।

वह भिक्षुक समस्त (सांसारिक) कर्मों का कर्ता न होकर, गुरु, शिष्य, शास्त्र आदि के (कर्तव्यों) से मुक्त होकर तथा संसार के समस्त बंधनों को त्यागकर मोह से अछूता रहता है। धनहीन भिक्षुक कैसे सुखी हो सकता है?

वह धनवान है (क्योंकि उसके पास ब्रहम का धन है), ज्ञान और अज्ञान से परे है, सुख और दुःख से परे है, आत्म-तेज से प्रकाशित है, सब (लोगों) में विख्यात है, सर्वज्ञ है, सभी महाशक्तियों का दाता है,
सबका स्वामी - ऐसा वह अपने को मानता है। वह भगवान विष्णु का सर्वोच्च स्थान है, जहाँ पहुँचकर योगीजन कभी वापस नहीं लौटते।

वहाँ न तो सूर्य चमकता है, न चन्द्रमा। वह फिर कभी नहीं लौटता (सांसारिक जीवन में), वह कभी नहीं लौटता। वह अंतिम आनंद (कैवल्य) है। इस प्रकार उपनिषद (समाप्त) होता है। नौवें अध्याय (और उपनिषद) का अंत। ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें; हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें! हम देवों द्वारा आवंटित जीवन की अवधि का आनंद लें, अपने शरीर और अंगों को स्थिर करके उनकी स्तुति करें! महिमावान इंद्र हमें आशीर्वाद दें! सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें! बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें! बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें! ॐ ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ अथर्ववेद में सम्मिलित नारद-परिव्राजकोपनिषद समाप्त होता है।

044 - त्रिशिखी ब्राह्मण उपनिषद

ओम! वह (ब्रहम) अनंत है, और यह (ब्रहमांड) अनंत है।
अनंत अनंत से ही निकलता है।
(तब) अनंत (ब्रहमांड) की अनंतता को लेकर,
वह अनंत (ब्रहम) ही रह जाता है।

ओम! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

त्रिशिखी ब्राह्मण नामक एक ब्राह्मण सूर्य देव की भूमि पर गया और उनसे पूछा, "हे भगवान, शरीर क्या है? आत्मा क्या है? कारण क्या है और आत्मा क्या है?" 1

सूर्य देव ने उत्तर दिया:

आपको यह समझना होगा कि यह सब शिव है। क्योंकि केवल शिव ही हमेशा स्वच्छ हैं, जो किसी भी दोष से रहित हैं, और जो हर जगह हैं और जिनके लिए कोई दूसरा नहीं है। वे ही एकमात्र हैं जो अपने प्रकाश से सब कुछ बनाते हैं और स्टील के विभिन्न टुकड़ों पर अलग-अलग रूपों में प्रकट होने वाली आग के समान, वे अलग-अलग रूपों में प्रकट होते हैं। यदि आप पूछें कि वह किसको प्रकाश देता है, तो उत्तर होगा, ब्रह्म जिसे "सत्" शब्द से दर्शाया गया है, और जो अज्ञान और भ्रम से विलीन है।

उस ब्रह्म ने "जो स्पष्ट नहीं है" को जन्म दिया। "जो स्पष्ट नहीं है" ने "महत्" को जन्म दिया। "महत्" ने अहंकार को जन्म दिया। अहंकार ने "पांच तन्मत्रों" को जन्म दिया। उन "पांच तन्मत्रों" ने "पांच भूतों" को जन्म दिया अर्थात पृथ्वी, जल, अग्नि वायु और आकाश।

1. आकाश चेतना है अर्थात मन, बुद्धि, स्वेच्छा और अहंकार
2. वायु समाना, उधान, व्यान, अपान और प्राण है जो शरीर में वायु हैं।
3. अग्नि कान, त्वचा, आंख, जीभ और नाक है।
4. जल की अवधारणा ध्वनि, स्पर्श, दृष्टि, स्वाद और गंध की भावना है।
5. पृथ्वी शब्द, हाथ, पैर और अन्य शारीरिक अंग हैं।
6. ईथर जो ज्ञान की अवधारणा है, वह निर्णय, व्यवहार और आत्मसम्मान है।
7. वायु से संबंधित क्रियाएं हैं एकजुट होना, स्थान बदलना, लेना, सुनना और सांस लेना।
8. अग्नि से संबंधित क्रियाएं हैं स्पर्श, दृष्टि, स्वाद, दृश्य और ध्वनि की भावना। ये भी पानी पर निर्भर हैं।
9. पृथ्वी से संबंधित क्रियाएं हैं बात करना, देना, लेना, जाना और आना।
10. प्राण थन्मात्र (प्रतीकात्मक आत्मा) की क्रियाएं हैं कार्य करने के अंग और ज्ञान अर्जित करने के अंग।
11. अहंकार मन, मस्तिष्क और करने की इच्छा तक सीमित है।
12. प्रतीकात्मक आत्मा (प्राण थन्मात्र) के सूक्ष्म पहलू हैं स्थान देना, बिखरना, देखना, एकजुट होना और दृढ़ होना। ये बारह दर्शन के पहलू हैं, ईश्वरत्व की प्रारंभिक अवधारणा और भौतिक अस्तित्व की प्रारंभिक अवधारणा। चन्द्र, ब्रह्मा, दिशाएँ, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनी देव (दिव्य चिकित्सक), अग्नि, इन्द्र (देवों के राजा), उपेन्द्र, प्रजापति और यम (मृत्यु

के देवता) इन्द्रियों और इन्द्रियों के देवता हैं जो इन बारह पहलुओं में आत्मा की तरह भ्रमण करते हैं।
1 [श्लोक 2 और 3 उपलब्ध नहीं हैं।]
वहाँ से, पृथ्वी अस्तित्व में आई, एक चीज को दूसरी चीज से गले लगाते हुए, क्रॉस-क्रॉस कनेक्शन द्वारा व्याप्त होकर, पंच बूथों (पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि और आकाश के पाँच पहलुओं) के परिणामस्वरूप कदम दर कदम जीवन प्राप्त किया।

4 उस पृथ्वी में, पौधे, चढ़ने वाले पौधे, भोजन और चार प्रकार के पिंड (शरीर के केंद्र) उत्पन्न हुए। शरीर के मूल भाग स्वाद, रक्त, मांस, वसा, हड्डियाँ, तंत्रिकाएँ और वीर्य हैं।

5 कुछ पिंड अपने स्वयं के संपर्क के कारण उत्पन्न हुए और कुछ पिंड पंच बूथों के संपर्क के कारण उत्पन्न हुए। इसमें वह पिण्ड जिसे अन्नमय (भोजन का क्षेत्र) कहते हैं, उदर में है।

6 इस शरीर के मध्य में हृदय है जो कमल पुष्प के समान है। इसमें प्रबन्ध, अहंकार और कर्म के देवता हैं।

7 इसका बीज तमोगुण पिण्ड है जो रजोगुणी और ठोस है (चलता या बदलता नहीं)। यह संसार है, जिसमें अनेक प्रकृतियाँ हैं और यह गले में स्थित है।

8 अंदर की ओर देखने वाली प्रसन्न आत्मा (आत्मा) सिर के शिखर पर है और परम पथ स्थान में स्थित है। यह पृथ्वी के समान रूप में है और महान शक्ति से चमकती है।

9 जागृति की अवस्था सर्वत्र है। जाग्रत अवस्था में स्वप्न की अवस्था भी है।
निद्रा की अवस्था और उच्च ज्ञान (थुरिया) की अवस्था अन्य किसी अवस्था में नहीं है।

10 जैसे अच्छे फल के सभी भागों में स्वाद व्याप्त रहता है, वैसे ही शिव शक्ति हर जगह व्याप्त है।

11 इसी प्रकार सभी कोश (शरीर के क्षेत्र) अन्नमय कोश के भीतर हैं। कोसम के समान आत्मा है।आत्मा के समान शिव हैं।

12 जीव भावनाओं से युक्त है। शिव भावनाओं से रहित हैं। कोश जीवों की भावनाओं के स्थान हैं। और वे अस्तित्व की अवस्थाओं को जन्म देते हैं।

13 जिस प्रकार जल के मंथन से लहरें और झाग उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार मन के मंथन से कई दर्दनाक विचार उत्पन्न होते हैं।

14 कर्तव्यों का पालन करने से जीव उन कर्तव्यों का दास बन जाता है। उन्हें त्यागने से उसे शांति मिलती है। वह एक हो जाता है, जो दुनिया को दक्षिण मार्ग से देखता है।

15 अहंकार और आत्म-सम्मान से युक्त जीव वास्तव में सदाशिव है। जीव अज्ञानी आत्मा के साथ रहने के कारण उस प्रकार की माया को प्राप्त करता है।

16 वह सैकड़ों योनियों को प्राप्त करता है और परिचित होने के कारण वहीं रहता है। नदी के किनारों के बीच यात्रा करने वाली मछली की तरह, वह मोक्ष प्राप्त करने तक यात्रा करता रहता है।

17 समय बीतने के साथ-साथ आत्मा के ज्ञान की बुद्धि के कारण, वह उत्तर दिशा की ओर मुड़ता है और कदम-दर-कदम ऊपर की ओर बढ़ता है।

18 जब वह अपनी आत्मशक्ति को अपने सिर में भेजने में सक्षम होता है और योग का स्थायी अभ्यास करता है, तो उसे बुद्धि प्राप्त होती है। बुद्धि के कारण उसका योग कार्य करता है।

19 जब योग और बुद्धि उसमें स्थिर हो जाती है, तो वह योगी बन जाता है। उसका कभी विनाश नहीं होगा। वह अपनी कमियों में भगवान शिव को देखेगा और भगवान शिव में कमियाँ नहीं देखेगा।

20 योग के परिणाम प्राप्त करने के लिए, इसे किसी अन्य विचार के बिना करना होगा। अभ्यास के बिना तुम योग या ज्ञान में सफल नहीं हो सकते। योगी को इनसे भी फल नहीं मिलेगा।

21 इसलिए योग के अभ्यास से मन और आत्मा को वश में करना चाहिए। योगी को योग में समस्याओं को उसी प्रकार काटना चाहिए जैसे तीखे चाकू से पदार्थ को काटा जाता है।

22 [श्लोक 23 से 145 उपलब्ध नहीं हैं।]
आत्मा के शुद्ध ज्ञान से इन्द्रियों को वश में करना चाहिए। हमें सदैव परा वासुदेव का ध्यान करना चाहिए जो सबसे महान आत्मा हैं। 146 आकार और रूप पर ध्यान के चयनित और क्रमबद्ध रूप से कैवल्य (मोक्ष) प्राप्त होता है। यदि कोई योगी प्राणायाम की कुंभक अवस्था में वासुदेव का कम से कम थोड़ी देर के लिए भी ध्यान कर सके, तो उसके सात जन्मों के पाप नष्ट हो जाएंगे। आपको यह समझना होगा कि पेट से हृदय तक का भाग जाग्रत क्रिया है। गर्दन में स्वप्न की क्रिया होती है।

जबड़े के बीच में नींद होती है। पलकों के बीच में थूरिया होती है। परब्रह्म के साथ संश्लेषण की वह क्रिया जो थूरिया से बहुत ऊपर है, खोपड़ी के ऊपरी मध्य में मौजूद है जिसे ब्रह्मरंध्र कहते हैं। थूरिया के सबसे आगे के कोने में आत्मा को विष्णु कहते हैं। जब कोई ध्यान करता है तो वह भगवान विष्णु के समान ही होता है।

शुद्ध परमाकाश (महा आकाश) को प्राप्त करके, उसे उस अधोक्षज का ध्यान करना चाहिए जो करोड़ों सूर्यों के प्रकाश से सदा प्रकाशित रहता है, जो उसके हृदय कमल में विराजमान है। अन्यथा उसे उस विश्वरूपी का ध्यान करना चाहिए, जिसके अनेक रूप हैं, अनेक मुख हैं, अनेक तख्त हैं, अनेक आयुध हैं, करोड़ों सूर्यों के समान चमकने वाली अनेक आंखें हैं, अनेक रंग हैं, जो शान्त भी है और अत्यन्त क्रोधी भी है।

इस प्रकार ध्यान करने वाले योगी की समस्त मानसिक व्याकुलताएं पूर्णतः शान्त हो जाती हैं। जो योगी हृदय के मध्य में भगवान की कृपा के समान चमकने वाले अविनाशी पदार्थ का, थुरिय से परे उस परम सत्य का, अथाह और अनंत ज्ञानस्वरूप सूर्य का, वायुरहित स्थान में चमकते दीपक के समान उस सत्ता का तथा कच्चे रत्नों की चमक के समान उस सत्ता का ध्यान करता है, उसे मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

147-157 जो योगी उस देव की चमक को अपने हृदय कमल में विश्वव्यापी स्थूल या सूक्ष्म रूप में अथवा कम से कम उसके एक छोटे से अंश में देख और अनुभव कर सकता है, उसे अणिमा जैसी सभी गुप्त शक्तियां आसानी से प्राप्त हो जाती हैं।

158-159 यह समझना होगा कि जीवात्मा और परमात्मा की एकता के सार्वभौमिक सत्य की प्राप्ति जो यह है कि "मैं ब्रह्म हूँ और ब्रह्म मैं हूँ"

समाधि की वास्तविक अवस्था है (ध्यान की एक प्रबुद्ध अवस्था जहाँ सभी विचार प्रक्रियाएँ ईश्वर के साथ एकीकृत हो जाती हैं)। वह व्यक्ति ब्रह्म बन जाता है और उसका दूसरा जन्म नहीं होता।

160-161 जो व्यक्ति ऐसे सिद्धांतों की जांच अनासक्त भाव से करता है, वह लकड़ी के बिना आग की तरह हो जाता है और स्वयं के साथ एक हो जाता है।

162 चूँकि उसके मन और आत्मा को पकड़ने (लगाने) के लिए कुछ नहीं है, वह ज्ञान के रूप में स्थिर हो जाता है, और उसकी आत्मा नमक के टुकड़े की तरह पिघल जाती है और वह शुद्ध चेतना के समुद्र में विलीन हो जाता है।

163 वह शब्द को देखता है जो एक जुनून और जादू की चीज है, एक सपने की तरह। स्वाभाविक अवस्था में योगी अपने आप में परिवर्तन किए बिना खड़ा रहता है और अपनी नींद में नग्न रूप को प्राप्त करता है और मोक्ष।

164 ॐ ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है।अनंत अनंत से ही निकलता है।(तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर,यह केवल अनंत (ब्रह्म) के रूप में रहता है।ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यजुर्वेद के शुक्ल पक्ष से संबंधित त्रिशिखा-ब्राह्मणोपनिषद यहीं समाप्त होता है।

<u>045 - सीता उपनिषद</u>

ॐ ! देवगण ! कानों से हम शुभ सुनें;

पूज्य ! नेत्रों से हम शुभ देखें।

स्थिर अंगों से, स्तुति करते हुए शरीर से,

देवताओं द्वारा निर्दिष्ट जीवन का आनंद लें।

विख्यात इंद्र हमें कल्याण प्रदान करें;

पूसन और सभी देवता हमें कल्याण प्रदान करें।

निर्बाध गति वाले तारक्य हमें कल्याण प्रदान करें।

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें।

ॐ ! शांति ! शांति ! शांति !

1. देवताओं ने प्रजापति से पूछा: सीता कौन है? उसका स्वरूप क्या है? तब प्रजापति ने उत्तर दिया: वह सीता है:

2. प्रथम कारण होने के कारण सीता को प्रकृति कहा जाता है; प्रणव का भी कारण होने के कारण वह कारण है, इसलिए उसका नाम प्रकृति है।

3. माया मूलतः तीन अक्षरों वाली सीता है।विष्णु कहलाते हैं, जो विश्व-बीज हैं, और माया भी 'इ' अक्षर है।

4. 'स' अक्षर अमर सत्य को दर्शाता है;उपलब्धि; शिव अपनी पत्नी के साथ।
ता' वाणी की रानी को दर्शाता है ब्रह्म के साथ संयुक्त, उद्धारक।

5. देवी जो महान भ्रम है, जिसका रूप अप्रकट है, और जिसे 'इ' द्वारा दर्शाया गया है, वह प्रकट होती है, चंद्रमा के समान सुंदर, दोषरहित अंग, सजावटी मालाओं, मोतियों और अन्य अलंकरणों से सुसज्जित।

6. सबसे पहले, वैदिक अध्ययन के समय, वह अनिवार्य रूप से स्पष्ट वैदिक वाणी है। दूसरे, पृथ्वी पर,हल की नोक से वह निकलती है, जो ब्रह्म-साक्षात्कार के आनंद के रूप में सदैव विद्यमान रहती है। तीसरा, 'मैं' द्वारा निरूपित होने पर वह अप्रकट हो जाती है। वैसी ही वह सीता है। इस प्रकार वे शौनकों के पाठ में व्याख्या करते हैं।

7. श्रीराम की (पूर्ण मुक्ति के प्रकाश) उपस्थिति द्वारा सक्षम होकर वह ब्रह्मांड को धारण करती है; सभी देहधारी प्राणियों को वह उत्पन्न करती है, धारण करती है और वापस ले जाती है।

8. सीता को जानना चाहिए; वह आदि कारण है; ॐ के रूप में वह वह कारण है, ब्रह्म-ज्ञानी घोषणा करते हैं।

9. इसलिए अब ब्रह्म की खोज करो।

10. वह यहाँ सभी वेद हैं; सभी देवता; सभी लोक; सभी यश; सभी गुण; सभी आधार, प्रभाव और कारण; देवों के स्वामी की महान सुंदरता। उसका एक रूप है जो भिन्न होते हुए भी एक है। वह बुद्धिमान और जड़ का सार है। वह ब्रह्मा से लेकर जड़ और पत्थर तक सब कुछ है। वह गुणों और कार्यों के भेदों के कारण देहधारी है। वह देवताओं, ऋषियों, मनुष्यों और गंधर्वों का, राक्षसों, पिशाचों, आत्माओं, भूतों, पिशाचों आदि का, तथा तत्वों, इन्द्रियों, मन और प्राणों का रूप धारण करती है।

11. वह दिव्य सत्ता अपनी शक्ति से तीन गुना है, अर्थात् इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति और ज्ञान शक्ति।

12. इच्छा शक्ति तीन गुना है: श्री, भूमि और नील। शुभता श्री का रूप है; पवित्रता की शक्ति भूमि का रूप है; सूर्य, चंद्रमा और अग्नि नील के रूप हैं।

13. जैसे चंद्रमा जड़ी-बूटियों की स्वामिनी है; वह प्रचुरता का वृक्ष, फूल, फल, लता और कुंज है; औषधीय पौधों और चिकित्सकों की स्वामिनी है; वह अमरता का दिव्य पेय है, जो अपार वैभव का फल प्रदान करती है। वह देवताओं को अमृत से तथा पशुओं को घास से तृप्त करती है, जिस पर क्रमशः देवता तथा पशु रहते हैं।

14. वह सूर्य के वेश में दिन-रात सभी लोकों को प्रकाशित करती है। समय के निर्धारण के रूप में, जैसे कि सबसे छोटा क्षण, घंटा, आठ भागों वाला दिन, सप्ताह का दिन तथा रात, तथा पखवाड़ा, महीना, ऋतु, छह महीने तथा वर्ष और मानव जीवन की अवधि सौ वर्ष निर्धारित करने के रूप में, वह स्वयं को प्रकट करती है तथा विलम्ब तथा गति के रूप में जानी जाती है। इस प्रकार चक्र के समान, वह काल के चक्र, ब्रह्माण्ड के चक्र आदि के रूप में घूमती है; जिसमें ब्रह्मा के जीवन के क्षण से लेकर पचास वर्ष तक

का समय सम्मिलित है। सभी प्रकाशमान लौकिक विभाग इसी काल के विशिष्ट निर्धारण हैं, जो सभी का निधान है।

15. अग्नि जीवों का भोजन और पेय है, उनकी भूख और प्यास है। देवताओं के लिए वह यज्ञ का रूप है। जंगल में जड़ी-बूटियों के लिए वह शीतलता और गर्मी है। ईंधन के अंदर और बाहर दोनों जगह वह निवास करती है, शाश्वत और क्षणभंगुर।

16. देवी श्री भगवान की इच्छा के अनुसार संसार की रक्षा के लिए त्रिगुणात्मक रूप धारण करती हैं। उन्हें श्री और लक्ष्मी कहा जाता है।

17. देवी भू पृथ्वी हैं, जिसमें सात द्वीप और समुद्र हैं; चौदह लोकों जैसे भू आदि का भण्डार और सामग्री; और उनका सार प्रणव है।

18. नील बिजली से सुशोभित है। सभी जड़ी-बूटियों और जीवों को पोषण देने के लिए, वह सभी रूप धारण करती है।

19. सभी लोकों के मूल में, वह जल का रूप धारण करती है, जिसे 'मेंढकों से युक्त' कहा जाता है और जो लोकों को धारण करती है।

20. क्रिया शक्ति का वास्तविक स्वरूप इस प्रकार है: हरि के मुख से ध्वनि निकलती है; इस ध्वनि से 'बूंद' निकलती है; फिर ॐ अक्षर निकलता है; इस अक्षर से वैखानस का निवास स्थान राम पर्वत निकलता है। उस पर्वत पर क्रिया और ज्ञान का प्रतिनिधित्व करने वाली अनेक शाखाएँ पनपती हैं।

21. वेदों का आदि विज्ञान तीन, सभी अर्थों को प्रकट करता है वे 'तीन' हैं, जिनमें ऋक्, यजुस और सामन शामिल हैं।

22. एक तथ्य के आधार पर, चार गुना, उन्हें ऋक्, यजुस, सामन, अथर्वण कहा जाता है।

23. 'तीन' इतने प्रसिद्ध हैं क्योंकि वे चार पुजारियों से संबंधित हैं, त्रिगुण अर्थ, लिंग और बहुत कुछ के ग्रंथ बनाते हैं।अथर्वण, संक्षेप में,ऋक्, यजुस और सामन भी है।

24. फिर भी यह अलग है,मुख्य रूप से, जादुई अर्थ में।ऋग्वेद इक्कीस शाखाओं में फलता-फूलता है।

25. यजुस नौ सौ विभिन्न विद्यालयों में प्रसिद्ध है।सामन की एक हजार शाखाएँ हैं;अथर्वण की चालीस।

26. वैखानस दर्शन अंतर्ज्ञान से संबंधित है;वैखानस के साथ यह है कि ऋषि हमेशा खुद को संलग्न करते हैं।

27. कर्मकाण्ड, व्याकरण, ध्वनिविज्ञान, व्युत्पत्ति विज्ञान, खगोल विज्ञान और छन्द ये छह अंग हैं।

28. लघु अंग हैं वेदांत और मीमांसा, न्याय और पुराणों पर ग्रंथ, जो विधि के ज्ञाताओं द्वारा समर्थित हैं; इसी प्रकार ध्यान (उपासना) के अध्याय भी हैं;

29. आचार-विचार, वैदिक विद्या की सभी शाखाएँ,परंपरा, महान ऋषियों द्वारा समर्थित विधि;इतिहास और किंवदंती - ये उपांग हैं।

30. पाँच लघु वेद हैं वास्तुकला और तीरंदाजी,संगीत, चिकित्सा और दैविक विचार।

31. अनुशासन, संस्कार, भाष्य, विद्या,श्वास की सर्वोच्च विजय - ये इक्कीस
स्वतःसिद्ध हैं।

32. विष्णु का वचन सर्वप्रथम वैखानस से तीन वेदों के रूप में निकला।

33. प्राचीन काल में वैखानस ऋषि से तीन बातें निकलीं - मुझसे सब सुनो। सनातन ब्रह्म रूप ही कार्य करने की शक्ति है।

34. व्यक्त शक्ति भगवान की स्मृति मात्र है; इसका सार है अभिव्यक्ति और विकास, प्रतिबंध और संवर्धन, अवनति और उत्थान। यह प्रत्यक्ष और अव्यक्त का कारण है, सभी पैरों, अंगों, चेहरों, रंगों को धारण करती है। यह एक साथ भिन्न और अविभाज्य है; भगवान की अचूक संगिनी, निरंतर उन पर निर्भर। वह प्रत्यक्ष और अव्यक्त हो जाती है, और उसे प्रकट शक्ति कहा जाता है क्योंकि वह (केवल) अपनी आंख बंद करने और खोलने के माध्यम से सृजन, पोषण और वापसी, दमन और पदोन्नति लाने में सक्षम है।

35. इच्छा की शक्ति तीन गुना है। वापसी के समय, आराम के लिए, जब वह भगवान के वक्षस्थल के दाहिने भाग में श्रीवत्स के आकार में स्थित, वे योगशक्ति हैं।

36. भोगशक्ति का स्वरूप भोग है। वे धन-वृक्ष, कामना-पूर्ति करने वाली गाय, कामना-पूर्ति करने वाली मणि, तथा (अनमोल) शंख और कमल जैसी नौ निधियों से संबंधित हैं,वे उपासक की भक्ति से प्रेरित होती हैं, चाहे वह मांगी गई हो या अनचाही (भोगों को प्राप्त करने के लिए) अग्निहोत्र जैसे अनिवार्य या वैकल्पिक अनुष्ठानों के परिणामस्वरूप; या योगाभ्यास के (आठ अंगों) अर्थात् संयम, अनुशासन, आसन, श्वास-नियंत्रण, प्रत्याहार, ध्यान, ध्यान और चिंतन के परिणामस्वरूप; या शिखरयुक्त मंदिरों में भगवान की प्रतिमा की पूजा के परिणामस्वरूप; या अनुष्ठानिक स्नान आदि के परिणामस्वरूप; या पितरों की पूजा आदि के परिणामस्वरूप; या भगवान को प्रसन्न करने के लिए भोजन, पेय आदि देने के परिणामस्वरूप। (यह सब) (भोग की शक्ति से) होता है।

37. अब चतुर्भुजी वीर शक्ति का वर्णन किया गया है। वे अपने हाव-भाव से निर्भयता तथा वरदान देने का संकेत देती हैं; वे कमल धारण करती हैं; मुकुट और अलंकरण से सुसज्जित हैं, वे सभी देवताओं से घिरी हुई हैं; रत्नजटित कलशों से अमृतमय जल में चार हाथियों द्वारा स्नान कराया जाता है। ब्रह्मा आदि सभी देवता उन्हें नमस्कार करते हैं।

वे आठ चमत्कारी शक्तियों से युक्त हैं, जैसे अनुपात में अणु बन जाना; उनके समक्ष स्थित इच्छा-पूर्ति करने वाली गाय उनकी स्तुति करती है; वेद, शास्त्र आदि उनकी प्रशंसा करते हैं। जया जैसी दिव्य अप्सराएँ उनकी सेवा करती हैं। सूर्य और चंद्रमा जैसे प्रकाशमान देवता उन पर अपनी महिमा बरसाते हैं। तुम्बुरु, नारद आदि देवता उनकी महिमा का गान करते हैं। पूर्णिमा और अमावस्या के दिन उनके ऊपर छत्र धारण किए रहते हैं; दो रमणीय प्राणी चाबुक थामे हुए हैं।

स्वाहा और स्वधा उन्हें पंखा झलते हैं। भृगु और अन्य अलौकिक प्राणी उनकी आराधना करते हैं। देवी लक्ष्मी दिव्य सिंह-सिंहासन पर कमल मुद्रा में विराजमान हैं, जो सभी कारणों और प्रभावों को प्रभावित करती हैं। भगवान के भेद के विचार की स्थिर (प्रतिमा), वे सुशोभित करती हैं।

शांत आँखों वाली, सभी देवताओं द्वारा पूजित, वे वीरता की सुन्दरी के रूप में जानी जाती हैं। यही रहस्य है। ॐ ! देवताओं ! कानों से हम अच्छा सुनें; आराध्य ! आँखों से हम अच्छा देखें। स्थिर अंगों से, स्तुति करते हुए शरीर से, देवताओं द्वारा आवंटित जीवन का आनंद लें। व्यापक यश वाले इंद्र हमें कल्याण प्रदान करें; पूसन और सभी देवता हमें कल्याण प्रदान करें। निर्बाध गति वाले तार्क्ष्य हमें कल्याण प्रदान करें। बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें। ॐ ! शांति ! शांति! शांति!

यहाँ अथर्ववेद में शामिल सीता उपनिषद समाप्त होता है।

046 - योग चूड़ामणि उपनिषद

ॐ! मेरे अंग-प्रत्यंग, वाणी, प्राण, नेत्र, कान, प्राण और सभी इन्द्रियाँ बलवान हों।
सबका अस्तित्व उपनिषदों का ब्रहम है।
मैं कभी ब्रहम का खंडन न करूँ, न ब्रहम मेरा खंडन करे।
कोई खंडन न हो:
कम से कम मेरी ओर से तो कोई खंडन न हो।
उपनिषदों में वर्णित गुण मुझमें हों,
जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।
ॐ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!
योगियों का कल्याण करने के उद्देश्य से मैं योग चूड़ामणि उपनिषद कहूँगा। इसे वे बुजुर्ग लोग सराह रहे हैं जो योग को भली-भाँति जानते हैं। यह रहस्यपूर्ण है और मोक्ष का पद देने में सक्षम है।

1 [श्लोक 2-29 उपलब्ध नहीं हैं।]जीवात्मा (भौतिक व्यक्ति की आत्मा) प्राण के नियंत्रण में है जो ऊपर-नीचे जाता है और अपान के भी। अपान प्राण को खींचता है। प्राण अपान को खींचता है। जो इस परस्पर खिंचाव को जानता है और महसूस करता है जो ऊपर और नीचे खींच रहा है, वह योग को समझता है।

30 यह "हं" ध्वनि के साथ बाहर जाता है और "सा" ध्वनि के साथ फिर से अंदर जाता है। प्राणी इस मंत्र को "हंसा", "हंसा" के रूप में जपते रहते हैं।

31 प्राणी इस मंत्र का दिन-रात इक्कीस हजार एक सौ बार जप करते रहते हैं।

32 यह मंत्र जिसे "अजपा गायत्री" कहा जाता है, सभी योगियों को मोक्ष प्रदान करने वाला है। इस मंत्र का स्मरण मात्र से ही सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है।

33 इसके समान कोई पवित्र साधना नहीं है, इसके समान कोई जप नहीं है, इसके समान कोई ज्ञान नहीं है और भविष्य में भी ऐसा होने की संभावना नहीं है।

34 यह अजपा गायत्री जो कुण्डलनी से निकलती है, आत्मा को सहारा देती है। यह आत्मा के विज्ञानों में सबसे महान है। जो इसे जानता है, वह वेदों को जान लेता है।

35 मूलाधार के ऊपर स्थित कुण्डलनी शक्ति अपने अष्टजड़ रूप में सदैव सुषुम्ना के मुख को ढके रहती है, जो ब्रह्म का द्वार है।

36 कुण्डलनी परमेश्वरी (ब्रह्मांड की देवी) को ब्रह्मा के रोगरहित द्वार से होकर जाना चाहिए, वह अपने मुख से इस द्वार को बंद करके सो जाती है।

37 योगाभ्यास से उत्पन्न गर्मी के कारण, वायु के वेग के कारण, तथा अपनी मानसिक शक्ति के कारण वह खड़ी हो जाती है और अपने सुईनुमा शरीर का उपयोग करके सुषुम्ना नाड़ी से ऊपर चली जाती है।

38 जैसे घर के दरवाजे चाबी से खोले जाते हैं, वैसे ही योगी को कुण्डलिनी का उपयोग करके मोक्ष का द्वार खोलना चाहिए।

39 [श्लोक 40-71 उपलब्ध नहीं हैं।] परब्रह्म ओम है, जो विद्यमान है, जो स्वच्छ है, जो ज्ञान से परिपूर्ण है, जिसमें कोई दोष नहीं है, जो दाग रहित है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, जिसका न आदि है, न अंत है, जो एक और केवल एक है, जो थुरीय है, जो भूत, वर्तमान और भविष्य की वस्तुओं में विद्यमान है और जो कभी भी विभाजित नहीं होगी। उस

परब्रह्म से पराशक्ति (स्त्री रूप) उत्पन्न होती है। वह आत्मा है जो स्वयं प्रकाशित है।

उस आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु उत्पन्न हुई। वायु से अग्नि उत्पन्न हुई। अग्नि से जल उत्पन्न हुआ और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई। इन पाँच तत्वों पर पाँच देवों का शासन है। सदाशिव, ईश्वर, रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा। इनमें ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र सृष्टि, पालन और संहार का कार्य करते हैं। ब्रह्मा राजसिक हैं, विष्णु सात्विक और रुद्र तामसिक। इस प्रकार वे तीन भिन्न गुणों वाले हैं।

72.1 देवताओं में सबसे पहले ब्रह्मा उत्पन्न हुए। सबसे पहले उत्पन्न होने वालों में ब्रह्मा सृष्टिकर्ता, विष्णु पालनकर्ता और भगवान रुद्र संहारक बने। इनमें से ब्रह्मा से लोक, देवता, मनुष्य और उनके बीच के लोग उत्पन्न हुए। उनसे वे वस्तुएँ उत्पन्न हुईं जो गति नहीं करतीं। मनुष्यों के मामले में, शरीर पंचभूतों (पाँच तत्वों) का एकीकृत रूप है। ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञान से सम्बन्धित क्रियाएँ, पाँच शरीर वायु (प्राण, अपान आदि) मन, बुद्धि, निर्णय शक्ति और आत्म-अनुभूति के स्थूल भाग द्वारा सिखाई जाती हैं और उन्हें स्थूल शरीर (स्थूल शरीर) कहते हैं।

ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, बुद्धि से सम्बन्धित वस्तुएँ, पाँच शरीर वायु और मन तथा बुद्धि का सूक्ष्म भाग लिंग शरीर कहलाता है। शरीर में तीन प्रकार के गुण होते हैं। इस प्रकार सभी लोगों के तीन शरीर होते हैं। शरीर की चार अवस्थाएँ हैं अर्थात् जाग्रत अवस्था, स्वप्न, सुषुप्ति और थुरीय (उच्च आध्यात्मिक अवस्था)। हमारे शरीर में निवास करने वाले और इन अवस्थाओं को नियंत्रित करने वाले पुरुष विश्व, तैजस, प्रज्ञा और आत्मा हैं। विश्व को सदैव स्थूल अनुभव होंगे। उससे भिन्न तैजस है जिसे सूक्ष्म अनुभव होते हैं। प्रज्ञा को सुखद अनुभव होते हैं। आत्मा इन सबका साक्षी है।

72 आत्मा जो "ॐ" स्वरूप है, वह सभी प्राणियों में होगी तथा रजोगुण के समय नीचे की ओर होगी।

73 तीनों अक्षरों आ, उ और म में तीन वेद, तीन लोक, तीन गुण, तीन अक्षर और तीन ध्वनियाँ चमकती हैं। इस प्रकार प्रणव चमकता है। जब आप जागते हैं, तो अक्षर आ सभी प्राणियों की आँखों में मौजूद होता है, जब आप स्वप्न में होते हैं, तो अक्षर उ सभी प्राणियों की गर्दन में मौजूद होता है और अक्षर म सभी प्राणियों के हृदय में मौजूद होता है जब वे सोते हैं।

74 अक्षर आ अण्डे की अवस्था में विश्वा के रूप में और पिण्ड की अवस्था में विराट पुरुष के रूप में मौजूद होता है। अक्षर उ सूक्ष्म अवस्था में तैजस और हिरण्य गर्भ के रूप में मौजूद होता है। अक्षर म कारण अवस्था और प्रज्ञा के रूप में मौजूद होता है। अक्षर आ राजस गुण वाला लाल है और इसका रूप भगवान ब्रह्मा का है। अक्षर उ सात्विक गुण वाला है और इसका रूप श्वेत विष्णु का है।

अक्षर म तामसिक गुण वाला है और इसका रूप काले रुद्र का है। ब्रह्मा ने प्रणव से जन्म लिया। विष्णु भी उसी से निकले। रुद्र भी उसी से निकले। प्रणव परब्रह्म (परम देवता) है। ब्रह्मा 'अ' अक्षर में विलीन हो जाते हैं। विष्णु 'उ' अक्षर में विलीन हो जाते हैं और रुद्र 'म' अक्षर में विलीन हो जाते हैं। ज्ञानी लोगों में प्रणव ऊपर की ओर देखते हैं और अज्ञानी लोगों में प्रणव नीचे की ओर देखते हैं।

75-78 प्रणव इस प्रकार विद्यमान है। जो इसे जानता है, वह वेदों को जानता है। अनाहत ध्वनि रूप में, यह बुद्धिमान लोगों के मामले में ऊपर की ओर बढ़ता है।

79 प्रणव ध्वनि तेल के प्रवाह की तरह निरंतर है, और घंटी की लंबी आवाज की तरह है। इसका शिखर 'ब्रह्म' है।

80 वह शिखर इतना चमकीला होगा, कि उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। महान विद्वान अपनी तीव्र बुद्धि से इसे खोज लेते हैं। जो इसे जानता है, वह वेदों को जानने वाला माना जाता है।

81 हंस मंत्र, दोनों आँखों के बीच में चमकता है। सा अक्षर को केचरी कहते हैं जिसका अर्थ है "वह जो आकाश में भ्रमण करता है"। यह निश्चित किया गया है कि यह प्रसिद्ध वैदिक उक्ति "तत् त्वम् असि (आप वही हैं)" में "त्वम् (आप)" शब्द है।

82 यह निश्चित किया गया है कि "हा" अक्षर जो समस्त ब्रह्माण्ड का स्वामी है, उपरोक्त वैदिक उक्ति में "तत् (वह)" शब्द है। हमें ध्यान करना है कि "सा" अक्षर जन्म और मृत्यु के बीच यात्रा करने वाली आत्मा है और "हा" अक्षर स्थिर ईश्वर है।

83 जीव अपनी इन्द्रियों से बंधा हुआ है, लेकिन परमात्मा उससे बंधा हुआ नहीं है। जीव अहंकारी है और आत्मा अहंकार से बंधी हुई नहीं है और स्वतंत्र है।

84 वह आकाशीय प्रकाश जो "ओम" है, वह आत्मा है जिसके पहलुओं में भू, भुव और सुव तीनों लोक स्थित हैं और वह स्थान भी है जहाँ तीन देवता चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि निवास करते हैं।

85 आकाशीय प्रकाश जो कि "ॐ" है, वह आत्मा है जिसके पहलुओं में "काम" है जो कि ब्रह्मा की शक्ति है, "इच्छा" है जो कि रुद्र की शक्ति है और "बुद्धि" है जो कि विष्णु की शक्ति है।

86 क्योंकि ॐ आकाशीय प्रकाश है, इसलिए इसे शब्दों द्वारा उच्चारित किया जाना चाहिए, शरीर द्वारा अभ्यास किया जाना चाहिए और मन द्वारा इसका ध्यान किया जाना चाहिए।

87 जो व्यक्ति शुद्ध या अशुद्ध रहते हुए भी प्रणव का जप करता रहता है, वह अपने पापों से कभी नहीं जुड़ता, वह कमल के पत्ते के समान है जो कभी गीला नहीं होता।

88 [श्लोक 89-102 उपलब्ध नहीं हैं।]

103 प्राणायाम का मूल नियम है कि कम से कम 12 बार जप करना चाहिए, जिसे पूरक कहते हैं, उसके बाद 16 बार जप करना चाहिए, जिसे कुम्भक कहते हैं, तथा फिर 10 बार जप करना चाहिए, जिसे रेचक कहते हैं, उसे प्राणायाम कहते हैं।

104 निम्नतम अवस्था में पसीना आएगा, मध्यम अवस्था में कंपन होगा, तथा उत्तम अवस्था में लक्ष्य की प्राप्ति होगी। इसके बाद श्वास पर नियंत्रण रखें।

105 योगी को सबसे पहले अपने गुरु तथा भगवान शिव को प्रणाम करना चाहिए, तथा कमल आसन में बैठकर अपनी दृष्टि को नासिका के किनारे पर केन्द्रित करना चाहिए, तथा केवल प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

106 [श्लोक 107-108 उपलब्ध नहीं हैं।]

आसन से मनुष्य रोगों से बचता है, प्राणायाम से पापों से बचता है और प्रत्याहार (स्पष्टीकरण के लिए नीचे 120 देखें) से वह अपनी मानसिक गतिविधियों पर नियंत्रण रखता है।

109 विश्वास से मन दृढ़ होता है और समाधि से प्राणी को अद्भुत ज्ञान प्राप्त होता है और वह पाप-पुण्य कर्मों का नाश करके मोक्ष को प्राप्त करता है।

110 [श्लोक 111-112 उपलब्ध नहीं हैं।]
सर्वत्र फैली हुई परम ज्योति को देखने के बाद समाधि में कर्तव्य और कर्म न आते हैं, न जाते हैं।

113 [श्लोक 114-115 उपलब्ध नहीं हैं।]
यदि हम प्राणायाम के साथ खड़े हों तो सभी रोग नष्ट हो जाएंगे। सभी रोग केवल उन्हीं को दिखाई देते हैं जो प्राणायाम करने में सक्षम नहीं हैं।

116 [श्लोक 117-119 उपलब्ध नहीं हैं।]
प्रत्याहार वह अवस्था है, जिसमें आँख जैसी इन्द्रियाँ बाहर की वस्तुओं से दूर रहती हैं बल्कि अपने को भीतर की ओर मोड़ लेती हैं।

120 जैसे सूर्य संध्या के तीसरे प्रहर में अपनी किरणों को भीतर की ओर ले जाता है, वैसे ही तीसरी अवस्था में योगी अपने मन को वश में कर लेता है।

121 ॐ ! मेरे अंग-प्रत्यंग, वाणी, प्राण, आँख, कान, प्राण और सभी इन्द्रियाँ बलवान हो जाएँ।सारी सत्ता उपनिषदों का ब्रह्म है।मैं कभी ब्रह्म को अस्वीकार न करूँ, न ब्रह्म मुझे अस्वीकार करे।कोई भी अस्वीकार न हो:कम से कम मेरी ओर से तो कोई अस्वीकार न हो।उपनिषदों में बताए गए गुण मुझमें हों,जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।
ॐ ! मुझमें शांति हो मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो! यहाँ सामवेद में सम्मिलित योग-चूड़ामणि उपनिषद समाप्त होता है।

<u>047 - निर्वाण उपनिषद</u>

ॐ ! मेरी वाणी मन पर आधारित हो (अर्थात् उसके अनुरूप हो);

मेरा मन वाणी पर आधारित हो।

हे आत्म-प्रकाशमान, मुझे अपना दर्शन दीजिए।

आप दोनों (वाणी और मन) मेरे लिए वेद के वाहक बनें।

मैंने जो कुछ सुना है, वह मुझसे दूर न हो।

मैं इस अध्ययन के द्वारा दिन और रात को एक साथ (अर्थात् मिटा दूँगा) जोड़ूँगा।

मैं जो मौखिक रूप से सत्य है, वही बोलूँगा;

मैं जो मानसिक रूप से सत्य है, वही बोलूँगा।

वह (ब्रह्म) मेरी रक्षा करें;

वह वक्ता (अर्थात् शिक्षक) की रक्षा करें,

वह मेरी रक्षा करें;

वह वक्ता की रक्षा करें - वह वक्ता की रक्षा करें।

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे परिवेश में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. अब हम निर्वाणोपनिषद की व्याख्या करेंगे।

2. परमहंस: मैं ही वह हूँ।

3. भिक्षुक जो आंतरिक रूप से त्याग के चिह्न धारण करते हैं। (वे इस उपनिषद का अध्ययन करने के हकदार तपस्वी हैं।)

4. (वे) उस क्षेत्र के रक्षक हैं जिसमें अहं-पन (आत्मा की पृथकता का सूचक) नष्ट हो जाता है।

5. उनका निश्चित निष्कर्ष आकाश की तरह अविभाज्य है।

6. (उनका हृदय) अमर तरंगों की नदी है।

7. (उनका हृदय) अविनाशी और बिना शर्त वाला है।

8. (उनके गुरु) संदेह से मुक्त (साक्षात्कार प्राप्त) ऋषि हैं।

9. जिस दिव्य सत्ता की वे पूजा करते हैं, वह परम आनंद है

10. उनकी गतिविधियाँ पारिवारिक (और अन्य) बंधनों से मुक्त होती हैं।
11. उनका ज्ञान पृथक नहीं होता।
12. (वे) उच्च शास्त्र का अध्ययन और/या अध्यापन करते हैं।
13. (वे) एक निर्विकार मठवासी केंद्र का गठन करते हैं।
14. (योग्य शिष्यों के) एक समूह के प्रति उनका समर्पण (ब्रह्म को प्रकट करना) है।
15. (ब्रह्म के अलावा अन्य चीजों का) अस्तित्व न होना ही शिक्षा है।
16. यह समर्पण (शिष्यों को) आनंद और शुद्धि प्रदान करता है।
17. उनकी दृष्टि बारह सूर्यों को देखने के समान है।
18. (असत्य और अवास्तविक का) भेद (उनकी) सुरक्षा है।
19. उनकी करुणा ही उनका क्रीड़ा है।
20. (वे) आनंद की माला पहनते हैं।
21. एक आसन की गुफा में (उनके) सुख के दर्शक हैं, जो योग-आसनों के प्रतिबंधों से मुक्त हैं।

22. (वे) ऐसे भोजन पर निर्वाह करते हैं जो (उनके लिए) विशेष रूप से तैयार नहीं किया गया है।

23. उनका आचरण आत्मा और ब्रह्म की एकता के बोध के अनुरूप है।

24. वे अपने आचरण से शिष्यों को दिखाते हैं कि ब्रह्म सभी प्राणियों में विद्यमान है।

25. सच्चा विश्वास उनका पैबंद है। गुटनिरपेक्षता उनकी लंगोटी है। (वेदान्त के सत्यों का) चिन्तन उनका प्रतीक है। ब्रह्म का दर्शन (आत्मा से भिन्न नहीं) उनका योग-वस्त्र है। चप्पल (सांसारिक धन से दूर रहना) है। दूसरों के कहने पर (नंगे जीवनयापन के लिए) क्रियाकलाप करना। उनका बंधन (केवल कुण्डलिनी को (सुषुम्ना में) ले जाने की इच्छा में है। जीवित रहते हुए मुक्त, क्योंकि वे सर्वोच्च (ब्रह्म) के इनकार से मुक्त हैं। शिव के साथ एकता उनकी नींद है। सच्चा ज्ञान (अविद्या में आनन्द का इनकार करके) या खेचरी-मुद्रा उनका परम आनंद है।

26. ब्रह्म का आनन्द तीन गुणों (सत्व, रज और तम) से रहित है।

27. (ब्रह्म) का साक्षात्कार (सत्य और असत्य का) विवेक करने से होता है (और) वह मन और वाणी की पहुँच से परे है।

28. यह प्रत्यक्ष जगत अनित्य है, क्योंकि यह (ब्रह्म से ही उत्पन्न हुआ है, जो कि एकमात्र सत्य है); यह स्वप्न में देखे गए जगत और आकाश में हाथी के समान है (अर्थात् मायावी): इसी प्रकार शरीर आदि पदार्थों का समूह अनेक भ्रमों के जाल द्वारा देखा जाता है और (अपूर्ण ज्ञान के कारण) रस्सी में सर्प के समान माना जाता है।

29. विष्णु, ब्रह्मा तथा अन्य सौ देवताओं की पूजा (ब्रह्म में) पूर्ण होती है।

30. प्रेरणा ही मार्ग है।

31. (मार्ग) शून्य नहीं है, केवल रूढ़ है।

32. परमेश्वर की शक्ति ही (वायुमार्ग का आधार है)।

33. सत्य द्वारा सिद्ध किया गया योग ही विहार है।

34. देवताओं की स्थिति (स्वर्ग) उसका वास्तविक स्वरूप नहीं है।

35. मूल स्रोत ब्रह्म आत्म-साक्षात्कार है।

36. (तपस्वी) अजपा मंत्र के माध्यम से गायत्री के आधार पर भेद के अभाव का ध्यान करेगा।

37. मन का संयम ही पैबंद है।

38. योग से शाश्वत आनंद के स्वरूप का दर्शन (अनुभव) होता है।

39. आनंद वह भिक्षा है जिसका वह भोग करता है।

40. महाश्मशान में भी निवास करना आनंद उद्यान के समान है।

41. एकांत स्थान ही विहार है।

42. मन की पूर्ण शांति ही ब्रह्मविद्या का अभ्यास है।

43. उसकी गति उन्मनी अवस्था की ओर है।

44. 44. उनका शुद्ध शरीर गरिमा का आधार है।
45. उनकी क्रियाशीलता अमरता की तरंगों का आनंद है।
46. चेतना का आकाश महान स्थापित निष्कर्ष है।
47. मुक्तिदायक मंत्र के निर्देश से शारीरिक अंगों और मन की क्षमता बढ़ती है।

शांति, आत्म-संयम आदि का अभ्यास करने में तथा उच्चतर और निम्नतर आत्मा की एकता का बोध करने में दिव्य शक्ति।

48. (तारक का) अधिष्ठाता देवता अद्वैत का शाश्वत आनंद है।

49. स्वैच्छिक धार्मिक पालन आंतरिक इंद्रियों का संयम है।

50. त्याग भय, मोह, शोक और क्रोध का त्याग है।

51. (त्याग का परिणाम है) उच्चतर और निम्नतर (आत्मा) की पहचान में आनंद का आनंद लेना।

52. असंयम शुद्ध शक्ति है।

53. जब ब्रह्म की वास्तविकता आत्मा में चमकती है, तो शिव (माया) की शक्ति से आच्छादित दृश्य जगत का विनाश होता है; इसी प्रकार कारण, सूक्ष्म और स्थूल शरीरों के समुच्चय के अस्तित्व या गैर-अस्तित्व का जलना होता है।

54. वह ब्रह्म को आकाश के आधार के रूप में अनुभव करता है।
55. शुभ चतुर्थ अवस्था जनेऊ है, शिखा भी उसी से बनी है।
56. (उसके लिए) निर्मित जगत् चेतना से बना है, (इसी प्रकार) अचल और नाना प्राणियों का समूह भी।
57. कर्मों का नाश करना (कोरी) बात है; श्मशान (आत्म-ब्रह्म) में मोह, मेरापन और अहंकार भस्म हो गए हैं।
58. (साक्षात्कार प्राप्त परिव्राजक) का शरीर अक्षुण्ण है।

59. सत्य स्वरूप का ध्यान जो तीन गुणों (सत्व, रज और तम) से परे है; (यह) अवस्था ('मैं ब्रह्म हूँ' का भेद) भी मोह है, जिसका नाश हो जाएगा।

रजोगुण आदि का दहन करना चाहिए। लंगोटी खुरदरी और कसी होनी चाहिए (ताकि सतत ब्रह्मचर्य में प्राण ऊर्जा ऊपर की ओर गति करे)। लंबे समय तक मृगचर्म का वस्त्र (और बाद में निर्वस्त्र)। (चौथी अवस्था तुरीय में ॐ) का उच्चारण सांसारिक कर्म से विरत होकर किया जाता है। स्वयं को स्वतंत्र रूप से संचालित करते हुए (क्योंकि वह एक ऐसी अवस्था में पहुंच गया है जो अच्छे और बुरे से परे है,उसे) अपने वास्तविक स्वरूप का एहसास होता है जो मोक्ष है।

60. उसका आचरण (एक प्राथमिक अवधूत की सेवा करना) एक जहाज की तरह (सांसारिक जीवन के सागर को पार करने और) पारलौकिक ब्रह्म तक पहुंचने के लिए; शांति प्राप्त होने तक ब्रह्मचर्य का पालन करना; एक ब्रह्मचारी छात्र की स्थिति में शिक्षा प्राप्त करना, या एक वनवासी (वानप्रस्थ) की स्थिति में (सत्य) सीखना, वह त्याग (को) अपनाता है जिसमें सभी (सत्य) ज्ञान स्थापित होते हैं;

अन्त में वह अविभाज्य ब्रह्म का स्वरूप हो जाता है, जो सनातन है, सब संशयों का नाश करने वाला है। 61. यह निर्वाणोपनिषद् (परमानंद की प्राप्ति कराने वाला गुप्त सिद्धांत) शिष्य या पुत्र के अतिरिक्त किसी को नहीं दिया जाना चाहिए। इस प्रकार उपनिषद् समाप्त होता है।

ॐ! मेरी वाणी मन पर आधारित हो; मेरा मन वाणी पर आधारित हो। हे आत्म-तेजस्वी, मुझ पर अपना प्रकाश डालिए। आप दोनों (वाणी और मन) मेरे लिए वेद के वाहक बनें। मैंने जो कुछ सुना है, वह सब मुझसे दूर न हो। मैं इस अध्ययन के द्वारा दिन और रात का भेद एक कर दूँगा। मैं मौखिक रूप से जो सत्य है, वही बोलूँगा; मैं मानसिक रूप से जो सत्य है, वही बोलूँगा। वह (ब्रह्म) मेरी रक्षा करे; वह वक्ता (अर्थात शिक्षक) की रक्षा करे, वह मेरी रक्षा करे; वह वक्ता की रक्षा करे - वह वक्ता की रक्षा करे।
ओम! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ निर्वाणोपनिषद समाप्त होता है, जैसा कि ऋग्वेद में निहित है

048 - मंडल ब्राह्मण उपनिषद

ॐ ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है।
अनंत अनंत से ही निकलता है।
(तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेते हुए,
यह केवल अनंत (ब्रह्म) के रूप में रहता है।
ॐ ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!
ब्राह्मण - I

1. ॐ. महान मुनि याज्ञवल्क्य आदित्य-लोक (सूर्य की दुनिया) में गए और उन्हें (सूर्य के पुरुष) को नमस्कार करते हुए कहा: "हे पूज्य महोदय, मुझे आत्म-तत्व (आत्मा का तत्व या सत्य) का वर्णन करें।" (जिस पर) नारायण (अर्थात सूर्य के पुरुष) ने उत्तर दिया: "मैं ज्ञान के साथ आठ गुना योग का वर्णन करूंगा। सर्दी और गर्मी, भूख और नींद को जीतना, सदा धैर्य और अविचलता बनाए रखना तथा इन्द्रियों को विषय-वस्तुओं से रोकना - ये सब यम के अन्तर्गत आते हैं।

गुरु की भक्ति, सत्य मार्ग में प्रीति, सुख देने वाले विषयों का भोग, आन्तरिक संतुष्टि, संग-संबंध से मुक्ति, एकान्तवास, मन का संयम तथा कर्मों के फल की इच्छा न करना तथा वैराग्य - ये सब नियम हैं। किसी भी सुखदायक आसन में बैठना तथा फटे-पुराने वस्त्र पहनना आसन के लिए विहित है। श्वास-प्रश्वास, निःश्वसन और निःश्वसन का निरोध, जिनकी संख्या क्रमशः 16, 64 और 32 (मात्राएँ) हैं, प्राणायाम हैं।

इन्द्रियों के विषयों से मन को रोकना प्रत्याहार है। समस्त विषयों में चेतना की एकता का चिंतन ही ध्यान है। इन्द्रियों के विषयों से मन को हटाकर, केवल एक पर ही चैतन्य को स्थिर करना ही धारणा है। ध्यान में अपने को भूल जाना ही समाधि है। जो इस प्रकार योग के आठ सूक्ष्म अंगों को जानता है, वह मोक्ष को प्राप्त करता है।

2. शरीर में पाँच कलंक हैं - काम, क्रोध, प्रश्वास, भय और निद्रा। इनका निवारण क्रमशः संकल्प, क्षमा, संयम, सावधानी और तत्त्वदर्शन से हो सकता है। जहाँ निद्रा और भय सर्प हैं, चोट आदि लहरें हैं, तृष्णा भँवर है और पत्नी कीचड़ है, वहाँ मनुष्य को संसार सागर को पार करने के लिए संयम का पालन करना चाहिए।

सूक्ष्म मार्ग से हटकर तत्त्व और अन्य गुणों को पार करके तारक को देखना चाहिए। तारक ब्रह्म है, जो दोनों भौंहों के मध्य में स्थित होने के कारण सच्चिदानंद स्वरूप का है। तीन लक्ष्यों (अथवा तीन प्रकार की अंतर्दृष्टि) के माध्यम से (आध्यात्मिक) देखना ही उस (ब्रह्म) तक पहुंचने का साधन है। मूलाधार से ब्रह्मरंध्र तक जो सुषुम्ना है, उसमें सूर्य का तेज है। उसके मध्य में करोड़ों बिजली के समान चमकने वाली तथा कमल-तरु के धागे के समान सूक्ष्म कुण्डलिनी है।

वहां तमोगुण का नाश होता है। उसके दर्शन से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। जब तर्जनी के अग्रभाग से दोनों कान बंद किए जाते हैं, तो फुत्कार (या गड़गड़ाहट) की ध्वनि सुनाई देती है। जब मन उस पर स्थिर होता है, तो वह आंखों के बीच और हृदय में भी एक नीला प्रकाश देखता है। (यह अंतर-लक्ष्य या आंतरिक अंतर्दृष्टि है)।

बाह्यलक्ष्य में व्यक्ति अपनी नाक के आगे क्रमशः 4, 6, 8, 10 और 12 अंकों के अन्तराल पर नीला रंग, फिर श्यामा (नीला) जैसा रंग, फिर रक्त (लाल) तरंग के समान चमकता हुआ तथा फिर दो पित्त (पीला और नारंगी लाल) रंग देखता है। तब वह योगी है। जब व्यक्ति नेत्रों को घुमाकर बाह्य

स्थान को देखता है और नेत्रों के कोनों पर प्रकाश की लकीरें देखता है, तब उसकी दृष्टि स्थिर हो सकती है। जब व्यक्ति अपने सिर के ऊपर 12 अंकों की लम्बाई में ज्योतियों (आध्यात्मिक प्रकाश) को देखता है, तब वह अमृत की स्थिति को प्राप्त होता है।

मध्यलक्ष्य में व्यक्ति प्रातःकाल के विविध रंगों को ऐसे देखता है, जैसे सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि आकाश में एक साथ मिल गए हों। तब वह उनका स्वरूप (प्रकाश) प्राप्त कर लेता है। अभ्यास के द्वारा वह समस्त गुणों और विशिष्टताओं से रहित होकर आकाश के साथ एक हो जाता है। पहले आकाश अपने चमकते तारों के साथ उसके लिए तम के समान अंधकारमय परा आकाश बन जाता है और वह तारों से चमकते हुए और तम के समान गहन परा आकाश के साथ एक हो जाता है।

(तब) वह प्रलय की अग्नि के समान तेजस्वी महा आकाश के साथ एक हो जाता है। फिर वह तत्व आकाश के साथ एक हो जाता है, जो सर्वोच्च और सर्वश्रेष्ठ तेज से प्रकाशित होता है। फिर वह करोड़ों सूर्यों से प्रकाशित सूर्य आकाश के साथ एक हो जाता है। इस प्रकार अभ्यास करने से वह उनके साथ एक हो जाता है। जो उन्हें जानता है, वह ऐसा हो जाता है। 3. जान लें कि योग पूर्व और उत्तर में विभाजित होने के कारण दो प्रकार का है। पूर्व तारक है और उत्तर अमनस्का है। तारक को मूर्ति (सीमा सहित) और अमूर्ति (सीमा रहित) में विभाजित किया गया है। वह मूर्ति तारक है जो इंद्रियों के अंत तक जाती है (या तब तक रहती है जब तक इंद्रियों पर विजय प्राप्त नहीं हो जाती)।

वह अमूर्ति तारक है जो दोनों भौहों के पार (इंद्रियों के ऊपर) जाती है। इन दोनों को मानस के माध्यम से करना चाहिए। मानस से संबंधित अंतर-दृष्टि (आंतरिक दृष्टि) तारक की सहायता करती है। दोनों भौहों के बीच के छिद्र में तेजस (आध्यात्मिक प्रकाश) प्रकट होता है। यह तारक पहले वाला है। बाद वाला अमनस्का है। महान ज्योति (प्रकाश) तालु की जड़ के ऊपर है। इसे देखने से अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। जब लक्ष्य (आध्यात्मिक दृष्टि) आंतरिक होती है और (भौतिक) आँखें बिना पलक झपकाए बाहर देखती हैं, तब सांभवी-मुद्रा होती है।

यह महान विज्ञान है जो सभी तंत्रों में छिपा हुआ है। जब यह जान लिया जाता है, तो व्यक्ति संसार में नहीं रहता। इसकी पूजा (या अभ्यास) मोक्ष प्रदान करती है। अन्तर-लक्ष्य जल-ज्योति (या जल-ज्योति) की प्रकृति का है। यह महान ऋषियों द्वारा जाना जाता है और आंतरिक और बाह्य दोनों

इंद्रियों के लिए अदृश्य है। 4. सहस्रार (अर्थात पीनियल ग्रंथि का हजार पंखुड़ियों वाला कमल) जल-ज्योति अन्तर-लक्ष्य है। कुछ लोग कहते हैं कि बुद्धि की गुफा में पुरुष का रूप अपने सभी भागों में सुंदर है, अंतर-लक्ष्य है। कुछ लोग फिर कहते हैं कि उमा (उनकी पत्नी) के साथ और पाँच महीने का होने वाला और मस्तिष्क के गोले के बीच में सुप्त नीलकंठ अंतर-लक्ष्य है।

जबकि अन्य कहते हैं कि अंगूठे के आकार का पुरुष अंतर-लक्ष्य है। कुछ फिर कहते हैं कि अंतर-लक्ष्य एक आत्मा है जो जीवन्मुक्त की स्थिति में अंतर्दर्शन के माध्यम से सर्वोच्च बन जाती है। उपरोक्त सभी विभिन्न कथन केवल आत्मा से संबंधित हैं। वही ब्रह्मनिष्ठ है जो यह देखता है कि उपरोक्त लक्ष्य ही शुद्ध आत्मा है। जीव जो पच्चीसवाँ तत्व है, चौबीस तत्वों का परित्याग करके, छब्बीसवाँ तत्व (अर्थात् परमात्मा) 'मैं' ही हूँ, इस विश्वास से जीवन्मुक्त हो जाता है।

मुक्त अवस्था में अंतर-लक्ष्य (ब्रह्म) के साथ एक होकर, जीव अंतर-लक्ष्य (अंतर्दृष्टि) के माध्यम से परम-आकाश के अखंड क्षेत्र के साथ एक हो जाता है। इस प्रकार प्रथम ब्राह्मण समाप्त होता है।

ब्राह्मण - II 1. तब याज्ञवल्क्य ने सूर्य के क्षेत्र में पुरुष से पूछा: "हे प्रभु, अंतर-लक्ष्य उन्होंने उत्तर दिया: "यह पाँच तत्वों का मूल है, इसमें बिजली की अनेक धारियों के समान चमक है और इसके चार आसन हैं, जो 'उस' (ब्रह्म) से उत्पन्न होते हैं। इसके मध्य में तत्त्व का आविर्भाव होता है। यह बहुत ही गुप्त और अप्रकट है।

इसे केवल वही जान सकता है, जो ज्ञान की नाव में सवार हो। यह बाह्य और अंतर दोनों लक्ष्यों का विषय है। इसके मध्य में संपूर्ण विश्व समाया हुआ है। यह नाद, बिंदु और काल से परे विशाल अखंड ब्रह्मांड है। इसके ऊपर (अर्थात अग्नि का क्षेत्र) सूर्य का क्षेत्र है; इसके मध्य में अमृतमय चंद्रमा का क्षेत्र है; इसके मध्य में अखंड ब्रह्म-तेजस (या ब्रह्म का आध्यात्मिक तेज) का क्षेत्र है। इसमें बिजली की किरण के समान शुक्ल (श्वेत प्रकाश) की चमक है।

इसमें ही साम्भवी का गुण है। इसके देखने में तीन प्रकार की दृष्टि होती है, अर्थात् अमा (अमावस्या), प्रतिपदा (चंद्रपक्ष का पहला दिन) और पूर्णिमा (पूर्णिमा)। अमा का दर्शन बंद आँखों से देखा जाता है। आधी खुली आँखों से देखा जाने वाला दर्शन प्रतिपदा है और पूरी खुली आँखों से देखा जाने वाला

दर्शन पूर्णिमा है। इनमें से पूर्णिमा की साधना करनी चाहिए। इसका लक्ष्य (या लक्ष्य) नासिका का अग्रभाग है। फिर तालु के मूल में गहन अंधकार दिखाई देता है।

इस प्रकार साधना करने से अनंत क्षेत्र के रूप वाली ज्योति दिखाई देती है। यही ब्रह्म है, सच्चिदानंद है। जब मन इस प्रकार स्वाभाविक रूप से उत्पन्न आनंद में लीन हो जाता है, तब साम्भवी होती है। उसे (साम्भवी को) ही खेचरी कहते हैं। इस मुद्रा का अभ्यास करने से मनुष्य को मन की दृढ़ता प्राप्त होती है। इससे वायु की दृढ़ता प्राप्त होती है।

इसके निम्नलिखित लक्षण हैं: पहले यह एक तारे के समान दिखाई देता है; फिर एक चमकता हुआ हीरा; फिर पूर्ण चन्द्रमा का क्षेत्र; फिर नव रत्नों की चमक का क्षेत्र; फिर मध्याह्न सूर्य का क्षेत्र; फिर अग्नि की ज्वाला का क्षेत्र; ये सभी क्रमशः दिखाई देते हैं।
2. (इस प्रकार पूर्वा या प्रथम चरण में प्रकाश होता है।) फिर पश्चिम दिशा में (उत्तरा या द्वितीय चरण में) प्रकाश होता है। फिर स्फटिक, धुआं, बिंदु, नाद, कला, तारा, जुगनू, दीपक, नेत्र, स्वर्ण और नव रत्न आदि की चमक दिखाई देती है। यही प्रणव का रूप है। प्राण और अपान को एक करके तथा कुम्भक में श्वास को रोककर, मनुष्य को अपनी एकाग्रता को अपनी नासिका के अग्र भाग पर स्थिर करना चाहिए तथा दोनों हाथों की अंगुलियों से शानमुखी बनाकर, उसे प्रणव (ॐ) की ध्वनि सुनाई देती है, जिसमें मन लीन हो जाता है।

ऐसे मनुष्य में कर्म का स्पर्श भी नहीं होता। (संध्या वंदना या दैनिक प्रार्थना) का कर्म वास्तव में सूर्योदय या सूर्यास्त के समय किया जाता है। चूँकि ऐसे जानने वाले मनुष्य के हृदय में चित् (उच्चतर चेतना) के सूर्य का न तो उदय होता है और न ही अस्त (केवल सदा चमकता हुआ) रहता है, इसलिए उसे कोई कर्म करने की आवश्यकता नहीं होती। वह शब्द और काल के विनाश द्वारा दिन और रात की धारणा से ऊपर उठकर, पूर्ण ज्ञान और उन्मनी (मन से ऊपर की स्थिति) की प्राप्ति के द्वारा ब्रह्म के साथ एक हो जाता है।

उन्मनी की स्थिति से वह अमनस्क (या मन से रहित) हो जाता है। (संसार के) किसी भी विचार से व्याकुल न होना ही ध्यान है। समस्त कर्मों का त्याग करना आवाहन (ईश्वर का आह्वान) है। अविचल बुद्धि में दृढ़ रहना आसन (मुद्रा) है। उन्मनी अवस्था में रहना पाद्य (ईश्वर के चरणों को धोने के लिए जल चढ़ाना) है। अमनस्क अवस्था (जब मानस की आहुति दी

जाती है) को बनाए रखना अर्घ्य (सामान्य रूप से आहुति के रूप में जल चढ़ाना) है।

शाश्वत तेज और तटहीन अमृत की अवस्था में रहना स्नान (स्नान) है। सभी में आत्मा का चिंतन करना चंदन (मूर्ति पर लगाना) है। द्रिक (आध्यात्मिक नेत्र) की वास्तविक अवस्था अक्षत (बिना टूटे चावल) से पूजन है। चित्त (चेतना) की प्राप्ति पुष्प से पूजन है। चित्त की अग्नि (अग्नि) की वास्तविक अवस्था धूप (अगरबत्ती जलाना) है। चित के सूर्य की स्थिति दीपा (प्रतिमा के सामने लहराया गया प्रकाश) है। पूर्णिमा के अमृत के साथ स्वयं का मिलन नैवेद्य (भोजन आदि का अर्पण) है।

उस स्थिति में निश्चलता (अहंकार का सबमें एक होना) प्रदक्षिणा (प्रतिमा के चारों ओर घूमना) है। 'मैं वही हूँ' की धारणा नमस्कार (प्रणाम) है। मौन (तब) श्रुति (स्तुति) है। पूर्ण संतोष (या तब की शांति) विसत्जन (ईश्वर को विदा देना या पूजा समाप्त करना) है। (यह सभी राजयोगियों द्वारा आत्मा की पूजा है)। जो इसे जानता है, वह सब कुछ जानता है।

3. जब त्रिपुटियाँ इस प्रकार दूर हो जाती हैं, तो वह भाव (अस्तित्व) या अभाव (अस्तित्वहीनता) से रहित कैवल्य ज्योति बन जाता है, पूर्ण और गतिहीन, ज्वार के बिना समुद्र की तरह या बिना दीपक की तरह वह जाग्रत अवस्था में भी सुषुप्ति के अन्त को जानकर ब्रह्मविद् (ब्रह्म का ज्ञाता) हो जाता है।

यद्यपि (एक ही) मन सुषुप्ति में तथा समाधि में भी लीन होता है, तथापि दोनों में बहुत अन्तर है। (पूर्व स्थिति में) चूँकि मन तमस् में लीन होता है, अतः वह मोक्ष का साधन नहीं बनता, परन्तु समाधि में जब उसके अन्दर के तमस् के वृत्तियाँ जड़ से समाप्त हो जाती हैं, तब मन अपने को अखण्ड के स्वरूप में ऊपर उठा लेता है। वह सब कुछ साक्षी-चैतन्य (ज्ञान-चेतना या उच्चतर आत्मा) के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, जिसमें सम्पूर्ण विश्व का लीन होना होता है, क्योंकि विश्व मन का भ्रम (या सृजन) है, अतः उससे भिन्न नहीं है।

यद्यपि विश्व मन के बाहर प्रतीत होता है, तथापि वह अवास्तविक है। जो ब्रह्म को जानता है और जो ब्रह्ममय आनन्द का एकमात्र भोक्ता है, जो शाश्वत है और एक बार (उसके अन्दर) प्रकट हुआ है - वह पुरुष ब्रह्म से एक हो जाता है। जिसके अन्दर संकल्प नष्ट हो जाता है, उसके हाथ में

मुक्ति आ जाती है। इसलिए परमात्मा के चिन्तन से मनुष्य मुक्त हो जाता है।

भाव और अभाव दोनों को त्यागकर, ज्ञान और ज्ञेय, ध्यान और ध्येय, लक्ष्य और अलक्ष्य, दृश्य और अदृश्य, उहा और अपोहा - इन सब अवस्थाओं को बार-बार त्यागकर मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। जो इसे जानता है, वह सब कुछ जानता है।

4. पाँच अवस्थाएँ हैं: जाग्रत (जागृत), स्वप्न (स्वप्न), सुषुप्ति (स्वप्नहीन निद्रा), तुर्य (चौथी) और तुर्यतिता (चौथी से आगे)। जाग्रत अवस्था में लगा हुआ जीव (अहंकार) प्रवृत्ति मार्ग में आसक्त हो जाता है और पापों के फलस्वरूप नरक का भागी होता है। वह अपने पुण्य कर्मों के फलस्वरूप स्वर्ग की कामना करता है। यही व्यक्ति बाद में इन सबसे उदासीन हो जाता है और कहता है, 'कर्मों के लिए जन्म बहुत हो गए, क्योंकि इनके फल इस संसार के अंत तक बंधन में ही रहते हैं।'

फिर वह मुक्ति पाने के लिए निवृत्ति मार्ग पर चलता है। और फिर यह व्यक्ति इस संसार से पार होने के लिए किसी आध्यात्मिक गुरु की शरण लेता है। वासना और अन्य को त्यागकर वह केवल वही करता है जो उसे करने के लिए कहा जाता है। फिर वह चारों साधनाओं को प्राप्त करके अपने हृदय कमल के मध्य में अंतरलक्ष्य अर्थात् भगवान के सत् को प्राप्त करता है और सुषुप्ति अवस्था में छोड़े हुए ब्रह्मसुख को पहचानने लगता है।

अन्त में वह इस विवेक अवस्था को प्राप्त करता है कि 'मैं अपने को ही अद्वैत मानता हूँ। मैं कुछ समय तक अज्ञान में था (जाग्रत अवस्था में) और इसीलिए विश्व कहलाया। उस विस्मृत जाग्रत अवस्था के सम्बन्धों के प्रतिबिम्बन से मैं किसी प्रकार (अनैच्छिक रूप से) तैजस (स्वप्न अवस्था में) हो गया था और अब उन दोनों अवस्थाओं के लुप्त होने से मैं प्रज्ञा हूँ।

अतः मैं एक ही हूँ। अवस्था और स्थान के भेद से मैं एक से अधिक प्रतीत होता हूँ। मेरे अतिरिक्त वर्ग भेद कुछ भी नहीं है।' 'मैं शुद्ध और अद्वय ब्रह्म हूँ' इस विचार से 'मैं' और 'वह' के भेद की गंध को भी निकाल कर तथा परब्रह्म स्वरूप मोक्षमार्ग को प्राप्त कर, स्वयं से प्रकाशित सूर्यमण्डल के ध्यान द्वारा उसमें एक हो जाने पर, वह मोक्ष प्राप्ति के लिए पूर्णतया परिपक्व हो जाता है।

संकल्प आदि मन के बन्धन के कारण हैं, और इनसे रहित मन मोक्ष के योग्य हो जाता है। ऐसा संकल्प आदि सब से मुक्त मन वाला, तथा दृश्य और परलोक से अपने को अलग करके, इस प्रकार ब्रह्माण्ड की गन्ध से अपने को अलग रखकर, वह सारे जगत को आत्मा के रूप में देखता है, 'मैं' की धारणा को त्याग देता है, 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा सोचता है और इन सबको आत्मा मानता है। इनके द्वारा वह अपना कर्तव्य पालन करने वाला बन जाता है।

5. योगी वह है जिसने तुर्य से परे सर्वत्र व्याप्त ब्रह्म को जान लिया है। लोग उसे ब्रह्म कहकर उसकी स्तुति करते हैं और वह सम्पूर्ण जगत की प्रशंसा का पात्र बनकर विभिन्न देशों में विचरण करता है। परमात्मा के आकाश में बिन्दु को स्थापित करके तथा अमनस्क की शुद्ध, अद्वय, निष्कलंक और सहज योगनिद्रा से उत्पन्न अखण्ड आनन्द के मार्ग का अनुसरण करके वह मुक्त हो जाता है।

तब योगी आनन्द के सागर में निमग्न हो जाता है। इसकी तुलना में इन्द्र आदि का आनन्द बहुत ही छोटा है। जो इस आनन्द को प्राप्त कर लेता है, वही परम योगी है। इस प्रकार दूसरा ब्राह्मण समाप्त होता है।

ब्राह्मण - तृतीय 1. तब महर्षि याज्ञवल्क्य ने सूर्यमण्डल में स्थित पुरुष से पूछा कि हे प्रभु, यद्यपि आपने अमनस्क का स्वरूप स्पष्ट कर दिया है, फिर भी मैं उसे भूल गया हूँ (अथवा स्पष्ट रूप से समझ नहीं पाया हूँ)। अतः कृपया मुझे पुनः समझाएँ। तदनुसार पुरुष ने कहा कि यह अमनस्क महान रहस्य है। इसे जानकर मनुष्य अपने कर्तव्य का पालन करने वाला बन जाता है। उसे साम्भवी-मुद्रा से युक्त परमात्मा के रूप में देखना चाहिए तथा उन सब को भी जानना चाहिए जिन्हें उनके (पूर्ण) ज्ञान से जाना जा सकता है।

फिर अपने आत्मा में परब्रह्म को सबका स्वामी, अथाह, अजन्मा, शुभ, परम आकाश, आधारहीन, अद्वितीय, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र का एकमात्र लक्ष्य तथा सबका कारण समझकर यह विश्वास कर लेना चाहिए कि जो इस हृदय की गुफा में क्रीड़ा करता है, वही ऐसा है, उसे अपने को सत्ता-अस्तित्व के द्वैत से ऊपर उठा लेना चाहिए; और अपने मनस की उन्मनी का अनुभव जानकर वह फिर पवनरहित स्थान में दीपक के समान निश्चल परब्रह्म की स्थिति को प्राप्त होता है, तथा अपनी समस्त इन्द्रियों का नाश करके अमनस्क योग रूपी नदी के द्वारा ब्रह्मसुख के सागर में पहुँच जाता है।

तब वह सूखे वृक्ष के समान हो जाता है। वृद्धि, निद्रा, रोग, निःश्वास और अन्तःश्वसन के लुप्त हो जाने से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का (विचार) नष्ट हो जाने पर उसका शरीर सदैव स्थिर रहता है, वह अपने मनस की हलचलों से रहित होकर परम शांति को प्राप्त हो जाता है और परमात्मा में लीन हो जाता है। सामूहिक इन्द्रियों के नाश के पश्चात मनुष्य का नाश होता है, जैसे गाय का थन दूध निकाल लेने के पश्चात सिकुड़ जाता है। यही अमनस्क है।

इसका पालन करने से मनुष्य सदैव शुद्ध हो जाता है और अपने कर्तव्य का पालन करने वाला बन जाता है, 'मैं पा हूँ', 'वह तू ही है', 'मैं ही तू हूँ', 'तू ही मैं हूँ' आदि पवित्र वाक्यों की दीक्षा के माध्यम से तारक-योग के मार्ग के माध्यम से अखंड आनंद से भर जाता है।

2. जब उसका मन आकाश में लीन हो जाता है और वह पूर्ण हो जाता है और जब वह उन्मनी अवस्था को प्राप्त करता है, तो अपनी सभी सामूहिक इंद्रियों को त्याग कर, वह अखंड आनंद के माध्यम से सभी दुखों और अशुद्धियों को जीत लेता है, अपने सभी पूर्व जन्मों के एकत्रित पुण्यों से परिपक्व कैवल्य के फल को प्राप्त कर लेता है और हमेशा 'मैं ब्रह्म हूँ' का विचार करता है, वह अपने कर्तव्य का पालन करने वाला बन जाता है।

'मैं तू ही हूँ। परमात्मा की पूर्णता के कारण तुम और मुझमें कोई अंतर नहीं है।' ऐसा कहकर, उन्होंने (सूर्य के पुरुष ने) अपने शिष्य को गले लगाया और उसे समझाया। इस प्रकार तीसरा ब्राह्मण समाप्त होता है। ब्राह्मण - चतुर्थ तब याज्ञवल्क्य ने सूर्य के क्षेत्र में स्थित पुरुष से इस प्रकार कहा: "कृपया मुझे आकाश के पंचकोणीय विभाग की प्रकृति विस्तार से समझाएँ"। उन्होंने उत्तर दिया: "पाँच हैं: आकाश, पराकाश, महाकाश, सूर्यकाश और परमकाश। जो अंधकार की प्रकृति का है, वह भीतर और बाहर दोनों ओर है, वह प्रथम आकाश है।

जो भीतर और बाहर दोनों ओर प्रलय की अग्नि से युक्त है, वह वास्तव में महाकाश है। जो भीतर और बाहर दोनों ओर सूर्य की चमक रखता है, वह सूर्यकाश है। वह चमक जो अविनाशी, सर्वव्यापी और अद्वितीय आनंद की प्रकृति की है, वह परमकाश है। इस विवरण के अनुसार इन्हें जानने से, व्यक्ति उनके स्वभाव का हो जाता है। वह केवल नाम का योगी है, जो नौ चक्रों, छह आधारों, तीन लक्ष्य और पाँच आकाशों को अच्छी तरह से नहीं जानता। इस प्रकार चौथा ब्राह्मण समाप्त होता है।

ब्राह्मण - V “सांसारिक विषयों से प्रभावित मन बंधन में पड़ जाता है; और जो (मनुष्य) इनसे प्रभावित नहीं होता, वह मोक्ष के योग्य होता है। अतः सारा संसार चित्त का विषय बन जाता है; जबकि वही चित्त जब उन्मनी अवस्था में आश्रयहीन और पूर्णतः परिपक्व हो जाता है, तो लय (ब्रह्म में लीन होने) के योग्य हो जाता है।

यह लीनता तुम्हें मुझसे सीखनी चाहिए, जो सर्व-पूर्ण हूँ। मैं ही मन की लीनता का कारण हूँ। मन ज्योति (आध्यात्मिक प्रकाश) के भीतर है, जो अनाहत (हृदय) ध्वनि से संबंधित आध्यात्मिक ध्वनि में निहित है। वह मन जो तीनों लोकों की रचना, पालन और संहार का कारक है - वही मनस भगवान विष्णु के परमपद में लीन हो जाता है; ऐसी लीनता से भेद के अभाव से शुद्ध और परब्रह्मपद की प्राप्ति होती है।

यही परम सत्य है। जो इसे जानता है, वह बालक, मूर्ख, राक्षस या मूर्ख की भाँति संसार में भटकता रहेगा। इस अमनस्क का अभ्यास करने से मनुष्य सदैव संतुष्ट रहता है, उसका मल-मूत्र कम हो जाता है, उसका आहार कम हो जाता है, शरीर बलवान हो जाता है और अंग रोग और निद्रा से मुक्त हो जाते हैं। तब उसकी श्वास और आँखें स्थिर होकर ब्रह्म को प्राप्त कर लेती हैं और आनंदस्वरूप को प्राप्त हो जाती हैं।

जो तपस्वी इस प्रकार की समाधि के दीर्घ अभ्यास से उत्पन्न ब्रह्म-अमृत को पीने में तत्पर रहता है, वह परमहंस या अवधूत हो जाता है। उसके दर्शन से सारा संसार शुद्ध हो जाता है और उसकी सेवा करने वाला अशिक्षित व्यक्ति भी बंधन से मुक्त हो जाता है। वह (तपस्वी) अपने परिवार के सदस्यों को एक सौ एक पीढ़ियों तक संसार सागर से पार कराता है; और उसकी माँ, पिता, पत्नी और बच्चे - ये सभी इसी तरह मुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार उपनिषद है। इस प्रकार पाँचवाँ ब्राह्मण समाप्त होता है। ॐ !

वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है। अनंत से अनंत की उत्पत्ति होती है। (तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेते हुए, यह केवल अनंत (ब्रह्म) के रूप में रहता है। ॐ ! मुझमें शांति हो ! मेरे वातावरण में शांति हो ! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो !

यहाँ शुक्ल-यजुर्वेद से संबंधित मंडलब्राह्मण उपनिषद समाप्त होता है।

049 - दक्षिणामूर्ति उपनिषद

ओम! वह हम दोनों की रक्षा करें; वह हम दोनों का पोषण करें;
हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,
हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;
हम एक दूसरे से विवाद न करें (या हम किसी से नफरत न करें)।
ओम! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर काम करने वाली शक्तियों में शांति हो!

ओम। ब्रहम वर्थ (ब्रहमा की भूमि) में, महा बंदिरा नामक एक बरगद के पेड़ के नीचे, सौनक सहित कई ऋषि एक सत्र अग्नि यज्ञ करने के लिए एकत्र हुए थे। वे दस्ताने के रूप में समिथ (बरगद के पेड़ की सूखी टहनियाँ) पहने हुए ऋषि मार्कंडेय के पास गए और उनसे पूछा, "आप चिरम जीवी (जिसकी मृत्यु नहीं होती) कैसे बने रहते हैं और आप हमेशा प्रसन्न कैसे रहते हैं?"

1 उन्होंने उत्तर दिया, "यह शिव के सबसे गुप्त दर्शन के ज्ञान के कारण है। यह बहुत ही गुप्त शिव दर्शन है जिसके द्वारा शिव जो दक्षिणामूर्ति हैं, कुछ ऐसा बन जाते हैं जो दूसरों को दिखाई नहीं देता है। वे वह भगवान हैं जो अंतिम जलप्रलय के समय, जो बाकी सब चीजों को अपने भीतर रखते हैं और अपनी आत्मा की खुशी के कारण चमकते हैं। उनके बारे में गुप्त मंत्र इस प्रकार हैं: ब्रहमा ऋषि हैं, छन्द गायत्री है और इस मंत्र के लिए देवता दक्षिणामूर्हि हैं। 24 अक्षरों का पहला मंत्र: "ॐ" कहने के बाद, "नमो" और फिर "भगवते दक्षिणामूर्त्ये", फिर "अस्मद" का चौथा रूप अर्थात "महयं" कहें, फिर "मेधं" प्रज्ञाम", फिर वायु की जड़ "य",को "च्चा" के साथ जोड़कर अग्निदेव की पत्नी का नाम "स्वाहा"। यह 24 अक्षरों वाला मंत्र है। अर्थात "ओम नमो भगवते दक्षिणामूर्तये महयम, मेधं प्रज्ञाम प्रयाच स्वाहा!"

2 फिर ध्यानम (मन में रूप के बारे में सोचते हुए, जब मंत्र का जाप किया जाता है)। मैं उनको नमस्कार करता हूँ जो स्फटिक की तरह सफेद हैं, जिनके हाथों में मोतियों की माला है, अमृत का कलश है जो भगवान का रूप है।

ज्ञान, बुद्धि का प्रतीक, सर्प से अपने को बांधने वाला, मस्तक पर चंद्रमा धारण करने वाला तथा विभिन्न प्रकार के आभूषण धारण करने वाला।

3 नौ अक्षरों का दूसरा मंत्र: पहले ॐ बोलें, फिर विसर्ग सहित पहला स्वर और अंत में विसर्ग सहित पंचाक्षरी बोलें, इससे नवाक्षरी मंत्र (नौ अक्षरों का मंत्र) प्राप्त होता है। अर्थात् "ॐ आम आ शिवाय नमः ॐ!"

4 फिर ध्यानम्। केवल कल्याण करने वाले तीन नेत्रों वाले, तीन हाथों में रक्षा का चिह्न, तीन हाथों में मृग और कुल्हाड़ी तथा चौथा हाथ घुटने पर रखे हुए, शरीर पर सर्प बांधे हुए, दूध के समान चमकते हुए, बरगद के वृक्ष के नीचे विराजमान तथा शुक जैसे ऋषियों से घिरे हुए भगवान हमें शुद्ध विचार प्रदान करें।

5 [श्लोक 6 उपलब्ध नहीं है।]
तीसरा मंत्र: ॐ में झाड़ू नम:, माया भीज, वाग्भव भीज, दक्षिणामूर्तये तथा ज्ञानं देहि स्वाहा जोड़ें। मंत्र होगा “ॐ झाड़ू, नमो ह्रीं इम दक्षिणामूर्तये ज्ञानं देहि स्वाहा!”

7 फिर ध्यान: भगवान दक्षिणामूर्ति, जिनका शरीर पवित्र भस्म लगाने के कारण सफेद है, जो अपने सिर पर अर्धचंद्र धारण करते हैं, जो अपने हाथों में ज्ञान मुद्रा (बुद्धि का प्रतीक), मोतियों की माला, वीणा और पुस्तकें धारण करते हैं, जो सभी आभूषण पहनते हैं, जो हाथी की खाल पहनते हैं, जो ध्यान करते हुए राम के समान हैं, जो व्याख्या के सिंहासन पर बैठते हैं और जिनकी सेवा महान ऋषियों द्वारा की जाती है, वे हमेशा हमारी रक्षा करें।

8 हमें ज्ञान के उस दीपक को देखना है, जो त्याग को तेल की तरह, भक्ति को बाती की तरह जलाता है और जो जागृत अवस्था के पूर्ण पात्र में चमकता है।

9 सृष्टि के आरंभ में भगवान ब्रह्मा ने इस दक्षिणामूर्ति की प्रार्थना की, और प्राणियों की रचना करने की क्षमता प्राप्त की और बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने जो चाहा, उसे पाकर वे धन्य हो गए। इसलिए वे ब्रह्मा हमारे भक्त भी हुए और हमारी भक्ति के भी पात्र हुए।

10 जो व्यक्ति शिव के इस दर्शन को समझकर पढ़ता है, उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। जो इसे सही रूप से जानते हैं, वे मोक्ष प्राप्त करते हैं।

11 ओम! वे हम दोनों की रक्षा करें, हम दोनों का पोषण करें, हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो, हम आपस में विवाद न करें (या हम किसी से द्वेष न करें)। ओम! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहां कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित दक्षिणामूर्ति उपनिषद् समाप्त होता है।

050 - सरभ उपनिषद

ओम! हे देवो, हम अपने कानों से वह सुनें जो शुभ है;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से वह देखें जो शुभ है!

देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रसिद्ध इंद्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ओम! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

मैं उस आदिदेव को नमस्कार करता हूँ जो प्रभु है, जो सर्वश्रेष्ठ है, जो जगत का पिता है, जो देवताओं में सबसे महान है, जिसने ब्रह्मा को उत्पन्न किया, जिसने आदि में ब्रह्मा को सभी वेद दिए, जो विष्णु तथा अन्य देवताओं का पिता है, जो स्तुति के योग्य है, तथा जो प्रलय के समय जगत का नाश करता है। वही एकमात्र ऐसा है जो सब से बड़ा है, जो सर्वश्रेष्ठ है तथा जो दूसरों पर शासन करता है।

1-2 उस अत्यंत बलवान महेश्वर ने सराभ का भयानक रूप धारण करके संसार का नाश करने वाले नरसिंह का वध किया। (सराभ शिव का अवतार है, जो चील, सिंह तथा मनुष्य का मिश्रण है।)

3 उस भगवान ने अपने तीखे पंजों से नरसिंह रूप धारण करने वाले विष्णु को फाड़ डाला। जिसने खाल पहनी थी, वह वीरभद्र हो गया।

4 जो कोई भी समस्त गुप्त शक्तियों को प्राप्त करने की इच्छा रखता है, उसे उसी का ध्यान करना चाहिए। उस रुद्र को नमस्कार है जिसने ब्रह्मा का पांचवा सिर फाड़ दिया।

उन रुद्र को नमस्कार है जिन्होंने काल नामक मृत्यु के देवता को लात मारकर गिरा दिया तथा जिन्होंने जलते हुए हलाहल विष को पी लिया।

6 उन रुद्र को नमस्कार है जिनके चरणों की पूजा भगवान विष्णु के नेत्रों के पुष्प से की गई तथा जिन्होंने प्रसन्न होकर उन्हें पवित्र चक्र प्रदान किया।

7 जो दुःखों को पार कर गया है, वह उस ईश्वर को देखता है, जो अणु में अणु है, स्थूल में स्थूल है, जो प्राणियों के हृदय में आत्मा के रूप में छिपा है तथा जो भौतिक क्रिया से परे है, इन कारणों से स्पष्ट रूप से।

8 उन रुद्र को नमस्कार है जो सबसे महान देवता हैं, जो हाथ में शूल (भाला) धारण करते हैं, जिनका निगलने वाला मुख बड़ा है, जो महेश्वर हैं तथा जिनके आशीर्वाद से अच्छे परिणाम होते हैं।

9 “चर” उन प्राणियों को इंगित करता है जो चलते हैं तथा क्योंकि ब्रह्म उनके आधे शरीर में हरि के रूप में चमकते हैं, इसलिए इसे सारभम कहा जाता है। हे महान ऋषि, जो सीधे मोक्ष प्रदान कर सकते हैं।

10 जो कोई द्विज इसे पढ़ता है, जिसे "पप्पलाद का महान शास्त्र" कहा जाता है या दूसरों को इसे पढ़ने के लिए कहता है, वह जन्म-मरण से छुटकारा पा लेता है और मोक्ष प्राप्त करता है। उपनिषद में कहा गया है कि वह ब्रह्मा के समान हो जाता है।ओम! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ बातें सुनें;हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ बातें देखें!

हम देवों द्वारा दिए गए जीवन की अवधि का आनंद लें,अपने शरीर और अंगों को स्थिर करके उनकी स्तुति करें!महान इंद्र हमें आशीर्वाद दें!सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!ओम! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!यहाँ सारभोपनिषद समाप्त होता है, जैसा कि अथर्ववेद में निहित है।

<u>051 - स्कंद उपनिषद</u>

ॐ ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;
हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,
हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;
हम एक दूसरे से विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)।

ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1-5. (स्कंद कहते हैं): हे महान देव! आपकी थोड़ी सी भी दया के कारण मैं अविचल प्राणी हूँ (पहचान से विमुख नहीं)। मैं ज्ञान का पुंज हूँ! मैं अच्छा भी हूँ - इससे अधिक मुझे क्या चाहिए?

अंतरात्मा के बढ़ने से जो अध्यात्म नहीं है, वह वैसा ही प्रकट होता है; उसके चेतावनी देने से यह शुद्ध ज्ञान या हरि के अलावा कुछ नहीं है। मैं ज्ञान ही हूँ, अजन्मा हूँ - इससे अधिक क्या? जो कुछ भी अन्य है वह जड़ है और स्वप्न की तरह नष्ट हो जाता है।जो चेतन को जड़ से पृथक् पहचानता है, वही अविचल ज्ञान-पुंज है। वही शिव है, हरि है, ज्योतियों का प्रकाशमान है, परब्रह्म है - वह ब्रह्म मैं ही हूँ।

6-7. जीव शिव है और शिव जीव है; भूसी से बँधा हुआ धान है, चावल से बँधा हुआ नहीं है। इस प्रकार बँधा हुआ जीव है, कर्म से मुक्त हुआ वह सनातन शिव है। रस्सियों से बँधा हुआ जीव है, बँधा हुआ शिव है।

8-9. (मैं) विष्णुस्वरूप शिव को और शिवस्वरूप विष्णु को प्रणाम करता हूँ; विष्णु शिव के हृदय हैं और शिव, विष्णु के। जैसे विष्णु शिव से पूर्ण हैं, वैसे ही शिव विष्णु से पूर्ण हैं। चूँकि मैं कोई भेद नहीं देखता, इसलिए मैं जीवन भर स्वस्थ हूँ।

10-15. शरीर को मन्दिर कहा गया है, शिव ही जीव हैं; पूजा के बाद पुष्पों को फेंक देना चाहिए और तादात्म्य भाव से पूजा करनी चाहिए। अभेद की अनुभूति ही ज्ञान है, ध्यान ही विषयरहित मन है। स्नान ही मानसिक अशुद्धि को दूर करता है, पवित्रता ही इन्द्रियों का संयम है। ब्रह्म का अमृत पीना चाहिए, भिक्षा लेनी चाहिए, द्वैत से रहित होकर स्वयं रहना चाहिए। ऐसा ज्ञानी पुरुष मोक्ष प्राप्त करेगा। मैं कल्याण और दीर्घायु की प्राप्ति के लिए शक्ति के सर्वोच्च, पवित्र आसन को नमन करता हूँ। वे स्वयं को जानते हैं।

ब्रह्म, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, विचार से परे, अव्यक्त, अनंत, अविनाशी, आपकी कृपा से, नृसिंह। विष्णु के उस उच्च स्थान को बुद्धिमान लोग हमेशा स्वर्ग में फैली हुई आंख की तरह देखते हैं। ऋषिगण, स्तुति करते हुए और जागृत होकर विष्णु की उस सर्वोच्च स्थिति का गुणगान करते हैं। यह वेदों के अनुसार मुक्ति का सिद्धांत है। ओम! वह हम दोनों की एक साथ रक्षा करें; वह हम दोनों का एक साथ पोषण करें; हम महान ऊर्जा के साथ मिलकर काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो; हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से घृणा न करें)। ओम! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित स्कंदोपनिषद यहीं समाप्त होता है।

<u>052 - त्रिपद्विभूति महानारायण उपनिषद</u>

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रसिद्ध इंद्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

ॐ ! ब्रह्म हम दोनों (गुरु और शिष्य) की रक्षा करें! वह हम दोनों को आनंद लेने के लिए (पर्याप्त) दे!

हम दोनों दक्षता प्राप्त करें! हमारा अध्ययन प्रभावी साबित हो! हम (एक दूसरे से) बिल्कुल भी नफरत न करें!

ॐ शांति! शांति! शांति! अब मैं "त्रिपत-नारायण" दर्शन के पीछे के सिद्धांतों की व्याख्या करने जा रहा हूँ, जिसे यदि पूरी तरह से समझा और समझा जाए, तो इस भौतिकवादी दुनिया में सभी जीवित प्राणियों को घेरने वाली सभी प्रकार की भ्रामक सामग्री को हटाया और समाप्त किया जा सकता है। "ओम! नारायण के रूप में जाने जाने वाले सर्वोच्च प्राणी ने जीवों को बनाने की इच्छा की। और ऐसी इच्छा (या प्रतिज्ञा) से, "प्राण" नामक

सांस की जीवंत शक्ति सर्वोच्च प्राणी से निकलती है; मन (मनस) और अन्य सभी इंद्रियाँ अस्तित्व में आती हैं।

इसके साथ ही आकाश, वायु, प्रकाश, जल और पृथ्वी भी बनाई गई हैं, जो सभी प्राणियों को धारण करती हैं। नारायण से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं, देवता जो सभी प्राणियों के निर्माता हैं; और इंद्र भी, जो सभी देवताओं के शासक हैं। उन्हीं में से प्रजापति उत्पन्न हुए, वे देवता जो लोगों को उत्पन्न करते हैं और नियंत्रित करते हैं, साथ ही बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र और आठ वसु (वेदों में वर्णित विभिन्न नियंत्रक शक्तियां - प्रत्येक प्रकृति की एक अलग और भिन्न शक्ति से संबंधित हैं)।

उन्हीं नारायण से ही सभी वेद अस्तित्व में आए। इस प्रकार, सभी शक्तियां नारायण से निकलती हैं और अंततः उन्हीं में विलीन हो जाती हैं।" - ऋग्वेद के एक उपनिषद में इस प्रकार घोषणा की गई है। "नारायण सदा विद्यमान और शाश्वत हैं; वे सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी हैं; ब्रह्मा, शिव, इंद्र, सभी (ये देवता) स्वयं नारायण के (विभिन्न रूप) हैं। वे वास्तव में, काल, स्थान और दिशा के सभी रूप हैं। ऊपर, नीचे, किनारे, भीतर और बाहर सभी दिशाएँ उनकी छाया हैं। जो कुछ विद्यमान है और जो अस्तित्व में आने वाले हैं, वे स्वयं नारायण हैं।

किसी भी प्रकार की अशुद्धता से रहित, जिसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता है, और जो सबसे शुद्ध है, वह एकमात्र सर्वोच्च सत्ता नारायण है। उनसे ऊपर कुछ भी नहीं है और उनकी तुलना में कोई दूसरी शक्ति नहीं है। जो इसे इस तरह समझता है वह स्वयं नारायण बन जाता है; वह स्वयं नारायण बन जाता है (दोहराया गया जोर)।" - इस प्रकार यजुर्वेद के एक उपनिषद में कहा गया है।

"पहले "ओम" अक्षर का उच्चारण करें; फिर "नमः" और "नारायणाय" शब्दों का उच्चारण करें। ये शब्द क्रमशः एक, दो और पाँच अक्षरों से बने हैं (जैसा कि संस्कृत में है); इस प्रकार पूरा वाक्यांश आठ अक्षरों से बना है या इसे "अष्ट-अक्षर" (अष्ट-आठ; अक्षर-अक्षर) कहा जाता है।

जो व्यक्ति नारायण के इस आठ अक्षरों वाले मंत्र का जाप करता है, वह बिना किसी बदनामी या बदनामी के लंबे समय तक जीवित रहता है; उसे शासन, धन, मवेशी और नौकर-चाकर प्राप्त होते हैं और अंततः मोक्ष (या वापसी का कोई बिंदु) भी प्राप्त होता है, जिसे मोक्ष भी कहा जाता है; वह मोक्ष (जोर से दोहराया गया) प्राप्त करता है।" - सामवेद के एक उपनिषद

में ऐसा कहा गया है। "वह आनंदमय सर्वोच्च प्राणी (ब्रह्म) जो भीतर रहता है, वह ओम या प्रणव के रूप का है।

प्रणव (ओम) अ, उ और म से बना है। यह कई गुना बढ़ गया। धन्य व्यक्ति, जो अक्षर ओम का जाप और जाप करता है, वह इस भौतिक दुनिया के सभी बंधनों और बंधनों से छुटकारा पा लेता है। जो व्यक्ति "ॐ नमो नारायणाय" का जाप करता है, वह अंततः वैकुण्ड, श्री नारायण के निवास (या स्वर्ग - मोक्ष का घर) को प्राप्त करता है। वैकुण्ड कहीं और नहीं, बल्कि ज्ञान (आध्यात्मिक) से भरे हुए शुद्ध धन्य हृदय में ही मिलता है।

वहाँ से बिजली की किरण के समान चमकीली एक प्रकाश की शाखा निकलती है। प्रकाश की वह किरण नारायण के विभिन्न रूपों का प्रतिनिधित्व करती है - जिन्हें देवकी के पुत्र, शहद से भी अधिक मधुर, ब्रह्मा के रूप में, कमल के समान नेत्रों वाले, विष्णु (या सभी के उद्धारकर्ता) जैसे नामों से पुकारा जाता है। वे सभी प्राणियों के भीतर निवास करते हैं, और उनकी सभी गतिविधियों को नियंत्रित करते हैं। वे अभौतिक अक्षर ओम, सर्वोच्च सत्ता का रूप हैं।" - ऐसा अथर्ववेद के एक उपनिषद में कहा गया है। (इस प्रकार यह जानने के बाद कि चारों वेद नारायण के बारे में क्या कहते हैं, अब आइए हम उनके मंत्र जाप के फल को समझें)।

जो प्रातःकाल इस मंत्र का जप करता है, उसके रात्रि में किये गये सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। जो सायंकाल में इस मंत्र का जप करता है, उसके दिन में किये गये सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मध्याह्न में सूर्य की ओर देखकर इस मंत्र का जप करता है, उसके शास्त्रों में वर्णित सबसे बुरे पाँच प्रकार के छोटे-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। उसे सभी वेदों का जप करने का फल मिलता है। अन्त में वह नारायण में विलीन हो जाता है। ॐ! ब्रह्म हम दोनों की रक्षा करें! वह हम दोनों को भोगने के लिए पर्याप्त दे! हम दोनों को दक्षता प्राप्त हो! हमारा अध्ययन प्रभावशाली सिद्ध हो! हम एक दूसरे से बिलकुल भी घृणा न करें! ॐ शांति! शांति! शांति! ॐ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ बातें सुनें; हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ बातें देखें! हम देवों द्वारा दी गई जीवन अवधि का आनंद लें,अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!प्रसिद्ध इंद्र हमें आशीर्वाद दें!सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!ॐ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ अथर्ववेद में निहित त्रिपद्विभूति-महानारायणोपनिषद समाप्त होता है।

053 - अद्वय तारक उपनिषद

ॐ ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है।
अनंत अनंत से ही निकलता है।
(तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर,
वह अनंत (ब्रह्म) ही रह जाता है।

ॐ ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

जो तुम्हें जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु के भय से पार करने में मदद करता है, उसे थरकम (थरयथी) कहते हैं। जीव और ईश्वर को अलग-अलग इकाई के रूप में समझना भ्रम के कारण है और फिर दुनिया में मौजूद अंतरों की जांच और समझना, "यह यह नहीं है", "यह यह नहीं है" और अंत में जो बचता है वह अध्वय ब्रह्म है (जिसके दो रूप नहीं हैं)। इसे पाने के लिए हमें तीन लक्ष्यों का अभ्यास करना होगा।

1 शरीर के मध्य में सुषुम्ना नाड़ी होती है जो सूर्य के समान चमकीली और चन्द्रमा के समान शीतल होती है। यह मूलाधार से शुरू होकर ब्रह्मरंध्र तक जाती है जो खोपड़ी के मध्य में स्थित है।
यह सर्वविदित है कि इसके मध्य में कुंडलनी होती है जो करोड़ों सूर्यों के समान चमकीली और कमल के धागे के समान पतली होती है। जो मनुष्य मन की आँखों से इसे देखता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करता है।

2 जो व्यक्ति अपने माथे के मध्य में निरंतर प्रकाश देखता है, उसने योग में निपुणता प्राप्त कर ली है।

3 चाहे वह कहीं भी हो, यदि किसी के सिर के ऊपर प्रकाश है, तो वह योगी है।

4 अंदर का योग दो प्रकार का होता है, पूर्व और उत्तर। पूर्व योग थारक है और उत्तर योग अमनस्क है।जो ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभव किया जा सकता है, वह आकार है। जो पलकों के बीच में है, वह निराकार है।

भीतर की बातों को समझने के लिए हमेशा मन के गहन प्रयोग के साथ अभ्यास करना आवश्यक है। थारक योग में, दहारकाश जैसी अवधारणाएँ केवल मन की आँखों से ही समझी जाती हैं। उत्तरा (पद) योग निराकार है। यह मन से परे है।

6 पलकें झपकाए बिना अंदर और बाहर देखने के लिए, जिसे हम देखना चाहते हैं, उसे सांभवी मुद्रा कहते हैं। जिस स्थान पर उस प्रकार की मुद्रा का विशेषज्ञ रहता है, वह स्थान बहुत पवित्र हो जाता है।

7 महान गुरु की सहायता से व्यक्ति सहस्रार (हजार पंखुड़ियों वाला कमल) या हृदय की गुफा या 12 नाड़ियों के अंत में छिपी हुई थूरिया अवस्था को खोजने का प्रयास करता है। इसे देखने की क्षमता केवल एक महान गुरु की सहायता से ही होती है।

8 यदि वेदों का विद्वान, भगवान विष्णु का भक्त, मन में ईर्ष्या न रखने वाला, योग का महापंडित, योग का अभ्यास करने वाला तथा योग का साक्षात् स्वरूप गुरु हमें आशीर्वाद दे, तो जन्म के सभी बंधन नष्ट हो जाएंगे। उस क्षण सभी जन्मों में किए गए सभी पाप नष्ट हो जाएंगे। उपनिषद् कहता है कि वह सभी पुरुषार्थों को प्राप्त करेगा।

9 ॐ ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है। अनंत से अनंत की उत्पत्ति होती है। (तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर, वह केवल अनंत (ब्रह्म) ही रह जाता है।ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ शुक्ल-यजुर्वेद से संबंधित अद्वय-तारकोपनिषद् समाप्त होता है।

054 - राम रहस्य उपनिषद

[यह महान उपनिषद अथर्ववेद में है और भगवान राम की पूजा पद्धतियों का आधिकारिक स्रोत है।]ओम! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!हम देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,अपने शरीर और अंगों को स्थिर करके उनकी स्तुति करें!

महान इंद्र हमें आशीर्वाद दें!सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!ओम! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!मैं उन भगवान राम को प्रणाम करता हूँ, जो मोक्ष के साक्षात् स्वरूप हैं, जो एक महान राजा हैं, जो एक महान व्यक्ति हैं और जो अपने सभी शत्रुओं का नाश करते हैं।

पहला अध्याय

1-2. मुदगल, सांडिल्य, पैंगल, भिक्षु, सनक और प्रहलाद जैसे महान ऋषियों ने भगवान हनुमान के पास जाकर उनसे पूछा,
3-4. “चारों वेदों, 18 पुराणों, 18 स्मृतियों, शास्त्रों, समस्त ज्ञान और सूर्य तथा चंद्रमा द्वारा शासित महान शक्तियों में सबसे महान सिद्धांत कौन सा है?” 5-6. उन्होंने उत्तर दिया, “हे महान ऋषियों और भगवान विष्णु के भक्तों! कृपया मेरे शब्दों को सुनें जो सभी आसक्तियों को काट देते हैं, इनमें सबसे बड़ा सिद्धांत ब्रह्म तारक (ओम) का सिद्धांत है। राम परब्रह्म और सर्वोच्च तपस्या हैं, और राम सर्वोच्च सार और ब्रह्म तारक हैं।
7. सभी ने फिर पूछा, भगवान हनुमान, "कृपया हमें भगवान राम के अंग (पहलू) बताएं।" भगवान हनुमान ने कहा, "कृपया समझें कि भगवान गणेश, देवी सरस्वती, देवी दुर्गा, सभी क्षेत्र पालक, सूर्य, चंद्रमा, भगवान नारायण, भगवान नरसिंह, भगवान वासुदेव, भगवान वराह, भगवान लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत, विभीषण, सुग्रीव, अंगद, जाम्बवंत और प्रणव भगवान राम के अंग हैं। इन अंगों के बिना, भगवान राम सभी बाधाओं को दूर नहीं कर सकते।

उन्होंने फिर पूछा, "ब्राह्मण और गृहस्थ लोग प्रणव का जाप करने की क्षमता कैसे प्राप्त करेंगे?" उन्होंने कहा, "सभी लोग (भले ही वे "ओम" का जाप करने के योग्य न हों) जो छह अक्षर मंत्र का जाप करते हैं, उन्हें प्रणव का ध्यान करने की क्षमता प्राप्त होगी। जो लोग चुपचाप राम के मंत्र का जाप करते हैं, उन्हें "ओम" अक्षर को दोहराने के समान प्रभाव मिलेगा।

ऋषि, देवता और छन्द के नाम के बाद राम मंत्र का जप करने से प्रणव के जप के समान ही प्रभाव प्राप्त होता है और आगे उन्होंने बताया कि राम ने स्वयं कहा है कि प्रणव राम मंत्र का अंग है।

8. एक अन्य अवसर पर विभीषण के प्रश्न का उत्तर देते हुए कि “अपने अंगों की पूजा कैसे सहज की जा सकती है? कृपया मुझे कोई सरल उपाय बताइए।” राम ने उत्तर दिया, “मेरे नाम “राम” का जप करने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। मान लीजिए कोई मेरे छह अक्षरों वाले मंत्र का ध्यान करता है या मेरी गीता पढ़ता है या भक्ति भाव से मेरा स्मरण करता है, तो उसे भी वही प्रभाव प्राप्त होगा।

यदि कोई मेरे छह अक्षरों वाले मंत्र का दस लाख बार जप करता है, तो वह पाँच महापापों, अर्थात् पिता की हत्या, माता की हत्या, भाइयों की हत्या, गुरु की हत्या, पति की हत्या या अन्य प्रसिद्ध महापापों से मुक्त हो जाता है। उसे अमर और चिरस्थायी आनंद भी प्राप्त होता है। विभीषण ने उनसे फिर पूछा, "जो लोग ऐसा करने में सक्षम नहीं हैं, उनके लिए क्या उपाय है?" राम ने उत्तर दिया "वे या तो मेरी गीता, मेरे हजार नाम पढ़ें या मेरे विश्व रूप या मेरे 108 नामों का ध्यान करें, या मेरे नाम को 100 बार जपें, या नारद मुनि द्वारा रचित स्तोत्रों के राजा को पढ़ें, या हनुमान द्वारा रचित मंत्र राज स्तवम् नामक महान प्रार्थना पढ़ें, या सीता की प्रार्थना पढ़ें या प्रतिदिन मेरा नाम जपते हुए मुझसे प्रार्थना करें; वे निस्संदेह मुझे प्राप्त करेंगे।" यहाँ पहला अध्याय समाप्त होता है।

दूसरा अध्याय सनक के नेतृत्व में महान ऋषियों ने हनुमान से फिर पूछा, "कृपया हमें तारक ब्रह्म राम के ध्यान (या पूजा) के लिए मंत्र बताएं।" हनुमान ने उत्तर दिया:

1. मंत्रों का वह राजा एकाक्षर (एक-अक्षर) है जो अग्नि का भंडार है, जो लेटे हुए भगवान विष्णु हैं और जो अर्धचंद्र से सुशोभित भगवान शिव हैं।

2. इसके ऋषि ब्रह्मा हैं, छन्द गायत्री है, देवता भगवान राम हैं, अंग अर्धचंद्र है और मन अग्नि की आत्मा है,

3. इसका मूल बीज शक्ति है और इच्छाओं की पूर्ति के लिए इसका जाप करना चाहिए। [मंत्र के लिए प्रार्थना (ध्यान श्लोक) है:-] वह जो सरयू नदी के तट पर कमल के फूल पर बैठता है,

4. वह जो काला है, नायकों के सिंहासन पर बैठा है, जो ज्ञान-मुद्रा में चमकता है जिनका बायाँ भाग सीता और लक्ष्मण से सुशोभित है,

5. जो उन आत्माओं के लिए उनकी आत्मा के रूप में चमकते हैं, जो उनसे प्रार्थना करते हैं, जो स्पष्ट क्रिस्टल की तरह हैं, जो मोक्ष की इच्छा रखने वालों के लिए एकमात्र स्रोत हैं,

6. जो उन विचारकों के लिए परमात्मा हैं, जो लाखों सूर्यों की तरह चमकते हैं, जो नाड़ियों में रहने वाले नारायण के समान हैं, जो पाचन अग्नि हैं।

7. दो अक्षरों वाले मंत्रों के राजा (राम) से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है, और एक अक्षर के प्रत्यय के साथ, यह छह अलग-अलग मंत्र बन जाते हैं, [वे हैं ओम, ह्रीं, श्रीं, क्लीं, ऐं और राम।]

8. तीन अक्षरों वाले ये मंत्रों के राजा भी सभी कामनाओं को पूरा करेंगे।

9. दो चार अक्षर वाले मंत्र रामचंद्र और रामभद्र हैं।

10. इनका जाप ऋषि और अन्य लोगों के साथ पहले बताए अनुसार किया जा सकता है; विश्वामित्र इसके ऋषि हैं, छंद पंक्ति है, देवता रामभद्र हैं, भीज शक्ति हैं।

11. इस मंत्र का मानसिक आवाहन भौहों, सिर, नाभि, जंघाओं और पैरों के मध्य में करना चाहिए।

12. वन के मध्य में जाकर कल्प वृक्ष के नीचे बैठकर पुष्पलता की मुद्रा धारण करनी चाहिए, अंग न्यास करना चाहिए और मंत्रों का जाप करना चाहिए।

13. लक्ष्मण द्वारा बाण को ठीक से व्यवस्थित करना और सीता द्वारा भगवान को पंखा झलना।

14. ध्यान मंत्र:- मैं उन राम को नमस्कार करता हूँ, जिनके केश चमकदार और जटाधारी हैं, जो नील वर्ण के हैं, जो ऋषियों से घिरे हुए हैं, जिन्हें जानकी पंखा झल रही हैं, जिनकी रक्षा छत्रधारी लक्ष्मण कर रहे हैं,

15. जिन्होंने रावण का वध किया, जो परम शांत हैं और जिनके आगे सुग्रीव और विभीषण खड़े हैं। विजय प्राप्ति के लिए इस श्लोक का दस लाख बार जप करना चाहिए।

16. चार अक्षरों वाले मंत्र के आरंभ में मन्मथ, दुर्गा, सरस्वती और लक्ष्मी के मूल अक्षर जोड़कर पंचाक्षरी मंत्र बनाए जाते हैं, [छह अक्षरों वाला बनाने के लिए ॐ जोड़कर] और चार पुरुषार्थों की प्राप्ति कराई जाती है।

17. संस्कृत वर्णमाला के पचास रहस्यमय अक्षरों में से प्रत्येक (नासिकाकृत) के साथ-साथ लक्ष्मी, सरस्वती, मन्मथ और ॐ के मूल अक्षरों को प्रथम अक्षर के रूप में जोड़ने पर छः अक्षरों वाले अनेक प्रकार के मंत्र बनते हैं।

18. चार अक्षर वाले मंत्रों में श्री, माया और मन्मथ के मूल अक्षरों को उपसर्ग और प्रत्यय के रूप में जोड़कर जप करने से सभी मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं।

19. अंत में स्वाहा, हुं फट् या नमः को विभिन्न संयोजनों में जोड़कर 18 अक्षर वाले मंत्र बनाएं।

20. इन मंत्रों में ब्रह्मा को सम्मोहन शक्ति, दक्षिणामूर्ति, अगस्त्य और शिव को क्रमशः तपस्वी कहा गया है।

21. छंद गायत्री है और देवता श्री राम हैं। या, आरंभ में काम-बीज और ऋषि विश्वामित्र।

22. विभिन्न देवताओं का छंद गायत्री और रामभद्र 'देवता'। शक्ति-बीज का आह्वान 6-अक्षर मंत्र के साथ पहले की तरह किया जाता है।

23. सिर के शीर्ष पर, भौंहों, हृदय, जांघों और पैरों के बीच में, मंत्रों को बीज और अंग-न्यास के साथ पढ़ा जाता है।

24. ध्यान: मैं श्री राम की पूजा करता हूँ, जिनका शरीर विभिन्न आभूषणों से चमकता है, जो बिजली की तरह चमकदार हैं, जो वीरासन मुद्रा धारण करते हैं, जो एक हाथ से ज्ञान मुद्रा दिखाते हैं, जो दूसरे हाथ को अपनी जांघ पर रखते हैं, और जो मुकुट पहनते हैं।

25. फिर, साष्टांग प्रणाम करते हुए, "रामचंद्राय और रामभद्राय नमः" का जाप करना चाहिए, जो सात अक्षरों वाले मंत्रों के राजा और सभी इच्छाओं को पूरा करने वाले हैं।

26. आठ अक्षर वाला मंत्र: दो सात अक्षरों वाले मंत्रों के आरंभ में ॐ जोड़ने से दो आठ अक्षर वाले मंत्र बनते हैं। चार अक्षरों वाले "रामाय" और "हं फट् स्वाहा" में ॐ जोड़ने से एक और आठ अक्षर वाला मंत्र बनता है।

27. आठ अक्षरों वाले मंत्र के लिए ऋषि और अन्य सहायक मंत्र वही हैं जो छह अक्षरों वाले मंत्रों के लिए हैं। पुनः, 8 अक्षरों वाले मंत्र में भी ऋषि के रूप में राम हैं।

28. छन्द गायत्री है, देवता राम हैं, ओम, श्री बीज-युग्म, तथा शक्ति बीज और अन्य भी (जोड़े गए हैं)।

29. तत्पश्चात 6 अंगों वाले न्यास के साथ मंत्र का जाप किया जाता है, तथा ओम और श्री बीज-युग्म के साथ रामाय नमः का जाप किया जाता है।

30. शिव राम मंत्र: ग्लौं ओम, माया-बीज (हृदय-स्थिर) रामाय नमः का पुनः जाप किया जाता है। शिव, ओम, राम मंत्र सभी श्रेष्ठताओं का दाता है।

31. सदाशिव को ऋषि, गायत्री को छन्द और शिव-ओम-रामचंद्र को देवता कहा गया है। ध्यानम्:मैं उस राम की पूजा करता हूँ,जिसके तीन नेत्र हैं, जो अर्धचंद्र धारण करता है,जो त्रिशूल धारण करता है,जिसका पूरा शरीर भस्म से अभिषेक किया हुआ है,और जिसके बाल जटाओं में हैं।

32. मैं तीन नेत्रों वाले की पूजा करता हूँ, जो अभिराम हैं, सौंदर्य के शिखर हैं, जो अर्धचन्द्र को कुण्डल की तरह धारण करते हैं, तथा जो पाश, अंकुश, धनुष और बाण धारण करते हैं,

34. इस प्रकार ध्यान करते हुए, जप और आहुति में पूर्णतया समर्पित होकर, बिल्वपत्र, फल, पुष्प, तिल्ली के बीज और कमल अर्पित करते हुए एक लाख बार मंत्र का जप करना चाहिए।

35. राम ब्रह्म गायत्री: आठ अक्षरों वाली राघव ब्रह्म गायत्री का जप करने पर देवताओं द्वारा चाही गई सम्पत्तियाँ और शक्तियाँ भी अपने आप आ जाती हैं।

36. श्रीबीज को मेरी शक्ति जानकर ऋषिगण इसकी आराधना के लिए विनियोग के रूप में अंगों से मंत्र का जप करते हैं।

37. ध्यानम्: मैं उन नीलवर्ण वाले राम की पूजा करता हूँ, जो अपनी भुजा में कंगन और चूड़ियाँ पहनते हैं, जो चमकते हुए रत्नों से जड़े हुए हैं, जिनके सिर पर राजसी छत्र है, जो लाखों चन्द्रमाओं के समान चमकते हैं, जो एक हजार सोलह स्वर्ण स्तंभों वाले भवन में विराजमान हैं, तथा जो भरत आदि से घिरे हुए हैं।

38. राम शरण मंत्र: "रामं शरणं मम" (अर्थात् राम ही मेरे शरण हैं) का जाप अन्य अनेक मंत्रों की अपेक्षा अधिक फल प्रदान करता है, जो क्षणिक लाभ की ओर ले जाते हैं तथा क्षणिक फलों के लोभ के कारण संसार के दुखों को उत्पन्न करते हैं। यह मंत्र लोभ और अन्य दोषों के दोष के बिना उन सभी फलों को प्रदान करता है। आठ अक्षरों वाला एक मंत्र भी है जो सात प्रकार से प्रसिद्ध है। सात अक्षरों वाले मंत्र में ॐ जोड़ा गया है।

39. अधिक अक्षरों वाले अन्य मंत्र: 8 अक्षरों वाले मंत्र का जप सात प्रकार से किया जाता है। सात अक्षरों वाले मंत्र के आरंभ और अंत में ॐ जोड़ा जाता है।

40. नौ अक्षरों वाला मंत्र: 9 अक्षरों वाला यह मंत्र 6 अक्षरों वाले मंत्र की तरह आरंभ में सीता को और अंत में जानकी को अर्पित किया जाता है।

41. दस अक्षरों वाला मंत्र: 10 अक्षरों वाला यह मंत्र सभी इच्छित फल प्रदान करता है। इस 10 अक्षरों वाले मंत्र के ऋषि महर्षि वशिष्ठ हैं, छन्द विराट है,

42. देवता सीता का हाथ थामे हुए राम हैं, आरंभिक बीज विसर्ग शक्ति है। कामनाओं के लिए अंग न्यास के साथ,

43. 10 अक्षरों वाले मंत्र को सिर, ललाट, भौहों के मध्य, तालु, कान, हृदय, नाभि, जांघ, घुटने और पैरों पर मानसिक रूप से अर्पित किया जाता है।

44. ध्यानम्: मैं उस राम का स्मरण करता हूँ, जो अयोध्या नगरी में है, जो विभिन्न रत्नों से सुशोभित है,जो स्वर्णमय छत्र के नीचे विराजमान हैं, जिनके द्वार मन्दराचल पुष्पों से सुशोभित हैं,

45. जो सिंहासन पर विराजमान हैं, दिव्य वाहनों से घिरे हुए हैं,

46. ऋषिगण जिनकी स्तुति आदरपूर्वक करते हैं, जिनके बायीं ओर सीता विराजमान हैं, जिनकी सेवा लक्ष्मण कर रहे हैं,

47. जो नीलवर्ण के हैं, जिनका मुख शान्त है, तथा जो आभूषणों से सुशोभित हैं। इस मंत्र का एक लाख बार अनन्य भक्तिपूर्वक जप करना चाहिए।

48. हाथ में धनुष लिए हुए राम का स्वरूप तथा भीतर सीता। दशाक्षरी मंत्र के ऋषि ब्रहमा हैं। छन्द विराट है,

49. देवता राम हैं, जो राक्षसों का संहार करने वाले हैं। शेष पूजा पहले वाली पूजा के समान ही है। धनुष-बाण लिए हुए राम का स्मरण करना चाहिए।

50. ग्यारह अक्षर वाला मंत्र: ॐ-माया-राम-काम-वाच-स्व-बीज-स को छः बार जोड़कर, तथा रूद्र के लिए दस अक्षर वाला मंत्र पढ़ें।

51. शेष (अनुष्ठान) 6-अक्षर वाले मंत्र के समान ही है, जहाँ तक न्यास और ध्यान का संबंध है, बुद्धिमानों के अनुसार। बारह अक्षर वाले मंत्र में श्री राम ऋषि हैं;

52. छन्द जगती है और श्री राम देवता हैं; प्रणव को बीज कहा गया है, क्लीम शक्ति है, और ह्रीं किलक है।

53. मंत्रों को अंग-न्यास के साथ पढ़ते हुए, शेष क्रिया पहले की तरह की जाती है। इसके अलावा ॐ, कीम और भरतग्रज भी जोड़े जाने चाहिए।

54. बारह अक्षर वाला मंत्र: यह बारह अक्षर वाला मंत्र राम, क्लीम और स्वाहा के साथ समाप्त होता है। ॐ हृद्भागवते रामचंद्रभद्राय;

55. पहले की तरह ऋषि और ध्यान, और [अर्नो मीटर (12-फुट) या 12 सूर्य??]; जगती मीटर, और अंग-न्यास के साथ मंत्र।

56. इसके बाद श्री राम और जयराम नाम का पाठ करते हुए, बुद्धिमान व्यक्ति दो बार जय जय कहता है, राम जो मन पर खुशी बरसाते हैं।

57. तेरह अक्षर वाला मंत्र: 13-अक्षर वाले मंत्र में पहले की तरह ही ऋषि और अन्य सहायक हैं,सभी इच्छाओं को पूरा करने वाला। पहले की तरह अंग- और ध्यान के साथ वाक्यांश को दो बार दोहराएं।

58. चौदह अक्षर वाला मंत्र: जब ॐ जोड़ा जाता है, तो मंत्र 14-अक्षर वाला हो जाता है। 13-अक्षर वाले का जाप करने के बाद, व्यक्ति (नाम) राम जोड़ता है;

59. पंद्रह अक्षर वाला मंत्र: यह पंद्रह अक्षरों वाला कामनाओं को पूर्ण करने वाला वृक्ष (कल्प-भूरूहा) है। इसके आगे नमः जोड़ें।सीतापतये रामाय हाना हाना;

60. सोलह अक्षर वाला मंत्र: इसके बाद, 16 अक्षर वाला मंत्र कवच और अस्त्र के साथ समाप्त होता है। इसमें अगस्त्य ऋषि हैं, बृहति छंद है, और राम देवता हैं।

61. राम बीज है, अस्त्र शक्ति है, और हुं किलक है। 10-15 अक्षर वाले मंत्र-अ को अंग-न्यास के साथ अनुक्रम में प्रस्तुत किया जाता है।

62. सत्रह अक्षर वाला मंत्र: ॐ जोड़ने पर मंत्र 17 अक्षर वाला हो जाता है। उसके बाद अंत में ॐ नमो भगवते राम।

63. अठारह अक्षर वाला मंत्र: अंत में पुरुषाय जोड़ने पर 18 अक्षर वाला मंत्र बनता है, जिसमें विश्वामित्र ऋषि और गायत्री छंद तथा देवता राम होते हैं।
64. उन्नीस अक्षरों वाला मंत्र: काम बीज के साथ, मंत्र 19 अक्षरों वाला होता है। ओम नमो भगवते रामाय का जाप करना चाहिए।

65. बीस अक्षरों वाला मंत्र: सभी मंत्रों का उच्चारण करने के बाद व्यक्ति सभी मंगल कामना करता है। जब स्वाहा जोड़ दिया जाता है तो मंत्र 20 अक्षरों वाला हो जाता है।
66. ओम नमो भगवते रामाय का जाप करना चाहिए। फिर खतरों से सुरक्षा के लिए स्वाहा।
67. इक्कीस अक्षरों वाला मंत्र: 21 अक्षरों वाला मंत्र व्यक्ति की सभी इच्छाओं को पूरा करता है। ओम राम स्वाभिजा
इसके बाद दशरथाय।
68. बाईस अक्षरों वाला मंत्र: फिर व्यक्ति सर्व-मंगलकारी सीतावल्लभाय (सीता के पति के लिए) का जाप करता है।
फिर यह 22 अक्षरों वाला मंत्र।

69. तेईस अक्षर वाला मंत्र: ॐ नमो भगवते वीररामाय का जाप किया जाता है। फिर धीमे स्वर में हन हन स्वाहा का उच्चारण किया जाता है।

70. 23 अक्षर वाला मंत्र सभी शत्रुओं का नाश करने वाला है। विश्वामित्र ऋषि हैं और गायत्री छंद है।

71. देवता वीर राम हैं, बीज और अन्य (सहायक) पहले जैसे हैं। बुद्धिमान व्यक्ति मूल मंत्र का अंग-न्यास करने के बाद चुपचाप राम का ध्यान करता है, जिन्होंने धनुष पर बाण चढ़ाया है और रावण का सामना कर रहे हैं, हाथ में वज्र लिए हुए हैं और रथ पर चढ़े हुए हैं।

73. ॐ नमो भगवते श्री रामाय का जाप किया जाता है और ॐ ब्रह्मणे का उच्चारण करके मम तारय (मेरी रक्षा करें) शब्द जोड़े जाते हैं।

74. चौबीस अक्षर वाला मंत्र: नम: ॐ जोड़ने पर मंत्र 24 अक्षर वाला हो जाता है। बीज और अन्य सहायक शब्द पहले की तरह ही हैं।

75. क्लीं, ओम, नमः और भगवते रामचंद्राय इसके बाद, कोई 'सभी' शब्द कहता है।

76. पच्चीस अक्षर वाला मंत्र: जनवश्यकराय (लोगों पर विजय प्राप्त करना) स्वाहा और कीम का जाप करना चाहिए।
मन ही मन जपें। 25 अक्षरों वाले मंत्र में सर्ववश्यकार (सब पर विजय प्राप्त करना) शामिल है।

77. छब्बीस और सत्ताईस अक्षरों वाला मंत्र: शुरुआत में ॐ जोड़ने पर मंत्र में 26 अक्षर होते हैं। अंत में ॐ जोड़ने पर यह 27 अक्षरों वाला हो जाता है।

78. ॐ नमो भगवते रक्षोघ्नविषादाय (राक्षसों का नाश करने वाले भगवान को प्रणाम),सर्वविघात निवारय (सभी बाधाओं से रक्षा करें), दो बार दोहराना है;

79. अट्ठाईस और उनतीस अक्षरों वाला मंत्र: अंत में स्वाहा जोड़ने पर यह मंत्र का राजा 28 अक्षरों वाला हो जाता है। ॐ के साथ जुड़ने पर यह 29 अक्षरों वाला हो जाता है।

80. तीस और इकतीस अक्षरों वाला मंत्र: स्व-बीज से शुरू होने वाला यह 30 अक्षरों वाला मंत्र है। अंत में ॐ लगाकर इसमें ३१ अक्षर हैं।

81. हे रामभद्र महान धनुर्धर! हे राजाओं में श्रेष्ठ रघुवीर और रावण के वधकर्ता! मुझे धन प्रदान करें!

82. ऋषि राम हैं, छन्द अनुष्टुभ है, राम बीज, यम शक्ति, इष्ट देवता के लिए जपे जाते हैं।

83. मन्त्र का न्यास हृदय में, मस्तक पर, शिखा पर पाँच अक्षरों वाले तथा कवच पर तीन अक्षरों वाले मंत्र से किया जाता है।

84. नेत्रों के लिए पाँच अक्षरों वाले मन्त्र से, जिसे अस्त्र कहते हैं। धनुष-बाण धारण किए हुए, नीले रंग के, सुग्रीव और विभीषण के साथ।

85. रावण का वध करने के पश्चात तीनों लोकों की रक्षा के लिए आते हुए; हृदय में राम का ध्यान करते हुए, एक लाख बार मानसिक रूप से (मन्त्र) जप किया जाता है;

86. तत्पश्चात 'दशरथाय विद्महे' तथा तत्पश्चात 'सीता वल्लभाय धीमहि' का उच्चारण करते हुए राम गायत्री का जाप करें।

87. तन्नो रामः प्रचोदयात्। [हम दशरथ के पुत्र को जानें, सीता का ध्यान करें, राम हमारी बुद्धि को प्रकाशित करें।]

88. पृथ्वी को मोहित करने तथा प्रेम में निपुणता प्राप्त करने के लिए 'श्री राम' के साथ माया के बीजा के साथ 'मदन' (कामदेव) भी जोड़ें।

89. 15 अक्षर तथा 12 अक्षर वाले मंत्र के साथ-साथ 16 अक्षर वाले मंत्र के लिए भी अंगन्यास करना चाहिए।

90. इनके लिए बीजा का जाप, ध्यान आदि करते समय 6 अक्षर वाले मंत्र के समान ही क्रम का पालन करना चाहिए। ॐ नमो भगवते रघुनंदनाय।

91. इसी प्रकार, इसके बाद 'रक्षोघ्नविषाद्', 'मधुरा' (मधुर), 'प्रसन्नवदानम्' (शांत मुख वाले), 'अमित-तेजसो (असीमित तेज वाले) का पाठ करें।

92. इसके बाद, बलराम और विष्णु को नमः (प्रणाम) कहें, और मन ही मन 47 अक्षरों का पाठ करें।

93. ऋषि ब्रह्मा हैं, छंद अनुष्टुभ हैं, तथा देवता राघव हैं। सात काल 17, 6 रुद्रों के साथ, तथा 6 अंग;

94. 10 अक्षरों वाले मंत्र का ध्यान करते हुए, व्यक्ति इसका 100,000 बार जाप करता है। इसकी शुरुआत "श्रीयम सीता" से होती है, उसके बाद 6 अक्षरों वाला मंत्र आता है और अंत "स्वाहा" से होता है।

95. इस मंत्र के ऋषि जनक हैं, छंद गायत्री है, देवता सीता भगवती हैं, श्रीं बीज हैं, तथा नमः शक्ति हैं।

96. सीता किलक हैं, इष्ट के लिए विनियोग किया जाता है। आरंभ में दीर्घ उच्चारण के साथ जप करने पर 6 अंगों वाला न्यास किया जाता है।

97. षटकोण (यंत्र) के मध्य में राम का ध्यान करना चाहिए, मन में यह सोचना चाहिए कि उनका शरीर सोने की तरह चमक रहा है, उनके हाथ में कमल है, और फिर राम को अंतिम शरण के रूप में देखना चाहिए।

98. लक्ष्मण मंत्र के लिए लम ध्वनि का उच्चारण करें और लक्ष्मण को प्रणाम करें। इस (मंत्र) के लिए अगस्त्य ऋषि हैं, छन्द गायत्री है,

99. देवता लक्ष्मण हैं, लम बीज है और शक्ति नमः है; 4 पुरुषार्थ विनियोग हैं।

100. 6 अंगों वाले न्यास के साथ राम के रूप में लंबे अंत की ध्वनि का उच्चारण किया जाता है। (राम) दो भुजाओं वाले, स्वर्णिम रंग के, कमल के समान शरीर वाले,

101. भरत मंत्र के लिए, जो धनुष-बाण धारण किए हुए हैं, पूर्णतः राम के प्रति समर्पित हैं, उन्हें 'भ' ध्वनि का उच्चारण करना चाहिए और भरत को प्रणाम करना चाहिए।

102. ऋषि अगस्त्य हैं, विश्राम पहले की तरह किया जाता है, भरत को, जो नीले रंग के हैं, शांत हैं और पूरे मन से राम की सेवा करते हैं।

103. शत्रुघ्न के मंत्र के लिए, "मैं धनुष-बाण धारण किए हुए कैकेयी के वीर पुत्र की पूजा करता हूँ" का जाप करें; बीज "शं" का उच्चारण करें और 'शत्रुघ्नाय नमः' के साथ समाप्त करें, ऋषियों और अन्य सहायक योगों का पहले की तरह उच्चारण करें और शत्रुओं पर नियंत्रण के लिए विनियोग करें।

104. दो भुजाओं वाले, स्वर्ण-उज्ज्वल, राम की सेवा में समर्पित, लवणासुर का वध करने वाले, मैं सुमित्रा के पुत्र की पूजा करता हूँ।

105. हनुमान जी का मंत्र "ह्रं हनुमते" मंत्रों का राजा है, जिसके रामचंद्र जी ऋषि हैं, तथा अन्य अनुष्ठान पहले की तरह ही करने चाहिए।

106. हमें उन दो भुजाओं वाले भगवान का ध्यान करना चाहिए जो सोने के समान चमकते हैं, जो राम की सेवा में समर्पित हैं, मुंज-घास की करधनी पहने हुए हैं और राम के सेवक हैं। इस प्रकार राम-रहस्य उपनिषद का दूसरा अध्याय समाप्त होता है। तीसरा अध्याय सनक और अन्य तपस्वियों ने हनुमान से पूछा: "हे पराक्रमी अंजना के पुत्र! हमें पूर्वोक्त पूजा के लिए वेदी (यंत्र) के बारे में बताएं।

मंत्र-स।" हनुमान ने उत्तर दिया: "शुरू में, वेदी छह भुजाओं वाली (षटकोणीय) है और बीच में श्रीम के साथ राम का बीजाक्षर (बीजाक्षर) लिखा है। उसके नीचे दूसरे कोने में साध्य (भोजन अर्पण) है। उसके ऊपर छठे कोने पर साधकम (निरंतर भक्ति) है। चारों ओर जीव-प्राण-शक्ति के बीजाक्षर हैं। इन सभी को घेरे हुए ओम है। दक्षिण-पूर्व, उत्तर-पूर्व, उत्तर-पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम में, सामने के कोनों पर पके हुए चावल रखे जाते हैं।

फिर क्रमिक रूप से हृदय मंत्र अर्थात राम, रिम, रम, राइम, रौं, रह बीज-अक्षर-स हृदय 'अस्त्र मंत्र' का जाप करना है। कोनों के पीछे राम और माया के बीज-अक्षर हैं, कोनों पर वराहं हम्; इसके ऊपर काम-बीज (राम) है और इसके चारों ओर वाक् (कीम) है। इसके बाद आठ पत्तों के तीन घेरे हैं।

पत्तों पर, छः अक्षरों वाले मंत्रों के आठ समूहों में अक्षरों की मालाएँ अंकित हैं। पाँच अक्षरों वाले मंत्र के साथ समाप्त। प्रत्येक पत्ते के मुख पर आठ अक्षरों वाले (मंत्र)। फिर से, 8 पंखुड़ियों वाला कमल। पंखुड़ियों पर, 8 अक्षरों वाला नारायण मंत्र। ओम नमो नारायणाय प्रत्येक पंखुड़ी के मुख पर श्री बीज। फिर पहला चक्र। फिर 12 पंखुड़ियों वाले।

उन पर, 12 अक्षरों वाला वासुदेव मंत्र। (ओम नमो भगवते वासुदेवाय) साथ ही उनके अग्रभाग पर, सभी दिशाओं में। एक गोलाकार तरीके से। पंखुड़ियों पर 12 अक्षरों वाले राम मंत्र के साथ हुं फट - (ओम नमो भगवते रामचंद्राय।) पंखुड़ी के अग्र भाग पर माया बीज (किम)। प्रत्येक के अग्र भाग पर दो चक्र - ह्रं, श्रम, भ्रम, ब्रं, भ्रमं, श्रम, ज्रं।

फिर एक चक्र में। उसके बाद 32 पंखुड़ियाँ। उन पर मंत्रों के राजा - नृसिंह अनुष्टुभ। इनके अग्र भाग पर 8 वसु, 11 रुद्र, 12 आदित्य मंत्र, ओम और नमो के साथ क्रमानुसार, मूल भाव में। बाहर और चारों ओर वषट है।फिर तीन रेखाओं वाला भूपुर।12 दिशाओं में राशियों से सुशोभित।वहाँ 8 नाग निवास करते हैं।4 दिशाओं में नरसिंह बीज।बीच की दिशाओं में वराह बीज।

यह सर्वव्यापी यंत्र सभी कामनाओं को पूर्ण करता है और मुक्ति प्रदान करता है।एक अक्षर से शुरू होकर 9 अक्षर (मंत्र) पर समाप्त होने वाला यह यंत्र है और दसवाँ आवरण (आवरण) बन जाता।षटकोण के मध्य में अंग-न्यास के साथ राघव की पूजा करनी चाहिए।पहले चक्र में सभी कोनों पर अंग-न्यास किया जाता है।8 पंखुड़ियों की जड़ में, स्वयं का प्रारंभिक

आवरण।फिर वासुदेव और अन्य द्वारा आवरण।दूसरी 8 पंखुड़ियों के आधार पर, 'गाय का आवरण'।
फिर हनुमान और अन्य के आवरण।12 पंखुड़ियों वाले वशिष्ठ आवरण के लिए।16 पंखुड़ियों वाले नीले कमल आवरण के लिए।32 पंखुड़ियों वाले ध्रुव आवरण के लिए।भूपुर में इंद्र आवरण।इसके बाहर वज्र आवरण है।इस प्रकार आहुति देते हुए, व्यक्ति को मौन होकर जप करना चाहिए।

अब, 10 अक्षरों से शुरू होने वाले और 32 अक्षरों पर समाप्त होने वाले मंत्रों के लिए वेदी का वर्णन किया गया है।सबसे पहले षट्भुज।इसके केंद्र में 'इष्ट' का नाम।इस प्रकार काम बीज से घिरा हुआ है।शेष नौ इसके चारों ओर हैं।छह कोनों पर, मध्यवर्ती दिशाओं (दक्षिण पूर्व, उत्तर-पूर्व, उत्तर-पश्चिम, दक्षिण-पश्चिम) के आगे और पीछे 6 गुना अंग-न्यास।

मुख पर, श्री-माया (बीज)कोनों में, क्रोध फिर पहला चक्र।फिर 8 पंखुड़ियाँ; पंखुड़ियों पर, 6 के गुणकों में अक्षरों की माला। एक गोलाकार तरीके से। इसे चारों ओर से घेरे हुए।इसके बाहर 8 भालों वाली भूपुर।सभी दिशाओं में, नरसिंह और वराह।यह महान यंत्र है।आधार-शक्ति (मूल शक्ति) विष्णु की पूजा का स्थान है।पहला चक्र अंग-न्यास का है।

बीच में, राम।बाईं ओर, सीता।उनके सामने, धनुष और बाण।8 पंखुड़ियों के आधार पर, हनुमान के दो अवतरण।तीसरा अवतरण गाय का।चौथा इंद्र का।पाँचवाँ वज्र का।इस प्रकार भक्ति के साथ यंत्र की पूजा करते हुए, 10-अक्षर और अन्य मंत्रों का जाप करना चाहिए।इस प्रकार राम-रहस्य उपनिषद का तीसरा अध्याय समाप्त होता है।

चौथा अध्याय

सनक और अन्य तपस्वियों ने हनुमान से पूछा: "राम मंत्र के पाठ की विधि का वर्णन करें।" हनुमान ने उत्तर दिया, "जो व्यक्ति इस मंत्र का पाठ करना चाहता है, उसे निम्नलिखित प्रक्रियाओं का पालन करना चाहिए:

1. उसे दिन में तीन बार स्नान करना चाहिए।
2. उसे केवल सात्विक भोजन जैसे दूध, जड़, फल या नैवेद्य (भगवान को अर्पित चावल की खीर) लेना चाहिए।
3. उसे अपने जीवन के चरण (ब्रहमचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी) के निर्धारित कर्मों का पालन करना चाहिए।

4. उसे क्रोध, ईर्ष्या आदि छह नकारात्मक भावनाओं को त्यागना चाहिए।
5. उसे पवित्रता का पालन करना चाहिए और निष्पक्ष भाषण का अभ्यास करना चाहिए।
6. उसे निष्पक्ष कर्म का भी पालन करना चाहिए और सभी महिलाओं का सम्मान करना चाहिए।
7. उसे ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए और नंगे ज़मीन पर सोना चाहिए।
8. उसे कोई इच्छा नहीं रखनी चाहिए।
9. उसे अपने गुरु के प्रति समर्पित होना चाहिए।
10. उसे स्नान, पूजा, पाठ, ध्यान और अग्नि में आहुति का पालन करना चाहिए।
11. उसे अपने गुरु के निर्देशानुसार राम का अत्यंत एकाग्रता से ध्यान करना चाहिए।
12. उसे सूर्य, चंद्रमा, गुरु, दीपक, गाय, ब्राह्मण आदि का आह्वान करना चाहिए।
13. इस जप को करने वाले तपस्वी को बाघ की खाल पर बैठना चाहिए और घुमाव क्रम में स्वस्तिकासन जैसे बताए गए आसन को अपनाना चाहिए।
14. उसे तुलसी या पारिजात, बिल्व आदि जैसे पेड़ों के नीचे बैठना चाहिए।
15. उसे तुलसी के पौधे या रुद्राक्ष की माला का उपयोग करके गिनती करनी चाहिए।
16. मन ही मन गिनती करनी चाहिए और महाविष्णु की वेदी पर एक लाख बार गिनती करनी चाहिए। 17. प्रत्येक दस गिनने के बाद तर्पण करना चाहिए। दस गिनने के बाद चावल की खीर चढ़ाएं, उस पर गाय के दूध से बना घी डालें और दसवें 12वें 13वें 14वें 15वें 16वें 17वें 18वें 19 ... पांचवां अध्याय [उपसंहार] सनक और अन्य तपस्वियों ने हनुमान से पूछा: “हमें श्री राम मंत्र का अर्थ बताएं”।

हनुमान ने उत्तर दिया: “राम मंत्रों में षट्अक्षर वाला मंत्र राजा है; यद्यपि जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, वे एक, दो, तीन, चार, पाँच अक्षरों के रूप में या यहाँ तक कि छह, सात, आठ या इससे भी अधिक अक्षरों के रूप में भी विद्यमान हैं। भगवान शिव छह अक्षरों (मंत्र) की महिमा को सार रूप में जानते हैं; [श्री रामः शरणम् मम!] राम मंत्रों में राजा का सही अर्थ, साथ ही आठ अक्षरों वाले नारायण और पाँच अक्षरों वाले शिव मंत्रों का सही अर्थ इस प्रकार बताया गया है: जहाँ योगी दो अक्षरों वाले मंत्र अर्थात ‘रा म’ का आनंद लेते हैं, जहाँ रा अक्षर अग्नि को दर्शाता है, जिसमें प्रकाश रहता है।

अस्तित्व-चेतना-आनंद के रूप में इसकी प्रकृति को सर्वोच्च अर्थ माना जाता है, व्यंजन अपरिवर्तनीय ब्रह्म को दर्शाता है, और अक्षर अभिव्यक्ति की ऊर्जा है। जान लें कि अक्षरों से जुड़े व्यंजन श्वास लेने में प्रयुक्त होते हैं; प्रकाश की प्रकृति वाली ध्वनि 'र' इसलिए क्रिया में प्रयुक्त होती है। 'मा' ध्वनि को 'माया' कहते हैं, जो समृद्धि का सूचक है; बीजाक्षर होने के कारण यह ब्रह्म के समान है।

बिंदु (अनुस्वार) से पुरुष शिव-सूर्य-चंद्रमा का रूप धारण करता है, ज्योति शिखा का रूप धारण करती है और ध्वनि प्रकृति का रूप धारण करती है। पुरुष और प्रकृति दोनों को संयुक्त रूप से ब्रह्म माना जाता है; बिंदु, ध्वनि और बीजाक्षर अग्नि और चंद्रमा के अंक हैं। अग्नि और ॐ अपने स्वभाव से ही राम के बीजाक्षरों में निवास करते हैं, जैसे कि सांसारिक जीवन में महान वृक्ष अपने बीज में समाहित है।

इसी प्रकार, राम के बीजाक्षरों में यह संपूर्ण चर और अचर जगत समाहित है। इस प्रकार राम नाम को इन दोनों अर्थों के साथ बीज माना जाता है। माया-बीज (कीम) से मुक्त होने पर, सर्वोच्च आत्मा का अस्तित्व (अकेला) माना जाता है। यह साधकों को मुक्ति प्रदान करता है, और 'मा' ध्वनि मुक्तिदाता मानी जाती है। राम में निराकार 'मा' भोग और मुक्ति का दाता है। पहला अक्षर 'रा' 'तत्' (वह) के लिए है, और 'मा' 'त्वम्' (आप) के लिए है। सत्य के ज्ञाता बुद्धिमान घोषणा करते हैं कि उपरोक्त दो शब्दों के संगम का अर्थ 'असि' (हैं) है। 'नमः' शब्द का अर्थ त्वम् (आप) है और तत् का अर्थ राम शब्द से है।

जब इसका प्रयोग संप्रदान कारक (रामाय) में किया जाता है, तो मंत्र में असि (हैं) का अर्थ इंगित किया जाता है। इसलिए, 'तत्त्वमसि' वाक्य एकात्मक मोक्ष प्रदान करता है। अतः यह भोग और मोक्ष देने वाला मंत्र पूर्वोक्त वाक्य (तत्त्वमसि) से भी बढ़कर है। सभी देहधारी मनुष्य इस मंत्र के लिए योग्य हैं।

मोक्ष चाहने वाले, विरक्त, गृहस्थ तथा जीवन की सभी अवस्थाओं में ॐ का निरन्तर ध्यान करना चाहिए, तथा विशेष रूप से तपस्वियों के लिए; क्योंकि राम-मन्त्र के अर्थ को जानने वाला व्यक्ति निःसंदेह जीवित रहते हुए ही मुक्त हो जाता है। जो इस उपनिषद् का अध्ययन करता है, वह अग्नि से पवित्र हो जाता है, वायु से शुद्ध हो जाता है, मादक द्रव्यों के सेवन, सोने की चोरी तथा ब्राह्मण-हत्या के पाप से मुक्त हो जाता है।

जो राम-मन्त्र का बार-बार जप करता है, वह स्वयं रामचन्द्र में ही लीन हो जाता है। इसलिए यह पवित्र स्तोत्र: जो कोई यह कहता है कि "मैं सार रूप में राम हूँ", उसे इस जीवन में किसी भी प्रकार की कमी महसूस नहीं होगी, तथा वह निस्संदेह स्वयं राम है"। यह सत्य है। यह उपनिषद् है। ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ बातें सुनें; हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ बातें देखें! हम देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!प्रसिद्ध इंद्र हमें आशीर्वाद दें!सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!
बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!ॐ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ अथर्ववेद में निहित राम-रहस्योपनिषद समाप्त होता है

055 - राम तपनिया उपनिषद*

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

देवो द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रसिद्ध इंद्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

I. राम पूर्व तपनिया उपनिषद ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें; हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

हम देवों द्वारा दी गई जीवन अवधि का आनंद लें,अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!प्रसिद्ध इंद्र हमें आशीर्वाद दें!सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!ॐ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!

मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो राम का तत्व (सिद्धांत/दर्शन) इस संसार में स्थापित है, उनके जीवन का मार्गदर्शक है, उनका नाम अलौकिक ज्ञान का मार्ग है, और जो लोग उनका ध्यान करते हैं या उनकी पूजा करते हैं, उन्हें धन और आशीर्वाद देते हैं। भी देता है. योगी जिस 'राम' शब्द पर स्वयं को समर्पित करते हैं, वह अथाह है, सदा आनंददायक है तथा स्वयं परब्रह्म का संकेत करते हैं।

शरीर को परमब्रह्म का स्वरूप दिया गया है, जो पवित्र है, जिसमें कोई दोष नहीं है, तथा जो शरीर अनुपयोगी है, उसके भक्तों को मार्ग दिखाया गया है। 1 जैसे बरगद के बीज में पूरा बरगद का पेड़ 'राम' है, वैसे ही पूरी दुनिया में 'राम' के बीज में 'राम' का पेड़ है। 2 जब राम अवतार लेते हैं, तो वे सीता के साथ चमकते हैं, जो स्वयं प्रकृति हैं, जैसे चंद्रमा अपनी से चमकते हैं। वह माता कौशल्या से उत्पन्न हुई थी, श्याम वर्ण का था, पीले रेशमी वस्त्र धारण किए हुए थे, केशों में श्रृंगार किए हुए थे, चांदनी में मणियों की माला और कंठमाला धारण किए हुए थे, हाथ में धनुर लिए हुए थे, दोनों हाथ थे, मुख पर मुस्कान थी, वीर थी, विजय का गौरव प्राप्त था, और दृष्टि के नेतृत्व में आठ शासकों की सहायता से शासन किया गया था।

वह भगवान को जो जगत की माता थी, प्रकृति थी, जिसके दो हाथ थे, जो अच्छी तरह से धारण किया हुआ था, और हाथ में कमल का फूल था, अपने भगवान के लिए था, और उसे भगवान से आलिंगन कर रहा था ।। 3. सीता के साथ मूर्ति बनाई गई, और लक्ष्मण के हाथ में धनुराशि पकड़ी गई, उसका और रंग सुनहरा था। देवता पास आ गए, जो मूर्ति के रूप में "इच्छा

देने वाले वृक्ष" के नीचे वर्णित थे, और प्रार्थना की, "आपको हमारा नमस्कार है, जो काम और माया के अवतार हैं, और वेदों के आदि देवता भी हैं।

रावण का वध करने वाले, देवी लक्ष्मी को नक्षत्र पर धारण करके आनंद में डूबे रहने वाले, सभी स्वप्नों के स्वरूप, माता की बेटी जानकी के शरीर के आभूषण, राक्षसों का वध करने वाले, अत्यंत सुंदर और सभी अच्छाइयों के स्वरूप, उन रघुवीर को हमारा प्रणाम है 4 देवताओं ने आगे कहा, "हे रावण के हत्यारे, कृपया हमें अपनी सुरक्षा और प्रार्थना प्रदान करें।" तब वे उसके साथ थे और बहुत प्रसन्न थे एक और मोटरसाइकिल थी।

भरत के नीचे सुग्रीव और नीचे विभीषन थे। और उसके नीचे एक और मूर्ति थी वाले भगवान राम जो चमका रहे थे, ये छह शीर्ष टॉप के बीच में ध्यान करने वाली थीं। यह उनकी चारों ओर पहली पंक्ति है। दूसरा वासुदेव और अन्य (शांति, संकर्षण, श्री प्रद्युम्न, सरस्वती, अनिरुद्ध और राठी) के साथ-साथ अग्नि और अन्य से अलग-अलग दिशाओं में मिला हुआ है।

तीसरा हनुमान, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अंगद, जाम्भवान, शत्रुघ्न के साथ-साथ दृष्टी, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्र वर्धन, अशोक, धर्मपाल और सुमेन्द्र से हुआ है।

चौथे 10 दिग्बलकों (दिशाओं के रक्षक) अर्थात इंद्र, अग्नि (अग्नि देवता), यम (मृत्यु के देवता), निर्रुति, वरुण, चंद्र, ईसान, ब्रह्मा और अनंत से जुड़े हुए हैं।
पांचवां भाग दिग-ब्लाकों से परे है और इसमें उनके प्रमुख हथियार शामिल हैं, वज्र, शक्ति, दंड, वर, पासा, अंगुसा, गदा, सुला, मदमा और चक्र; पूजा-अर्चना करनी चाहिए ;

छठा: भुजाओं के बाद नील आदि वानर, वशिष्ठ, वामदेव आदि ऋषिगण उनकी पूजा करते हैं। उनका ध्यान और पूजन करना चाहिए। 6 इस प्रकार श्री राम की पूजा करो, जिनका स्वरूप इस जगत का आधार है और जो सदा आनन्दमय हैं। जो लोग उन्हें गदा, तलवार, शंख और पद्म धारण करने वाले तथा जन्म-मरण को दूर करने वाले के रूप में पूजते हैं, वे सभी मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस प्रकार श्री राम पूर्व तपनियोपनिषद् समाप्त होता है। 2. राम उत्तर तपनियोपनिषद् ॐ ! मेरी वाणी मन पर आधारित हो; मेरा मन वाणी पर आधारित हो।

हे आत्म-तेजस्वी, मुझे अपना दर्शन दीजिए। आप दोनों (वाणी और मन) मेरे लिए वेद के वाहक बनें। मैंने जो कुछ सुना है, वह मुझसे दूर न हो। मैं इस अध्ययन के द्वारा दिन और रात को एक कर दूंगा। मैं मौखिक रूप से जो सत्य है वही बोलूँगा; मैं मानसिक रूप से जो सत्य है वही बोलूँगा। वह (ब्रह्म) मेरी रक्षा करे; वह वक्ता (अर्थात गुरु) की रक्षा करे, वह मेरी रक्षा करे; वह वक्ता की रक्षा करे - वह वक्ता की रक्षा करे। ॐ ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो! वाराणसी में भगवान शिव ने राम मंत्र का जप किया।

इससे प्रसन्न होकर श्री राम ने भगवान शंकर से कहा: इस मंदिर (नगर) में जो कोई भी भक्ति के साथ मेरी पूजा करेगा, मैं उसे ब्रह्महत्या (ब्राह्मण की हत्या) जैसे पापों से छुटकारा दिलाऊंगा। उनमें से जो लोग आपसे या ब्रह्मा या उनके शिष्य वंश से छह अक्षर मंत्र (राम रामाय नमः) प्राप्त करते हैं, वे मंत्र पर महारत के साथ रहते हैं या मोक्ष प्राप्त करते हैं। मृत्यु के समय, यदि आप उनके कानों में यह मंत्र बताते हैं, तो उन्हें मोक्ष मिल जाएगा।

1 तब ब्रह्मा ने मन ही मन उस महाविष्णु का ध्यान किया, जो इस जगत के आधार हैं, जो नारायण हैं, जिनमें कोई कमी नहीं है और जो परमेश्वर हैं, जो परब्रह्म के स्वरूप हैं और जो पूर्ण आनन्द से परिपूर्ण हैं और फिर उनकी इस प्रकार पूजा की:

2 ओम! जो रामचंद्र हैं, वे वास्तव में भगवान हैं। वे 'महान सुख की अद्वैत आत्मा' हैं। मैं पृथ्वी, भुवर लोक और सुवर लोक में उन्हें बार-बार नमस्कार करता हूँ।

3.1 इसके बाद उद्धरण चिह्नों के साथ शब्दों को संशोधित करके मंत्र का 47 बार जाप किया जाता है, अर्थात "महान सुख की अद्वैत आत्मा"।नीचे केवल इसी भाग का अनुवाद किया जा रहा है। इसे मंत्र में उचित रूप से प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए। 3.1इंद्रियों की दूर-दूर तक फैली और विस्तृत आत्मा; 3.2 ब्रह्मा के सुख का अमृत; 3.3 जो हमें जन्म-मरण से पार कराता है; 3.4 जो विष्णु और इंद्र जैसे देवताओं की आत्मा है; 3.5 जो समस्त वेद, समस्त शाखाएँ, समस्त सांख्य और समस्त पुराण (महाकाव्य) है; 3.6 जो समस्त प्राणियों की आत्मा है; 3.7 जो समस्त प्राणियों की अंतरात्मा है; 3.8 जो देवों, असुरों और मनुष्यों की धारणा है; 3.9 जिसने मछली, कछुआ आदि दस अवतार लिए हैं; 3.10 जो आत्मा है; 3.11 जो आंतरिक चेतना की आत्मा है; 3.12 जो मृत्यु का देवता है; 3.13

जो संहारक है; 3.14 जो मृत्यु है; 3.15 जो अमृत है; 3.16 जो पाँच महाभूत हैं; 3.17 वह जो चल और अचल की आत्मा है; 3.18 वह जो पाँच अग्नि है; 3.19 वह जो सात व्याहृतियाँ है; 3.20 वह जो विद्या है; 3.21 वह जो देवी सरस्वती है; 3.22 वह जो देवी लक्ष्मी है; 3.23 वह जो देवी पार्वती है; 3.24 वह जो जनक की पुत्री है; 3.25 वह जो तीनों लोक है; 3.26 जो सूर्य है; 3.27 जो चंद्रमा है; 3.28 जो तारे हैं; 3.29 जो नौ ग्रह हैं; 3.30 जो दिशाओं के आठ रक्षक हैं; 3.31 जो आठ वसु हैं; 3.32 जो ग्यारह रुद्र हैं; 3.33 जो बारह सूर्य हैं; 3.34 जो भूत और भविष्य हैं; 3.35 जो ब्रह्माण्ड से परे सर्वोच्च सत्ता हैं; 3.36 जो हिरण्यगर्भ हैं; 3.37 जो प्रकृति हैं; 3.38 जो ॐ अक्षर हैं; 3.39 जो प्रणव का आधा भाग हैं; 3.40 जो सबसे महान पुरुष हैं; 3.41 जो महान ईश्वर हैं; 3.42 जो महान देव हैं; 3.43 जो भगवान विष्णु हैं; 3.44 जो परमात्मा हैं; 3.45 जो वैज्ञानिक आत्मा हैं; 3.46 जो आत्मा हैं जो हमेशा शाश्वत आनंद में रहती हैं। 3.47 जो व्यक्ति इन 47 मंत्रों से प्रतिदिन भगवान के भगवान की पूजा करता है, उससे महान भगवान प्रसन्न होंगे। जो व्यक्ति इस मंत्र के साथ भगवान के भगवान की पूजा करता है, वह उन्हें साक्षात देखेगा। वह अमर अवस्था को प्राप्त करेगा। वह अमर अवस्था को प्राप्त करेगा।

इस प्रकार श्री राम उत्तर तपनीय उपनिषद समाप्त होता है।

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रसिद्ध इंद्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ अथर्ववेद में निहित राम-तपनियोपनिषद समाप्त होता है।* यह उपनिषद दो भागों में है, पूर्व तपनीय और उत्तर तपनीय।

056 - वासुदेव उपनिषद

ॐ ! मेरे अंग और वाणी, प्राण, नेत्र, कान, प्राणशक्ति
और सभी इंद्रियाँ बलवान बनें।
सभी अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है।
मैं कभी ब्रह्म को अस्वीकार न करूँ, न ही ब्रह्म मुझे अस्वीकार करे।
कोई भी अस्वीकार न हो:
कम से कम मेरी ओर से तो कोई अस्वीकार न हो।
उपनिषदों में बताए गए गुण मुझमें हों,
जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।
ॐ ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

ॐ। देवतुल्य ऋषि नारद ने भगवान वासुदेव को प्रणाम किया और उनसे अनुरोध किया, “हे भगवान, कृपया मुझे ऊर्ध्व पुंड्र (वैष्णवों का धार्मिक चिह्न जो ऊर्ध्वाधर और ऊपर की ओर इंगित करता है) के नियम सिखाएँ”।

1 भगवान वासुदेव ने उन्हें संबोधित करते हुए कहा: ब्रह्मचारी (वेदों का अविवाहित छात्र) और गृहस्थ (गृहस्थ) को निम्नलिखित प्रार्थना पढ़ने के बाद: "हे चक्र, गदा और शंख धारण करने वाले भगवान, हे द्वारका में रहने वाले अच्युत, हे गोविंदा, हे कमल नेत्र वाले, कृपया मेरी रक्षा करें, जो आपकी शरण में है।" अपनी शुद्ध उंगली (कनिष्ठिका के बगल वाली

उंगली) से माथे और अन्य 12 स्थानों पर उर्ध्व पुण्ड्र लगाना चाहिए और विष्णु गायत्री या भगवान के 12 नामों का उच्चारण करना चाहिए, अर्थात केशव, नारायण, माधव, गोविंदा, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ और दामोदर।

2 संन्यासी को अपनी चौथी उंगली से सिर, माथे और छाती पर प्रणव (ओम) का जाप करते हुए उर्ध्व पुण्ड्र पहनना चाहिए।

3 ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीन हैं: स्थूल (स्थूल), सूक्ष्म (सूक्ष्म) और कारण (कारण); ऊपर तीन लोक हैं: भू, भुव और सुव; तीन वेद हैं: ऋग्, यजुर और साम; तीन अवस्थाएँ हैं: जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। ऊर्ध्व पुण्ड्र तीन हैं, अर्थात् आ, ऊ और म। ये ऊर्ध्व पुण्ड्र प्रणव से पूर्ण हैं और ॐ अक्षर से पूर्ण हैं। वह एक प्रणव ही कोई बन गया है। ॐ का स्वामी तुम्हें ऊपर ले जाता है। इसलिए तुम्हें ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करना होगा।

4 जो मुनि चार चीजों को ऊपर की ओर धारण करता है, अर्थात् दण्ड, पराक्रम, योग और ऊर्ध्व पुण्ड्र, वह मोक्ष की उच्च स्थिति को प्राप्त होता है। यह स्थिर ज्ञान भक्ति के द्वारा स्वाभाविक रूप से मुझ तक पहुँचेगा।

5 ॐ! मेरे अंग और वाणी, प्राण, नेत्र, कान, प्राण और सभी इन्द्रियाँ बलवान हों। समस्त अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है।मैं कभी ब्रह्म को अस्वीकार न करूँ, न ब्रह्म मुझे अस्वीकार करे।कोई भी अस्वीकार न हो:कम से कम मेरी ओर से तो कोई अस्वीकार न हो।

उपनिषदों में जिन सद्गुणों की घोषणा की गई है, वे मुझमें हों,जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।ॐ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

सामवेद में सम्मिलित वासुदेवोपनिषद यहीं समाप्त होता है।

<u>057 - मुदगल उपनिषद</u>

ॐ ! मेरी वाणी मन पर आधारित हो (अर्थात् उसके अनुरूप हो);

मेरा मन वाणी पर आधारित हो।

हे आत्म-तेजस्वी, मुझे अपना दर्शन दीजिए।

आप दोनों (वाणी और मन) मेरे लिए वेद के वाहक बनें।

मैंने जो कुछ सुना है, वह मुझसे दूर न हो।

मैं इस अध्ययन के माध्यम से दिन और रात को एक साथ जोड़ूंगा (अर्थात् मिटा दूंगा)।

मैं वही बोलूंगा जो मौखिक रूप से सत्य है;

मैं वही बोलूंगा जो मानसिक रूप से सत्य है।

वह (ब्रह्म) मेरी रक्षा करें;

वह वक्ता (अर्थात् शिक्षक) की रक्षा करें,

वह मेरी रक्षा करें;

वह वक्ता की रक्षा करें - वह वक्ता की रक्षा करें।

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

I. पुरुषसूक्त का सारांश पुरुषसूक्त की व्याख्या इस प्रकार है: ‘सहस्त्र मुख’ में सहस्त्र का अर्थ है असंख्य, ‘दस अंगुल’ का अर्थ है अनंत दूरी, प्रथम श्लोक से विष्णु का अंतरिक्ष में व्याप्त होना, दूसरे से काल में व्याप्त होना, तीसरे श्लोक से मोक्ष प्रदान करने की बात कही गई है। ‘एतावन’ में विष्णु की महिमा बताई गई है (इतनी ही उनकी महानता है)। इसी श्लोक में उनके चतुर्गुण स्वरूप का वर्णन है। ‘त्रिपद’ आदि श्लोक अनिरुद्ध की महिमा

बताते हैं। ‘उससे विराट उत्पन्न हुआ’ में हरि के एक अंश से प्रकृति और पुरुष की उत्पत्ति बताई गई है।

‘यत् पुरुषेण’ से सृष्टि का त्याग और मोक्ष बताया गया है। ‘तस्माद्’ में सृष्टि की रचना बताई गई है। ‘वेदहम्’ से हरि की महिमा बताई गई है। ‘यज्ञेन’ से सृष्टि का अंत और मोक्ष बताया गया है। जो इसे जान लेता है, वह मुक्त हो जाता है।

II. सर्वोच्च रहस्य मुदगलोपनिषद् में पुरुषसूक्त की महिमा का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वसुदेव ने इन्द्र को भगवान का ज्ञान दिया, फिर दीन इन्द्र को पुरुषसूक्त के दो भागों द्वारा महान रहस्य का ज्ञान कराया। ये दो भाग हैं: ऊपर वर्णित पुरुष ने उस वस्तु को त्याग दिया जो नाम और रूप से परे थी, सांसारिक लोगों के लिए समझना कठिन था, तथा उसने एक हजार भागों वाला रूप धारण किया जो देखते ही देखते मोक्ष देने में सक्षम था, ताकि पीड़ित देवों और अन्य लोगों का उद्धार हो सके।

उस रूप में, वह संसार में व्याप्त होकर अनंत दूरी तक उससे परे था। यह नारायण भूत, वर्तमान और भविष्य थे। और सभी को मोक्ष देने वाले थे। वे महानतम से भी महान हैं - उनसे बड़ा कोई नहीं है। उन्होंने अपने आप को चार भागों में विभाजित किया और उनमें से तीन के साथ स्वर्ग में रहते हैं। चौथे, अनिरुद्ध (नारायण के रूप में) से सभी लोक उत्पन्न हुए हैं। इस नारायण के अंश ने जगत् बनाने के लिए प्रकृति (पदार्थ) की रचना की (प्रकृति का अर्थ चतुर्मुख ब्रह्मा है)।

पूर्ण रूप में ब्रह्मा सृष्टि के कार्य को नहीं जानते थे - ऐसा अनिरुद्ध नारायण ने उन्हें बताया। ब्रह्म! अपनी इन्द्रियों को हवि के रूप में, दृढ़ शरीर को आहुति के रूप में, मुझे अग्नि के रूप में, वसन्त ऋतु को घी के रूप में, ग्रीष्म ऋतु को ईंधन के रूप में, शरद ऋतु को भोजन के छह स्वादों के रूप में ध्यान करो और अग्नि में आहुति देकर शरीर को स्पर्श करो - इससे शरीर वज्र (हीरे के समान) मजबूत हो जाएगा। वहाँ से पशु आदि पदार्थ उत्पन्न होंगे।

चर-अचर जगत् से। यह समझना चाहिए कि जीव और परमात्मा के संयोग से मोक्ष का मार्ग बताया गया है। जो इस सृष्टि और मोक्ष को जानता है, वह पूर्ण जीवन जीता है। तृतीय एक ईश्वर अनेक हो जाता है; अजन्मा, अनेक के रूप में जन्म लेता है। अध्वर्यु अग्नि के रूप में उसकी पूजा करते

हैं। यह यजुस् के रूप में सब कुछ एक करता है। सामवेदी लोग उसे सामन के रूप में पूजते हैं। उसमें सब कुछ स्थित है।

सर्प उसे विष के रूप में ध्यान करते हैं। सर्पविद्या के ज्ञाता उसे सर्प, देवता उसे शक्ति, मनुष्य उसे धन, दानव उसे जादू, जटाएं उसे जीविका के रूप में ध्यान करते हैं। अलौकिक के ज्ञाता उसे अलौकिक मानते हैं। गंधर्व उसे सुन्दर, अप्सराएं उसे सुगंध के रूप में। वह जिस रूप में पूजित होता है, वही बन जाता है; इसलिए, व्यक्ति को यह सोचना चाहिए कि 'मैं ही परम प्राणी हूं' और वही बन जाऊंगा (जो इसे जानता है)। चतुर्थ। त्रिविध लोप वाला ब्रह्म ही जीव है। त्रिविध दुखों से परे, छह तरंगों से रहित, पांच कोशों से भिन्न, छह परिवर्तनों से अप्रभावित ब्रह्म है। तीन दुख आध्यात्मिक (शरीर के रोग), अधिभौतिक (लुटेरे, जंगली जानवर आदि) और अधिदैविक (वर्षा आदि) हैं।

वे कारक, क्रिया और प्रभाव से संबंधित हैं; ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय; अनुभवकर्ता, अनुभव और अनुभव किया हुआ। छह परतें त्वचा, मांस, रक्त, हड्डियां, कंडराएं और कलंक हैं। छह शत्रु हैं वासना आदि। पांच कोश हैं अन्न, प्राण, मन ज्ञान और आनंद। छह परिवर्तन हैं: अस्तित्व, जन्म, विकास, परिवर्तन, ह्रास और विनाश। छह लहरें हैं भूख, प्यास, दुख, मोह, बुढ़ापा और मृत्यु। छह मोह परिवार, वंश, वर्ग, जाति, आश्रम और रूपों के बारे में हैं। सर्वोच्च आत्मा के संपर्क से जीव बन जाता है - वह कोई और नहीं है। जो इसका अध्ययन करता है, वह अग्नि, वायु और सूर्य में शुद्ध हो जाता है;

स्वास्थ्य और धनवान, पुत्र-पौत्रों से समृद्ध, विद्वान, महापाप से शुद्ध, मद्यपान, माता, पुत्री और पुत्रवधू से अनुचित संसर्ग, सोना चुराना, वैदिक विद्या को भूल जाना, बड़ों की सेवा न करना, अपात्रों के लिए त्याग करना, अनुचित भोजन करना, गलत दान देना, परस्त्री से संसर्ग करना, कामवासना से अप्रभावित रहना आदि से शुद्ध, इस जन्म में आदि ब्रह्म हो जाता है। इसलिए इस पुरुष सूक्त को जो गुप्त है, किसी अशिक्षित को नहीं देना चाहिए, न ही वेदों को न जानने वाले, त्यागी, वैष्णव, योगी न होने वाले, बातूनी, कटुभाषी, एक वर्ष से अधिक समय में सीखने वाले, असंतुष्ट को देना चाहिए।

गुरु इसे पवित्र स्थान पर, पवित्र नक्षत्र पर, विनम्र शिष्य को प्राण वायु का नियमन करके, दाहिने कान में प्रदान करेंगे। इसे बार-बार नहीं करना चाहिए - यह बासी हो जाएगा लेकिन जितनी बार जरूरत हो, उतनी बार

कान में डालना चाहिए। इस प्रकार शिक्षक और शिष्य दोनों ही इस जन्म में पुरुष बन जाएंगे। यह उपनिषद है ॐ! मेरी वाणी मन पर आधारित हो (अर्थात् उसके अनुरूप हो);मेरा मन वाणी पर आधारित हो।

हे आत्म-तेजस्वी, मुझे अपना दर्शन दीजिए।आप दोनों (वाणी और मन) मेरे लिए वेद के वाहक बनें।मैंने जो कुछ सुना है, वह मुझसे दूर न हो।

मैं इस अध्ययन के द्वारा दिन और रात को एक साथ जोड़ूंगा (अर्थात् उनका भेद मिटा दूंगा)।

मैं जो मौखिक रूप से सत्य है, वही बोलूंगा;

मैं जो मानसिक रूप से सत्य है, वही बोलूंगा।

वह (ब्रह्म) मेरी रक्षा करें;

वह वक्ता (अर्थात् शिक्षक) की रक्षा करें,

वह मेरी रक्षा करें;

वह वक्ता की रक्षा करें - वह वक्ता की रक्षा करें।

ॐ! मुझमें शांति हो!

मेरे परिवेश में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ ऋग्वेद में निहित मुद्गलोपनिषद समाप्त होता है।

058 - शांडिल्य उपनिषद

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रसिद्ध इंद्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

अध्याय - I

1. शांडिल्य ने अथर्वण से इस प्रकार प्रश्न किया: "कृपया मुझे योग के आठ अंगों (भागों) के बारे में बताएं जो आत्मा को प्राप्त करने का साधन है"।

अथर्वण ने उत्तर दिया: "योग के आठ अंग हैं यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनमें से यम दस प्रकार के होते हैं; और नियम भी। आठ आसन हैं। प्राणायाम तीन प्रकार का होता है; प्रत्याहार पाँच प्रकार का होता है; और धारणा भी। ध्यान दो प्रकार का होता है और समाधि केवल एक प्रकार की होती है। यम (सहनशीलता) के अंतर्गत दस हैं: अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव, क्षमा, धृति, मिथ्याहार और शौच। इनमें से अहिंसा किसी भी समय अपने मन, वाणी या शरीर के कार्यों के माध्यम से किसी भी जीव को कोई पीड़ा न पहुँचाना है।

सत्य वह सत्य बोलना है जो मन, वाणी या शरीर के कार्यों के माध्यम से प्राणियों के कल्याण के लिए प्रेरित करता है। अस्तेय किसी की इच्छा या इच्छा की लालसा नहीं करना है। किसी दूसरे की संपत्ति को अपने मन, वाणी या शरीर के कार्यों के माध्यम से हड़पना। ब्रह्मचर्य सभी स्थानों और सभी अवस्थाओं में मन, वाणी या शरीर से संभोग से परहेज करना है।

दया सभी स्थानों में सभी प्राणियों के प्रति दया है। आर्जव मन, वाणी या शरीर की समता को उन कार्यों के प्रदर्शन या गैर-प्रदर्शन में बनाए रखना है जिन्हें करने के लिए नियुक्त या निषिद्ध किया गया है। क्षमा सभी सुखद या अप्रिय चीजों को धैर्यपूर्वक सहन करना है, जैसे प्रशंसा या झटका। धृति लाभ या हानि की अवधि के दौरान मन की दृढ़ता को बनाए रखना है।

धन या सम्बन्धियों की हानि। मिताहार में तैलीय और मीठा भोजन करना तथा पेट का एक-चौथाई भाग खाली छोड़ना शामिल है। शौच दो प्रकार का होता है, बाह्य और आंतरिक। इनमें से बाह्य में मिट्टी और जल द्वारा शरीर की शुद्धि होती है; आंतरिक में मन की शुद्धि होती है। इसे (बाद वाला) अध्यात्म-विद्या के माध्यम से प्राप्त किया जाना चाहिए।

2. नियम के अंतर्गत दस हैं, अर्थात् तप, संतोष आस्तिक्य, दान, ईश्वरपूजन, सिद्धान्त-श्रवण, ह्रह, मति, जप और व्रत। इनमें से तप में कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि तपों के नियमों के अनुसार पालन द्वारा शरीर का उद्धार करना शामिल है।

संतोष का अर्थ है जो कुछ भी अपने आप प्राप्त हो, उससे संतुष्ट रहना। आस्तिक्य का अर्थ है वेदों में वर्णित कर्मों के गुण-दोष में विश्वास। दान का अर्थ है विधिपूर्वक अर्जित धन, अनाज आदि को सुपात्रों को श्रद्धापूर्वक देना। ईश्वरपूजन का अर्थ है अपनी शक्ति के अनुसार शुद्ध मन से विष्णु, रुद्र आदि की पूजा करना। सिद्धांत-श्रवण का अर्थ है वेदान्त के महत्व की खोज। ह्रीं का अर्थ है वेदों और समाज के नियमों के विरुद्ध कार्य करने में महसूस की जाने वाली शर्म।

मति का अर्थ है वेदों द्वारा बताए गए मार्गों में विश्वास। जप का अर्थ है मंत्रों का अभ्यास, जिसमें व्यक्ति को उसके आध्यात्मिक गुरु द्वारा दीक्षा दी जाती है और जो वेदों के नियमों के विरुद्ध नहीं है। यह दो प्रकार का होता है - वाचिक और मानसिक। मानसिक मन के चिंतन से जुड़ा होता है। वाचिक दो प्रकार का होता है - जोर से और धीमा। वेदों में वर्णित है कि

उच्च स्वर में उच्चारण करने से हजार गुना फल मिलता है। मानसिक उच्चारण से करोड़ गुना फल मिलता है। व्रत वेदों द्वारा निर्दिष्ट या निषिद्ध कार्यों का नियमित पालन या उनसे विरत रहना है।

3. आसन मुख्यतः आठ हैं, अर्थात् स्वस्तिक, गोमुख, पद्म, वीर, सिंह, भद्र, मुक्ता और मयूर। स्वस्तिक में शरीर को सीधा रखते हुए आराम से बैठना, प्रत्येक पैर को दूसरे के जांघों और घुटनों के बीच रखना शामिल है।

4. गोमुख में शरीर को सीधा रखते हुए आराम से बैठना, बाएं पैर के खोखले को दाएं नितंब के नीचे और दाएं पैर के खोखले को बाएं नितंब के नीचे रखना, गोमुख (गाय के चेहरे) जैसा दिखना।

5. पद्मा (शरीर को सीधा रखते हुए आराम से बैठना) प्रत्येक पैर के पिछले हिस्से को दूसरे की जांघ में रखना, दायाँ हाथ दायाँ पैर का अंगूठा पकड़ना और बायाँ हाथ बायाँ पैर का अंगूठा पकड़ना। हे शांडिल्य, इसकी सभी प्रशंसा करते हैं।

6. वीर (शरीर को सीधा रखते हुए आराम से बैठना) एक पैर दूसरे की जांघ पर और दूसरा पैर उसके नीचे रखना।

7-8. सिंह (शरीर को सीधा रखते हुए आराम से बैठना) बाएँ एड़ी के खोखले से दाएँ भाग (जांघ) को दबाना और इसके विपरीत। अपने हाथों को घुटनों पर टिकाएँ, उँगलियाँ फैलाएँ, मुँह खोलें और ध्यान से अपनी दृष्टि अपनी नाक की नोक पर टिकाएँ। योगी हमेशा इसकी प्रशंसा करते हैं।

9. सिद्ध (शरीर को सीधा रखते हुए आराम से बैठना) बाएँ एड़ी से मूलाधार को दबाना और दाएँ पैर की एड़ी को जननांग के ऊपर रखना, मन को दोनों भौंहों के बीच में एकाग्र करना।

10. भद्रा (शरीर को सीधा करके आराम से बैठना) दोनों पैरों की एड़ियों को सिवनी (अर्थात बीज का निचला भाग) पर मजबूती से दबाना और घुटनों को हाथों से मजबूती से बांधना है। यह भद्रा है जो सभी रोगों और जहरों को नष्ट करती है।

11. मुक्ता (शरीर को सीधा करके आराम से बैठना) बायीं एड़ी से सिवनी के कोमल भाग के दाहिने हिस्से को और दाहिनी एड़ी से सिवनी के कोमल भाग के निचले हिस्से को दबाना है।

12-13. मयूर (शाब्दिक रूप से, मोर): अपने शरीर को दोनों हथेलियों से जमीन पर टिकाएं और अपनी कोहनियों को जमीन पर रखें।नाभि के दोनों ओर सिर और पैर ऊपर उठाकर लकड़ी की तरह हवा में रहें (जैसे जिम्नास्टिक में पौधे संतुलन बनाते हैं)। यह मयूर आसन है, जो सभी पापों का नाश करता है।

14. इनसे शरीर के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, सभी विष पच जाते हैं। जो व्यक्ति इन सभी आसनों का अभ्यास करने में असमर्थ है, वह इनमें से किसी एक का अभ्यास करे, जो उसे सरल और सुखद लगे। जो व्यक्ति आसनों को जीत लेता है (या उनमें निपुणता प्राप्त कर लेता है) - वह तीनों लोकों को जीत लेता है। जो व्यक्ति यम और नियम का अभ्यास करता है, उसे प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए; उससे नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं।"

15. तब शांडिल्य ने अथर्वण से इस प्रकार प्रश्न किया: "नाड़ियाँ किस प्रकार शुद्ध होती हैं? उनकी संख्या कितनी है? वे कैसे उत्पन्न होती हैं? उनमें कौन-सी वायु स्थित हैं? उनके स्थान क्या हैं? उनके कार्य क्या हैं? शरीर में जो कुछ जानने योग्य है, कृपा करके मुझे बताओ। इस पर अथर्वण ने उत्तर दिया: यह शरीर छियालीस अंकों का है। प्राण शरीर से बारह अंकों के परे है। जो योगाभ्यास के द्वारा अपने प्राण को शरीर में स्थित अग्नि के बराबर या उससे कम न कर दे, वह योगी महान हो जाता है।

मनुष्यों में, शरीर के मध्य में अग्नि का क्षेत्र स्थित है, जो त्रिभुजाकार है और पिघले हुए सोने के समान चमकीला है। चार पैरों वाले पशुओं में, यह (अग्नि) चतुर्भुजाकार है। पक्षियों में, यह गोल है। इसके (प्राण के) केंद्र में, शुद्ध करने वाली, लाभकारी और सूक्ष्म ज्वाला स्थित है। पुरुषों के लिए गुदा के ऊपर दो अंगुलियाँ और यौन अंग के नीचे दो अंगुलियाँ शरीर का केंद्र है। चार पैरों वाले पशुओं के लिए, यह हृदय का मध्य है। पक्षियों के लिए, यह शरीर का मध्य है। शरीर के केन्द्र से नौ अंगुल तथा लम्बाई-चौड़ाई में चार अंगुल की दूरी पर एक अण्डाकार आकृति स्थित है। इसके मध्य में नाभि है।

इसमें बारह तीलियों वाला चक्र स्थित है। चक्र के मध्य में जीव (आत्मा) अपने अच्छे-बुरे कर्मों से प्रेरित होकर विचरण करता है। जैसे मकड़ी महीन धागों के जाल में इधर-उधर उड़ती-फिरती है, वैसे ही प्राण यहाँ विचरण करता है। इस शरीर में जीव प्राण पर सवार रहता है। नाभि के मध्य में तथा

उसके ऊपर कुण्डलिनी का स्थान है। कुण्डलिनी शक्ति आठ प्रकृतियों के रूप में है तथा आठ प्रकार से या (समयों में) कुंडलित होती है।

वायु की गति स्कन्ध के किनारे चारों ओर खाने-पीने को रोकती है। यह ब्रह्मरन्ध्र के मुख से बंद होती है तथा योग के समय अपान में स्थित अग्नि द्वारा जागृत होती है। फिर वह हृदय के आकाश में प्रज्ञा के रूप में अत्यन्त तेज से चमकती है। मध्य में स्थित कुण्डलिनी के आधार पर चौदह मुख्य नाड़ियाँ हैं (अर्थात्, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, सरस्वती, वारुणी, पूषा, हस्तिजिह्वा, यशस्विनी, विश्वोधारी, कुहू, शंखिनी, पयस्विनी, अलम्बुसा और गांधारी)। इनमें से सुषुम्ना को ब्रह्माण्ड की पालनहार और मोक्ष का मार्ग कहा गया है। गुदा के पीछे स्थित यह मेरुदण्ड से जुड़ी हुई है और सिर के ब्रह्मरंध्र तक फैली हुई है तथा अदृश्य और सूक्ष्म है और वैष्णवी है (या इसमें विष्णु की शक्ति है)।

सुषुम्ना के बाईं ओर इड़ा और दाईं ओर पिंगला स्थित है। इड़ा में चन्द्रमा और पिंगला में सूर्य घूमता है। चन्द्रमा तामस प्रकृति का है और सूर्य राजस। विष सूर्य का है और अमृत चन्द्रमा का है। ये दोनों ही काल को निर्देशित (या संकेत) करते हैं और सुषुम्ना काल की भोक्ता (या उपभोक्ता) है। सुषुम्ना के पीछे और बगल में क्रमशः सरस्वती और कुहू स्थित हैं। यशस्विनी और कुहू के बीच वारुणी है। पूषा और सरस्वती के बीच पयस्विनी है।

गांधारी और सरस्वती के बीच यशस्विनी स्थित है। नाभि के मध्य में अलम्बुषा है। सुषुम्ना के आगे कुहू है, जो जननेन्द्रिय तक जाती है। कुण्डलिनी के ऊपर और नीचे वारुणी स्थित है, जो सर्वत्र जाती है। यशस्विनी जो सुन्दर है (या चन्द्रमा से संबंधित है), अंगूठे तक जाती है। पिंगला ऊपर की ओर दाहिनी नासिका तक जाती है। पयस्विनी दाहिने कान तक जाती है। सरस्वती जीभ के ऊपर के भाग में जाती है, शंखिनी बाएं कान में जाती है, गांधारी इड़ा के पीछे से बाएं नेत्र में जाती है।

अलम्बुषा गुदा के मूल से ऊपर और नीचे जाती है। इन चौदह नाड़ियों से अन्य (लघु) नाड़ियाँ निकलती हैं, उनसे अन्य निकलती हैं, उनसे अन्य निकलती हैं, ऐसा जानना चाहिए। जैसे अश्वत्थ वृक्ष (फ़िकस रिलिजिओसा) आदि का पत्ता सूक्ष्म तंतुओं से आच्छादित रहता है, वैसे ही यह शरीर भी नाड़ियों से व्याप्त है। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनंजय ये दस नाड़ियाँ हैं।

वायु (प्राण वायु) सभी नाड़ियों में चलती है। प्राण नासिका, कंठ, नाभि, दोनों अंगूठे तथा कुंडलिनी के निचले और ऊपरी भाग में चलता है। व्यान कान, आंख, कमर, टखने, नाक, गले और नितंबों में चलता है। अपान गुदा, जननांग, जांघों, घुटनों, पेट, वीर्य, पिंडलियों, पिंडलियों, नाभि और गुदा के अग्नि स्थान में चलता है। उदान सभी जोड़ों में तथा हाथ और पैरों में भी रहता है। समान शरीर के सभी भागों में व्याप्त होकर रहता है।

शरीर में अग्नि के साथ-साथ यह ग्रहण किए गए भोजन और पेय को शरीर में फैलाता है। यह बहत्तर हजार नाड़ियों में घूमता है और अग्नि के साथ-साथ पूरे शरीर में व्याप्त रहता है। नाग से शुरू होकर अग्नि वायु त्वचा, हड्डियों आदि की ओर जाती है। नाभि में स्थित प्राण वहाँ के खाने-पीने के पदार्थों को अलग करके रस आदि उत्पन्न करता है। जल को अग्नि के ऊपर और भोजन को जल के ऊपर (या जल में) रखकर वह अपान में जाता है और उसके साथ शरीर के मध्य में अग्नि को प्रज्वलित करता है।

इस प्रकार अपान द्वारा प्रज्वलित अग्नि शरीर के मध्य में धीरे-धीरे प्रज्वलित होती है। फिर वह अपनी लपटों के द्वारा प्राण द्वारा आँतों में लाए गए जल को गर्म कर देती है। जल के साथ अग्नि ऊपर रखे गए भोजन और परिस्थितियों को उचित मात्रा में उबाल देती है। फिर प्राण इन्हें पसीना, मूत्र, जल, रक्त, वीर्य, मल आदि में अलग कर देता है। और समान के साथ वह रस (या सार) को सभी नाड़ियों में ले जाता है और श्वास के रूप में शरीर में गति करता है।

वायु शरीर के उन नौ छिद्रों से मल-मूत्र आदि को बाहर निकालती है, जो बाहरी वायु से जुड़े हुए हैं। प्राण के कार्य हैं प्रेरणा, निःश्वसन और खांसी। अपान के कार्य हैं मल-मूत्र का निष्कासन। व्यान के कार्य हैं देना और लेना। उदान के कार्य हैं शरीर को सीधा रखना आदि। समान के कार्य हैं शरीर का पोषण करना।

नाग के कार्य हैं वमन आदि; कूर्म के कार्य हैं पलकों की गति; कृकर के कार्य हैं भूख आदि, देवदत्त के कार्य हैं आलस्य आदि तथा धनंजय कफ। इस प्रकार नाड़ियों के स्थान और वायु के कार्यों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद व्यक्ति को नाड़ियों की शुद्धि से शुरुआत करनी चाहिए।

16. यम और नियम से युक्त, सब संगति से दूर रहने वाला, अध्ययन का कोर्स पूरा करके, सत्य और सदाचार में रमण करने वाला, क्रोध पर विजय

प्राप्त करके, गुरु की सेवा में लगा हुआ, माता-पिता की आज्ञा का पालन करने वाला, सभी धार्मिक कार्यों और जीवन के नियमों का भली-भाँति अध्ययन करने वाला व्यक्ति फल, मूल और जल से भरपूर पवित्र उपवन में जाए।

वहाँ उसे एक ऐसा रमणीय स्थान चुनना चाहिए, जहाँ हमेशा वेदों का उच्चारण होता रहे, जहाँ ब्रह्म के ज्ञाता अपने जीवन के नियमों का पालन करने वाले आते हों और जो फल, मूल, फूल और जल से भरा हो। (अन्यथा) उसे किसी मंदिर में, नदी के किनारे, गाँव में या शहर में एक सुंदर मठ बनाना चाहिए।

वह न तो बहुत लंबा हो और न ही बहुत ऊँचा, उसका एक छोटा दरवाजा होना चाहिए, उसे अच्छी तरह से गोबर से लीपना चाहिए और उसमें सभी प्रकार की सुरक्षा होनी चाहिए। वहाँ वेदान्त की व्याख्या सुनकर योगाभ्यास आरम्भ करना चाहिए। प्रारम्भ में विनायक (गणेश) की पूजा करके अपने इष्टदेव को नमस्कार करके पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुख करके कोमल आसन पर उपर्युक्त में से किसी भी आसन पर बैठकर उन्हें जीतकर विद्वान पुरुष सिर और गर्दन को सीधा रखते हुए तथा नाक की नोक पर दृष्टि जमाकर अपनी भौंहों के बीच चन्द्रमण्डल को देखकर (उससे बहते हुए) अमृत को नेत्रों से पीना चाहिए।

इड़ा से बारह मात्रा तक वायु अन्दर खींचकर, पेट में स्थित अग्निमण्डल का ध्यान करना चाहिए जो ज्वालाओं से घिरा हुआ है तथा जिसका बीज 'र' है; फिर उसे पिंगला से बाहर निकालना चाहिए। पुनः उसे पिंगला से अन्दर खींचकर (अन्दर रोककर) इड़ा से बाहर निकालना चाहिए। अट्ठाईस महीने की अवधि में उसे तीन संध्याओं (सुबह, दोपहर और शाम) और अंतराल के दौरान प्रत्येक बैठक में छह बार अभ्यास करना चाहिए। इससे नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं। फिर शरीर हल्का और उज्ज्वल हो जाता है, (अंदर) जठराग्नि बढ़ जाती है और नाद (आंतरिक ध्वनि) की अभिव्यक्ति होती है।

17. प्राणायाम को प्राण और अपान का मिलन कहा जाता है। यह तीन प्रकार का होता है - निःश्वसन, प्रेरणा और निरोध। वे (संस्कृत) वर्णमाला के अक्षरों से जुड़े होते हैं (प्राणायाम के सही प्रदर्शन के लिए)। इसलिए प्रणव (ओम) को ही प्राणायाम कहा जाता है। पद्मासन में बैठना व्यक्ति को ध्यान करना चाहिए कि उसकी नाक के अग्र भाग में गायत्री है, जो लाल रंग की कन्या है, जो चन्द्रमा की असंख्य किरणों से घिरी हुई है, हंस पर सवार है और उसके हाथ में गदा है। वह 'अ' अक्षर का प्रत्यक्ष प्रतीक है।

'उ' अक्षर का प्रत्यक्ष प्रतीक सावित्री है, जो श्वेत वर्ण की युवती है, जिसके हाथ में चक्र है और जो गरुड़ पर सवार है। 'म' अक्षर का प्रत्यक्ष प्रतीक सरस्वती है, जो काले रंग की वृद्धा है, जो बैल पर सवार है और जिसके हाथ में त्रिशूल है। उसे ध्यान करना चाहिए कि एकमात्र अक्षर - परम प्रकाश - प्रणव (ओम) - इन तीन अक्षरों 'अ', 'उ' और 'म' का उद्गम या स्रोत है। सोलह मात्राओं तक इड़ा से वायु को ऊपर खींचकर, उसे उस समय 'अ' अक्षर का ध्यान करना चाहिए; चौसठ मात्रा तक श्वास भीतर रोककर, उस समय 'उ' अक्षर का ध्यान करे, फिर बत्तीस मात्रा तक श्वास भीतर छोड़ दे, उस समय 'म' अक्षर का ध्यान करे। इस प्रकार उसे बार-बार उपरोक्त क्रम से अभ्यास करना चाहिए।

18. फिर आसन में दृढ़ होकर तथा पूर्ण संयम रखकर योगी को चाहिए कि सुषुम्ना की अशुद्धियों को दूर करने के लिए पद्मासन में बैठ जाए और बायीं नासिका से श्वास लेकर, यथाशक्ति रोककर रखे और दायीं नासिका से बाहर निकाले। फिर दायीं नासिका से पुनः खींचकर और रोककर, बायीं नासिका से उसी क्रम से बाहर निकाले, जिससे पहले खींचकर रोक रखा था। इस संदर्भ में निम्न श्लोक स्मरण करें: "आरंभ में नियमानुसार बायीं नासिका से प्राण को अन्दर खींचकर दूसरे से बाहर निकालना चाहिए, फिर दाहिनी नासिका से वायु को अन्दर खींचकर दूसरे से बाहर निकालना चाहिए। जो व्यक्ति दाहिनी और बायीं नासिका से इन नियमों के अनुसार अभ्यास करता है, उसकी नाड़ियाँ तीन महीने में शुद्ध हो जाती हैं।

19. उसे सूर्योदय के समय, मध्याह्न के समय, सूर्यास्त के समय तथा मध्य रात्रि के समय धीरे-धीरे अस्सी बार प्रतिदिन चार सप्ताह तक श्वास को रोकना चाहिए।

20. प्रारम्भिक अवस्था में पसीना आता है, मध्य अवस्था में शरीर का कम्पन होता है तथा अन्तिम अवस्था में वायु में ऊपर उठना होता है। पद्मासन में बैठकर श्वास को रोकने से ये परिणाम प्राप्त होते हैं।

21. जब प्रयत्नपूर्वक पसीना आए, तो शरीर को अच्छी तरह मलना चाहिए। इससे शरीर स्वस्थ हो जाता है।

22. साधना के प्रारम्भ में दूध और घी युक्त भोजन उत्तम है। इस नियम का पालन करने वाला व्यक्ति साधना में दृढ़ हो जाता है और उसे तप (या शरीर में जलन) नहीं होती।

23. जैसे सिंह, हाथी और बाघ धीरे-धीरे वश में हो जाते हैं, वैसे ही श्वास भी यदि ठीक से नियंत्रित हो जाए तो वश में आ जाती है, अन्यथा वह साधक को मार डालती है।

24. उसे (जहाँ तक उसके स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिए संगत हो) श्वास को ठीक से बाहर निकालना चाहिए, ठीक से अन्दर लेना चाहिए या ठीक से रोककर रखना चाहिए। इसी प्रकार उसे सफलता मिलेगी।

25. इस प्रकार श्वास को उचित रीति से रोककर रखने से और नाड़ियों की शुद्धि से जठराग्नि प्रदीप्त होती है, ध्वनियों का स्पष्ट सुनाई देना और स्वास्थ्य अच्छा होता है।

26-30. प्राणायाम के नियमित अभ्यास से जब नाड़ी केन्द्र शुद्ध हो जाते हैं, तब वायु बीच में स्थित सुषुम्ना के मुख से होकर आसानी से ऊपर की ओर चली जाती है। गर्दन की मांसपेशियों के संकुचन से तथा नीचे की अपान नाड़ी के संकुचन से प्राण (श्वास) सुषुम्ना में चला जाता है जो पश्चिम नाड़ी से मध्य में है। अपान को ऊपर खींचकर तथा गले से प्राण को नीचे धकेलकर, वृद्धावस्था से मुक्त योगी सोलह वर्ष का युवा हो जाता है।

31. सुखदायक आसन पर बैठकर दाहिने नथुने से वायु को खींचकर बालों के ऊपर से लेकर नाखूनों तक भीतर रोककर उसी नथुने से उसे बाहर निकालना चाहिए। इससे मस्तिष्क शुद्ध होता है और वायु नाड़ियों में स्थित रोग नष्ट होते हैं। हृदय से लेकर गर्दन तक नासिका द्वारा ध्वनि के साथ वायु को खींचकर (ताकि स्थान भर जाए) और यथासंभव भीतर रोककर नाक से उसे बाहर निकालना चाहिए। इससे भूख, प्यास, आलस्य और नींद नहीं आती। मुख से वायु को खींचकर और यथासंभव भीतर रोककर नाक से उसे बाहर निकालना चाहिए।

इससे गुल्म, प्लीहा (दोनों प्लीहा संबंधी रोग हैं), पित्त और ज्वर तथा भूख आदि रोग नष्ट होते हैं। अब हम कुम्भक (सांस का संयम) करेंगे। यह दो प्रकार का होता है - सहित और केवल। जो निःश्वसन और प्रेरणा से युक्त है, उसे सहित कहते हैं। जो इनसे रहित है, उसे केवल कहते हैं। जब तक केवल में सिद्ध न हो जाओ, तब तक सहित का अभ्यास करो। जिसने केवल में निपुणता प्राप्त कर ली है, उसके लिए तीनों लोकों में कुछ भी अप्राप्य नहीं है। केवल-श्वास के संयम से कुण्डलिनी का ज्ञान उत्पन्न होता है।

तब उसका शरीर दुबला हो जाता है, चेहरा शांत और आँखें साफ हो जाती हैं, उसे आध्यात्मिक ध्वनियाँ स्पष्ट सुनाई देती हैं, वह सभी रोगों से मुक्त हो जाता है और उसके (बिन्दु) वीर्य पर विजय प्राप्त हो जाती है, उसकी जठराग्नि बढ़ जाती है। अपनी पलकें बंद किए और खोले बिना अपनी आँखें बाहर की ओर देखते हुए अपने मन को किसी अन्तर्मुखी वस्तु पर केन्द्रित करना, वैष्णवी-मुद्रा कहा गया है। इसे सभी तांत्रिक कार्यों में छिपा कर रखा गया है।

32. मन और श्वास को अन्तरंग विषय में लीन करके योगी यद्यपि बाहर और नीचे की वस्तुओं को नहीं देखता, फिर भी पुतलियों को स्थिर रखने वाली आँखों से उन्हें देखता हुआ प्रतीत होता है। इसे खेचरी मुद्रा कहते हैं। इसका विस्तार क्षेत्र एक ही विषय है और यह बहुत लाभकारी है। तब उसे भगवान विष्णु का वास्तविक स्थान, जो शून्य और अशून्य है, दिखाई देता है।

33. आँखें आधी बंद करके, दृढ़ मन से, नाक की नोक पर दृष्टि जमाकर और सूर्य और चन्द्रमा में लीन होकर, वह इस प्रकार अविचल रहकर, जो तेजोमय है, जो परम सत्य है और जो परे है, उस वस्तु को जान लेता है। हे शाण्डिल्य! इसे तू तत् जान।

34. शब्द को प्रकाश में मिला देना और भौंहों को थोड़ा ऊपर उठाना, यह पूर्व साधना का मार्ग है (या उसका अंग है)। इससे उन्मनी की स्थिति उत्पन्न होती है, जो मन के नाश का कारण बनती है।

35. इसलिए उसे खेचरी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए। फिर वह उन्मनी की स्थिति को प्राप्त करता है और योग निद्रा (समाधि) में चला जाता है। जो इस योग निद्रा को प्राप्त करता है, उसके लिए काल का अस्तित्व नहीं रहता। मन को शक्ति के बीच में और शक्ति को मन के बीच में रखकर और मन से मन को देखते हुए, हे सांडिल्य, प्रसन्न हो जाओ।

36. आत्मा को आकाश के बीच में और आकाश को आत्मा के बीच में रखो और सब कुछ आकाश में समेटकर, किसी अन्य विषय में मत सोचो।

37. फिर तुम्हें बाह्य या आंतरिक विचारों को नहीं रखना चाहिए। सभी विचारों को त्यागकर, स्वयं अमूर्त विचार बन जाओ।

38. जैसे अग्नि में कपूर और जल में नमक समा जाता है, वैसे ही मन भी तत्व (सत्य) में समा जाता है।

39. जो कुछ भी जाना जाता है, उसका ज्ञान और उसकी स्पष्ट अनुभूति ही मनस (मन) कहलाती है। जब ज्ञान और ज्ञेय दोनों ही नष्ट हो जाते हैं, तब कोई दूसरा मार्ग नहीं रह जाता (अथवा वही एकमात्र मार्ग रह जाता है)।

40. विषयों का ज्ञान छोड़ देने से वह (मन) लीन हो जाता है और जब मन लीन हो जाता है, तब केवल कैवल्य (एकांत) ही शेष रह जाता है।
41. चित्त के नाश के लिए दो उपाय हैं - योग और ज्ञान। हे मुनियों! योग मन की वृत्तियों का बलपूर्वक दमन है और ज्ञान उनका गहन अन्वेषण है।

42-45. जब मन की वृत्तियाँ दबा दी जाती हैं, तब मन को शांति मिलती है। जैसे सूर्य के अस्त होने पर (अर्थात् सूर्यास्त होने पर) लोगों के कर्म रुक जाते हैं, वैसे ही जब मन की वृत्तियाँ रुक जाती हैं, तब जन्म-मरण का यह चक्र समाप्त हो जाता है। जब मनुष्य को इस संसार में रहने की इच्छा नहीं रहती या जब वह अपनी तृप्ति कर लेता है - धर्मग्रंथों के अध्ययन, सत्पुरुषों की संगति, भोगों की उदासीनता, अभ्यास और योग या किसी इच्छित वस्तु पर एकाग्रचित्त होकर दीर्घकाल तक ध्यान करने या एक सत्य का दृढ़तापूर्वक अभ्यास करने से प्राण की वृत्तियाँ रुक जाती हैं।

46. श्वास को श्वास द्वारा रोककर, उसमें निरंतर अभ्यास करके जिससे थकान न हो तथा एकांत स्थान में ध्यान करने से मन के द्वंद रुक जाते हैं। ॐ (अर्थात् अर्धमात्र) के उच्चारण के अंतिम छोर पर स्थित ध्वनि के वास्तविक स्वरूप का ठीक से बोध होने पर तथा चेतना द्वारा सुषुप्ति (स्वप्नहीन निद्रा) का ठीक से ज्ञान होने पर प्राण के द्वंद रुक जाते हैं।

47. तालु के मूल में स्थित घण्टा के समान मार्ग अर्थात उवुला को जब प्रयत्नपूर्वक जिह्वा द्वारा बंद कर दिया जाता है तथा श्वास ऊपर (ऊपरी छिद्र) से होकर जाती है, तब प्राण के द्वंद रुक जाते हैं।

48-50. जब चेतना (संवित्) प्राण में लीन हो जाती है और जब अभ्यास के द्वारा प्राण ऊपरी छिद्र से होकर तालु के ऊपर द्वादशान्त (बारहवाँ केन्द्र) में चला जाता है, तब प्राण का उतार-चढ़ाव रुक जाता है। जब चेतना की आँख (अर्थात आध्यात्मिक या तीसरी आँख) शांत और निर्मल हो जाती है, जिससे वह अपनी नाक की नोक से बारह अंकों की दूरी पर पारदर्शी आकाश में स्पष्ट रूप से देख सके, तब प्राण का उतार-चढ़ाव रुक जाता है। जब मन

में उठने वाले विचार भौंहों के बीच तारक (तारा या आँख) की दुनिया के शांत चिंतन में बंध जाते हैं और (इस प्रकार) नष्ट हो जाते हैं, तब उतार-चढ़ाव बंद हो जाते हैं।

51. जब ज्ञान जो ज्ञेय के रूप का है, जो कल्याणकारी है और जो किसी भी परिवर्तन से अछूता है, वह मनुष्य में उत्पन्न होता है और केवल ॐ के रूप में जाना जाता है, अन्य नहीं, तब प्राण का उतार-चढ़ाव बंद हो जाता है।

52. हृदय में स्थित आकाश का दीर्घकाल तक ध्यान करने से तथा वासनाओं से रहित मन का ध्यान करने से प्राणों का कंपन रुक जाता है।

53. इन विधियों से तथा अपने विचार द्वारा सुझाई गई अन्य विधियों से तथा अनेक गुरुओं के सम्पर्क से कंपन रुक जाता है।

54. कुंडलिनी के द्वार को सिकोड़कर मोक्ष के द्वार को बलपूर्वक खोलना चाहिए। जिस द्वार से जाना चाहिए, उसे अपने मुख से बंद करके कुंडलिनी सर्प के समान कुंडलित होकर सो जाती है। जो इस कुंडलिनी को चलायमान करता है - वह मुक्त व्यक्ति है। यदि यह कुंडलिनी किसी योगी की गर्दन के ऊपरी भाग में सोती है, तो वह उसके मोक्ष की ओर जाती है। (यदि यह शरीर के निचले भाग में सोती है) तो वह अज्ञानियों के बंधन के लिए होती है।

इडा और पैंगला इन दो नाड़ियों को छोड़कर प्राण को सुषुम्ना में चलना चाहिए। वह भगवान विष्णु का सर्वोच्च स्थान है। मन को एकाग्र करके श्वास पर नियंत्रण करना चाहिए। चतुर व्यक्ति को मन को किसी अन्य वस्तु पर टिकने नहीं देना चाहिए।

55. भगवान विष्णु की पूजा केवल दिन में नहीं करनी चाहिए। भगवान विष्णु की पूजा केवल रात्रि में नहीं करनी चाहिए, अपितु सदैव उनकी पूजा करनी चाहिए, केवल दिन और रात्रि में ही उनकी पूजा नहीं करनी चाहिए।

56. ज्ञान-उत्पादक द्वार (उवुला के पास) में पाँच मार्ग हैं। हे शांडिल्य, यह खेचरी मुद्रा है; इसका अभ्यास करो।

57. खेचरी मुद्रा में बैठने वाले की वायु जो पहले बायीं और दायीं नाड़ियों से प्रवाहित होती थी, अब बीच वाली (सुषुम्ना) से प्रवाहित होती है। इसमें कोई संदेह नहीं है।

58. इड़ा और पिंगला के बीच के शून्य (सुषुम्ना) से वायु को ग्रहण करना चाहिए। उसी स्थान पर खेचरी मुद्रा स्थित है और वही सत्य का स्थान है।

59. फिर वही खेचरी मुद्रा है जो सूर्य और चन्द्रमा (अर्थात् इड़ा और पिंगला) के बीच निरालम्ब (आधारहीन) स्थान में आकाश चक्र (सिर में) में स्थित है।

60-61. जब जीभ को चीरा (फ्रेनम लिंगम) द्वारा और उसे रगड़कर और दूध पिलाकर (अर्थात् जीभ को) कला (अंगुली) की लंबाई तक बढ़ा दिया जाए, तब दृष्टि को दोनों भौंहों के बीच स्थिर करें और जीभ को उलटकर खोपड़ी के छेद को बंद करें। यही खेचरी मुद्रा है। चित्त (मन) दोनों आकाश (खेचरी) में घूमते हैं, तब जीभ ऊपर उठाने वाला व्यक्ति अमर हो जाता है। बायीं एड़ी से योनि को दृढ़ता से दबाकर, दाहिना पैर आगे बढ़ाकर, दोनों हाथों से पैरों को पकड़कर, नासिका से वायु को अन्दर खींचकर, कंठ-बंध का अभ्यास करें, वायु को ऊपर की ओर रोके रखें।

इससे सभी क्लेश नष्ट हो जाते हैं, फिर विष अमृत के समान पच जाता है। दमा, प्लीहा रोग, गुदा का ऊपर उठना और त्वचा का सुन्न होना दूर हो जाता है। यह प्राण को जीतने और मृत्यु को नष्ट करने का साधन है। बायीं एड़ी से योनि को दबाकर, दूसरे पैर को बायीं जांघ पर रखें, वायु को अन्दर खींचें, ठोड़ी को छाती से टिकाएं, योनि को सिकोड़ें और अपने मन में स्थित आत्मा का (जहाँ तक हो सके) चिंतन करें। इस प्रकार (सत्य का) प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त होता है। प्राण को बाहर से अन्दर खींचकर पेट में भरकर संध्याकाल में अथवा सदैव मन से नाभि के मध्य में नासिका के अग्रभाग में तथा पैर के अँगूठे में प्राण को केन्द्रित करें। इस प्रकार योगी समस्त रोगों तथा थकान से मुक्त हो जाता है।

62. प्राण को नासिका के अग्रभाग में केन्द्रित करने से वह वायुतत्त्व पर अधिकार प्राप्त कर लेता है, नाभि के मध्य में केन्द्रित करने से समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं, पैर के अँगूठे में केन्द्रित करने से उसका शरीर हल्का हो जाता है। जो मनुष्य जिह्वा द्वारा खींची हुई वायु को पीता है, उसकी थकान, प्यास तथा रोग नष्ट हो जाते हैं।

63. जो मनुष्य दोनों संध्याकालों में तथा रात्रि के अन्तिम दो प्रहरों में मुख से वायु पीता है, उसके तीन महीने के अन्दर शुभ सरस्वती (वाणी की देवी)

उसके वाणी में उपस्थित हो जाती हैं (अर्थात् वह वाणी में निपुण तथा विद्‌वान हो जाता है)।

64. छः महीने में वह सब रोगों से मुक्त हो जाता है। जीभ से वायु खींचकर उसे जीभ के मूल में रोके। इस प्रकार अमृत पीकर बुद्‌धिमान पुरुष सब सुख भोगता है।

65. भौहों के मध्य में आत्मा को आत्मा में ही स्थित करके, इड़ा से तीस बार श्वास लेकर उस (केंद्र) को भेदकर, रोगी भी रोग से मुक्त हो जाता है।

66. जो नाड़ियों से वायु खींचकर चौबीस मिनट तक नाभि और पेट के पार्श्व में रोके रखता है, वह रोग से मुक्त हो जाता है।

67-69(क)। जो एक महीने तक तीनों संध्याओं (सूर्यास्त, सूर्योदय और मध्यरात्रि या दोपहर) में जीभ से वायु खींचकर तीस बार श्वास को नाभि के मध्य में रोके रखता है, वह सब ज्वर और विष से मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य मन सहित प्राण को अपनी नासिका के अग्रभाग में एक मुहूर्त (अड़तालीस मिनट) तक भी स्थित रखता है, वह सौ जन्मों में किये गये समस्त पापों का नाश कर देता है।

69(ख) तारा (ॐ) के संयम से वह सब कुछ जान लेता है। मन को अपनी नासिका के अग्रभाग में स्थित करके वह इन्द्रलोक का ज्ञान प्राप्त करता है; उसके नीचे अग्नि का ज्ञान प्राप्त करता है।

नेत्र में चित्त के संयम से उसे सभी लोकों का ज्ञान होता है; कान में यम (मृत्यु के देवता) लोक का ज्ञान होता है; कान के पार्श्व में नृति-लोक का ज्ञान होता है; उसके पिछले भाग (कान) में वरुण-लोक का ज्ञान होता है; बाएं कान में वायु-लोक का ज्ञान होता है; गले में सोम (चंद्रमा) लोक का ज्ञान होता है; बाएं आंख में शिव-लोक का ज्ञान होता है; सिर में अतल लोक का ज्ञान होता है; पैरों में वितल लोक का ज्ञान होता है; टखनों में नितल (बल्कि सुतल) लोक का ज्ञान होता है;

पिंडलियों में सुतल (बल्कि तलातल) लोक का ज्ञान होता है; घुटनों में महातल लोक का ज्ञान होता है; जांघों में रसातल लोक का ज्ञान होता है; कमर में तलातल (बल्कि पाताल) लोक का ज्ञान होता है; नाभि में भूर (पृथ्वी) लोक का ज्ञान, पेट में भुवर लोक का ज्ञान, हृदय में सुवर लोक का

ज्ञान, हृदय के ऊपर के स्थान में महर लोक का ज्ञान, कंठ में जन लोक का ज्ञान, भौहों के मध्य में तप लोक का ज्ञान, सिर में सत्य लोक का ज्ञान।

धर्म और अधर्म पर विजय प्राप्त करने से भूत और भविष्य का ज्ञान होता है। प्रत्येक प्राणी की ध्वनि पर ध्यान केन्द्रित करने से प्राणी की पुकार (या भाषा) का ज्ञान उत्पन्न होता है। संचित कर्म पर ध्यान केन्द्रित करने से पूर्वजन्मों का ज्ञान उत्पन्न होता है। दूसरे के मन पर ध्यान केन्द्रित करने से दूसरे के मन (या विचार) का ज्ञान होता है।

काया-रूप पर ध्यान केन्द्रित करने से अन्य रूप दिखाई देते हैं। बल पर ध्यान केन्द्रित करने से अन्य रूप दिखाई देते हैं। हनुमान जैसे व्यक्तियों का बल प्राप्त होता है। इसे सूर्य पर स्थिर करने से लोकों का ज्ञान होता है। इसे चंद्रमा पर स्थिर करने से नक्षत्रों का ज्ञान होता है। इसे ध्रुव (ध्रुव) पर स्थिर करने से उसकी गति का बोध होता है। इसे स्वयं (आत्मा) पर स्थिर करने से पुरुष का ज्ञान होता है;

नाभि पर स्थिर करने से काया-व्यूह (शरीर के सभी कणों की रहस्यमय व्यवस्था जिससे व्यक्ति एक ही जीवन में अपने सभी कर्मों को समाप्त कर सके) का ज्ञान प्राप्त होता है; कंठ के कूप पर स्थिर करने से भूख और प्यास से मुक्ति मिलती है; कूर्म नाड़ी (जो कंठ के कूप में स्थित है) पर एकाग्रता (दृढ़ता) होती है। इसे तारा (आंख की पुतली) पर स्थिर करने से सिद्धों का दर्शन प्राप्त होता है।

शरीर में आकाश को जीतकर वह आकाश में उड़ने में सक्षम होता है; (संक्षेप में) मन को किसी स्थान पर केन्द्रित करके वह उस स्थान से सम्बन्धित सिद्धियों को जीत लेता है। फिर आता है प्रत्याहार, जो पाँच प्रकार का है। इसमें इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषयों से विमुख करना है। जो कुछ आत्मा के रूप में दिखाई देता है, उसका चिन्तन करना प्रत्याहार है। अपने दैनिक कर्मों के फलों का त्याग करना प्रत्याहार है। इन्द्रियों के सभी विषयों से विमुख होना प्रत्याहार है।

अठारह महत्वपूर्ण स्थानों (नीचे वर्णित) में धारणा करना प्रत्याहार है, (अर्थात,) पैर, पैर के अंगूठे, टखने, पिंडलियाँ, घुटने, जांघ, गुदा, लिंग, नाभि, हृदय, कण्ठ, तालु, नाक, आँखें, भौंहों के मध्य, माथा और सिर आरोही और अवरोही क्रम में।

70. फिर (आरोही) धारणा आती है। यह तीन प्रकार का होता है, (अर्थात,) मन को आत्मा में स्थिर करना, बाह्य आकाश को हृदय के आकाश में लाना और पाँच तत्वों - पृथ्वी, अपस, अग्नि, वायु और आकाश में पाँच मूर्तियों (देवताओं के रूप) का चिंतन करना।

71. फिर ध्यान आता है। यह दो प्रकार का होता है, सगुण (गुण या गुणवत्ता के साथ) और निर्गुण (गुण के बिना)। सगुण एक मूर्ति का ध्यान है। निर्गुण स्वयं की वास्तविकता पर है।

72. समाधि जीवात्मा (व्यक्तिगत आत्म) और परमात्मा (उच्च स्व) का त्रिविध अवस्था (अर्थात, ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान) के बिना मिलन है। यह चरम आनंद और शुद्ध चेतना की प्रकृति का है। इस प्रकार पहला अध्याय समाप्त होता है।

अध्याय - II

तब ब्रह्मऋषि शांडिल्य ने चारों वेदों में ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त न करके भगवान अथर्वण के पास जाकर पूछा: "यह क्या है? मुझे ब्रह्म का विज्ञान सिखाइए जिससे मैं वह प्राप्त कर सकूँ जो सबसे उत्तम है।"

अथर्वण ने उत्तर दिया: "हे शांडिल्य, ब्रह्म सत्य, विज्ञान और अनंत है, जिसमें यह सब (संसार) गुंथा हुआ है, ताना-बाना है, जिससे सब उत्पन्न हुआ है और जिसमें सब समाहित है और जिसे जानने से बाकी सब ज्ञात हो जाता है। वह हाथ-पैरों से रहित है, आँखों-कानों से रहित है, जीभ से रहित है, शरीर से रहित है, अगम्य और अपरिभाषित है।

जिससे वाक (वाणी) और मन लौट जाते हैं, क्योंकि उसे प्राप्त (या पहुँचने) में असमर्थ हैं। उसे ज्ञान और योग से जानना है। जिससे पुरानी प्रज्ञा उत्पन्न हुई। जो एक और अद्वैत है, जो आकाश की तरह सब में व्याप्त है, जो अत्यंत सूक्ष्म, दोषरहित, क्रियाहीन, केवल सत् है, चेतना के आनंद का सार, कल्याणकारी, शांत और अमर है और जो परे है। वह ब्रह्म है। तुम वही हो। उसे बुद्धि से जानो।

वह जो एक है, प्रकाशमान है, आत्मा की शक्ति देने वाला, सर्वज्ञ, सबका स्वामी और सब प्राणियों का अंतरात्मा, जो सब प्राणियों में निवास करता है, जो सब प्राणियों में छिपा हुआ है और सब प्राणियों का मूल है, जो केवल

योग से ही प्राप्त किया जा सकता है और जो सबकी रचना, पालन और संहार करता है - वह आत्मा है। आत्मा में अनेक लोकों को जानो।

हे आत्मा के ज्ञाता, शोक मत करो, तुम दुःखों के अंत को प्राप्त हो जाओगे।" इस प्रकार दूसरा अध्याय समाप्त होता है। अध्याय - III तब शांडिल्य ने अथर्वण से इस प्रकार प्रश्न कियाः "जो ब्रह्म ॐ है, अविनाशी, क्रियारहित, कल्याणकारी, केवल सत् (अस्तित्व) और सर्वोच्च है, उससे यह जगत् किस प्रकार प्रलय को प्राप्त होता है ? यह उसमें कैसे स्थित है ? और इसमें कैसे लीन होता है ? कृपया मेरी इस शंका का समाधान करें।" अथर्वण ने उत्तर दियाः "परम ब्रह्म, सत्य, अविनाशी और क्रियारहित है।

फिर निराकार ब्रह्म से तीन रूप (या पहलू) उत्पन्न हुए, (अर्थात,) निष्कल (अंशरहित), सकल (अंशों सहित) और सकल-निष्कल (अंशों सहित और रहित)। जो सत्य, विज्ञान और आनंद है; जो क्रियाहीन है, किसी भी अशुद्धि से रहित है, सर्वव्यापी है, अत्यंत सूक्ष्म है, सभी दिशाओं में मुख वाला है, अपरिभाषित और अमर है - वह उनका निष्कल पहलू है। महेश्वर (महान भगवान) जो काले और पीले हैं, अविद्या, मूल-प्रकृति या माया के साथ शासन करते हैं जो लाल, सफेद और काले रंग की है और जो उनके साथ सह-अस्तित्व में है।

यह उनका सकल-निष्कल पहलू है। तब भगवान ने अपनी आध्यात्मिक बुद्धि से इच्छा की (या इच्छा की) (इस प्रकार): क्या मैं अनेक हो सकता हूँ? क्या मैं जन्म दे सकता हूँ? फिर इस व्यक्ति से जो चिंतन कर रहा था और जिसकी इच्छाएँ पूरी हो गई थीं, तीन अक्षर निकले। तीन व्याहृतियाँ, तीन पादों वाली गायत्री, तीन वेद, तीन देवता, तीन वर्ण और तीन अग्नि उत्पन्न हुए। वह परमेश्वर जो सब प्रकार की सम्पदाओं से युक्त है, जो सर्वव्यापी है, जो सब प्राणियों के हृदय में स्थित है, जो माया का स्वामी है और जिसका स्वरूप माया है; वही ब्रह्मा है, वही विष्णु है, वही रुद्र है, वही इन्द्र है, वही सब देवता है, वही सब भूत है; वही आगे है, वही पीछे है, वही हमारे बायें है, वही हमारे दायें है, वही नीचे है, वही ऊपर है, वही सब है।

दत्तात्रेय के रूप में उनका वह रूप, जो अपनी शक्ति के साथ क्रीड़ा करते हैं, जो अपने भक्तों पर दया करते हैं, जो अग्नि के समान तेजस्वी हैं, लाल कमल की पंखुड़ियों के समान हैं और चार भुजाओं वाले हैं, जो सौम्य हैं और निष्पाप चमकते हैं - यह उनका सकल रूप है।" तब शांडिल्य ने अथर्वण से पूछा, "हे प्रभु, जो केवल सत् है और चेतना के आनंद का सार है - उसे परब्रह्म क्यों कहा जाता है?" अथर्वण ने उत्तर दिया: "क्योंकि वे बृहति को

बढ़ाते हैं और सब कुछ (बृहयति) को बढ़ाते हैं; इसलिए उन्हें परब्रह्म कहा जाता है।

उन्हें आत्मा क्यों कहा जाता है? चूँकि वे सब कुछ प्राप्त करते हैं (अप्नोति), चूँकि वे सब कुछ वापस लेते हैं और चूँकि वे सब कुछ हैं, इसलिए उन्हें आत्मा कहा जाता है। वे महेश्वर (महान भगवान) कौन हैं?

चूँकि महात्-ईशा (महान भगवान) शब्दों की ध्वनि से और अपनी शक्ति से, महान भगवान सब कुछ नियंत्रित करते हैं।उन्हें दत्तात्रेय क्यों कहा जाता है?

क्योंकि भगवान अत्रि (ऋषि) से बहुत प्रसन्न हुए थे, जो बहुत कठिन तपस्या कर रहे थे और जिन्होंने स्वयं प्रकाशस्वरूप भगवान को देखने की इच्छा व्यक्त की थी, उन्होंने स्वयं को (दत्त को) उनके पुत्र के रूप में प्रस्तुत किया और क्योंकि अनसूया उनकी माता थीं और अत्रि उनके पिता थे।

इसलिए जो (गुप्त) अर्थ को जानता है, वह सब कुछ जान लेता है। जो हमेशा उस परम का चिंतन करता है, वह स्वयं ब्रह्म को जानने वाला बन जाता है। यहाँ ये श्लोक स्मरण आते हैं:

१-४: जो भगवानों के भगवान और पुरातन भगवान का सदैव इस प्रकार चिंतन करता है - जैसे दत्तात्रेय, कल्याणकारी, शांत, नीलम के रंग वाले, अपनी माया में रमण करने वाले और भगवान जिन्होंने सब कुछ त्याग दिया है, नग्न और जिसका पूरा शरीर पवित्र भस्म से लिपटा हुआ है, जिसके बाल उलझे हुए हैं, जो सबके भगवान हैं, जिनकी चार भुजाएँ हैं, जो दिखने में आनंदमय हैं, जिनके नेत्र पूर्ण कमल के समान हैं, जो ज्ञान और योग के भण्डार हैं, जो सभी लोकों के आध्यात्मिक गुरु हैं और जो सभी योगियों के प्रिय हैं और जो अपने भक्तों पर दयालु हैं, जो सबके साक्षी हैं और सभी सिद्धों द्वारा पूजे जाते हैं, वे सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं और उन्हें (आत्मा को) प्राप्त होता है।" ॐ सत्यम् (सत्य) ।

इस प्रकार तीसरा अध्याय समाप्त होता है। ॐ ! हे हे देवो, हम अपने कानों से शुभ बातें सुनें; हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ बातें देखें! हम देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें, अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें! हम पराक्रमी इंद्र का आशीर्वाद हो! हम पराक्रमी सूर्य का आशीर्वाद हो! हम पराक्रमी गरुड़ का आशीर्वाद हो! हम पराक्रमी बृहस्पति का आशीर्वाद हो! हम पराक्रमी देवो, ...

059 - पैंगल उपनिषद

ॐ ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है।
अनंत अनंत से ही निकलता है।
(तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर,
यह केवल अनंत (ब्रह्म) के रूप में रहता है।

ॐ ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

I-1. तब पैंगल ने याज्ञवल्क्य के पास एक शिष्य के रूप में संपर्क किया, और बारह वर्षों तक उनकी सेवा करने के बाद कहा: मुझे एकांत के सर्वोच्च रहस्य के संबंध में बताएं।

I-2. प्रख्यात याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया: हे प्रिये, आरंभ में यह वास्तव में अस्तित्व में था। यह सनातन मुक्त, अपरिवर्तनीय, सदा एक, द्वितीयहीन ब्रह्म था, जो सत्य, ज्ञान और आनंद से पूर्ण था।

I-3. उसमें आदि और अनिर्वचनीय प्रकृति विद्यमान थी, जो गुणों से युक्त, लाल, श्वेत और श्याम वर्ण की थी, जो जल, चाँदी, मनुष्य और मृगतृष्णा के खोल में क्रमशः आकृति, ठूँठ और दर्पण के सदृश थी; उसमें जो प्रतिबिम्बित हो रही थी, वह साक्षी चेतना थी। सत्त्व की प्रधानता से संशोधित होकर और अव्यक्त (अव्यक्त) नाम पाकर वह (प्रकृति) छिपाने की शक्ति बन गई। उसमें जो प्रतिबिम्बित हो रही थी, वह ईश्वर चेतना बन गई।

वह माया को अपने वश में रखता है, सर्वज्ञ है, सृष्टि, पालन और प्रलय का आदि कारण है और अंकुरित जगत का रूप है। वह अपने में विलीन सम्पूर्ण जगत को प्रकट करता है। जीवों के कर्मों के बल से यह (जगत) इस वस्त्र के समान फैला हुआ है और उनके क्षीण होने से यह (जगत) फिर से छिपा हुआ है। उन्हीं में सम्पूर्ण जगत एक तहे हुए कपड़े के रूप में विद्यमान है।

I-5. भगवान द्वारा नियंत्रित छिपाने की शक्ति से महत् नामक प्रक्षेपण शक्ति उत्पन्न हुई। इसमें जो प्रतिबिंबित होता है वह हिरण्यगर्भ की चेतना है। महत् के संबंध में उसके पास स्वामित्व की धारणा है और उसका शरीर आंशिक रूप से प्रकट और आंशिक रूप से अप्रकट है।

I-6. हिरण्यगर्भ द्वारा नियंत्रित प्रक्षेपण शक्ति से अहंकार नामक स्थूल शक्ति उत्पन्न हुई, जिसमें तमस की प्रधानता है। इसमें जो प्रतिबिंबित होता है वह विराट की चेतना है। वह विराट जो अहंकार में स्थित, एक व्यक्त शरीर, और मुख्य व्यक्ति, विष्णु सभी स्थूल वस्तुओं के रक्षक हैं।

उस आत्मा (विराट) से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी। ये पाँच मूल-तत्व तीन गुणों से बने हैं।

१-७. सृष्टि करने की इच्छा से, उस जगत-कारण (ईश्वर) ने, तम के गुण को नियंत्रित करते हुए, सूक्ष्म मूल-तत्वों को स्थूल बनाने का प्रयास किया। उन्होंने अत्यंत सीमित तत्वों में से प्रत्येक को दो भागों में विभाजित किया और फिर से (आधे) चार गुना कर दिया और पाँच हिस्सों में से प्रत्येक को बाकी चार के आठवें हिस्से में जोड़ दिया।

उन पंचगुणित तत्वों के साथ उन्होंने अनंत करोड़ों स्थूल ब्रह्मांडों की रचना की और इन चौदह में से प्रत्येक के लिए उपयुक्त दुनिया और उन सभी के प्रत्येक स्तर के लिए उपयुक्त गोलाकार स्थूल शरीर बनाए।

१-८. उन्होंने पाँच तत्वों के राजस भाग को चार भागों में विभाजित करके उसके तीन भागों से पाँच गुना क्रियाशीलता सहित प्राण बनाया। चौथे भाग (रजस) से उन्होंने कर्मेन्द्रिय की रचना की।

I-9. उनके सत्व भाग को चार भागों में विभाजित करके, उनमें से तीन के योग से उन्होंने पाँच प्रकार की क्रियाशीलता वाली अंतःेन्द्रिय बनाई। चौथे से उन्होंने ज्ञानेन्द्रिय बनाई।

I-10. सत्व के योग से उन्होंने इन्द्रियों के रक्षक बनाए। उन्हें स्थूल जगत में उत्पन्न करके उन्होंने डाला। उनकी आज्ञा से, अहंकार से युक्त होकर, विराट ने स्थूल तत्वों (ब्रह्मांड के) की रक्षा की। उनकी आज्ञा से हिरण्यगर्भ ने सूक्ष्म तत्वों की रक्षा की।

I-11. ब्रह्मांड में वे ईश्वर के बिना स्पंदित या क्रियाशील नहीं हो सकते थे। उन्होंने उन्हें सजीव करना चाहा। स्थूल जगत, ब्रह्म की नाड़ियाँ और व्यक्तियों के मुकुटों को चीरकर उन्होंने उनमें प्रवेश किया।यद्यपि वे जड़ थे, फिर भी चेतन (प्राणियों) की भाँति वे प्रत्येक अपना-अपना कार्य करते थे।

I-12. सर्वज्ञ भगवान माया की एक रेखा से युक्त होकर, प्रत्येक शरीर में प्रवेश करके, उससे मोहित होकर जीव बन गए; तीनों शरीरों के साथ आत्म-तादात्म्य होने के कारण (वे) कर्ता भी बन गए और (कर्म के फलों के) काटने वाले भी। वे जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मूर्च्छा और मृत्यु के गुणों से युक्त होकर, (पानी के पहिये से जुड़ी हुई) बाल्टियों की शृंखला की तरह व्याकुल हो जाते हैं और मानो कुम्हार के चाक की तरह घूमते हुए जन्म लेते और मरते हैं।

II-1. अब पैंगल ने याज्ञवल्क्य से पूछा: सभी लोकों के सर्वशक्तिमान भगवान, उनकी उत्पत्ति, पालन और प्रलय के रचयिता, जीव कैसे बन गए?

II-2. याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया: मैं स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों की उत्पत्ति के बाद जीव और ईश्वर के रूपों में अंतर करते हुए बोलूंगा। अनन्य ध्यान से सुनो। भगवान ने पंचम स्थूल तत्त्वों के अंशों का प्रयोग करके क्रमशः वैयक्तिक और समष्टि स्थूल शरीर बनाए। खोपड़ी, त्वचा, आंत, अस्थि, मांस और नाखून पार्थिव हैं। रक्त, मूत्र, लार, पसीना आदि जलमय हैं। भूख, प्यास, गर्मी, आलस्य, मैथुन आदि अग्निमय हैं। गति, परिवहन, श्वास आदि वायुमय हैं। काम, क्रोध आदि आकाशीय हैं। त्वचा आदि सहित स्थूल शरीर; इन सबका योग है, जो कर्मों द्वारा निर्मित है; बाल्यावस्था आदि अवस्थाओं, दंभ और अनेक दोषों का आधार है।

II-3. फिर उन्होंने (भगवान ने) स्थूल तत्त्वों के तीन राजस अंशों के अ-पंचम समुच्चय से प्राण (जीवन का तत्त्व) प्रकट किया। प्राणतत्त्व के परिवर्तन प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान हैं। प्राण के अधीनस्थ कार्यों के नाम नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनंजय हैं। इनके आधार हृदय, गुदा, नाभि, कंठ तथा सभी अंग हैं। आकाश के रजोगुण के चतुर्थ भाग से उन्होंने कर्मेन्द्रिय को प्रकट किया। इसके कार्य हैं-जीभ, हाथ, पैर, गुदा तथा जननेन्द्रिय। इनके विषय हैं-वाणी, ग्रहण, गति, मलत्याग तथा मैथुन।

इसी प्रकार तत्वों के तीन सत्व भागों के योग से उन्होंने अन्तःकरण को प्रकट किया। इसके कार्य हैं-मन, बुद्धि, विचार तथा अहंकार। इनके विषय हैं-कल्पना, निश्चय, स्मृति, दंभ तथा अन्वेषण। इनके आधार हैं-कण, मुख, नाभि, हृदय तथा भौहों का संधि-स्थल। तत्वों के सत्व के चतुर्थ भाग से उन्होंने ज्ञानेन्द्रिय को प्रकट किया। इसके कार्य हैं-कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा तथा नाक। इनके विषय हैं-शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध। इन्द्रियों (ज्ञान और कर्म) के अधिपति दिशाएँ, वायु, सूर्य, प्राचेतस, अश्विन, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, मृत्यु, चन्द्रमा, विष्णु, ब्रह्मा और शम्भू हैं।

II-4. अब पाँच कोश हैं, अन्न, प्राण, मन, ज्ञान और आनन्द।अन्नमय कोष अन्नमय ही है, अन्नमय ही है, अन्नमय ही है, अन्नमय ही है। अन्नमय ही है। पांच श्वास, प्राण आदि पांच कर्मेन्द्रियों के साथ प्राणमय कोष है। मनमय कोष ज्ञानेन्द्रियों सहित मन है। ज्ञानमय कोष ज्ञानेन्द्रियों सहित बुद्धि है। ये तीन कोष मिलकर सूक्ष्म शरीर है। आनन्दमय कोष अपने सार का ज्ञान है। यह कारण शरीर है।

II-5. अष्टांगिक नगर (सम्पूर्ण सूक्ष्म शरीर) में पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच श्वास, पांच तत्त्व जैसे आकाश, पांच अंतःकरण, इच्छा, कर्म और तमस हैं।

II-6. विश्व ज्ञानस्वरूप आत्मा है, सत् का प्रतिबिम्ब है, अनुभवात्मक है, जाग्रत अवस्था के स्थूल शरीर में दंभ धारण करता है। कर्मक्षेत्र (या कर्मों से उत्पन्न) भी विश्व का ही एक नाम है।

II-7. भगवान की आज्ञा से सूत्रात्मा (हिरण्यगर्भ) जीव के सूक्ष्म शरीर में प्रविष्ट हुआ और मन का निरीक्षण करते हुए तैजस हुआ। तैजस आभास है। स्वप्न का निर्माण तैजस का ही एक नाम है।

II-8. भगवान की आज्ञा से (आत्मा) माया के साथ अव्यक्त के साथ प्रविष्ट होकर वैयक्तिक कारण शरीर में प्रविष्ट होकर प्रज्ञा बन गई। प्रज्ञा अविभेदित है, वास्तविक है, 'गहन निद्रा में दंभ धारण करना' प्रज्ञा का नाम है।

II-9. तत्त्वमसि जैसे ग्रन्थ अज्ञान से छिपे हुए वास्तविक जीव की ब्रह्म से एकता और अव्यक्त का अंश बताते हैं; अन्य दो, अनुभवजन्य और मायावी जीवों (जागृत और स्वप्न-अवस्था में) का नहीं।

II-10. अंतःकरण में प्रतिबिम्बित चेतना ने तीन अवस्थाओं में भाग लिया। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्थाओं में विलीन होकर, जल के पहिये से जुड़ी बाल्टियों की शृंखला की तरह, और पीड़ित होकर, वह (जीव) मानो जन्मा और मरा हुआ है।

II-11. अब पाँच अवस्थाएँ हैं - जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मूर्च्छा और मृत्यु। जाग्रत अवस्था में ध्वनि आदि विषयों का ज्ञान होता है; कान आदि ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा; जब संबंधित (संरक्षक) देवताओं की सहायता मिलती है। भौहों के संधिस्थल पर स्थित और पैर से सिर तक पूरे (शरीर) में व्याप्त जीव, जुताई और बोआई जैसे सभी प्रकार के कार्यों का कर्ता बन जाता है। साथ ही अपने-अपने फलों की कटाई भी करता है। परलोक में प्रवास करके वह अपने कर्मों का फल भोगता है। कर्मों से थककर सम्राट की भाँति वह अन्तःकक्ष (नया शरीर) की ओर जाने वाले मार्ग पर चल पड़ता है।

II-12. जब ज्ञान और कर्म के साधन काम करना बंद कर देते हैं, तब स्वप्नावस्था आती है, जिसमें जाग्रत अवस्था के अर्धजागृत संस्कारों के कारण विषयों का ज्ञान और उनका ज्ञान होता है। वहाँ विश्व स्वयं अनुभवजन्य कर्मों के बंद हो जाने से नाड़ी-तंत्र में भ्रमण करता हुआ तैजस हो जाता है और अव्यक्त संस्कारों से युक्त संसार की दुर्लभता का मुक्त रूप से उपभोग करता है, जिसे वह अपने प्रकाश से प्रकाशित करता है।

II-13. सुषुप्ति का साधन केवल मन है। जैसे पक्षी अनियमित उड़ानों से थककर अपने पंख मोड़कर अपने घोंसले की ओर चल देता है, वैसे ही जीव भी जाग्रत और स्वप्न के लोकों में क्रीड़ा करता हुआ थककर अज्ञान में डूब जाता है और अपने आनन्द का आनंद लेता है।

II-14. मूर्च्छा की स्थिति मृत्यु के समान है, जिसमें गलती से डंडे, लाठी आदि से चोट लगने पर भय और अचेतनता के कारण इन्द्रियाँ हिलती हैं।

II-15. जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और मूर्च्छा की अवस्थाओं से भिन्न, ब्रह्मा से लेकर घास के झुरमुट पर्यन्त सभी जीवों को भय उत्पन्न करने वाली तथा शरीर के पतन का कारण बनने वाली मृत्यु की अवस्था है।

II-16. विविध विषयों के अनुरूप कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों तथा प्राणों को समेटकर, कामनाओं और कर्मों से युक्त होकर, अज्ञान और सूक्ष्म तत्त्वों से आच्छादित होकर जीव दूसरे लोक में चला जाता है। पूर्व कर्मों के फल के

पकने के कारण भंवर में फंसे हुए कीड़े के समान (जीव) अब विश्राम प्राप्त करता है।

II-17. पूर्वजन्मों के पुण्यकर्मों के फलस्वरूप मनुष्य अनेक जन्मों के अन्त में मोक्ष की खोज करता है। फिर आत्म-साक्षात्कार के गुरु का आश्रय लेकर और उनकी (निष्ठापूर्वक) दीर्घकाल तक सेवा करके मनुष्य बंधन और मोक्ष के विषय में जिज्ञासा करता है।

II-18. अन्वेषण के अभाव से बंधन होता है; अन्वेषण से मोक्ष होता है। इसलिए हर समय अन्वेषण करो। व्यक्ति का अपना स्वरूप आरोपित करने और उसके खंडन से निर्धारित होता है। इसलिए हमेशा व्यक्तिगत आत्मा और परम आत्मा के स्वरूप की खोज करो। जब जीव और जगत की स्थिति समाप्त हो जाती है, तब केवल ब्रह्म ही शेष रह जाता है, जो अंतरात्मा से भिन्न नहीं होता।

III-1-2. तब पैंगल ने याज्ञवल्क्य से कहा: प्रमुख ग्रंथों (महावाक्यों) की व्याख्या प्रस्तुत करो। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया: तुम वह हो; तुम वह हो; तुम ब्रह्म हो; मैं ब्रह्म हूँ - इस प्रकार ध्यान करना चाहिए।

III-3. 'तत्' शब्द का अभिव्यक्त अर्थ जगत-कारण है, जो 'अन्यता' (मध्यस्थता) से चिह्नित है, जिसमें सत्ता, चेतना और आनंद उसके लक्षण हैं, माया उसके सहायक और सर्वज्ञता आदि उसके लक्षण हैं। वही चेतना आंतरिक इंद्रिय, जो 'मैं' की धारणा का विषय है, के साथ मिश्रित होकर 'त्वम्' का व्यक्त अर्थ है। परमात्मा और जीव के उपबंधों, अर्थात् माया और अविद्या को अस्वीकार करते हुए, तत् और त्वम् का निर्दिष्ट अर्थ ब्रह्म है, जो आंतरिक आत्मा से भिन्न नहीं है।

III-4. 'श्रवण' 'तू ही है' और 'मैं ब्रह्म हूँ' जैसे प्रस्तावों के अर्थ की जांच है। चिंतन सुनी गई बात की विषय-वस्तु पर विशेष रूप से ध्यान लगाना है। ध्यान मन को वास्तविकता पर एकाग्र करना है, जो निस्संदेह जांच और चिंतन के माध्यम से किया जाता है। एकाग्रता, हवा रहित स्थान में एक लौ की तरह, विचार (चित्त) है जिसका विषय केवल ध्यान की जाने वाली वस्तु है, ध्यान के कर्ता और क्रिया से अलग है।

III-5. तब (मन की) आत्मा से संबंधित वृत्तियाँ, यद्यपि ऊपर उठती हैं, फिर भी अज्ञानी रहती हैं; वे केवल स्मृति से ही अनुमानित होते हैं। इस (समाधि) से ही आदिकाल से चले आ रहे भवसागर में संचित करोड़ों कर्म

नष्ट हो जाते हैं। कुशल अभ्यास से उसमें से सहस्र प्रकार से अमृत की धाराएँ प्रवाहित होती हैं। इसलिए योग के श्रेष्ठ ज्ञाता इस एकाग्रता को धर्ममेघ कहते हैं। जब इसके पुण्य से अव्यक्त संस्कारों के जाल पूरी तरह नष्ट हो जाते हैं और अच्छे-बुरे कर्मों का संचय अपनी जड़ों से उखड़ जाता है, तब जिस प्रस्ताव पर पहले ध्यान किया गया था, वह हथेली में रखे आंवले के समान अबाधित और तत्काल बोध उत्पन्न करता है।

तब व्यक्ति जीवनमुक्त हो जाता है।

तृतीय-6. भगवान ने पंचम तत्वों का अ-पंचमीकरण चाहा। कार्यरूपी स्थूल जगत् तथा उसमें सम्मिलित लोकों को कारण अवस्था में ले जाकर, सूक्ष्म कर्मेन्द्रियों, प्राणों, ज्ञानेन्द्रियों तथा चतुर्गुणी अन्तःकरण को एक करके, समस्त मूलभूत (कार्यों) को पंचकारण में परिणत करके, पृथ्वी को जल में, जल को अग्नि में, अग्नि को वायु में, वायु को आकाश में, आकाश को अहंकार में, अहंकार को महत् में, महत् को अव्यक्त में तथा अव्यक्त को आत्मा (पुरुष) में विलीन कर देता है। उपांगों के विलीन होने से विराट, हिरण्यगर्भ तथा ईश्वर परब्रह्म में विलीन हो जाते हैं।

तृतीय-7. संचित कर्मों के क्षीण होने तथा शुभ कर्मों के परिपक्व होने से अच्युत (शरीर) से एक होकर, कारण तथा उसके कारण में वापस आकर पंचम स्थूल तत्त्वों से किए गए कर्मों से उत्पन्न स्थूल शरीर अच्युत होकर अपरिवर्तनशील अन्तःकरण में विलीन हो जाता है। विश्व, तैजस और प्रज्ञा अपने उपांगों के विलीन होने के कारण उसी में विलीन हो जाते हैं।

III-8. ज्ञानाग्नि में भस्म हुआ सूक्ष्म जगत अपने कारणों सहित परम आत्मा में विलीन हो जाता है। इसलिए ब्राह्मण को चाहिए कि वह तत् और त्वम् शब्दों की एकता पर एकाग्रचित्त होकर ध्यान करे। तत्पश्चात् जब बादल छंट जाते हैं, जैसे सूर्य चमकता है, तब आत्मा प्रकट होती है।

III-9-10. अँगूठे के आकार के, धूमरहित ज्वाला के समान हृदय के मध्य में स्थित, अविनाशी, अविचल ज्योति के समान प्रकाशमान आत्मा का ध्यान करे। मौन जीवनमुक्त मुनि निद्रा तक, मृत्यु तक ध्यान करते रहते हैं; वे ही धन्य हैं, जिन्होंने अपना कर्तव्य पूरा कर लिया है।

III-11. जब मनुष्य का शरीर काल द्वारा भस्म हो जाता है, तब वह जीवन्मुक्ति की स्थिति को त्यागकर, वायु के स्थिर हो जाने के समान निर्जीव मोक्ष की स्थिति को प्राप्त होता है।

III-12. वह अविनाशी और निश्चित (एक), शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध से रहित, आदि और अंत से रहित, महत् से परे, एकमात्र अशुद्धि और दुःख से रहित रहता है।

चतुर्थ-१. तब पिंगला ने याज्ञवल्क्य से पूछाः ज्ञानी कैसे कार्य करता है? वह कैसे विश्राम में रहता है?

चतुर्थ-२. याज्ञवल्क्य ने उत्तर दियाः मोक्ष चाहने वाला, अहंकार आदि से मुक्ति पाकर, २१ पीढ़ियों (अपने पूर्वजों और वंशजों की) को पार कर जाता है। ब्रह्म को जानने वाला अकेले १०१ पीढ़ियों को पार कर जाता है।

चतुर्थ-३. आत्मा को रथ पर सवार जानो, शरीर को ही रथ, बुद्धि को सारथी और मन को लगाम जानो।

चतुर्थ-४. ज्ञानी कहते हैं कि इन्द्रियाँ घोड़े हैं, विषय वे हैं जिन पर वे विचरण करती हैं, हृदय चलते-फिरते अनेक मंजिलों वाले भवन हैं।

चतुर्थ-५. महर्षियों ने कहा है कि इन्द्रियों और मन से संयुक्त आत्मा ही अनुभवकर्ता है। अतः हृदय में नारायण तुरन्त ही प्रतिष्ठित हो जाते हैं।

चतुर्थ-६. कर्मों के समाप्त होने तक गृहहीन मुक्तात्मा सर्प के केंचुल के समान, आकाश में चन्द्रमा के समान आचरण करता है।

चतुर्थ-7. शरीर को पवित्र स्थान पर अथवा कुत्ते का मांस खाने वाले के घर में त्यागने से मुक्तात्मा एकांतवास प्राप्त करता है।

चतुर्थ-8. तत्पश्चात शरीर को दिशाओं में अर्पित कर देना चाहिए अथवा दफना देना चाहिए। भिक्षाटन केवल पुरुष के लिए ही निर्धारित है, अन्य के लिए नहीं।

चतुर्थ-9. ब्रह्म बन चुके भिक्षाटनकर्ता के लिए प्रदुषण काल का पालन नहीं करना चाहिए, शव को जलाना नहीं चाहिए, चावल अथवा जल का अर्पण नहीं करना चाहिए, पाक्षिक अनुष्ठान नहीं करने चाहिए।

चतुर्थ-10. जो खाया जा चुका है, उसे जलाना नहीं चाहिए, जैसे जो पकाया जा चुका है, उसे पकाना नहीं चाहिए। जिसका शरीर ज्ञानाग्नि में भस्म हो

गया है, उसके लिए न तो चावल का हवन होता है, न ही कोई अन्य क्रिया (अंतिम संस्कार) होती है।

IV-11. जब तक उपादान (शरीर आदि) विद्यमान हैं, तब तक गुरु की सेवा करनी चाहिए। गुरु की पत्नी और बच्चों के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए, जैसा गुरु के साथ करता है।

IV-12. जब 'मैं वही हूँ!' 'मैं वही हूँ' - इस ज्ञान से - जिसका मन शुद्ध सार है, शुद्ध आत्मा है, दीर्घ-सहनशील है - ज्ञान प्राप्त हो जाता है, जब ज्ञान का विषय, परमात्म आत्मा, हृदय में स्थापित हो जाता है; जब शरीर प्राप्त शांति की स्थिति में विलीन हो जाता है, तब मनुष्य तेजोमय मन और बुद्धि से रहित हो जाता है।

IV-13. जिसने अमृत से तृप्त हो गया, उसके लिए जल किस काम का? उसी प्रकार जिसने अपने आपको जान लिया, उसके लिए वेद किस काम के? जो योगी ज्ञान रूपी अमृत से तृप्त हो गया, उसके लिए कोई कर्तव्य नहीं रह जाता। यदि कर्तव्य है, तो वह सत्य का ज्ञाता नहीं है। दूर स्थित होने पर भी वह दूर नहीं है; देहधारी होने पर भी वह अशरीरी है; वह सर्वव्यापी अंतरात्मा है।

IV-14. हृदय को शुद्ध करके, (सबका) कल्याण चिंतन करते हुए, 'मैं ही परम हूँ, सर्व हूँ' इस विचार में परम आनंद का अनुभव करना चाहिए।

IV-15. जैसे जल में जल, दूध में दूध और घी में घी डालने पर कोई भेद नहीं रहता, वैसे ही जीवात्मा और परमात्मा में भी कोई भेद नहीं रहता।

IV-16. जब ज्ञान से शरीर जल जाता है और ज्ञान अनंत रूप में हो जाता है, तब ज्ञाता ब्रह्मज्ञान की अग्नि में कर्म के बंधन को भस्म कर देता है।

IV-17. तब पवित्र अद्वैत (वास्तविकता) की स्थिति होती है, जिसका नाम परमेश्वर है, जो निष्कलंक आकाश के समान है। आत्मा का स्वभाव, बिना किसी जोड़ के रहने वाला, जल में जल मिले हुए स्वभाव के समान है।

IV-16. IV-18. सूक्ष्म शरीर में आत्मा आकाश के समान है। वायु के समान अन्तरात्मा का बोध नहीं होता। वह निश्चल अन्तरात्मा ज्ञान की मशाल से बाह्य (अनेक) को बोध करती है।

IV-19. मृत्यु के किसी भी कारण से मरा हुआ ज्ञाता, सर्वव्यापक आकाश के समान ब्रह्म में लीन हो जाता है।

IV-20. इस लीनता को वह सत्य रूप में भस्मासुर (अनंत आकाश में) जानता है। वह सर्वव्यापक ज्ञान के स्वयंभू प्रकाश की स्थिति को प्राप्त करता है।

IV-21. मनुष्य एक पैर पर खड़ा होकर एक हजार वर्ष तक तपस्या करे; परन्तु वह तपस्या इस ध्यानयोग के सोलहवें भाग से भी कम है।

IV-22. यह ज्ञान है, यह जानना है, यह सब जानना चाहता है। यदि वह हजार वर्ष भी जीवित रहे, तो भी शास्त्रों के अंत तक नहीं पहुँच सकता।

IV-23. जो जानना चाहिए, वह तो अविनाशी है; (परन्तु) जीवन क्षणभंगुर है। शास्त्रों के चक्रव्यूह से बचकर सत्य का ही ध्यान करो। IV-24. कर्म अनंत हैं - शुद्धि, नामस्मरण, यज्ञ, तीर्थयात्रा। ये सब सत्य की प्राप्ति तक ही मान्य हैं।

IV-25. महात्माओं के लिए मोक्ष का निश्चित कारण 'मैं ब्रह्म हूँ' का ज्ञान है। बंधन और मोक्ष को निर्धारित करने वाले दो शब्द हैं 'मेरा' और 'मेरा नहीं'।

IV-26. 'मेरा' का अर्थ जीव को बाँधता है, 'मेरा नहीं' के अर्थ से वह मुक्त होता है। जब मन का मोह समाप्त हो जाता है, तब द्वैत का बोध नहीं रहता।

IV-27. जब मोह समाप्त हो जाता है, तब वह परम पद बन जाता है। तब मन जहाँ भी जाता है, वहाँ परम पद है।

IV-28. इस प्रकार, वहाँ, सर्वत्र ब्रह्म सुप्रतिष्ठित है। जो 'मैं ब्रह्म नहीं हूँ' ऐसा मानता है, उसके लिए कोई मुक्ति संभव नहीं है; (यह उतना ही व्यर्थ है) जितना मुट्ठी बाँधकर आकाश पर प्रहार करना या भूखे आदमी का भूसा चबाना।

IV-29. जो व्यक्ति उपनिषद का नियमपूर्वक (प्रतिदिन) अध्ययन करता है, वह अग्नि से, वायु से, सूर्य से, विष्णु से, रुद्र से पवित्र हो जाता है। उसने सभी पवित्र जल में स्नान किया है। वह सभी वेदों में पारंगत है; उसने सभी

वेदों द्वारा बताए गए सभी पवित्र अनुष्ठान किए हैं। उसने लाखों इतिहास और पुराणों का तथा एक लाख गुना रुद्र (तंत्र) का अनुष्ठानपूर्वक उच्चारण किया है। उसने पवित्र अक्षर ॐ का लाखों बार उच्चारण किया है।

वह अपने वंश की पिछली और भविष्य की दस पीढ़ियों का उद्धार करता है।वह भोजन करने वालों की पंक्तियों को शुद्ध करता है, जिनमें वह भी एक है।वह महान हो जाता है।वह ब्राह्मण-हत्या, मद्यपान, चोरी, गुरु-पत्नी के साथ व्यभिचार और इन पापों के दोषी लोगों की संगति के पापों से शुद्ध हो जाता है।

IV-30.विष्णु की वह परम स्थिति, आँख की तरह आकाश में फैली हुई है, जिसे ज्ञानी लोग हमेशा देखते हैं।

IV-31.बुद्धिमान, सदैव सतर्क और स्तुति में तत्पर लोग विष्णु की उस परम स्थिति की भरपूर महिमा करते हैं।

IV-32.ॐ-सत्य - यह गुप्त शिक्षा है।ॐ ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है।अनंत से अनंत की उत्पत्ति होती है।(तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर,वह केवल अनंत (ब्रह्म) ही रह जाता है।

ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यजुर्वेद के शुक्ल पक्ष से संबंधित पैंगलोपनिषद यहीं समाप्त होता है।

060 - भिक्षु उपनिषद

ओम! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है।
अनंत अनंत से ही निकलता है।
(तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर,
वह केवल अनंत (ब्रह्म) ही रह जाता है।

ओम! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. मुक्ति चाहने वाले भिक्षु चार प्रकार के होते हैं: कुटीचक, बहुदक, हंस और परमहंस।

2. कुटीचक (झोपड़ी में रहने वाले तपस्वी) जैसे (प्राचीन काल के ऋषि जैसे) गौतम, भारद्वाज, याज्ञवल्क्य और वसिष्ठ, आठ कौर भोजन पर निर्वाह करते हैं और केवल योग के मार्ग से मुक्ति चाहते हैं।

3. इसके बाद बहुदक तपस्वी (जो मुख्यतः पवित्र जल वाले पवित्र स्थान पर रहते हैं) जो त्रिदंड और जलपात्र धारण करते हैं तथा शिखा, पवित्र धागा और गेरू रंग के वस्त्र पहनते हैं। शराब और मांस से परहेज करते हुए, वे ब्राह्मण ऋषियों के घरों से भिक्षा के रूप में प्राप्त आठ कौर भोजन पर निर्वाह करते हैं और योग के मार्ग में अकेले ही मुक्ति की तलाश करते हैं।

4. फिर हंस तपस्वी आते हैं जो एक रात गाँव में, पाँच रात शहर में और सात रात या उससे अधिक पवित्र स्थान पर आश्रय लेते हैं। गाय के मूत्र और गाय से प्राप्त अन्य उत्पादों पर निर्वाह करते हैं और हमेशा चंद्रायण व्रत के आदी होते हैं, वे योग के मार्ग में अकेले ही मुक्ति की तलाश करते हैं। 5. फिर परमहंस तपस्वी हैं (जैसे प्राचीन काल के ऋषि जैसे) संवर्तक, अरुणी, श्वेतकेतु, जड़भारत, दत्तात्रेय, शुक, वामदेव और हरित, जो आठ कौर भोजन पर जीवित रहते हैं और योग के मार्ग में अकेले मोक्ष की तलाश करते हैं। वे पेड़ों की छाया में, सुनसान घरों में या कब्रिस्तान में शरण लेते हैं।

वे कपड़े पहन सकते हैं या बिना कपड़े के रह सकते हैं। वे न तो धर्म का पालन करते हैं और न ही अधर्म का (यानी वे देश के कानूनों से ऊपर हैं)। वे किसी भी चीज़ के लाभ और हानि के बारे में नहीं जानते। वे विशिष्टाद्वैत (रामानुज द्वारा प्रतिपादित), शुद्धाद्वैत (माधवाचार्य का) और अशुद्धाद्वैत के सिद्धांतों को त्याग देते हैं। वे कंकड़, पत्थर और सोने को समान मानते हैं जो सब जातियों से भिक्षा लेते हैं और सर्वत्र आत्मा को ही देखते हैं।

वस्त्रहीन, विपरीतताओं (गर्मी-सर्दी आदि) से अप्रभावित, कोई दान ग्रहण न करने वाले, केवल शुद्ध ध्यान में लगे रहने वाले, केवल आत्मा में

स्थित, जीवन निर्वाह के लिए निर्धारित समय पर भिक्षा ग्रहण करने वाले, (रात्रि में) सुनसान घर, मंदिर, घास के ढेर, चींटी के टीले, वृक्ष की छाया, कुम्हार की झोपड़ी, अग्नि रखने का स्थान, नदी का रेतीला किनारा, पहाड़ की झाड़ी या खोह, वृक्ष की खोह, झरने के समीप या स्वच्छ भूमि के टुकड़े में आश्रय लेने वाले, वे ब्रह्म को प्राप्त करने के मार्ग पर अग्रसर होते हैं; शुद्ध मन से वे परमहंस बनकर त्याग की अवस्था में अपने शरीर का त्याग करते हैं।

वे वास्तव में परमहंस हैं (क्योंकि वे ब्रह्म में लीन हो जाते हैं)। इस प्रकार उपनिषद समाप्त होता है। ॐ ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है। अनंत अनंत से ही निकलता है। (तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर, वह अनंत (ब्रह्म) ही रह जाता है। ॐ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ शुक्ल-यजुर्वेद से संबंधित भिक्षुकोपनिषद समाप्त होता है।

061 - महा उपनिषद

ॐ ! मेरे अंग और वाणी, प्राण, नेत्र, कान, प्राणशक्ति
और सभी इंद्रियाँ शक्तिशाली बनें।
सारी सत्ता उपनिषदों का ब्रह्म है।
मैं कभी ब्रह्म को अस्वीकार न करूँ, न ब्रह्म मुझे अस्वीकार करे।
कोई भी अस्वीकार न हो:
कम से कम मेरी ओर से तो कोई अस्वीकार न हो।
उपनिषदों में जिन गुणों की घोषणा की गई है, वे मुझमें हों,
जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।
ॐ ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

I-1-4. फिर हम महोपनिषद की व्याख्या करेंगे। वे कहते हैं कि नारायण अकेले थे। ब्रह्मा, शिव, जल, अग्नि और सोम, स्वर्ग और पृथ्वी, तारे, सूर्य

और चंद्रमा नहीं थे। वे सुखी नहीं हो सकते थे।परमात्मा की इच्छा से यज्ञस्तोम (अव्यक्त नाम से प्रसिद्ध स्तोत्र) उत्पन्न हुआ।

1-5-6. उसमें चौदह पुरुष (ब्रह्म, विष्णु, रुद्र, ईशान, सदाशिव और दक्ष आदि नौ प्रजापति), एक कन्या (मूल प्रकृति), दस इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ), ग्यारहवाँ मन, बारहवाँ तेज बुद्धि, तेरहवाँ अहंकार, चौदहवाँ प्राण, पंद्रहवाँ आत्मा, बुद्धि, काम, कर्म और तम, पाँच तन्मात्राएँ, स्थूल तत्त्व तथा सत्ता पच्चीसवाँ (सूत्रात्मा) थी।उसे सृष्टि में नियोजित करके परम सत्ता अनासक्त रही। उसी से सब वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं।

1-7. फिर नारायण ने कुछ और इच्छा करके सोचा। उसके माथे से त्रिशूल और तीन नेत्रों वाला एक पुरुष उत्पन्न हुआ, जिसके पास यश, कीर्ति, सत्य, ब्रह्मचर्य, तप, वैराग्य, मन, प्रभुता, सात व्याहृतियाँ (भूर आदि) तथा प्रणव, ऋक् और अन्य वेद थे, सभी छन्द उसके शरीर में थे - इसलिए वह महान् भगवान् है। फिर उसने कुछ और इच्छा करके सोचा - उसके माथे से पसीना गिरा और वह भगवान् बन गया।
विस्तृत जल: उसमें से एक चमकीला सुनहरा अंडा - उसमें पूर्व की ओर मुख किए हुए चार सिर वाले ब्रह्मा उत्पन्न हुए। नारायण व्याहृति, भूर, छन्दस गायत्री, ऋग्वेद और देवता अग्नि बने। पश्चिम की ओर मुख करके वे भुवर, छन्दस त्रिस्तुभ, यजुर्वेद और देवता वायु बने। उत्तर की ओर मुख करके वे व्याहृति सुवर, जगति-छन्दस, साम-वेद और देवता सूर्य बने। दक्षिण की ओर मुख करके वे महार, छन्दस अनुस्तुभ, अथर्ववेद और सोम बने।

I-10-13. (ध्यान करें) हजार सिरों और आंखों वाले देवता, ब्रह्मांडीय कल्याण के स्रोत, सबसे परे, शाश्वत नारायण - ब्रह्मांड उन्हीं में विद्यमान है। कमल के फूल की भांति मानव हृदय नीचे लटकता है, जीवन को बनाए रखने के लिए ठंडे पानी की बूंदें टपकाता है। इसके मध्य में एक महान ज्वाला है, जो सर्वत्र, सूक्ष्म और ऊपर की ओर मुख किए हुए है; महान सत्ता विद्यमान है - वह ब्रह्मा, शिव, इंद्र, अविनाशी और स्वयं प्रकाशित है।

II-1-11. शुक, महान तेज वाले, प्राकृतिक आनंद के प्रति समर्पित, ऋषियों के राजकुमार, ने जन्म के समय ही सत्य का साक्षात्कार कर लिया था (बिना किसी शिक्षा के)। इसी प्रकार एक व्यक्ति भी दीर्घ आत्मविश्लेषण द्वारा स्वयं ही आत्मा का निश्चित ज्ञान प्राप्त कर सकता है। (ऐसा इसलिए है) क्योंकि आत्मा वर्णन से परे है, मन और इंद्रियों द्वारा

(सांसारिक साधनों से) अप्राप्य है; शुद्ध आनंद, अणु, आकाश से भी सूक्ष्म। लाखों कण शक्ति के घूर्णन द्वारा परम सत्ता के अंदर उत्पन्न, निर्वाह और विलय से गुजरते हैं।

परम सत्ता ईथर है क्योंकि इसके बाहर कुछ भी नहीं है और फिर भी ईथर नहीं है, क्योंकि यह सब शुद्ध चेतना है - यह ऐसी कोई चीज नहीं है जिसे वस्तु, वास्तविकता आदि के रूप में इंगित (निर्दिष्ट) किया जा सके। वह चेतन है, चमकदार है, फिर भी चट्टान की तरह है, क्योंकि उसे (सामान्य रूप से) जाना नहीं जा सकता; अपने में, शुद्ध आकाश में जगत् की चित्र-जैसी जागृति (अस्तित्व) उत्पन्न करने वाला। यह ब्रह्माण्ड उस सत्ता की अभिव्यक्ति मात्र है, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है; ब्रह्माण्ड में भेद भी उसकी अभिव्यक्ति है।

वह सर्वत्र विद्यमान है, प्रत्येक वस्तु से जुड़ा हुआ है, फिर भी वह गति नहीं करता, क्योंकि जाने के लिए कहीं है ही नहीं; वह अस्तित्व में नहीं है, क्योंकि अस्तित्व के लिए कहीं (आधार) नहीं है, फिर भी अस्तित्व में है, क्योंकि वह स्वभावतः सत्ता है। ब्रह्म ज्ञान है, आनन्द है, तथा जीवनमुक्ति देने वाला आश्रय (स्रोत) है। समस्त मानसिक इच्छाओं का त्याग ही (उस ज्ञान की ओर जाने वाला) मार्ग है। बुद्धिमान लोग कहते हैं कि उस सत्ता का ज्ञान ही सांसारिक धारणाओं का अभाव है। ब्रह्माण्ड का प्रलय और उत्पत्ति क्रमशः शक्ति के संकुचन और विस्तार के कारण होते हैं। वेदान्तिक कथनों का आधार, फिर भी शब्दों से परे, यह 'मैं वास्तविकता, ज्ञान, आनन्द और कुछ भी नहीं' है।

II-12-13। शुक ने यह सब अपनी सूक्ष्म बुद्धि से जाना; फिर उसका मन निरंतर उसी में लीन रहने लगा। उसे यह धारणा नहीं थी कि आत्मा वास्तविक है; उसका मन केवल सांसारिक प्रलोभनों से विमुख हो गया था, अनेक (भौतिक) सांसारिक भोगों से, जो बहुत अधिक टूट जाते हैं, जैसे तृप्त चातक पक्षी तेज जल से।

II-14-37। (वह सब जानता था, परन्तु परम्परा के प्रति आदर के कारण, इस अवस्था में गुजर गया)। एक बार शुद्ध ज्ञानी शुक ने मेरु पर्वत पर एकान्त में बैठे हुए अपने पिता द्रष्टा व्यास से भक्तिपूर्वक पूछा, 'हे द्रष्टा, यह सांसारिक जीवन का विस्तृत आडम्बर कैसे उत्पन्न हुआ, यह कैसे विलीन हो जाता है, कितना और कब होता है?' इस प्रकार पूछे जाने पर व्यास ने अपने पुत्र को सारी बातें बता दीं। यह सब कुछ पहले से ही जानने के कारण शुक ने मौखिक कथन का महत्व नहीं समझा।

पुत्र के विचार को जानकर महर्षि व्यास ने कहा, 'मैं सत्य को नहीं जानता; तुम मिथिला के राजा जनक से सब जान सकते हो, जो इसे ठीक से जानते हैं। यह सुनकर शुक वहाँ से पृथ्वी पर चला गया और जनक द्वारा शासित विदेह नगर में पहुँचा। जनक को द्वारपालों ने बताया कि 'हे राजन, व्यासपुत्र शुक द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे हैं।' शुक को जानने की इच्छा से जनक ने कहा 'उसे प्रतीक्षा करने दीजिए' और सात दिन तक वहीं रुके रहे।

फिर उसने उसे दरबार में आने की अनुमति दी और जनक ने शुक को स्त्रियों और अन्य सुख-सुविधाओं से भोग लगाया। वे शुक को आकर्षित नहीं कर सके, जैसे हल्की हवा पहाड़ को हिला नहीं सकती। वे पूर्ण चन्द्रमा की तरह शुद्ध, सम, मौन और संयमित रहे। जनक ने उनकी ओर देखा और उनके स्वभाव को जानते हुए उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने कहा 'तुमने सभी सांसारिक कर्मों और अपनी सभी इच्छाओं के लिए (और) क्या चाहते हो? शुक ने उत्तर दिया 'यह भव्य संसार - यह कैसे उत्पन्न हुआ और कैसे विलीन हो गया?

जनक ने सब ठीक-ठीक बताया - जैसा कहा गया था पिता व्यास ने कहा था। 'मैं भी यह पहले से जानता था, मेरे पिता ने भी यही कहा था, आपने भी कहा था, महावाक्यवाचक ने भी यही कहा था; शास्त्रों में भी यही बात कही गई है। कल्पित ... मन के संस्कारों (प्रवृत्तियों) का उत्तम, सम्पूर्ण त्याग ही सत्पुरुषों द्वारा मोक्ष कहा गया है - यह एक शुद्ध प्रक्रिया है, जबकि जिनकी प्रवृत्तियाँ त्यागी नहीं गई हैं, बल्कि शुद्ध हो गई हैं, जो पुनर्जन्म के भय से रहित हैं - वे ज्ञानी पुरुष ज्ञानी, जीवन्मुक्त कहे गए हैं। विषयों का तीव्र चिन्तन करना बन्धन कहा गया है, हे ब्रह्म, उसका क्षीण होना ही मोक्ष है।

II-42-62। जिसने तप आदि के द्वारा, अन्य किसी कारण से, भोगों की रुचि खो दी है, वह 'जीते हुए मुक्त' कहा गया है। जो समयानुसार सुख-दुःख आने पर भी न तो हर्षित होता है, न ही व्याकुल होता है; जो अभिमान, क्रोध, भय, काम और क्षुद्रता से मन में अछूता रहता है; जो अहंकार की प्रवृत्ति को खेल-खेल में त्याग देता है और चिन्तन को त्यागकर रहता है; जो अंतर्मुखी होने के कारण इच्छा और अ-इच्छा से मुक्त है और गहरी नींद में रहने जैसा व्यवहार करता है;

जो आत्मा में रमण करता हुआ बैठा है, पूर्ण है, मन में शुद्ध है, उत्तम विश्राम प्राप्त है और भौतिक संसार में कुछ भी नहीं चाहता है और बिना

किसी कर्म के रहता है;जो ज्ञान के विषयों से हृदय में अलिप्त है और जिसकी चेतना निष्क्रिय नहीं है;

जो बिना किसी अपेक्षा के, पसंद और नापसंद (कार्यों) (कार्यों) को, सुख और दुख, पुण्य और पाप, सफलता और असफलता (कार्यों) को करता है;
जो चुप है, अहंकार रहित है, अभिमान रहित है, ईर्ष्या से दूर है और बिना किसी उत्तेजना के कार्य करता है;

जो एक अलग दर्शक की तरह रहता है और बिना आसक्ति और इच्छा के हर जगह कार्य करता है;जिसने धर्म और अधर्म, विचार और इच्छा को आंतरिक रूप से त्याग दिया है;जिसने (सांसारिक) दृष्टिकोण को पूरी तरह से त्याग दिया है;

जो कड़वा, खट्टा, नमकीन, कसैला, मसालेदार और बिना मसालेदार जो कुछ भी खाता है, उसे समान रूप से अलग करता है; जिसने धर्म और अधर्म, सुख और शोक, मृत्यु और जन्म को त्याग दिया है;जो तनाव और हर्ष से मुक्त है, न उदास होता है और न प्रसन्न होता है, जिसकी बुद्धि शुद्ध है;
जिसने सभी इच्छाओं, सभी संशय, सभी कल्पनाओं, सभी कठोर विचारों को त्याग दिया है;जो जन्म, अस्तित्व और मृत्यु, उत्थान और पतन के प्रति सम है।
जो किसी भी चीज के प्रति घृणा या लालसा नहीं करता है और आकस्मिक सुख का आनंद लेता है।जिसका सांसारिक जीवन का विचार शांत हो गया है, जिसके पहलू हैं और फिर भी वह पहलू-रहित है, मन है - फिर भी मनहीन।जो सभी वस्तुओं के प्रति सक्रिय है, फिर भी इच्छा रहित है जैसे कि वे विदेशी वस्तुएं हैं, आत्मा से भरा हुआ है।

II-63-69। वह जीवन्मुक्त की स्थिति को छोड़ देता है जब यह शरीर काल (मृत्यु) में समा जाता है और अदेहमुक्त (शरीर के बिना मुक्त) की स्थिति में प्रवेश करता है, जैसे हवा चलती नहीं है।ऐसा व्यक्ति न तो उदय होता है और न ही अस्त, न ही वह वास्तविक है और न ही अवास्तविक, न ही वह दूर है, न ही 'मैं' और न ही 'दूसरा'।उसके अतिरिक्त न तो कोई तेज है, न अंधकार है, जो स्थिर, गहन, अवर्णनीय और अव्यक्त है।

शून्य नहीं, आकार नहीं, दृश्य नहीं, दर्शन नहीं; सृष्टि का समूह नहीं, अपितु अनंत रूप से विद्यमान है। प्रकृति में अनिर्दिष्ट, पूर्ण से भी अधिक पूर्ण, न सत् है, न अवास्तविक, न सत् है, न अस्तित्व में आने वाला, शुद्ध

चैतन्य; न चैत्य (मन द्वारा निर्मित जगत), अनंत, अनादि, शुभ, जिसका न आदि, न मध्य, न अंत है, मन या शरीर में कोई व्याधि नहीं है। जिसे माना जाता है।द्रष्टा, दर्शन और दर्शन के विषय के बीच में दर्शन। हे मुनि! इससे परे निश्चय ही कुछ नहीं है।

II-70-73। यह तुम स्वयं जानते हो और गुरु से भी सुना है: - मनुष्य अपनी कल्पना से बंधा हुआ है और उससे मुक्त होकर मुक्त हो जाता है - समस्त दृश्यमान (बाह्य) विषयों के भोग के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो गया है; जो कुछ प्राप्त होना है, वह तुमने पूर्ण मन से प्राप्त कर लिया है; तुम अपने स्वरूप के विषय में (भ्रमित) अनुभव करते हो, किन्तु अब मुक्त होकर, भ्रांति का त्याग करो; तुम देखते हो कि तुम बाह्य और आन्तरिक से परे स्वयं ब्रह्म हो - तुम देखते हो, किन्तु तुम नहीं देखते; तुम एकमात्र और पूर्ण दर्शक हो।

II-74-77। शुक, शोक, भय और तनाव से रहित होकर, अपनी सामान्य स्थिति में, परब्रह्म में मौन (निष्क्रिय) विश्राम करते हुए। फिर वे बिना रोक-टोक के, समाधि के लिए मेरु पर्वत के शिखर पर चले गए। वहाँ सहस्त्रों वर्षों तक वे 'अनन्य समाधि' में रहे और बिना तेल की ज्वाला के समान अपने में ही विश्राम प्राप्त किया। अनेक विचारों के दोष से शुद्ध होकर, शुद्ध और शुद्ध अवस्था में वे एक हो गए, और समस्त (सांसारिक) प्रवृत्तियाँ समुद्र में जल की बूँद के समान पिघल गईं।

तृतीय-१-१५। एक बालक, निदाघ, ऋषियों का राजकुमार और प्रबुद्ध, अपने पिता से तीर्थ यात्रा करने की अनुमति प्राप्त करके, साढ़े तीन करोड़ तीर्थों में स्नान करके, फिर ऋभु को अपने बारे में बताया। 'इतने सारे स्थानों में स्नान करने के बाद, मेरे मन में एक जिज्ञासा (प्रश्न) उत्पन्न हुई है: संसार केवल मरने के लिए पैदा होता है और पुनर्जन्म के लिए ही मरता है - जंगम और अचल वस्तुओं के सभी कार्य क्षणभंगुर हैं; ऐसी चीजें जो वैभव के स्रोत हैं, पापपूर्ण हैं और सभी विपत्तियों को जन्म देती हैं; एक दूसरे से असंबद्ध, लोहे की खूंटियों की तरह, वे केवल मानसिक कल्पना से ही एक साथ आते हैं।

मैं विभिन्न वस्तुओं में रुचि खो चुका हूँ, रेगिस्तान में यात्री की तरह मेरा मन इस बात से परेशान है कि यह दुःख कैसे कम होगा; धन मुझे प्रसन्न नहीं करता, बल्कि केवल चिंताओं का चक्र देता है जैसे कि बच्चों और महिलाओं वाले घर खतरे का कारण बनते हैं। संसार में यह (भौतिक) वैभव नाजुक है, केवल भ्रम पैदा करता है, सुख नहीं देता। जीवन एक कोमल पत्ते

के ऊपर लटकी हुई पानी की बूंद की तरह अस्थिर है; एक पागल व्यक्ति की तरह यह अचानक शरीर को छोड़कर चला जाता है। जीवन उन लोगों के लिए तनाव का कारण बनता है जिनका मन सांसारिक वस्तुओं के सांप के जहर के संपर्क से चकनाचूर हो गया है और जिनमें आत्म-विवेक का अभाव है।

हवा को घेरना और (खाली) जगह को काटना, पानी की लहरों को एक साथ जोड़ना उचित है, लेकिन (सांसारिक) जीवन के प्रति आसक्ति को नहीं छोड़ना है। (इसके विपरीत) ब्रह्म को प्राप्त करने से जो मिलना है वह मिल जाता है, जिससे कोई दुःख नहीं होता; वह परम आनन्द का स्थान है। वृक्ष भी जीवित रहते हैं, पशु-पक्षी भी जीवित रहते हैं - केवल वही जीवित रहता है, जिसका मन चिंतन से पोषित रहता है; अन्य जिनका पुनर्जन्म नहीं होता, वे केवल बूढ़े गधे हैं।

शास्त्र उस व्यक्ति के लिए बोझ है, जिसमें विवेक नहीं है, ज्ञान उस व्यक्ति के लिए बोझ है, जो जीवन से आसक्त है; मन उस व्यक्ति के लिए बोझ है, जो सुरक्षाहीन है, तथा शरीर उस व्यक्ति के लिए बोझ है, जो स्वयं से अनभिज्ञ है। अहंकार से खतरा उत्पन्न होता है, बुरे मानसिक रोग और इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं - अहंकार से अधिक खतरनाक कोई शत्रु नहीं है; इस चर-अचर जगत में अहंकार ने जो कुछ भी भोगा - वह सब मिथ्या है; केवल अहंकार से मुक्ति ही वास्तविक है। मन व्यर्थ और उत्साह से गाँव में कुत्ते की तरह इधर-उधर भागता है।

हे ब्रह्मन्! मैं प्यास की खोज में जड़ हो गया हूँ और मेरा मन मुझे कुत्ते की तरह खा रहा है। मन को वश में करना असंभव है, चाहे समुद्र को पीकर, मेरु को उखाड़कर और अग्नि को खाकर भी। मन ही विषयों का कारण है, जब वह रहता है, तो तीनों लोक रहते हैं, जब नहीं रहता, तो तीनों लोक रहते हैं, इसलिए इसे प्रयत्नपूर्वक ठीक करना चाहिए।

मैं जो भी पुण्य-धन अर्जित करता हूँ, उसे तृष्णा उसी प्रकार काट डालती है, जैसे चूहा डोरी को काट डालता है। तृष्णा चंचल बन्दर है - वह दुर्गम स्थानों में पैर रखती है, फलों से भरपूर होने पर भी उसके पीछे भागती है, किसी स्थान पर अधिक समय तक नहीं टिकती। गला कमल-हृदय में रहने वाली मधुमक्खी है। एक क्षण वह पाताल में चली जाती है, दूसरे क्षण आकाश में, और तीसरे क्षण अंतरिक्ष की झाड़ी में मँडराती है; सांसारिक जीवन के सभी दुःखों में तृष्णा ही सबसे अधिक दुःख देती है; यह हरम में रहने वाले

व्यक्ति को बहुत कष्ट में डाल देती है।तृष्णा रूपी हैजा का निवारण करने के लिए चिन्तन का परित्याग ही मंत्र है।

II-27-38। शरीर के समान दयनीय, दीन और गुणहीन कोई वस्तु नहीं है। यह थोड़े से ही प्रसन्न होता है और थोड़े से ही दुःख पाता है। यह शरीर गृहस्थ अर्थात् अहंकार का महान् निवास है। यह इधर-उधर घूमता रहे या स्थिर रहे - हे गुरुवर, मुझे इससे क्या लेना-देना! यह शरीर मुझे अच्छा नहीं लगता - इन्द्रियाँ (पशु) छः रस्सियों (दुष्प्रवृत्तियों) से बँधी हुई हैं - इसके आँगन में अहंकार उछलता-कूदता रहता है, इसमें सेवकों - मन - की भीड़ लगी रहती है। यह बन्दर (जीभ) के प्रवेश द्वार से डराने वाला है - इसमें दाँत और हड्डियाँ दिखाई देती हैं।

मुझे बताओ, इस शरीर में क्या आकर्षक है जो रक्त और मांस से बना है, भीतर और बाहर से, और जिसका नाश ही होना है - वह शरीर पर भरोसा करे, जो बिजली, शरद ऋतु के बादलों और आकाश में नगरों (भ्रम) में स्थिरता देखता है। बचपन शिक्षक, माता, पिता, अन्य लोगों और बड़े बच्चों से डरने का घर है। मनुष्य अपने मन की गुफा में वासना के भूत से अभिभूत होता है और अनेक भ्रमों का कारण बनता है।

दास, पुत्र, स्त्रियाँ, सम्बन्धी और मित्र बुढ़ापे से काँपते हुए मनुष्य को पागल की तरह हँसते हैं। काम में असहायता का दोष भरा हुआ है, बुढ़ापे में वह बढ़ता है, सभी खतरों और उलझनों का एकमात्र मित्र हृदय है। सांसारिक जीवन में सुख का आरोपण - इसे भी समय चूहे द्वारा घास की तरह काट देता है। काल स्वार्थवश घास, धूल से लेकर इन्द्र और सुवर्ण तक जो मेरु की धूल है, सबको अपने वश में करने का प्रयत्न करता है - सबको नष्ट कर देता है और तीनों लोकों में व्याप्त हो जाता है।

तृतीय-39-48। स्त्री में क्या शुभ है - जो मांस की कठपुतली है - जो शरीर के पिंजरे में यंत्र द्वारा चलाई जाती है - जिसमें नसें, हड्डियाँ और गांठें हैं? क्यों मोह में पड़े हो? त्वचा, मांस, रक्त और आँसू को अलग करके देखो, क्या वह आकर्षक है? वक्षस्थल पर मोतियों की माला मेरु पर गंगा की धारा के समान है (क्षणभंगुर और क्षणभंगुर) - वही वक्षस्थल समय आने पर कुत्ते भोजन के लोथड़े की तरह श्मशान और दिशाओं के कोनों में खाते हैं।

स्त्रियाँ पाप की ज्वाला हैं, उनके बाल कालिख जैसे हैं, आँखों को अच्छी लगती हैं, पर छूने योग्य नहीं; वे घास की तरह मनुष्य को जलाती हैं।

स्त्रियाँ दूर से प्रज्वलित होने वाली अग्नि का ईंधन हैं, फिर भी हानिकारक हैं, चाहे उनमें रुचि हो या न हो। स्त्रियाँ पक्षियों को पकड़ने के लिए जाल हैं - पुरुष, शिकारी द्वारा फैलाए गए, मनमथ, चारा का ढेर, दुष्टता की डोरी, जन्म (जीवन) के तालाब में मछली और मन की कीचड़ में घूमने वाले पुरुषों के लिए।

मैं इस स्त्री को नहीं लूँगा जो सभी दोषों की टोकरी है - रत्न - दुख की जंजीर। केवल वह जो स्त्री के साथ है, भोग की इच्छा रखता है; जिसके पास स्त्री नहीं है, उसके लिए भोग कहाँ है? स्त्रियों को छोड़ना अर्थात् संसार को छोड़ना; इससे मनुष्य सुखी हो जाएगा।

III-49-54। यहाँ तक कि दिशाएँ (जैसे उत्तर) भी दिखाई नहीं देतीं, क्षेत्र अन्य (गलत) शिक्षा देते हैं; यहाँ तक कि समुद्र और तारे भी सूख जाते हैं, यहाँ तक कि स्थायी भी अनित्य हो जाता है, यहाँ तक कि योगी (सिद्ध) भी नष्ट हो जाते हैं, राक्षस और अन्य लोग नष्ट हो जाते हैं; ब्रह्मा (शून्य) हो जाते हैं, अजन्मा विष्णु भी; शिव का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, लोकों के स्वामी नष्ट हो जाते हैं।

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और सभी प्रकार के प्राणी विनाश की ओर दौड़ते हैं, जैसे जलधाराएँ समुद्र की आग की ओर दौड़ती हैं। खतरे क्षण भर के लिए आते हैं, धन भी क्षण भर के लिए आता है; जन्म और मृत्यु क्षण भर के लिए हैं - सब कुछ मर जाता है। वीर लोग वीर न होने वालों के द्वारा मारे जाते हैं - एक के द्वारा सौ मारे जाते हैं। विष अपना क्षेत्र (प्रभाव) बदल देता है - विष विष नहीं है!

III-55-57. विषय (संसार के) केवल एक और जन्म को नष्ट करते हैं, विष केवल एक बार जीवन को नष्ट करता है; अब समय आ गया है कि मेरा मन दोषों की दावानल में जल जाए। भोग की इच्छाएँ मायावी माया में भी नहीं चमकतीं; इसलिए, हे गुरुवर, मुझे सत्य के ज्ञान से शीघ्र जगाएँ। यदि आप ऐसा नहीं करते हैं, तो मैं अभिमान और ईर्ष्या से रहित होकर, चित्र के समान मन से विष्णु का चिंतन करते हुए मौन धारण कर लूँगा।

IV-1-24. निदाघ, तुम्हें जानने योग्य और कुछ नहीं है, तुम ज्ञानियों में श्रेष्ठ हो - तुम अपनी बुद्धि से जानते हो, भगवान की कृपा से - मैं मन की अशुद्धि से उत्पन्न त्रुटि को मिटा दूंगा अंतः और बाह्य इन्द्रियों का संयम, जिज्ञासा, संतोष और चौथा, अच्छे लोगों से सम्पर्क - इनमें से कम से कम एक का तो त्याग करके, पूरे प्रयत्न से - एक की प्राप्ति होने पर अन्य भी

प्राप्त हो जाते हैं। पहले केवल ज्ञान प्राप्त करना चाहिए; पहले शास्त्र, अच्छे लोगों से सम्पर्क, तप और संयम के द्वारा सांसारिक जीवन से मुक्ति। स्वयं का अनुभव, शास्त्र और गुरु एक कथन बनाते हैं (इनका एक ही उद्देश्य है) जिसके अभ्यास से आत्मा की ओर सदैव देखा जाता है (साक्षात्कार किया जाता है)।

यदि तुम हर क्षण निरंतर कल्पना और इच्छा से बचते रहोगे, तो तुम पवित्र, निर्विचार अवस्था को प्राप्त हो जाओगे। समाधि को मन की क्रियाशीलता से मुक्ति कहा गया है। वही एकत्व है, वही सर्वोच्च और शुभ आनन्द है। तुम्हें गूंगे, अंधे और बहरे व्यक्ति की तरह अपने मन से सभी वस्तुओं को आत्मा के रूप में विचार करना छोड़ देना चाहिए। (वेदान्त) के शब्दों से यह दर्शन हुआ कि आप सृजित, अजन्मा, अनादि और अनन्त, तेजस्वी, केवल आनन्द का रस लेने वाले, मन के लक्षणों से रहित हैं - यह सब (निम्न) ज्ञान के लिए है और व्यर्थ है - केवल ॐ ही वास्तविक है।

संसार में जितने भी दृश्य पदार्थ हैं, वे सब कंपन रहित चेतना के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं - इसका चिन्तन करो। अथवा मन को सदा प्रकाशित करके सांसारिक कार्य करते हुए, शांत सागर के समान आत्मा की एकता को जानते रहो। सत्य का ज्ञान ही मानसिक संस्कारों की तृण के लिए अग्नि है - इसे समाधि कहते हैं, केवल मौन नहीं। जिस प्रकार बहुत अधिक वांछित सूर्य (मणि - दिन का रत्न, सूर्य) के उदय होने पर संसार क्रियाशील हो जाता है, उसी प्रकार परम सत्य के उपस्थित होने पर संसार के प्राणी भी क्रियाशील हो जाते हैं।

अतः हे ऋषि! आत्मा में कर्तापन और अकर्तापन उत्पन्न होता है: - जब कोई इच्छा नहीं होती, तो आत्मा अकर्ता होता है - केवल अपनी उपस्थिति से कर्ता होता है। ये दोनों ही परम पुरुष में विद्यमान हैं - कर्ता और अकर्ता - जो इन दोनों का कारण है, उसी का दृढ़तापूर्वक आश्रय लो। अतः इस विचार से कि मैं सदैव अकर्ता हूँ, केवल समता की स्थिति शेष रह जाती है, जिसे परम अमरता कहते हैं। हे निदाघ, सुनो, इस संसार में उत्तम गुणों वाले, निर्विकल्प समाधि में स्थित पुरुष उत्पन्न होते हैं, जो सदैव उदय में रहते हैं और आकाश में शरद ऋतु के चन्द्रमाओं के समान प्रसन्न रहते हैं; जो संकट में उदास नहीं होते, रात्रि में स्वर्ण कमल के समान, जो नियति से परे की आकांक्षा नहीं करते, जो सत्पुरुषों के मार्ग में रमण करते हैं।

वे इस दृढ़ व्यक्तित्व के द्वारा मैत्री के गुणों से चमकते हैं; समचित्त और मेल-मिलाप वाले, प्रसन्नचित्त, सदा अच्छे आचरण वाले होते हैं। वे समुद्र

के समान मर्यादा में रहते हैं, मन में शान्त रहते हैं, सूर्य के समान अनुशासन नहीं छोड़ते। बुद्धिमान व्यक्ति को पूरी तरह से पूछताछ करनी चाहिए कि 'मैं क्या हूँ? संसार का यह कलंक कैसे उत्पन्न हुआ ?' मनुष्य को बुरे कर्म नहीं करने चाहिए, न ही नीच व्यक्ति के साथ रहना चाहिए। मृत्यु, जो सबका नाशक है, को उपहास की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। मनुष्य को केवल शुद्ध चेतना को देखना चाहिए, शरीर, अस्थि, मांस और रक्त को, जो अशुभ हैं, त्याग देना चाहिए, क्योंकि चेतना ही वह डोरी है जो सभी प्राणियों को गले में हार की तरह बाँधे रखती है।

जो ग्रहण करने योग्य है, उसका अनुसरण करना और जो ग्रहण करने योग्य नहीं है, उसका सर्वथा परित्याग करना - यही मन का स्वभाव है। द्रष्टा अपने को ब्रह्म जानकर, गुरु द्वारा बताए गए मार्ग से स्वयं को साक्षात्कार करके, दुःख से मुक्त हो जाएगा। ज्ञान वैराग्य की अवस्था में उत्पन्न होता है, जिसमें सैकड़ों तीक्ष्ण तलवारों की वर्षा कुमुदिनी के प्रहारों के समान होती है, हिम से भीगने के समान अग्नि से जलती है, चंदन के समान अंगारों की वर्षा होती है, ग्रीष्म ऋतु की गर्मी दूर करने वाले शीतल जल के समान बाणों की वर्षा होती है, सुखपूर्वक निद्रा के समान अपना सिर काटना, मौन के समान वाणी का अभाव, वरदान के समान बहरापन होता है।

चतुर्थ-२६-२७। गुरु के उपदेश से उत्पन्न साक्षात्कार के अभ्यास द्वारा आत्मा का सदैव अवलोकन किया जाता है। जैसे मोह के पूर्व दिशा-निर्देश पुनः आ जाते हैं, वैसे ही ज्ञान से संसार-मोह नष्ट हो जाता है - ऐसा विचार करो। चतुर्थ-२८। धन-संपत्ति से कुछ लाभ नहीं होता, न मित्र-सम्बन्धी, न शरीर का कष्ट, न यज्ञ-आहार से लाभ होता है।जल और मन्दिरों में भी नहीं, परन्तु मन पर विजय प्राप्त करने से ही वह स्थिति प्राप्त होती है।
IV-29-38. शांत मन वाले लोगों में सभी दुःख, लालसाएँ, असहनीय मानसिक पीड़ाएँ, सूर्य में अंधकार की तरह लुप्त हो जाती हैं। शांत व्यक्ति में सभी प्राणी शांत हो जाते हैं (शांति प्राप्त करते हैं) जैसे शरारती या कोमल बच्चे अपनी माँ में।अमृत पीने से या धन के आलिंगन से मनुष्य को उतना आनंद नहीं मिलता जितना आंतरिक शांति से मिलता है।शांत व्यक्ति वह कहलाता है, जो सुनने, छूने, खाने, देखने और अच्छे-बुरे को जानने पर प्रसन्न या उदास नहीं होता।· जिसका मन अशांत नहीं होता, मृत्यु, उत्सव और युद्ध में भी चंद्रमा की डिस्क की तरह स्पष्ट रहता है।

तपस्वियों, ज्ञानियों, यज्ञियों, राजाओं, बलवान और सदाचारी लोगों के बीच केवल शांत व्यक्ति ही चमकता है।शांत व्यक्ति महान हैं, जिन्होंने

अमृत के पान से संतोष प्राप्त कर लिया है और आत्म-आनंद प्राप्त कर लिया है। जो प्राप्त नहीं है, उसकी लालसा त्याग देता है और जो प्राप्त है, उसके प्रति सम रहता है, दुःख और सुख को नहीं देखता (अर्थात अनदेखा करता है), जो प्राप्त नहीं है, उसकी प्रशंसा नहीं करता, जो प्राप्त है, उसी में इच्छा के अनुसार भोग करता है और अपने आचरण में सौम्य रहता है।

जब विचार प्राप्त वस्तु में रमण करता है, जैसे हरम में रहने वाली अच्छी स्त्री रमण करती है, तब जीते जी मुक्ति हो जाती है और इससे आत्मा के अपने स्वभाव का आनन्द मिलता है।

चतुर्थ-39-43। बुद्धिमान व्यक्ति को मोक्ष के मार्ग का प्रतिक्षण, शास्त्रानुसार, स्थान, सुविधा और अच्छे लोगों के सम्पर्क के अनुसार चिन्तन करना चाहिए, जब तक कि वह आत्मा में विश्राम न प्राप्त कर ले। चतुर्थ अवस्था (मुक्ति) में विश्राम पाकर और संसार सागर से मुक्त हुआ व्यक्ति चाहे जीवित रहे या न रहे, चाहे वह गृहस्थ हो या संन्यासी, उसे न तो किए गए या न किए गए कार्यों से कोई प्रयोजन (अर्थ) होता है, न ही वेद और स्मृति के मोह से; वह अपनी आदिम अवस्था में रहता है, जैसे पर्वत द्वारा मंथन किए बिना समुद्र (वह पारलौकिक अवस्था में है)। जब आत्मा के रूप में सबका शुद्ध बोध होता है, तब उत्पत्ति, देश और काल से परे चेतना के रूप में 'शरीर' चमकता है।

IV-44-49। अचल और चलायमान वस्तुओं का दृश्य ब्रह्मांड स्वप्न की तरह (स्वप्नहीन) नींद में विलीन हो जाता है। ज्ञानियों ने अनुभवजन्य प्रयोजनों के लिए परम सत्ता के लिए नाम बताए हैं, जैसे, ऋत आत्मा, परब्रह्म, सत्य आदि। जैसे बाजूबंद आदि केवल शब्द और अर्थ हैं, सोने से भिन्न नहीं हैं, वैसे ही परम सत्ता द्वारा फैलाए गए ब्रह्मांड का जादुई भ्रम भी है।

दृश्य जगत के अंदर जो माना जाता है, उसे बंधन कहा जाता है, दृश्य के अभाव (विघटन) में, वह बोध प्राप्त करता है। जिसे दृश्य कहा जाता है, वह प्रक्षेपण है, जैसे, 'ब्रह्मांड तुम हो, और मैं हूं'। संसार का भ्रम केवल मन के द्वारा फैलता है - जब तक ऐसा होता है, तब तक यह मुक्ति नहीं है।

IV-50-57. स्वयंभू परम सत्ता द्वारा मन के द्वारा ही ब्रह्माण्ड का प्रसार (उत्पत्ति) होता है। अतः दृश्य ब्रह्माण्ड मानसिक प्रकृति का है। वास्तविक मन नहीं है; यह केवल वस्तुओं की चमक है। मन को केवल विचार ही जानो। समझो कि जहाँ विचार है, वहाँ मन है। मन और विचार कभी भिन्न

नहीं होते - जब विचारों का समूह हट जाता है, तब केवल (प्राचीन) प्रकृति ही शेष रहती है।

जब दृश्य की उत्तेजना अर्थात् 'मैं और तुम ही ब्रहमाण्ड हो' समाप्त हो जाती है, तब केवल एकमात्र स्थिति (प्राचीनता) ही शेष रहती है। महाविलास की सिद्धि होने पर, जब दृश्य सृष्टि आदि सब अस्तित्वहीन हो जाती है (अर्थात् ज्ञात होती है), तब केवल शांति ही शेष रहती है। वहाँ अजन्मा, दिव्य अरोगी, तेजस्वी सत्ता, अस्त न होने वाला सूर्य, सदा, सबका रचयिता, परम आत्मा घोषित, विद्यमान रहता है। जिससे शब्द दूर हो जाते हैं, जो मुक्त पुरुष को ही प्राप्त होता है, जिसके नाम आत्मा जैसे माने जाते हैं, स्वाभाविक नहीं।

चतुर्थ-58-63। हे महामुनि! तीन प्रकार के आकाश अर्थात् मानसिक, आध्यात्मिक और स्थूल में से आध्यात्मिक को अन्य दो की अपेक्षा सूक्ष्म जानो। जब अनुभूति एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती है, उस अंतराल को आध्यात्मिक क्षेत्र के रूप में जानना चाहिए। एक क्षण में जब तुम उस स्थिति में पहुँच जाओगे जहाँ सभी विचार अस्वीकार हो जाते हैं, तब तुम निश्चित रूप से शांत अवस्था में पहुँच जाओगे।

वह अवस्था समाधि है जो आनंद को छोड़ देती है और जिसमें कुलीनता और सौंदर्य की अनासक्ति का सार होता है - जब दृश्य जगत की मिथ्याता के बोध से आनंद प्रबल रूप से उत्पन्न होता है और पसंद और नापसंद दूर हो जाती है।यह बोध ही ज्ञान है और इसका विषय भी आध्यात्मिक है - केवल वही एकमात्र अवस्था है - बाकी सब मिथ्या है।

IV-64-69.निदाघ, जगत् को मिथ्या जानो,ऐरावत रट में सरसों के एक कोने में सीमित है,मच्छर अणु के अन्दर सिंहों के समूह से लड़ता है,कमल के अन्दर रखा मेरु मधुमक्खी द्वारा थपथपाया जाता है।केवल आसक्ति आदि से अशुद्ध किया गया मन ही सांसारिक जीवन है।वही मन उनसे मुक्त होने पर (सांसारिक) अस्तित्व का अंत कहा जाता है।मन द्वारा चिंतन करते हुए - शारीरिक प्रवृत्तियों से मुक्त होकर देहधारी प्राणी उस अवस्था को प्राप्त होता है, वह शरीर के गुणों से लिप्त (प्रभावित) नहीं होता।

मैं वह (मन) हूँ जो कल्प को क्षण में और कल्प को क्षण में बदल देता है। बुरे आचरण से विरत हुए बिना, शांति और एकाग्रता के बिना, केवल आत्मज्ञान के द्वारा ही सत्य की प्राप्ति (साक्षात्कार) नहीं हो सकती।

IV-70-72. आत्मा के स्वरूप को अद्वितीय, गुणरहित, सत्य और चेतना के एक समूह के रूप में जानने पर कभी भी (और किसी भी चीज़ से) भय नहीं लगता। वह सबसे परे, सबसे महान, तेजोमय और प्रकृति में शाश्वत, बुद्धिमान, प्राचीन, सभी देवताओं द्वारा पूजित है। नियम के अनुसार 'मैं ब्रह्म हूँ' ये दो शब्द महान की मुक्ति के लिए हैं। जबकि 'मेरा नहीं' और 'मेरा' क्रमशः मुक्ति और बंधन देते हैं।

IV-73-75. ईश्वर द्वारा जीव, ईश्वर आदि के रूप में दर्शन से लेकर प्रवेश (उत्पत्ति से प्रलय तक) तक सृष्टि की कल्पना (प्रक्षेपण) की जाती है। जाग्रत से मुक्ति तक चेतन और अचेतन सांसारिक जीवन का स्वरूप जीव द्वारा प्रक्षेपित किया जाता है। त्रिनेत्र से लेकर योग तक के संप्रदाय ईश्वर की माया पर (और भी निचले स्तर पर) निर्भर हैं; लोकायत से लेकर सांख्य तक के संप्रदाय जीव की माया पर निर्भर हैं। अतः मोक्ष के आकांक्षी को इन संप्रदायों को माया नहीं मानना चाहिए, बल्कि ब्रह्म के (आवश्यक) सत्य पर ही स्थिर भाव से विचार करना चाहिए।

चतुर्थ-76-82। जो प्रत्येक वस्तु को चेतना के संबंध में देखता है, वही वास्तविक ज्ञाता है, शिव, विष्णु और ब्रह्मा। अच्छे गुरु की कृपा के बिना विषयों का त्याग करना, सत्य को देखना और मूल अवस्था को (साक्षात्कार करना) कठिन है। मूल अवस्था उस योगी को स्वाभाविक रूप से प्राप्त होती है, जिसके भीतर शक्ति उत्पन्न हो गई है और जिसने सभी (सांसारिक) क्रियाकलापों का त्याग कर दिया है। जब मनुष्य इनमें थोड़ा भी अंतर देख लेता है, तो उसे निस्संदेह भय होगा।

नेत्र के समान बुद्धि वाला व्यक्ति सर्वत्र परमात्मा को देखता है - बुद्धिहीन व्यक्ति अंधे व्यक्ति के समान सूर्य को नहीं देख पाता। परम सत्ता केवल ज्ञान है - इसलिए ब्रह्म के दर्शन से ही मनुष्य अमर हो जाता है। जब परब्रह्म का दर्शन हो जाता है, तब हृदय की गांठ टूट जाती है, सारे संदेह टूट जाते हैं और सारे सांसारिक कर्म नष्ट हो जाते हैं। अध्यात्म-विमुख भाव को त्यागकर, संसार की स्थिति से अप्रभावित होकर, एकाग्रचित्त होकर समविद् में लग जाओ। मरुस्थल में सारा जल (मृगतृष्णा में) भ्रम है - केवल मरुस्थल ही वास्तविक है; (इसी प्रकार) विचार करने पर तीनों लोक चित् के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं।

जो निहित और व्यक्त को त्यागकर स्थिर रहता है, वह स्वयं शिव है, ब्रह्मज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ है। वह अविनाशी सत्ता सबका आधार है, शब्दों

और मन से परे, अनादि, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी और सूक्ष्म है। मन और संसार परम सत्ता का ही प्रस्फुटन है; (मन के) संयम और (आत्मा के) असंयम से सांसारिक जीवन क्षीण हो जाता है।

चतुर्थ-८८-१०६. मैं तुम्हें मानसिक रोगों को दूर करने का उपाय बताता हूँ - जो भी वस्तु आकर्षक लगे, उसे त्याग देने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। उस कृमिरूपी मनुष्य पर दया करो, जो इस त्याग को नहीं कर सकता, जो कि परम कल्याणकारी है और स्वयं पर निर्भर है। जो मन इच्छाओं को त्यागने वाला है और जो स्वयं के प्रयास से प्राप्त किया जा सकता है, उसे वश में किए बिना शुभ मार्ग नहीं मिल सकता। जब मन को अप्रक्षेपण रूपी शस्त्र से काट दिया जाता है, तब सर्वव्यापी और शांत ब्रह्म की प्राप्ति होती है। अपने आप को अविचलित, संसार के विचारों से मुक्त, महान ज्ञान से युक्त रखो - वश में किया हुआ मन ही परमार्थ का स्थान है।

ज्ञान। महान प्रयत्न का आश्रय लेकर, मन को अ-मन बनाकर, हृदय में ध्यान करते हुए, चेतना के चक्र की धार से। बिना किसी संकोच के मन को मार डालो; तुम्हारे (आंतरिक) शत्रु तुम्हें नहीं बांधेंगे। 'मैं वह हूं, यह मेरा है', मन इतना ही है - इसे अ-प्रक्षेपण रूपी छुरी से काट दिया जाता है। अ-प्रक्षेपण रूपी वायु से ही मन उड़ जाता है, जैसे शरद ऋतु के आकाश में बादलों का समूह। प्रलय की हवाएं बहें, समुद्र एक हो जाएं (संसार को नष्ट करने के लिए), बारह सूर्य चमकें; मन प्रभावित नहीं होता।

तुम सत्य के साम्राज्य की उस स्थिति पर ध्यान केन्द्रित करो जो अ-प्रक्षेपण ही हो सकती है और जो सभी सफलताएं प्रदान करती है। मन कहीं भी चंचलता से रहित नहीं दिखाई देता - यह मन का स्वभाव है, जैसे अग्नि का स्वभाव उष्णता है। यह स्पंदन की शक्ति मन के रूप में विद्यमान है - इसे ही वह शक्ति जानो जो आडंबरपूर्ण संसार है। अविचल मन को अमृत कहा गया है। शास्त्रों में उसी को मोक्ष कहा गया है।
यह अविचल मन जो अज्ञान का दूसरा नाम है, उसे विचार द्वारा नष्ट कर दो। पापरहित होकर, मन के द्वारा जिस पद से मन एक हो जाता है, उसे प्राप्त करके, विकल्पों से मुक्त हो जाओ। अतः, पुरुषार्थ का आश्रय लेकर, मन के द्वारा मन को वश में करके, शोक रहित स्थान में स्वरूप और चिंता से मुक्त हो जाओ। मन ही मन को दृढ़तापूर्वक वश में कर सकता है - राजा को छोड़कर दूसरा कौन वश में कर सकता है? जो लोग कामरूपी मगरमच्छ द्वारा पकड़े गए हैं, संसार रूपी सागर में गिर गए हैं और भँवरों में बह गए हैं, उनके लिए मन ही जीवन-नौका है।

मन रूपी रस्सी को तोड़ दो, और संसार रूपी रस्सी से अपने को ऊपर उठा लो - जिसे कोई दूसरा पार नहीं कर सकता। चतुर्थ-११७-११५। जो भी प्रवृत्ति मन कहलाती है, वह पूर्व (अन्य) आवेगों से उत्पन्न होती है, उससे बचना बुद्धिमानी है, इससे अज्ञान का क्षय होगा। भेद करने की प्रवृत्ति को त्याग दो, सांसारिक भोगों की वृत्ति को त्याग दो - फिर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों (प्रवृत्तियों) को त्याग दो, मानसिक प्रक्षेपण से रहित होकर आनंदित रहो।

जो कुछ दिखाई देता है, उसके प्रति इच्छा का परित्याग ही मन का, अज्ञान का नाश है। इच्छा से मुक्ति ही विनाश (मुक्ति) है, इच्छा को स्वीकार करना ही दुःख है। अज्ञानी लोगों में अज्ञान देखा जाता है। वह केवल नाम मात्र को स्वीकार किए जाने वाले सुबुद्धि वाले व्यक्ति में कैसे हो सकता है। अज्ञान व्यक्ति को संसार की खड़ी चट्टानों पर झुलाता है, जिसमें दुःख की कंटीली झाड़ियाँ होती हैं, न कि जब अज्ञान नष्ट हो जाता है, तो आत्मज्ञान की इच्छा उत्पन्न होती है, जिससे भ्रम कम होते हैं।

जब सब कुछ दिखाई देता है, तो यह इच्छा भी गल जाती है। यह अज्ञान केवल इच्छा है, इसका नाश ही मुक्ति कहा गया है - यह प्रक्षेपणों के नाश से होता है। मन के आकाश में चेतना के सूर्य के दर्शन से वृत्तियों की रात्रि मिट जाने पर अज्ञान का घोर अंधकार मिट जाता है। चतुर्थ-११६-१२१। परम प्रभु अनिर्वचनीय चेतन तत्त्व है, जो सर्वत्र विद्यमान है और मानसिक दुःखों से रहित है। यह सब (ब्रह्माण्ड) ब्रह्म है, नित्य चेतन है, अविनाशी है।

दूसरी वस्तु अर्थात् मानसिक प्रक्षेपण, वास्तव में विद्यमान नहीं है। इस त्रिगुण जगत में न तो कुछ जन्मता है, न मरता है, न ही वस्तुओं की विभिन्न अवस्थाओं में कोई वास्तविकता है; केवल शुद्ध चेतना ही वास्तविक है, जो पृथक है, अपने आप में प्रकाशित है, सभी में समान है और मानसिक पीड़ा से मुक्त है। जब इसे शुद्ध, अविचल, शांत, स्थिर और अपरिवर्तनशील के रूप में अनुभव किया जाता है, तब यह मन चिंतन के द्वारा अनुभव करता है - चिंतन के कारण ही मन को ऐसा कहा जाता है।

चतुर्थ-१२२-१२५। अतः बल द्वारा उत्पन्न यह विचार संकल्प द्वारा नष्ट हो जाता है। मन 'मैं ब्रह्म नहीं हूँ' इस संकल्प से दृढ़तापूर्वक बंधा हुआ है; यह ‘मैं ब्रह्म हूँ’ के संकल्प से मुक्त होता है; यह ‘मैं दुबला हूँ, दुःख से बंधा हूँ; मेरे हाथ, पैर आदि हैं’ इस विचार के अनुरूप अवधारणा से बंधा है। जबकि यह ‘मैं दुखी नहीं हूँ, मेरा कोई शरीर नहीं है, आत्मा बंधी नहीं है’ इस

विचार के अनुरूप दृढ़ विश्वास से मुक्त होता है। अज्ञान के नष्ट होने पर, आंतरिक दृढ़ विश्वास से व्यक्ति मुक्त होता है। 'मैं मांस, हड्डी नहीं हूँ; मैं शरीर से परे हूँ।

चतुर्थ-१२६-१३१. 'यह अज्ञान कल्पना के कारण है, अचेतन को आत्मा मानने से। महान् प्रयास करके, परम संकल्प के साथ, कामना को दूर से ही त्यागकर, कल्पना से रहित होकर आनन्दित हो। मेरा पुत्र, मेरा धन, वह मेरा है - ऐसी प्रवृत्ति इन्द्रियों के जाल में फँसकर इधर-उधर उछलती रहती है। अज्ञानी मत बनो, बुद्धिमान बनो; आसक्ति को त्याग दो, संसार है - ऐसी आसक्ति से तुम अज्ञानी की तरह क्यों विलाप करते हो? तुम्हारा यह शरीर क्या है, सुस्त, गूंगा, अशुद्ध मांस का लोथड़ा, जिसके लिए तुम सांसारिक सुख-दुःख से अभिभूत हो रहे हो? यह आश्चर्य की बात है कि सच्चे ब्रह्म को लोग भूल गए हैं! जब तुम सक्रिय हो, तो तुम आसक्ति से लिप्त न हो जाओ। यह भी आश्चर्य की बात है कि पर्वत कमल के रेशे से बंधे हैं! यह जगत अज्ञान से व्याकुल है, जो अस्तित्वहीन है! घास तो अडिग हो गई है! श्लोक

१-७. तब मैं अज्ञान के सात चरणों और ज्ञान के सात चरणों के बारे में सत्य कहूंगा। बीच के चरण अनगिनत हैं और अन्यथा उत्पन्न होते हैं। मुक्ति स्वाभाविक (आध्यात्मिक) स्थिति में अस्तित्व है; इससे विमुख होना 'मैं' की अवधारणा है - अज्ञान से उत्पन्न इच्छा और घृणा जैसे गुण उन लोगों के लिए नहीं हैं जो शुद्ध चेतना की प्राप्ति के परिणामस्वरूप अपने स्वभाव से विचलित नहीं होते हैं। आध्यात्मिक प्रकृति से पतन, मानसिक मामलों में चेतना का डूबना; इसके अलावा कोई अन्य भ्रम नहीं है, अब या भविष्य में। आध्यात्मिक प्रकृति में अस्तित्व मानसिक गतिविधि का विनाश कहा जाता है, बीच में (अप्रभावित), जब मन एक विषय से दूसरे विषय में जाता है।

प्रकृति में अस्तित्व-परम पत्थर की तरह बना हुआ है, सभी विचार मर रहे हैं, जागृति और नींद से मुक्त हैं। वह व्यक्ति का अपना (आध्यात्मिक) स्वभाव है जो जड़ नहीं है, गैर-स्पंदनशील (शांत) मन है, जब अहंकार पहलू मर जाता है। बीज अवस्था में जागना, (साधारण) जागना, महाजागना आदि सात प्रकार की भ्रांति - जब ये आपस में मिल जाती हैं, तो अनेक हो जाती हैं; इसका स्वरूप सुनो। पहली अवस्था है चेतना की अवांछनीय, शुद्ध अवस्था, मन, जीव आदि का नाम लेकर, जो अस्तित्व में आएगी। बीज (संभाव्य) रूप में विद्यमान जागना बीज में जागना कहलाता है - यह चेतना की नई या पहली अवस्था है।

जाग्रत अवस्था (दूसरी): नई अवस्था के बाद, (सूक्ष्म) अवधारणा 'मैं', 'मेरा' का विशुद्ध रूप से उत्पन्न होना - यह जाग्रत है, जो पहले अस्तित्व में नहीं थी। महाजागरण: पिछले जन्म में 'मैं' और 'मेरा' के रूप में उत्पन्न होने वाली व्यापक (स्थूल) अवधारणा। जाग्रत स्वप्न: मन का 'राज्य', जो विकसित हुआ हो या न हुआ हो, अपने आप को इनके साथ पहचानना। स्वप्नावस्था: यह जाग्रत अवस्था से उत्पन्न होने वाली अनेक प्रकार की होती है, जैसे दो-चन्द्रमा, शंख, मृगतृष्णा आदि।

जाग्रत व्यक्ति द्वारा यह चिन्तन कि 'यह तो कुछ समय के लिए ही देखा गया था, यह फिर कभी नहीं आएगा - बहुत समय तक न देखने के कारण यह कर्मावस्था के समान है।' स्वप्न-जाग्रत अवस्था: जीव की जड़ अवस्था, जिसमें वह छः अवस्थाओं का त्याग कर देता है। गहरी नींद भविष्य के दुखों से भरी होती है - जिसमें संसार अंधकार में लीन हो जाता है। मैंने अज्ञान की सात अवस्थाएँ कही हैं - इनमें से प्रत्येक में सैकड़ों प्रकार हैं, तथा प्रत्येक में अनेक वैभव हैं।

ज्ञान की सात अवस्थाओं को जानने से मनुष्य मोह के दलदल में नहीं फँसता। अनेक मत योग की विभिन्न अवस्थाओं के विषय में भिन्न-भिन्न बातें कहते हैं, किन्तु मुझे केवल निम्नलिखित ही स्वीकार्य हैं: सात अवस्थाओं के पश्चात मोक्ष प्राप्त होता है। ज्ञान की पहली अवस्था शुभ कामना है, दूसरी मनन है, तीसरी मन का क्षीण होना है, चौथी सत्व की प्राप्ति है, फिर वैराग्य है, छठी वस्तुओं का चिंतन है और सातवीं तुरीय है।

उनकी व्याख्या: ज्ञानी कहते हैं कि शुभ कामना वैराग्य के बाद की कामना है - ध्यान 'मैं अच्छे लोगों की दृष्टि में मूर्ख क्यों बना रहता हूँ?' चिंतन वैराग्य के अभ्यास और शास्त्रों के संपर्क के बाद की अच्छी क्रिया (प्रवृत्ति) है और
अच्छे लोग।

मन का पतला होना वह अवस्था है, जिसमें शुभ इच्छा और चिंतन के माध्यम से इंद्रिय-विषयों के प्रति आसक्ति कम हो जाती है।सत्त्वप्ति उपरोक्त तीन अवस्थाओं के अभ्यास से शुद्ध सत्त्व अवस्था में मन का होना है।
असम्शक्ति अवस्था चार अवस्थाओं के अभ्यास के माध्यम से विकसित अवस्था है, जिसमें किसी भी प्रकार की संलिप्तता नहीं होती।पदार्थभावना

पाँच अवस्थाओं से उत्पन्न छठी अवस्था है, जिसमें आंतरिक और बाह्य वस्तुओं का चिंतन न करके आत्मा में दृढ़तापूर्वक रमण किया जाता है।

'चौथी' (पारलौकिक) अवस्था (यहाँ सातवीं) छह अवस्थाओं के दीर्घ अभ्यास द्वारा अपने स्वभाव पर ध्यान केंद्रित करना है, कोई वास्तविक अंतर न देखना - यह जीवन्मुक्ति की अवस्था है।'चौथी से परे' अवस्था शरीर के बिना मुक्ति की अवस्था है।

वि-36-40। निदाघ, जो सातवीं अवस्था में पहुँच गए हैं, वे आत्मा में रमण करते हैं - वे सुख और दुःख में नहीं डूबते। वे जो भी करते हैं (या नहीं करते हैं) वह केवल प्रासंगिक और न्यूनतम है। वे अतीत का अनुसरण करते हुए, निकट के लोगों द्वारा जागृत (प्रेरित) होकर, नींद से जागने वाले की तरह कार्य करते हैं। ये सात अवस्थाएँ केवल प्रबुद्ध व्यक्ति ही जान सकते हैं - जिस स्थिति में पहुँचकर, पशु, बर्बर आदि भी, निश्चित रूप से शरीर के साथ या बिना मुक्त हो जाते हैं। ज्ञान वास्तव में गाँठ का टूटना और मुक्ति है - मृगतृष्णा के भ्रम का मरना।

V-41। लेकिन जो लोग भ्रम के सागर को पार कर गए हैं - वे उच्च पद पर पहुँच गए हैं।

V-42-43। मन को शांत करने का साधन योग कहा जाता है। इसे सात चरणों के रूप में जाना जाता है जो ब्रह्म की स्थिति में ले जाते हैं।

V-44। वहाँ, 'तू' और 'मैं', अपने और दूसरे की भावना नहीं है, न ही अस्तित्व या अनस्तित्व की धारणा है।

V-45। सब कुछ शान्त है, किसी सहारे की आवश्यकता नहीं है, आकाश में स्थित है, शाश्वत है, शुभ है, व्याधि और मोह से रहित है, नाम और कारण से रहित है। न तो विद्यमान है, न अविद्यमान है, न मध्य में है, न सबका निषेध है; मन और वाणी की पकड़ से परे है, पूर्ण से भी अधिक पूर्ण है, आनन्द से भी अधिक आनन्दमय है। (सांसारिक) अनुभूति से परे, आशा की सीमा (क्षितिज) से परे, शुद्ध ज्ञान के अतिरिक्त किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है। (वि.) शरीर तभी विद्यमान है, जब द्रष्टा, द्रष्टा और दर्शन का सम्बन्ध है, जबकि यह स्थिति (मुक्ति की) ऐसे सम्बन्ध (विभिन्न) द्रष्टा, द्रष्टा और विषय से रहित है। (वि.) मन के एक विषय से दूसरे विषय की ओर गति करने के बीच में बुद्धि का अविभाज्य सार है। यह अभौतिक अनुभूति है, प्रतिबिम्ब है; सदैव उसी के साथ अपनी पहचान

बनाओ। (वि.) 'तुम्हारा शाश्वत सार (है), जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति जैसी अवस्थाओं से रहित, बुद्धि और जड़ता जैसी समानताओं से रहित, हमेशा उसी के साथ अपनी पहचान बनाओ।' 'उस पत्थर के हृदय, जड़ता को छोड़कर, हमेशा उसी के साथ अपनी पहचान बनाओ जो मन से परे है।

मन को दूर दूर तक त्यागकर (तुम देखो) तुम वही हो जो है; उसी के रूप में स्थापित हो जाओ।' 'पहले मन की रचना परम आत्मा के तत्त्व से हुई, मन के द्वारा ही इस जगत को, उसके असंख्य विवरणों सहित, फैलाया गया है। बुद्धिमान पुरुषों! शून्य, जिसका आकर्षक नाम है, शून्य से चमकता है जैसे आकाश से नीला चमकता है।' 'जब मन विलीन हो जाता है, मानसिक निर्माणों के क्षीणन के माध्यम से, ब्रह्मांडीय कल्पनाओं का कोहरा विलीन हो जाता है। एक, अनंत, अजन्मा, आदिम और शुद्ध आत्मा शरद ऋतु में बादल रहित आकाश की तरह भीतर चमकती है।' ' 'आकाश में बिना किसी चित्रकार या आधार (अर्थात कैनवास) के एक चित्र उग आया है। इसका कोई द्रष्टा नहीं है; यह नींद या स्वप्न के माध्यम के बिना व्यक्ति का अपना अनुभव है।'

V-55. 'चेतन आत्मा में जो साक्षी है, सामान्य, पारदर्शी और निर्विवाद, दर्पण की तरह, बिना किसी इच्छा के सभी दुनियाएँ प्रतिबिंबित होती हैं।'
V-56. 'मन की चंचलता को ठीक करने के लिए, जानबूझकर चिंतन करें कि एक ब्रह्म आत्मा का आकाश है, ब्रह्मांड का निष्पक्ष आत्मा है।

57. 'एक विशाल शिला के समान, जो मुख्य रेखाओं और उप-रेखाओं से आच्छादित है, उस एक ब्रह्म को समझना सीखो, जिस पर तीनों लोक अधिष्ठित हैं।'

58. 'अब यह ज्ञात हो गया है कि यह समस्या जगत् उत्पन्न नहीं हुआ है, क्योंकि इसका कारण बनने के लिए कोई दूसरी सत्ता नहीं है। इस आकर्षक (जगत) को एक चमत्कार के रूप में देखा जा सकता है।'

59. 'मैं बहुत समय से व्याकुल हूँ (जैसा कि मैं अब हूँ) मैं विश्राम में हूँ; शुद्ध आत्मा के अलावा कुछ भी नहीं है। सभी संदेहों को त्यागकर, सभी आश्चर्य की भावनाओं को त्यागकर, देखो!'

60(क)। 'सभी मानसिक निर्माणों का खंडन करते हुए, मनहीनता का सिद्धांत सबसे उच्च स्थिति माना जा सकता है।'

60(ख)। '(ऋषियों) ने अपने पापों का परित्याग करके, अनंतता को प्राप्त किया है -

61(क)। 'वे (ऋषि) जिनकी बुद्धि महान और शांत है और जो मन से ऊपर उठ गए हैं।' 61(ख)-

62. 'जिसने (वेदान्त के अनुसार) वस्तुओं के स्वरूप का तर्क कर लिया है, जिसके मन की (वस्तुनिष्ठ प्रेरित) प्रवृत्तियाँ समाप्त हो गई हैं, जिसने (वस्तुओं के सम्बन्ध में) सभी तर्क छोड़ दिए हैं, जिसने वस्तुनिष्ठ क्षेत्र को त्याग दिया है, मूल्यों से रहित होकर केवल उसी को ग्रहण कर लिया है जिसका शाश्वत मूल्य है, उसका मन शाश्वत सत्य के अनुरूप है।'

63-66. 'जब अनुभवजन्य जीवन के गहरे संस्कारों का जाल चूहे द्वारा बहेलिये के जाल की भाँति फट जाता है, जब वैराग्य के बल से हृदय की गाँठें खुल जाती हैं, तब अनुभवजन्य ज्ञान (ब्रह्म के) के कारण ब्रह्म के रूप में उसका स्वरूप कटक चूर्ण से उपचारित मैले जल की भाँति स्पष्ट हो जाता है। अब वह शाश्वत साक्षी का अनुभव करता है; अब वह जड़ (अदृश्य) को नहीं देखता।' जीवित रहते हुए भी मनुष्य उस परम सत्य के प्रति जागृत हो जाता है, जिसे ही प्राप्त किया जा सकता है।

वह संसार के मार्गों से सर्वथा विमुख हो जाता है, मोह के घने अंधकार में आच्छादित हो जाता है; तथा परिपक्व वैराग्य की उच्च डिग्री के कारण, वह उन तथाकथित स्वादिष्ट पदार्थों में भी रुचि नहीं लेता, जो वास्तव में शुष्क और स्वादहीन हैं।

V-67. 'पक्षी के समान मोह से निकलकर, आसक्ति, दुर्बलता, द्वैत और सहारे से रहित मन उड़ जाता है।

V-68. '(सत्य) से युक्त मन पूर्णिमा के समान चमकता है, जो उलझनों से उत्पन्न सभी क्षुद्रताओं को परास्त करता है और (व्यर्थ) जिज्ञासाओं से उत्पन्न सभी दुविधाओं को दूर करता है।

V-69. 'न मैं और न कुछ भी यहाँ विद्यमान है; मैं तो केवल ब्रह्म हूँ, जो शांतिस्वरूप है' - ऐसा वह देखता है, जो सत् और असत् के बीच की कड़ी को देखता है।

70. 'जैसे मन दृष्टि आदि इन्द्रियों के विषयों के प्रति उदासीन रहता है, वैसे ही दृढ़ बुद्धि वाला मनुष्य अपने दैनिक जीवन में कर्मों के प्रति भी उदासीन रहता है।'

71. 'ज्ञानपूर्वक जिया गया अनुभव ही संतोषप्रद होता है। पहचान लिया गया चोर चोर नहीं रहता, बल्कि मित्र बन जाता है।'

72. 'जैसे बिना योजना के गाँव की यात्रा पूरी होने पर यात्री प्रसन्न नहीं होते, वैसे ही ज्ञानी लोग आनंद के वैभव को भी प्रसन्नता से देखते हैं।'

73. 'संयत मन का थोड़ा-सा भी विचलन पर्याप्त माना जाता है, उसका विस्तार नहीं किया जाता, क्योंकि ऐसा विस्तार भविष्य में दुखों का कारण बनता है।'

74. कारावास से मुक्त राजा केवल एक कौर खाने से प्रसन्न होता है। जिस पर आक्रमण न हुआ हो और जो निरुद्ध न हुआ हो, वह अपने (संपूर्ण) राज्य की भी परवाह नहीं करता।

75. 'एक हाथ को दूसरे हाथ में फंसाकर, एक दांत को दूसरे पर रखकर तथा एक अंग को दूसरे अंग से लगाकर मन को जीत लो।

76. 'इस अनुभवजन्य जीवन के समुद्र से मन पर विजय के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं है। इस विशाल नरक के साम्राज्य में अपने और अपने शत्रुओं - इंद्रियों - को जीतना कठिन है, जो पाप के अनियंत्रित हाथियों पर सवार हैं तथा तृष्णा के लंबे बाणों से सुसज्जित हैं।

77. 'जिसका अहंकार क्षीण हो गया है तथा जिसने अपने शत्रुओं को जीत लिया है, उसके इंद्रिय-अंतर्निहित संस्कार, भोगों पर आकृष्ट होकर, शीतकाल में कमलों के समान क्षीण हो जाते हैं।

78. 'अनंत आत्माओं के समान; अव्यक्त संस्कार तभी तक व्यंग करते हैं जब तक मन अद्वैत सत्य की गहन साधना के अभाव में अजेय बना रहता है।

79. 'विवेकशील व्यक्तियों में, मेरा मानना है कि मन सेवक है क्योंकि यह इच्छित कार्य को पूरा करता है; मंत्री है क्योंकि यह सभी लाभों का कारण

सिद्ध करता है; तथा एक वफादार सरदार है क्योंकि यह आक्रमणकारी इंद्रियों को नियंत्रित करता है।

'मैं समझता हूँ कि बुद्धिमान का मन, अपनी इच्छानुसार प्रेम करने वाला जीवनसाथी है; रक्षा करने वाला माता-पिता है तथा श्रेष्ठ तर्क प्रस्तुत करने वाला मित्र है।' 'शास्त्रों की दृष्टि से भली-भाँति अध्ययन किया हुआ तथा अपने विवेक के प्रकाश में अनुभव किया हुआ पितृ-मन, परम सिद्धि को प्राप्त करने में स्वयं को समाप्त कर लेता है।' 'स्वयं में अत्यन्त विकृत तथा जड़, एक बार अच्छी तरह जागृत, नियंत्रित तथा शुद्ध हो जाने पर, रमणीय मन-मणि अपने गुणों द्वारा शक्ति प्राप्त करके (हृदय में) चमक उठती है।' 'हे ब्राह्मण! सिद्धि प्राप्त करने के लिए, अनेक दोषों की कीचड़ में डूबी हुई मन-मणि को विवेक के जल में धोकर प्रकाशमान करो।'

'वि-84। 'विपरीत इन्द्रियों पर पूर्ण विजय पाकर, सर्वोच्च विवेक का आश्रय लेकर तथा बुद्धि से सत्य को देखकर, अनुभवजन्य अस्तित्व के समुद्र को पार करो।' 'बुद्धिमान लोग जानते हैं कि चिंता, इस प्रकार, अंतहीन पीड़ाओं का निवास है; वे यह भी जानते हैं कि चिंता न करना, यहाँ और परलोक दोनों में आनंद का घर है।' 'अव्यक्त संस्कारों की डोरियों से बँधा हुआ यह संसार घूमता है (अनुभवजन्य जीवन का निर्माण करता है)। अभिव्यक्ति में, वे पीड़ा देते हैं; जब नष्ट हो जाते हैं तो वे कल्याण करते हैं।'

'बुद्धिमान, अत्यंत और विविध रूप से विद्वान, उच्च कुल और प्रतिष्ठित होने पर भी, मनुष्य लालसाओं से उसी प्रकार बँधा रहता है, जैसे सिंह जंजीर से बँधा रहता है।' 'सर्वोच्च व्यक्तिगत प्रयास और दृढ़ता का आश्रय लेकर तथा अविचल रूप से शास्त्रोक्त आचरण का पालन करते हुए, कौन पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकता?' 'मैं यह संपूर्ण ब्रह्मांड हूँ; मैं ही वह परम आत्मा हूँ जो कभी नष्ट नहीं होती। मेरे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है - यह दर्शन 'मैं' के रूप में आत्मा का सर्वोच्च कथन है (या, आत्म-अभिकथन का प्रथम स्तर)।

90. 'मैं सब से परे हूँ; मैं बाल की नोक से भी सूक्ष्म हूँ' - हे ब्राह्मण! यह आत्म-अभिकथन का दूसरा और कल्याणकारी तरीका है।

91. 'यह (तरीका) बंधन नहीं, बल्कि मुक्ति को बढ़ावा देता है। जीवन में मुक्त पुरुष का उदाहरण देखें।

92. 'यह धारणा कि मैं हाथ, पैर आदि अंगों के समूह से अधिक कुछ नहीं हूँ; आत्म-अभिकथन का तीसरा तरीका है - यह अनुभवजन्य और क्षुद्र है।

93. 'अनुभवजन्य जीवन के बुरे वृक्ष की यह जड़ दुष्ट है और इसका त्याग करना चाहिए। इससे आहत होकर, सांसारिक व्यक्ति तेजी से नीचे गिरता है।

94. 'अपने जीवन से इस दुष्ट आत्म-अभिकथन को त्यागकर, समय आने पर, कल्याणकारी गुण के द्वारा, मनुष्य शांतिपूर्वक मोक्ष प्राप्त करता है।'

V-95. 'आत्म-अभिकथन की प्रथम दो असंसारिक विधियों का आश्रय लेकर, तीसरी सांसारिक विधि, जो दुःख देती है, का त्याग करना चाहिए।'

V-96. 'इसके पश्चात प्रथम दो को भी त्यागकर, मनुष्य आत्म-अभिकथन की समस्त विधियों से मुक्त हो जाता है और इस प्रकार पारलौकिक स्थिति (स्वतंत्रता) को प्राप्त होता है।'

V-97. 'बंधन और कुछ नहीं, केवल विषय-भोग की लालसा है; इसका त्याग ही मोक्ष कहा गया है।'मन का अभिकथन संकटपूर्ण है; इसका निषेध महान सौभाग्य है। ज्ञाता का मन निषेध की ओर प्रवृत्त होता है; अज्ञानी का मन (बंधन की) जंजीर है।

V-98. 'ज्ञाता का (कालहीन) मन या तो आनंदमय होता है, न आनंदहीन; न चंचल, न निश्चल। वह न तो है, न नहीं है। न ही इन सबके बीच मन का स्थान रखता है - ऐसा बुद्धिमान लोग कहते हैं।

वि-99. 'जैसे सूक्ष्मता के कारण आत्मा से प्रकाशित आकाश (वस्तुनिष्ठ रूप से) देखा नहीं जाता, वैसे ही अविभाज्य आत्मा, यद्यपि सब कुछ देखती है, फिर भी देखी नहीं जाती।

वि-100. 'अविनाशी आत्मा, सभी कल्पनाओं से मुक्त और नामकरण से परे, स्वयं की आत्मा आदि जैसे पदनाम दिए गए हैं।

वि-101-102. 'आकाश के सौवें भाग के समान पारदर्शी, जानने वालों में प्रकट होने के कारण अविभाज्य, अनुभवजन्य जीवन में शुद्धतम सबकी एकमात्र आत्मा के बारे में सदैव जागरूक, यह आत्मा न तो अस्त होती है,

न उगती है; न ऊपर उठती है, न लेटती है; न जाती है, न लौटती है; यह न तो यहाँ उपस्थित है, न अनुपस्थित है।

वि-103. ‘इस आत्मा का अपना एक दोषरहित स्वरूप है, जो निर्विवाद और आधारहीन है।

वि-104. 'सबसे पहले शिष्य को मन की शांति, इन्द्रियों का संयम आदि श्रेष्ठ गुणों से शुद्ध करो। फिर उसे यह शिक्षा दो कि यह सब (संसार) ब्रह्म है, अर्थात् शुद्ध हुआ।

V-105. ‘जो अज्ञानी या अर्ध-जागृत (शिष्य) को यह सिखाता है कि ‘यह सब ब्रह्म है’, वह उसे नरकों की अनंत श्रृंखला में डुबा देगा।

V-106. ‘परन्तु जिस शिष्य की बुद्धि भली-भाँति जागृत हो गई है, जिसकी विषय-वस्तु के भोगों की लालसा समाप्त हो गई है, तथा जो सभी ‘अपेक्षाओं’ से मुक्त है, वह अविद्या से उत्पन्न सभी अशुद्धियों से मुक्त हो गया है; बुद्धिमान गुरु उसे उपदेश दे सकता है।

V-107. ‘जैसे प्रकाश के स्थान पर तेज होता है, जहाँ सूर्य होता है वहाँ दिन होता है, जहाँ फूल होता है वहाँ सुगंध होती है, वैसे ही जहाँ आत्मा है वहाँ संसार होता है।

V-108. ‘जब ज्ञान का दृष्टिकोण शुद्ध हो जाता है, जब जागृति का (प्रभात) व्यापक रूप से फैल जाता है, तब यह संसार वास्तविक प्रतीत होना बंद हो जाता है।

V-109. 'स्वयं में स्थित होकर, तुम मेरे उपदेशों की बाढ़ की शक्ति और दुर्बलता को ठीक से समझ जाओगे - (तुम इसे समझ जाओगे) उस सर्वोच्च अज्ञानता के द्वारा जो क्षुद्र आत्मा के क्षेत्र को मिटाने के प्रयास को प्रेरित करती है।'

V-100. 'इससे (सर्वोच्च अज्ञानता के द्वारा) वह ज्ञान प्राप्त होता है जो सभी त्रुटियों को भस्म कर देता है, हे ब्राह्मण! एक बाण दूसरे बाण को निष्क्रिय कर देता है; एक दोष अपने विपरीत बाण को नष्ट कर देता है।'

V-111. 'एक विष को दूसरे बाण से निष्प्रभावी किया जा सकता है; एक शत्रु दूसरे शत्रु को नष्ट कर सकता है। ऐसी है तत्वों की अद्भुत पहेली जो आत्म-विनाश से प्रसन्न होती है!

V-112. 'इस पहेली का वास्तविक स्वरूप अनुभव नहीं होता। जैसे ही इसे देखा जाता है, यह नष्ट हो जाती है - ज्वलंत कल्पना के साथ देखा जाता है जिसका सार है: 'वास्तव में इसका कोई अस्तित्व नहीं है।'

V-113. 'जो मनुष्य (सृजनात्मक) और मुक्तिदायी कल्पना से यह विचार करता है कि यह सब आत्मा है, भेद का बोध अविद्या है, उसे इस अविद्या को सब प्रकार से त्याग देना चाहिए।' 'मुनि! वह परम पद जो अविनाशी कहा गया है, वह (वास्तव में) प्राप्त नहीं होता। द्विज मुनि! इस (अविद्या) की उत्पत्ति कहां से हुई, इस पर विचार मत करो।' 'इसके बजाय इस पर विचार करो कि 'मैं इसे कैसे नष्ट करूं?' जब यह नष्ट हो जाएगा, तब तुम उस पद को (त्याग-) पहचान लोगे।' 'वह समग्र पद (ज्ञान सहित) 'यह माया कहां से आई और कैसे नष्ट हुई। इसलिए इस रोग के निवास (अर्थात् माया) का उपचार करने का प्रयत्न करो।' 'ताकि वह तुम्हें फिर से जन्म आदि के कष्टों में न डाले।' 'आत्मा का समुद्र अपने शानदार आंतरिक स्पंदनों के साथ किसी की आत्मा में चमकता है। निश्चय के साथ उस एकरूप और अनंत का ध्यान करो।'

V-118(b)। 'आत्मा के समुद्र में आत्मा की शक्ति उत्तरार्द्ध की थोड़ी उत्तेजित अवस्था है।'

V-119. समुद्र में एक लहर की तरह, वह शुद्ध शक्ति वहाँ चमकती है, जैसे हवा अपने आप आकाश में बहती है।'

V-120. 'उसी तरह, आत्मा अपने आप में, अपनी शक्ति से, गतिशील हो जाती है। वह सर्वशक्तिमान देवता एक पल के लिए चमकता है।'

V-121. 'जिसकी देश, काल और क्रिया की शक्तियाँ (किसी भी तरह से) नहीं बढ़ी हैं; जो अपनी अनंतता में पूर्व निर्धारित है, अपने स्वयं के मूल स्वभाव के बारे में पूरी तरह से सचेत है।'

V-122. अ-समझे जाने पर, वह एक सीमित रूप को अस्तित्व में लाती है। जब वह परम मनोहर देवता उस (परिमित) रूप को प्रकट करता है।

वि-१२३-१२४(क)। अन्य विचार (दृष्टिकोण), नाम, संख्या, आदि; उसका अनुसरण करते हैं। हे ब्राह्मण, वैयक्तिक आत्मा ('क्षेत्रज्ञ') आत्मा के इस रूप का पदनाम है; यह देश, काल और क्रिया का आधार है, और इसके रूप अनेक (मानसिक) निर्माणों में निहित हैं।

वि-१२४(ख)। 'वह ('क्षेत्रज्ञ') अव्यक्त संस्कारों को उत्पन्न करके, फिर अहंकार का रूप धारण करता है।

वि-१२५। 'निर्धारक के रूप में कलुषित अहंकार को बुद्धि कहा जाता है, जो रूपों की कल्पना करके चिंतन (या मन) का आधार बन जाती है।

वि-१२६। 'अपनी विपुल कल्पनाओं के साथ मन धीरे-धीरे इन्द्रियों में परिवर्तित हो जाता है। बुद्धिमान लोग शरीर को उसके हाथ-पैरों सहित (कुछ नहीं) इन्द्रियाँ समझते हैं।

'इस प्रकार, वास्तव में, कल्पनाओं और छापों की डोरियों से बंधे हुए और अनेक दुखों से घिरे हुए, जीव चरणों में उतरता है।' 'इस प्रकार शक्तिशाली आत्मा, घने अहंकार में पतित हो जाती है, स्वेच्छा से बंधन में चली जाती है, जैसे रेशम का कीड़ा अपने कोकून में रहता है।' 'और, जंजीरों में बंधे शेर की तरह, पूरी तरह से आश्रित हो जाता है और खुद को अपनी कल्पनाओं के जाल में पाता है और कुछ नहीं।' 'कभी-कभी यह मन के रूप में कार्य करता है, कभी बुद्धि के रूप में; कभी ज्ञान के रूप में; कभी-कभी (शुद्ध) क्रिया के रूप में।

कभी यह अहंकार होता है और कभी इसे वह माना जाता है जो सोचा जाता है।' 'कभी इसे प्रकृति कहा जाता है और कभी इसे माया माना जाता है। कभी इसे 'दोष' कहा जाता है और कभी इसे 'क्रिया' कहा जाता है।' 'कभी इसे 'दोष' कहा जाता है और कभी इसे 'क्रिया' कहा जाता है।' 'कभी इसे बंधन कहा जाता है और कभी इसे 'अष्टांगिक' माना जाता है।

कभी इसे अविद्या कहा जाता है और कभी इसे 'कामना' के साथ पहचाना जाता है।' 'जीव अपने भीतर गूलर के बीज को धारण करके, तृष्णाओं की डोरी बनाने वाले इस सम्पूर्ण अनुभवजन्य क्षेत्र को धारण करके, वास्तव में फलहीन वृक्ष ... अतीत में असंख्य जीव उत्पन्न हुए थे और अब भी सभी दिशाओं में उत्पन्न हो रहे हैं।

V-137. ‘अन्य भी जलप्रपात से निकली जल-बूंदों की तरह उत्पन्न होंगे। उनमें से कुछ अपने पहले जन्म में हैं; अन्य सौ से अधिक जन्म ले चुके हैं।

V-138. ‘फिर भी अन्य अनगिनत जन्म ले चुके हैं। कुछ के दो या अधिक जन्म होंगे।कुछ लोग अवमानवीय और महामानव के रूप में जन्म लेते हैं, जिनमें संगीत और ज्ञान की प्रतिभा होती है; कुछ शक्तिशाली सरीसृप के रूप में।

V-139. ‘इनमें से कुछ जीव सूर्य, चंद्रमा और जल के देवता के साथ पहचाने जाते हैं; अन्य शिव, विष्णु और ब्रह्मा के साथ। कुछ ने खुद को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के रूप में विभाजित किया।

V-140. ‘अन्य लोग घास, जड़ी-बूटी, पेड़, उनके फल, जड़ें और पंख वाले कीड़े के साथ। जीव कदंब, जंबीरा, साम, ताल और तमला जैसे वृक्षों के समान हैं।

V-141. ‘और महेंद्र, मलय, सह्य, मंदरा और मेरु जैसे पर्वतों के साथ; और खारे पानी, दूध, घी और गन्ने के रस के समुद्रों के साथ।

V-142. ‘और विशाल दिशाओं और तेजी से बहने वाली नदियों के साथ; इनमें से कुछ ऊपर (पृथ्वी) पर क्रीड़ा करते हैं;कुछ नीचे उतरते हैं और फिर ऊपर की ओर उड़ जाते हैं।

V-143-144(a). ‘मृत्यु द्वारा निरंतर मारे जाने पर, मानो वे हाथों से मारे गए गेंद हैं, ये जीव निरंतर मृत्यु द्वारा मारे जाते हैं जैसे हाथों से गेंदें। हजारों जन्मों को भोगने के बाद,फिर, कुछ मूर्ख लोग (कुछ हद तक) विवेक के बावजूद, सांसारिक जीवन के झंझटों में पड़ जाते हैं।

V-144(b)-145. ‘आत्मा का सिद्धांत, देश, काल आदि से अनिर्धारित; अपनी शक्ति के बल पर, वह केवल खेल-खेल में स्थानिक और लौकिक शरीर धारण करता है। जीवों के विभिन्न क्रमों को प्रकट करने की जन्मजात प्रवृत्तियों से युक्त, वह स्वयं सर्वोच्च (प्रभु और सृष्टिकर्ता) है जो मन बन जाता है, जो अस्थिर है और निर्माण और विघटन के लिए इच्छुक है।

V-146-148(a)। 'प्रारंभ में एक क्षण में, मन की रचनात्मक शक्ति ध्वनि के बीज को अपने सार के रूप में धारण करने के लिए इच्छुक अंतरिक्ष की

पारदर्शी (छवि) बनाती है। फिर, स्थूल कंपन की प्रक्रिया द्वारा सघन होकर, वह मन स्पर्श के बीज को धारण करने के लिए इच्छुक वायु के कंपन को सामने लाता है।

V-148(b)-149(a)। 'ध्वनि और स्पर्श के आधार, इन दो अंतरिक्ष और वायु से, तीव्र दोहराव वाले घर्षण से, अग्नि उत्पन्न होती है।

V-149(b)-150। 'तब इन तीनों से समृद्ध मन, जिसमें प्राथमिक रूप भी शामिल है, शुद्ध तरलता की धारणा की ओर बढ़ता है और तुरंत ही जल की शीतलता के प्रति जागरूक हो जाता है, जिसके बाद शीतलता की अनुभूति होती है।जल की अनुभूति।

V-151. ‘ऐसे गुणों से समृद्ध मन एक साथ मूल गंध का ध्यान करता है; तब पृथ्वी-तत्व की अनुभूति उत्पन्न होती है।

V-152. ‘इसके बाद मूल तत्वों से घिरा यह शरीर अपनी सूक्ष्मता को त्याग देता है और आकाश में अग्नि की चिंगारी के समान चमक देखता है।

V-153. ‘अहंकार के तत्व और बुद्धि के बीज से संयुक्त, यह मधुमक्खी मूल हृदय के कमल में (अब) पुर्यष्टक कहलाती है।

V-154. ‘इसमें तीव्र लालसा के कारण, एक तेजस्वी अवतार का ध्यान करने से, मन बिल्व-फल के पकने की प्रक्रिया के समान स्थूल हो जाता है।

V-155. ‘आकाश में वह तेज, कुठार में तरल सोने की तरह चमकता हुआ, अपने अंतर्निहित स्वभाव के कारण निश्चित रूपरेखा वाला रूप धारण करता है।'ऊपर की ओर गोल सिर है, नीचे की ओर पैर हैं। दोनों ओर हाथ हैं और बीच में पेट है।' 'समय बीतने पर शरीर (मन से युक्त) पूर्ण विकसित होकर दोषरहित हो जाता है।' 'वही दिव्य ब्रह्मा, जो सम्पूर्ण जगत का पितामह है, बुद्धि, पवित्रता, बल, तेज, ज्ञान और प्रभुता में स्थित हो जाता है।' 'वही दिव्य ब्रह्मा, जो सम्पूर्ण जगत का पितामह है, बुद्धि, पवित्रता, बल, तेज, ज्ञान और प्रभुता में स्थित हो जाता है।'

'वही दिव्य ब्रह्मा, जो तीनों काल को अपने में समाहित करता है, अपने आकर्षक और श्रेष्ठ शरीर को देखकर, जिनकी अनुभूति की सीमा में काल के तीनों विभाग समाहित हैं, उन्होंने सोचा कि इस परम स्थान में सबसे पहले क्या प्रकट होगा, जिसका सार शुद्ध आत्मा है और जिसकी सीमा

कहीं नहीं है।' 'इस प्रकार ब्रह्मा ने सोचा, जिनकी दृष्टि शिव के समान दोषरहित थी।' ' 'उसने (ब्रह्माण्डीय) अभिव्यक्ति के भूतपूर्व क्रमों को बड़े-बड़े समूहों में देखा। फिर उसने उन सभी को उनके सभी गुणों के अनुसार क्रम से स्मरण किया।'

V-162. '(तब) उसने (विशुद्ध) कल्पना द्वारा, अपने-अपने व्यवहार के अनूठे स्वरूपों वाले विविध जीवों की रचना की - जो मानो आकाश में एक नगर बन गए।

V-163. 'उनकी सुखमय स्थिति तथा मुक्ति की रक्षा के लिए, धर्म, प्रेम तथा धन की प्राप्ति के लिए उसने अनंत तथा विविध शास्त्रों की स्थापना की।

V-164. 'जिस प्रकार ब्रह्मा के रूप में मन द्वारा जगत का अस्तित्व स्थापित किया गया है, वह ब्रह्मा के रहते ही रहता है; उसके नाश से जगत भी नाश हो जाता है।

V-165. 'हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! वास्तव में, कहीं भी, किसी भी समय, कुछ भी उत्पन्न या नष्ट नहीं होता। जो कुछ भी दिखाई देता है, वह असत्य है (न तो है और न ही नहीं है)।

V-166. 'प्रयोगात्मक जीवन का दिखावा छोड़ दो, यह तृष्णा के सर्पों का गड्ढा है। इसे मिथ्या जानकर, इन सबको अपनी-अपनी भूमि पर गिरा दो।' 'आकाश में बसा नगर', चाहे सुशोभित हो या न हो, अथवा उसके घटक भाग (अज्ञान), संतान आदि, सुख-दुःख का क्या औचित्य है?' 'प्रयोगात्मक जीवन का दिखावा छोड़ दो, यह तृष्णा के सर्पों का गड्ढा है। ... 'अतः हे निदाघ, सत्य के प्रति अपने ज्ञान से, अनुभवजन्य जीवन की गतिविधियों में जो कुछ भी नष्ट हो गया है, उसके प्रति उदासीनता विकसित करो और जो कुछ भी स्वयं प्रस्तुत होता है, उसे स्वीकार करो।' 'विवेकशील व्यक्ति के लक्षण हैं, उन अनुभवों के प्रति सहज उदासीनता जो अपने आप नहीं आते और जो आते हैं, उन्हें हृदय से स्वीकार करना।'

'सत्य और अवास्तविक के बीच की अखंडित मध्य स्थिति को जानना और उसका सहारा लेना, न तो बाह्य या आंतरिक वस्तुनिष्ठ क्षेत्र से चिपके रहना और न ही उससे दूर भागना।' 'विवेकशील और बुद्धिमान व्यक्ति की बुद्धि, आसक्ति और द्वेष से मुक्त, जल से असिंचित कमल के पत्ते की तरह अखंडित रहती है।' 'हे द्विज (ऋषि), यदि विषयों की चकाचौंध तुम्हारे

हृदय को आकर्षित नहीं करती, तो जो जानना चाहिए उसे समझकर (सच्चा ज्ञान प्राप्त करके), तुमने अनुभवजन्य जीवन के समुद्र को पार कर लिया है।'
वि-175. 'सर्वोच्च पद प्राप्त करने के लिए, सर्वोच्च ज्ञान के द्वारा, कार्यशील मन को (सभी) अव्यक्त संस्कारों से उसी प्रकार अलग करो, जैसे फूल से तेज सुगंध को अलग करते हैं।'

वि-176. 'विवेक के श्रेष्ठ पुरुष, जो ज्ञान के जहाज पर सवार होते हैं, अव्यक्त संस्कारों के जल से भरे इस अनुभवजन्य जीवन के सागर को पार करते हैं।'

वि-177. 'वे लोग जो इस संसार को तथा उससे परे की चीज़ों को जानते हैं, सभी चीज़ों के अनुरूप होते हैं। वे न तो संसार के तरीकों से दूर रहते हैं और न ही उनका अनुसरण करते हैं।'

वि-178. 'मानसिक निर्माण का अंकुरण, वस्तुओं ('ज्ञेय') के प्रति आत्माओं की प्रवृत्ति में निहित है - आत्मा जो अनंत है, जो स्वयं का सत्य है, और जो सार्वभौमिक सत्ता है।'

वि-179. 'वही अंकुरण, जो हल्के से अस्तित्व में आया है, धीरे-धीरे भर जाता है, मन में विकसित होता है; फिर यह बादल की तरह जड़ता को बढ़ावा देता है।'

वि-180. 'आत्मा के अलावा अन्य वस्तुओं की कल्पना करने से आत्मा एक रचनात्मक प्रक्रिया में बदल जाती है, जैसे बीज अंकुर में बदल जाता है।' (मानसिक) निर्माण वास्तव में (घटकों को) एक साथ रखने की प्रक्रिया है; यह अपने आप अस्तित्व में आती है और दर्द की ओर तेजी से बढ़ती है, कभी खुशी की ओर नहीं। 'मानसिक निर्माण में लिप्त न हों; स्थिरता की स्थिति में, सकारात्मक अस्तित्व पर ध्यान न दें। मानसिक निर्माण को रोकने में दृढ़ रहें।

इस प्रकार व्यक्ति फिर कभी निर्माण के मार्ग पर नहीं चलता। 'कल्पना के अभाव मात्र से, मानसिक निर्माण की प्रक्रिया अपने आप कम हो जाती है। निर्माण का एक कार्य दूसरे की ओर ले जाता है। हे ऋषि! मन अपने आप पर टिक जाता है! ' (निर्माण से दूर) आत्मा में निवास करें। एक बार ऐसा हो जाने पर, क्या मुश्किल साबित हो सकता है? जैसे यह आकाश खाली है, वैसे ही पूरा ब्रह्मांड है। 'बुद्धिमान ब्राह्मण ! जैसे प्रयत्न करने से धान की

भूसी या तांबे पर लगा काला लेप नष्ट हो जाता है, वैसे ही मनुष्य की मानसिक अशुद्धियाँ भी नष्ट हो जाती हैं।

V-186. 'धान के दाने की तरह जीव की जन्मजात अशुद्धियाँ भी बहुत हद तक नष्ट हो सकती हैं।इसमें कोई संदेह नहीं है। इसलिए प्रयत्न करो।

VI-1. 'कल्पना में निहित अनुभवजन्य जीवन की गहन अनुभूति और मोहक मोह-माया को त्यागकर, हे निष्पाप ! तुम संसार में क्रीड़ापूर्वक विचरण करो।

VI-2. 'मैं सभी संदर्भों में अकर्ता हूँ' इस तीखे और सृजनात्मक विचार के द्वारा, केवल एकरूपता की (धारणा) शेष रह जाती है, जिसे "परम अमरता" कहते हैं।

VI-3. 'केवल अपनी एजेंसी की भावना के कारण दर्द के सभी विस्तारों के संबंध में, (अंत में) केवल एकरूपता बनी रहती है जब किसी की मानसिक रचनाएँ क्षीण हो जाती हैं।

VI-4. 'यह एकरूपता, सभी भावनात्मक मनोदशाओं के बीच, सत्य में निहित स्थिति है। इसमें स्थिर होने पर मन फिर से जन्म नहीं लेता।

VI-5. 'हे, ऋषि! एजेंसी और गैर-एजेंसी के सभी रूपों को त्याग कर और मन को समाप्त कर, तुम वही रहो जो तुम (वास्तव में) हो; दृढ़ रहो।

VI-6-7. 'अंतिम स्थिरता में दृढ़ रहो, त्याग की प्रवृत्ति को ही त्याग दो। सब कुछ उसके कारण के साथ - आत्मा और मन, प्रकाश और अंधकार, आदि के बीच का द्वंद्व; अव्यक्त संस्कार और जो उन्हें उत्पन्न करता है - साथ ही साथ प्राण के कंपन, शांत बुद्धि के साथ आकाश की तरह बनो।

VI-8. 'हृदय से अव्यक्त संस्कारों की पंक्तियों को पूरी तरह से मिटाकर, जो सभी चिंताओं से मुक्त रहता है, वही मुक्त है, वही परम देवता है।'

VI-9. 'मैंने वह सब देख लिया है जो देखने योग्य है; मोहवश मैं अंतरिक्ष की दसों दिशाओं में भटक चुका हूँ। जो अज्ञानी तर्क के द्वारा अनुभवजन्य सत्ता के क्षेत्रों में घूमता है, उसके लिए अनुभवजन्य सत्ताएँ गाय के खुर के आकार में सिकुड़ जाती हैं।'

VI-10. 'शरीर के भीतर-बाहर, ऊपर-नीचे, बीच के क्षेत्रों में, यहाँ-वहाँ, आत्मा है; ऐसा कोई जगत नहीं है जो पूर्णतः आत्मा न हो।'

VI-11. 'ऐसा कुछ भी नहीं है जिसमें मैं न हो; ऐसा कुछ भी नहीं है जो पूर्णतः वह न हो। मुझे और क्या चाहिए ? सभी वस्तुएँ मूलतः सत्ता और आत्मा हैं, जो उसी से व्याप्त हैं।'

VI-12. 'यह सब वास्तव में ब्रह्म है; यह सब विस्तृत वास्तविकता आत्मा है। मैं एक हूँ और यह दूसरा है -हे पापरहित! इस मोह को त्याग दो।

VI-13. 'जो वस्तुएँ हैं, वे शाश्वत, विस्तृत और अविभाजित ब्रह्म में नहीं हो सकतीं। वहाँ न तो दुःख है, न मोह, न बुढ़ापा और न ही जन्म।

VI-14. 'जो यहाँ है, वही यहाँ है। सदैव शान्त रहो, जो घटित हो रहा है, उसे उसी रूप में अनुभव करो और किसी भी प्रकार की इच्छा न रखो।

VI-15(a)। न तो त्याग करो, न लोभ करो, सदैव शान्त रहो।

VI-15(b)-16. 'महान्! जो व्यक्ति अपने अंतिम जन्म में है, उसके पास दोषरहित ज्ञान उसी प्रकार शीघ्रता से आ जाता है, जैसे उत्तम बाँस में शुद्ध मोती टिक जाते हैं। यह उदाहरण उन लोगों के लिए प्रस्तुत किया गया है, जो वैराग्य विकसित करते हैं।

VI-17. 'ज्ञान के आनन्द की निश्चितता द्रष्टा और विषय के अंतरंग संपर्क से उत्पन्न होती है। हम उस स्थिर आत्मा का ध्यान करते हैं, जो स्वयं के सत्य में प्रकट होती है (ज्ञान के आनन्द का स्रोत)।

VI-18. 'द्रष्टा की अनुभूति और विषय को अव्यक्त संस्कारों सहित त्यागकर, हम उस आत्मा का ध्यान करते हैं जो स्वयं को पहले अनुभूति के रूप में प्रकट करती है।

VI-19. 'हम उस शाश्वत आत्मा का ध्यान करते हैं, जो सभी ज्योतियों का प्रकाश है, जो 'है' और 'नहीं' के बीच मध्य भूमि पर स्थित है।

VI-20. 'हृदय में निवास करने वाले प्रभु को त्यागकर, जो लोग (किसी अन्य) ईश्वर के पीछे दौड़ते हैं, वे वास्तव में अपने पास पहले से ही मौजूद कौस्तुभ को त्याग कर रत्न की तलाश कर रहे हैं।

VI-21. 'जैसे इंद्र अपने वज्र से पर्वत शिखरों पर प्रहार करते हैं, वैसे ही हमें विवेक की छड़ी से इन सक्रिय और निष्क्रिय दोनों इंद्रियों रूपी शत्रुओं पर प्रहार करना चाहिए।

VI-22. 'प्रयोगात्मक जीवन की रात्रि में देखे गए बुरे स्वप्न में - शरीर के इस खाली भ्रम में - अनुभव की गई सभी चीजें (प्रयोगात्मक) जीवन की विस्तारित भ्रम के रूप में) अशुद्ध हैं।

VI-23.

'बचपन में मनुष्य अज्ञान से स्तब्ध होता है, युवावस्था में स्त्री द्वारा पराजित होता है। शेष अवधि में मनुष्य अपनी पत्नी से चिंतित रहता है। मनुष्य - सबसे नीच - क्या कर सकता है?

VI-24.'(लेकिन इस प्रकार विलाप करो): असत्यता अस्तित्व के ऊपर सवार है; कुरूपता सुंदर चीजों के ऊपर; दुःख सुखों के ऊपर सवार हैं। मैं किस एक इकाई का सहारा ले सकता हूँ?

VI-25.'वे लोग भी मर जाते हैं जिनके नेत्रों के बंद होने और खुलने पर संसार का विनाश या समृद्धि निर्भर होती है। मेरे (विनम्र) आत्म जैसे लोगों का क्या हिसाब है?

VI-26.'प्रयोगात्मक जीवन को दुखों की सीमा कहा गया है। जब शरीर ही गहराई में डूब जाए, तो सुख कैसे पाया जा सकता है ?

VI-27. 'मैं जाग रहा हूँ ! मैं जाग रहा हूँ ! यह दुष्ट चोर (जो मुझे परेशान कर रहा है, अर्थात् मन) है। मैं उसका नाश करूँगा; मैं बहुत समय से उसके आक्रमण के अधीन हूँ।

VI-28. 'निराश मत हो। जो त्यागने योग्य है, उसे ग्रहण मत करो। अस्वीकार और ग्रहण दोनों के विचारों को त्यागकर, जो न अस्वीकार करने योग्य है, न ग्रहण करने योग्य है, उसमें दृढ़ रहो; पूर्णतया दृढ़ रहो।

VI-29-30. 'अस्वीकार या ग्रहण की जाने वाली वस्तुओं से मुक्त ज्ञाता में, गुप्त संस्कारों के बिना, गुण होते हैं (जैसे): इच्छा और भय से मुक्ति,

संकल्प और क्रिया; नित्यता, समता, ज्ञान, सौम्यता, निश्चय, स्थिरता, मित्रता, संतोष, दान और मृदुभाषी।

VI-31-32. '(भेदक) बुद्धि की तीक्ष्ण सुई से तृष्णा रूपी मछुआरिन द्वारा देहान्तर रूपी जल में डाले गए घोंसले को - (विविध) विचारों की डोरियों से बने जाल को, उसी प्रकार फाड़ डालो, जैसे तेज हवा बादलों के (विशाल) जाल को छिन्न-भिन्न कर देती है। फिर उस विशाल स्थिति में (अपरिवर्तनीय ब्रह्म के रूप में) निवास करो।'

VI-33. 'मन को मन से ही काट डालो, जैसे कुल्हाड़ी से वृक्ष को काट डालते हैं, और पवित्र स्थिति को प्राप्त करके, तुरंत ही दृढ़ हो जाओ।'

VI-34. 'खड़े हो या चलते, सोते हो या चलते, किसी स्थान पर निवास करते, ऊपर उड़ते या नीचे गिरते, भीतर से यह निश्चय करते हुए कि यह सब मिथ्या है, आसक्ति का त्याग करो।'

VI-35. 'यदि तुम इस वस्तुगत (संसार) पर आश्रित हो, तो तुम्हारे पास मन है और तुम बंधन में हो। यदि तुम वस्तुगत (संसार) को अस्वीकार करते हो, तो तुम्हारे पास मन नहीं है; तुम मुक्त हो।'

VI-36. 'न तो मैं हूँ और न ही यह वास्तविक है' - इसलिए व्यक्तिपरक और वस्तुनिष्ठ जागरूकता के अंतराल में सोच बिल्कुल अचल रहती है।

VI-37. भोग्य और भोग्य से मुक्त होकर, विषय और भोगकर्ता के बीच मध्य भूमि में स्थित होकर, अपने शुद्ध बोध के रूप में सदैव अपने आत्म-चिंतन में लीन हो जाओ।

VI-38. 'स्वाद पर ध्यान करते हुए, परम आत्मा से परिपूर्ण हो जाओ; सहारा रहित का आश्रय लेते हुए, अपने आपको स्थिर करो।

VI-39. 'रस्सियों से बंधे हुए लोग मुक्त हो जाते हैं: (परंतु) तृष्णा के वश में कोई भी व्यक्ति मुक्त नहीं हो सकता। इसलिए, हे निदाघ, सभी मानसिक निर्माणों का त्याग करके तृष्णा को त्याग दो।

VI-40. 'स्व-त्याग की सुई से अहंकार रूपी इस जन्मजात और पापमय तृष्णा को काटकर, भविष्य और वर्तमान की सीमा पर स्थित हो जाओ, और सभी भय को पूरी तरह से समाप्त कर दो।

VI-41-43. 'अटल विचार को अस्वीकार करो। 'मैं इन विषयों का जीवन हूँ और ये विषय मेरे जीवन हैं! 'इनके बिना मैं कुछ नहीं हूँ और ये मेरे बिना कुछ नहीं हैं' और 'मैं किसी भी वस्तु का नहीं हूँ और कोई भी वस्तु मेरी नहीं है', ऐसा विचार करने से बुद्धि शांत हो जाती है और कर्म क्रीड़ा-भाव से होने लगते हैं। (ऐसे कर्ता के) अव्यक्त संस्कार त्याग दिए जाते हैं। हे ब्राह्मण! यह त्याग गहन ध्यान के योग्य है!

VI-44. 'बुद्धि की साम्यावस्था के कारण अव्यक्त संस्कारों का सर्वथा नाश हो जाता है। उसे ही अव्यक्त संस्कारों का नाश समझना चाहिए, जिसे जीतकर मनुष्य शरीर को भी त्याग देता है, क्योंकि वह सब प्रकार के परिग्रह से मुक्त हो जाता है।

VI-45. 'जो सब कल्पनीय विषयों को त्यागकर जीता है, उसे जीवन्मुक्त कहते हैं; क्योंकि उसने सब अव्यक्त अहंकारमय संस्कारों को पुनः त्याग दिया है।

VI-46. 'जिसने समस्त निराधार (मानसिक) निर्माणों और अव्यक्त संस्कारों को त्यागकर शांति प्राप्त कर ली है, वह ब्रह्म के जानकारों में श्रेष्ठ है; वही मुक्त है। उसके त्याग का अनुमान ही किया जा सकता है।'

VI-47-48। 'ये दोनों निर्भय, कालक्रम में होने वाले सुख-दुःखों की चिंता न करने वाले, ब्रह्म की स्थिति को प्राप्त हुए हैं - (निष्क्रिय) त्यागी और (सक्रिय) योगी, दोनों ही आत्म-अनुशासित और शांत हैं। हे मुनियों के स्वामी! क्योंकि वे आंतरिक, मानसिक परिवर्तनों के बीच न तो किसी चीज के लिए प्रयास करते हैं और न ही उसका त्याग करते हैं।'

VI-49-50(a)। 'वह जीवन्मुक्त कहलाता है जो स्वप्नरहित निद्रा में रहता है, जो न तो हर्ष, असहिष्णुता, भय, क्रोध, वासना और असहायता की भावनाओं से उत्साहित होता है और न ही उदास होता है और जो सभी वस्तुनिष्ठ व्यस्तताओं से मुक्त है।

VI-50(b)। 'बाह्य वस्तुओं की ओर उन्मुख, अव्यक्त संस्कारों से उत्पन्न तृष्णा को बद्ध कहा जाता है।

VI-51-52(a)। 'वस्तुओं से बंधे हुए अव्यक्त संस्कारों से मुक्त होने पर, वही मुक्त कहा जाता है। जान लें कि प्रार्थनापूर्ण विचार में परिणत होने

वाली इच्छा, "यह मन हो", एक मजबूत जंजीर है जो दुख, जन्म और भय को जन्म देती है।

VI-52(b)-53(a)। 'उदार व्यक्ति वास्तविक और अवास्तविक दोनों प्रकार की वस्तुओं के प्रति (इस बंधनकारी इच्छा) का त्याग करता है और वह श्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त करता है।

VI-53(b)-54(a)। 'तब बंधन और मोक्ष तथा दुःख और सुख की अवस्थाओं - वास्तविक और अवास्तविक दोनों के प्रति आसक्ति - से परे होकर, अविचलित सागर की तरह अविचलित रहता है।

VI-54(b)। 'भले महोदय, मनुष्य को चार गुना निश्चय हो सकता है।

VI-55। 'माता-पिता से उत्पन्न होकर मैं ही पैर से सिर तक शरीर हूँ। हे ब्राह्मण! यह विशेष निश्चय बंधन की चिंताओं के अवलोकन से उत्पन्न होता है!'

VI-56. 'सत्पुरुषों में दूसरा निश्चय होता है, जो मोक्ष प्रदान करता है - अर्थात्: "मैं सभी वस्तुओं और प्राणियों से परे हूँ; मैं बाल की नोक से भी सूक्ष्म हूँ"।

VI-57. 'श्रेष्ठ ब्राह्मणों, तीसरे प्रकार का निश्चय केवल मोक्ष प्रदान करने वाला कहा गया है (जिसका विचार है) "यह सारा वस्तुनिष्ठ जगत, संपूर्ण अविनाशी ब्रह्मांड, केवल मैं ही हूँ"।

VI-58. 'इसके अतिरिक्त एक चौथा निश्चय भी है, जो मोक्ष प्रदान करता है (जिसमें यह कथन है) "मैं और संपूर्ण जगत सर्वदा शून्य और आकाश के समान हैं"।

VI-59. 'इनमें से पहला निश्चय बंधन उत्पन्न करने वाली तृष्णा से उत्पन्न कहा गया है। जिनके पास अंतिम तीन हैं वे क्रीड़ाशील, अत्यंत शुद्ध हैं और इसी जीवन में मुक्त हैं। उनकी तृष्णाएँ पूर्णतः शुद्ध हो गई हैं।

VI-60. 'महान् (मुनि), 'मैं ही सब कुछ हूँ' इस निश्चय से आबद्ध मन फिर कभी दुःख का स्वाद लेने के लिए जन्म नहीं लेता!

VI-61. 'वह ब्रह्म शून्यता, प्रकृति, माया और चेतना से (एकरूप) है। इसे 'शिव, शुद्ध आत्मा, भगवान, शाश्वत और आत्मा' भी कहा गया है।

VI-62. 'केवल अद्वैत शक्ति ही फलती-फूलती है, जो पूर्णतया परम आत्मा है; वह द्वैत और अद्वैत दोनों से उत्पन्न (कारकों) से खेल-खेल में ब्रह्मांड का निर्माण करती है।

VI-63. 'जो सभी वस्तुओं से परे की स्थिति का आश्रय लेता है, जो पूर्णतया पूर्ण आत्मा है, जो न तो व्याकुल होता है, न ही आत्मसंतुष्ट, वह इस अनुभवजन्य जीवन में कभी दुःख नहीं उठाता।

VI-64. 'जो अपने भाग्य के अनुसार कर्म करता है, शत्रु और मित्र को समान दृष्टि से देखता है, जो प्रियता और अप्रियता से मुक्त है, वह न तो दुखी होता है और न ही आशावान होता है।'

VI-65. 'जो सबको प्रसन्न करने वाली बातें कहता है, पूछे जाने पर मधुर बोलता है, और जो सभी प्राणियों के विचारों से परिचित है, वह इस अनुभवजन्य जीवन में कभी दुःख नहीं उठाता।'

VI-66. 'सभी विषयों के त्याग और आत्म-प्रतिष्ठा से चिह्नित आदिम दर्शन का आश्रय लेकर, निर्भय होकर (सच्चे) जीवन्मुक्त होकर संसार में विचरण करो।'

VI-67. 'आंतरिक रूप से सभी लालसाओं को त्यागकर, आसक्ति से मुक्त होकर, सभी गुप्त संस्कारों से मुक्त होकर, (लेकिन) बाहरी रूप से आचरण के स्थापित नियमों के अनुरूप, निर्भय होकर संसार में विचरण करो।'

VI-68. 'बाहर से उत्साही क्रियाकलापों का अनुकरण करते हुए, लेकिन, हृदय से, इन सबसे मुक्त, प्रत्यक्षतः एक कर्ता (लेकिन) वास्तव में एक अकर्ता, शुद्ध समझ के साथ संसार में विचरण करते हैं।

VI-69. 'अहंकार को त्यागकर, स्पष्ट कारण के साथ, आकाश की तरह चमकते हुए, निष्कलंक, शुद्ध समझ के साथ संसार में विचरण करते हैं।

VI-70. 'उत्कृष्ट, आचरण से शुद्ध, आचरण के स्थापित मानदंडों के अनुरूप, सभी आंतरिक आसक्ति से मुक्त, मानो एक अनुभवजन्य जीवन जीते हैं।

VI-71. 'त्याग की आंतरिक आत्मा का सहारा लेते हुए, जाहिर तौर पर वह (किसी) उद्देश्य (या अन्य) को प्राप्त करने के लिए कार्य करता है। केवल छोटे लोग यह कहते हुए भेदभाव करते हैं: एक रिश्तेदार है; दूसरा अजनबी है।

VI-72-73(a). 'जो लोग उदारता से रहते हैं, उनके लिए पूरा संसार एक परिवार है। अनुभवजन्य जीवन के सभी विचारों से मुक्त, बुढ़ापे और मृत्यु से परे, सभी मानसिक निर्माणों से रहित और जहाँ कोई आसक्ति निवास नहीं करती, ऐसी स्थिति का आश्रय लो।

VI-73(b)। 'यह ब्रहम की स्थिति है, जो पूर्णतः शुद्ध है, सभी लालसाओं और कष्टों से परे है।

VI-74(a)। 'इस प्रकार सुसज्जित होकर (पृथ्वी पर) विचरण करने वाला व्यक्ति संकटों से पराजित नहीं होता।

VI-74(b)-75। 'वैराग्य और उदारता जैसे गुणों के सहारे, अपने मन को स्वयं ही ब्रह्मिक स्वतंत्रता का फल भोगने के लिए दृढ़तापूर्वक ऊपर उठाओ। वैराग्य के माध्यम से, यह निषेध (विषय) के मार्ग पर पूर्णता प्राप्त करता है।

VI-76-77(a)। '(मन, तब) सभी लालसाओं से खाली हो जाता है जैसे शरद ऋतु में शुद्ध झील (पानी से) खाली हो जाती है। एक बुद्धिमान व्यक्ति दिन-प्रतिदिन एक ही नीरस कर्मों की दिनचर्या से चिपके रहने में क्यों नहीं लज्जित होता?

VI-77(b). 'बंधन चेतना (विषय के रूप में) और उसके विषयों द्वारा निर्मित होता है; इनसे मुक्त होने पर मुक्ति प्राप्त होती है।

VI-78. 'चेतना (आत्मा) कभी भी विषय नहीं होती; सब कुछ आत्मा है' - यह सभी वेदान्तिक सिद्धांतों का सार है। इस निश्चित सिद्धांत का सहारा लेकर, बौद्धिक और स्वतंत्र रूप से (दुनिया) को देखो।

VI-79. 'तुम स्वतंत्र रूप से आत्मा को प्राप्त करोगे, आनंद की स्थिति (धारण करते हुए): मैं आत्मा हूँ, ये दुनियाएँ आत्मा हैं, दिशाएँ (अंतरिक्ष में) आत्मा हैं; ये प्रकट प्राणी आत्मा हैं।

VI-80-81. 'मैं महिमा (महा) हूँ, विषयों और धारणाओं से रहित, पूरी तरह से शुद्ध रूप, शाश्वत रूप से प्रकट, सभी दिखावटों से मुक्त, द्रष्टा, साक्षी, आत्मा, सभी विषयों से मुक्त, सार में पूर्ण-कक्षीय प्रकाश, जिसके लिए कोई ज्ञेय मौजूद नहीं है, शुद्ध और सरल ज्ञान"।

VI-82. "हे ऋषियों के राजा! सभी मानसिक निर्माणों को मिटाकर, सभी लालसाओं को समाप्त करके, निश्चय की स्थिति का सहारा लो और स्वयं में स्थित हो जाओ।

VI-83. सत्य का साधक ब्राह्मण जो महोपनिषद का ध्यान करता है, वह वैदिक विद्वान बन जाता है। (यदि) वह दीक्षित नहीं है, तो वह दीक्षित हो जाता है; वह अग्नि से, वायु से, सूर्य से, और अग्नि से शुद्ध हो जाता है।

सत्य के द्वारा, शुद्धि के सभी साधनों के द्वारा, वह सभी देवताओं को ज्ञात हो जाता है; सभी पवित्र जल में डुबकी लगाने जैसा शुद्ध हो जाता है। वह सभी देवताओं के विचारों में निवास करता है। उसने (मानो) सभी यज्ञ किए हैं। उसे गायत्री का साठ हजार बार जप करने का, इतिहास और पुराणों और श्रीरुद्र का एक लाख बार जप करने का, ओंकार का दस हजार बार जप करने का फल मिलता है।

वह (जीवों की) पंक्तियों को जहाँ तक आँख देखती है, खोखला कर देता है; और भूत और भविष्य दोनों में सात पीढ़ियों को। ऐसा हिरण्यगर्भ ने कहा है। 'पवित्र वचनों के जप से अमरता प्राप्त होती है' - यह महोपनिषद है। ॐ ! मेरे अंग और वाणी, प्राण, नेत्र, कान, प्राण और सभी इन्द्रियाँ शक्तिशाली बनें। सारा अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है। मैं कभी ब्रह्म को अस्वीकार न करूँ, और न ब्रह्म मुझे अस्वीकार करे।

किसी भी प्रकार का खंडन न हो:कम से कम मेरी ओर से तो कोई खंडन न हो।उपनिषदों में जिन सद्गुणों की घोषणा की गई है, वे मुझमें हों,जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।ॐ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

सामवेद में सम्मिलित महोपनिषद यहीं समाप्त होता है

062 - सरीरक उपनिषद

ओम! वह हम दोनों की रक्षा करें; वह हम दोनों का पोषण करें;
हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,
हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;
हम एक दूसरे से विवाद न करें (या हम किसी से घृणा न करें)।
ओम! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर काम करने वाली शक्तियों में शांति हो!
फिर, शरीर पृथ्वी जैसे पाँच तत्वों का एक संयोजन है। जो कठोर है वह पृथ्वी है, जो तरल है वह पानी है, जो गर्म है वह अग्नि है, जो गति करता है वह वायु है, जो छिद्रपूर्ण है वह अंतरिक्ष है।इंद्रिय के अंग कान आदि हैं: कान आकाश (अंतरिक्ष) में है, स्पर्श की इंद्रिय (त्वचा) वायु में है,आँख अग्नि में है, जीभ जल में है, गंध पृथ्वी में है। इस प्रकार इंद्रियों के लिए ध्वनि आदि विषय हैं।

कर्मेन्द्रियाँ हैं: जिह्वा, हाथ, पैर, भुजाएँ और जननांग। इनके विषय हैं: वाणी, पकड़ना, चलना, शौच और आनन्द। ये क्रमशः पृथ्वी आदि से उत्पन्न हुए हैं। मन, बुद्धि, अहंकार और आत्मचेतन मन ये चार अन्तः इन्द्रियाँ हैं। इनके कार्यक्षेत्र हैं इच्छा और शंका, निश्चय, स्नेह, निर्णय। मन गर्दन के अग्र भाग में, बुद्धि मुख पर, अहंकार हृदय पर, आत्मचेतन मन नाभि पर। अस्थि, त्वचा, स्नायु, बाल, मांस पृथ्वी के भाग हैं; मूत्र, कफ, रक्त, वीर्य जल के भाग हैं; भूख, प्यास, आलस्य, मोह और मैथुन अग्नि के भाग हैं; परिसंचरण, प्रमेह, नेत्र आदि की गति वायु के भाग हैं; काम, क्रोध, लोभ, मोह और भय आकाश के भाग हैं। पृथ्वी के गुण हैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध; जल के गुण हैं: शब्द, स्पर्श, रूप और स्वाद; अग्नि के गुण हैं: शब्द, स्पर्श और रूप; वायु का: ध्वनि और स्पर्श; आकाश का: केवल ध्वनि।

अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, संयम और अपरिग्रह, क्रोध न करना, बड़ों की सेवा,स्वच्छता, संतोष और ईमानदारी, अहंकार न करना, स्पष्टवादिता, विश्वास और किसी को चोट न पहुँचाना - ये सत्व के गुण (प्रभाव) हैं।मैं कर्ता हूँ, भोक्ता हूँ, वक्ता हूँ, अभिमानी हूँ - ये राजस हैं।नींद, आलस्य, मोह, आसक्ति,मैथुन और चोरी - ये तामस हैं।सत्व वाला व्यक्ति

ऊपर है,रजस वाला व्यक्ति बीच में है और तामस, निम्न। सम्यक् ज्ञान सात्विक है, कर्मकाण्डों का राजस है, अन्धता का तामस है। प्रथम जागृत अवस्था पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों तथा चार अन्तः इन्द्रियों (सक्रिय होने) पर निर्भर है। स्वप्न केवल चार अन्तः इन्द्रियों पर निर्भर है; स्वप्नरहित निद्रा में केवल मन ही सक्रिय साधन है;

चौथी अवस्था में केवल आत्मा (सक्रिय) है। ज्ञाता परम सत्ता से भिन्न अनुभवजन्य आत्मा है, जो विषय के प्रति जागरूकता तथा विषय-उद्देश्य (उनके प्रति) उदासीनता के बीच स्थित है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा कर्मेन्द्रियाँ पाँच प्राण वायुओं, मन तथा बुद्धि के साथ मिलकर लिंगशरीर बनाती हैं। मन, बुद्धि, आत्मचेतन तत्त्व, पृथ्वी आदि आठ प्रकृतियाँ हैं।

सोलह अन्य हैं; कान, त्वचा, आँख, जीभ तथा नाक के परिवर्तन; बाहु, जननांग, हाथ, पैर, वाचिक अंग; शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध। तेईस तत्व प्रकृति से संबंधित हैं। चौबीसवाँ अव्यक्त है, मुख्य (तत्व)। जो पच्चीसवाँ है, वह पुरुष है। ॐ! वह हम दोनों की एक साथ रक्षा करे; वह हम दोनों का एक साथ पोषण करे; हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो; हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से घृणा न करें)।

ॐ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित शारिरक उपनिषद समाप्त होता है।

063 - योग शिखा उपनिषद

ॐ ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;
हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,
हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;
हम एक दूसरे से विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)।
ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!
पहला अध्याय

“हे ईश्वर, परमेश्वर, हे देवों के देव, सभी जीव माया के जाल में घिरे हुए हैं, वे कैसे मोक्ष प्राप्त करेंगे? कृपा करके बताएं।” भगवान ब्रह्मा ने भगवान परमेश्वर से पूछा
और उन्होंने इस प्रकार उत्तर दिया:

1.1कुछ लोग कहते हैं कि एकमात्र उपाय ज्ञान (ज्ञान) है। गुप्त शक्तियों को प्राप्त करने के लिए, केवल वही पर्याप्त नहीं है। योग के बिना ज्ञान कैसे मोक्ष की ओर ले जा सकता है? यह भी सच है कि ज्ञान के बिना केवल योग मोक्ष की ओर नहीं ले जा सकता। इसलिए जो मोक्ष का लक्ष्य रखता है, उसे ज्ञान और योग एक साथ सीखना चाहिए।

1.2 जैसे रस्सी पक्षी को बाँधती है, वैसे ही सभी प्राणियों के मन बंधे हुए हैं। जिज्ञासा और शोध इस मन के बंधन को प्रभावित नहीं कर सकते। अतः इस मन पर विजय पाने का एकमात्र उपाय प्राण पर विजय प्राप्त करना है। प्राण पर विजय पाने के लिए योग के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है और सिद्धों द्वारा बताए गए उपायों के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।

1.3 अतः मैं तुम्हें यह योग शिखा (सभी योगों का प्रमुख) सिखा रहा हूँ। यह सभी ज्ञानों से महान है। पद्मासन (कमल की स्थिति) या किसी अन्य आसन में बैठकर, नाक की नोक पर दृष्टि को केंद्रित करने के बाद और दोनों हाथों और पैरों को नियंत्रित करने के बाद एकाग्र मन से 'ॐ' अक्षर का ध्यान करें। यदि कोई निरंतर परमेश्वर का ध्यान करता है, तो वह योग में निपुण हो जाएगा और परमेश्वर उसके सामने प्रकट होंगे।

१.४ यदि हम आसन में बैठकर निरंतर अभ्यास करें तो बिन्दु नीचे जाना बंद हो जाएगा। पूरक और रेचक के बिना प्राण बहुत लंबे समय तक कुंभक में खड़ा रहेगा। आपको विभिन्न प्रकार की ध्वनि सुनाई देगी। चंद्रमा के स्थान से अमृत बहने लगेगा। भूख और प्यास बंद हो जाएगी। मन निरंतर बहते आनंद पर केंद्रित हो जाएगा। इसके लिए चार चरण हैं मंत्र योग, लय योग, हठ योग और राज योग। महान महा योग, जो एक है, को चार भागों में विभाजित किया गया है और ऊपर नाम दिया गया है। प्राण "हं" ध्वनि के साथ बाहर जाता है और "सा" शब्द के साथ अंदर जाता है, और सभी प्राणी स्वाभाविक रूप से "हंसा, हंसा" मंत्र का जाप करते हैं (साँस छोड़ते और लेते

समय)। गुरु द्वारा उल्टे तरीके से (हंसा उल्टा सोहम है) सिखाया जाने के बाद इसे सुषुम्ना में जप किया जाता है। यह 'सोहम्, सोहम् (मैं ही हूँ)' मंत्र का जाप मंत्र योग कहलाता है। सूर्य 'हं' अक्षर है और चन्द्रमा 'था' अक्षर है। सूर्य और चन्द्रमा का मिलन हठ योग है। हठ योग से वह मूढ़ता जो समस्त दोषों का कारण है, लीन हो जाती है।

जब जीवात्मा और परमात्मा का मिलन होता है, तब मन पिघल जाता है और लुप्त हो जाता है। और केवल प्राण वायु ही शेष रह जाती है। इसे लय योग कहते हैं। लय योग से ही वह दिव्य स्वात्मनन्द सौख्य (स्वयं की आत्मा के आनन्द का कल्याण) प्राप्त होता है। योनि के मध्य के महान मन्दिर में गुड़हल के फूल के समान लाल रंग की देवी का तत्त्व सभी प्राणियों में रजस रूप में रहता है।

इस रजस का पुरुष तत्त्व में मिल जाना ही राज योग कहलाता है। राज योग के फलस्वरूप योगी को अणिमा आदि सभी गुप्त शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। यह समझना होगा कि ये चारों प्रकार के योग प्राण, अपान और समान के विलय के अलावा और कुछ नहीं हैं।

1.5 जिनके पास शरीर है, उनके लिए उनका शरीर शिव का मंदिर है। यह उन्हें गुप्त शक्तियां दे सकता है। गुदा और लिंग के बीच का त्रिकोणीय भाग मूलाधार कहलाता है। यहीं शिव जीवनदायिनी शक्ति के रूप में रहते हैं। यहीं कुंडलनी नामक पराशक्ति रहती है। वहीं से वायु उत्पन्न होती है। वहीं से अग्नि भी उत्पन्न होती है। वहीं से 'हंस' ध्वनि और मन भी उत्पन्न होते हैं। यह स्थान जो मांगा जाए वह सब कुछ देता है, इसे कामाख्या पीठम (जुनून का स्थान) कहते हैं। गुदा के किनारे में छह पंखुड़ियों वाला स्वाधिष्ठान चक्र है। पेट के पास दस पंखुड़ियों वाला मणिपूरा चक्र है। हृदय के पास वाले स्थान में 12 पंखुड़ियों वाला अनाहत चक्र है। और, हे भगवान ब्रह्मा, इसे पूर्णगिरि पीठ कहते हैं।

कंठ के अवसाद में सोलह पंखुड़ियों वाला विशुद्धि चक्र है। हे देवों के देव, वह जालन्धर चक्र है। पलकों के बीच में दो पंखुड़ियों वाला आज्ञा चक्र है। उसके ऊपर उदयन नामक महापीठ है।

1.6 दूसरा अध्याय यह जगत उस अस्पष्ट आधार शक्ति के कारण चलता है, जिसे महा माया, महा लक्ष्मी, महा देवी और महा सरस्वती कहा गया है। वह शक्ति पीठ पर बिन्दु के रूप में सूक्ष्म रूप में चमकती है। वह बिन्दु पीठ को तोड़ता है और नाद (ध्वनि) के रूप में वहाँ से निकलता है। वह नाद

ब्रह्म तीन आकार धारण करता है, स्थूल, सूक्ष्म और बाह्य। स्थूल रूप वह बड़ा आकार है, जिसमें पाँच ब्रह्म व्याप्त हैं। नाद से उत्पन्न होने वाला सूक्ष्म रूप, उसकी तीन जड़ों सहित, हिरण्य गर्भ का रूप है। परा सच्चिदानंद की नित्य सच्ची संपत्ति है। आत्मा मंत्र का निरंतर जप करने से परा तत्व (बाह्य दर्शन) में चमक उत्पन्न होगी। मन को रोक लेने वाले योगी के लिए यह दीपक की लौ के समान, चन्द्रमा के चन्द्रमा के समान, जुगनू के समान, बिजली की चमक के समान तथा तारों की चमक के समान सूक्ष्म रूप में प्रकट होता है। नाद से बड़ा कोई मंत्र नहीं, आत्मा से बड़ा कोई देवता नहीं, ध्यान से बड़ा कोई पूजन नहीं तथा संतोष से बड़ा कोई सुख नहीं।

जो मेरा भक्त इसे समझ लेगा, वह अपने सुख में स्थिर रहेगा। जिस महापुरुष की भगवान के प्रति तथा गुरु के प्रति भी ऐसी ही महान भक्ति है, उसे यह सब बातें अपने आप समझ में आ जाएँगी।

उस महान् सनातन नाद (ध्वनि) को शब्द ब्रह्म कहते हैं। वह मूलाधार में स्थित शक्ति है। परा अपने स्वरूप का आधार है और बिन्दु स्वरूप है। पराशक्ति से निकलने वाली उस नाद को (बीज से निकलने वाले कीटाणु के समान) पश्यन्ती कहते हैं (हम देखते हैं)। जो योगी पश्यन्ती शक्ति का प्रयोग करके देखने में समर्थ हो जाते हैं, वे समझते हैं कि वह सम्पूर्ण जगत् है। वह शक्ति हृदय से आरम्भ होकर वर्षा के समान ध्वनि उत्पन्न करती है। हे देवों के देव, वहाँ उसे मध्यमा कहते हैं।

जब वह प्राण के साथ ध्वनि रूप में लीन हो जाती है और कण्ठ तथा जबड़े में स्थित होती है, तब उसे वैकारी कहते हैं। वह आ से क्ष तक सभी वर्णों को उत्पन्न करती है। वर्णों से शब्द उत्पन्न होते हैं, शब्दों से वाक्य उत्पन्न होते हैं और उनसे सभी वेद तथा मंत्र उत्पन्न होते हैं। यह देवी सरस्वती सभी प्राणियों में बुद्धि की गुफा में निवास करती हैं। ध्यान में जब इच्छा शक्ति पिघल जाती है, तब तुम इस परा तत्व को प्राप्त कर सकते हो।

चतुर्थ अध्याय

क्योंकि ईश्वरीय सत्ता एक ही है, इसलिए उसमें कोई भेद नहीं है। तुम्हें यह समझना होगा कि जीवों की विचार प्रक्रिया रस्सी में साँप देखने के समान है। जब तुम नहीं जानते, तो वह रस्सी है और फिर थोड़ी देर के लिए रस्सी साँप के रूप में दिखाई देती है। साधारण बुद्धि भी ऐसी ही है। हम सब कुछ

उसी जगत के रूप में देखते हैं, जिसे हम देखते हैं। इस जगत के इस ब्रह्म से भिन्न होने का कोई कारण या आधार नहीं है। अतः जगत् केवल ब्रह्म है, उससे भिन्न कुछ नहीं है। यदि तुम परातत्व को इस प्रकार समझो, तो भेद का कारण कहाँ है?

4.1 तैत्तिरीय उपनिषद् में भय उस मूर्ख व्यक्ति का बताया गया है, जो जीवात्मा और परमात्मा में भेद देखता है। यद्यपि इस जगत् को अनुभव करने योग्य वस्तु बताया गया है, किन्तु अगले ही क्षण वह स्वप्न के समान लुप्त हो जाता है। स्वप्न में जागने की कोई अवस्था नहीं होती। जागने की अवस्था में स्वप्न नहीं होता। लय में दोनों नहीं होते। लय इन दोनों में नहीं है। ये तीनों ही तीनों वर्णों द्वारा निर्मित भ्रम हैं। जो इसे देख लेता है, वह गुणों से ऊपर हो जाता है और सदा बना रहता है।

4.2 चैतन्य (क्रिया) जगत् के रूप में आरम्भ होता है। ये सभी ब्रह्म हैं। बुद्धिमान लोगों के साथ व्यवहार करते समय इसे आत्मा और अनात्मा के रूप में भेद करना व्यर्थ है। मूर्ख व्यक्ति शरीर को आत्मा के साथ जुड़ा हुआ समझता है। घड़ा कीचड़ में और पानी मृगतृष्णा में मिला हुआ समझता है और इसी प्रकार शरीर को आत्मा में मिला हुआ समझता है, यह सब अज्ञान का आश्रय लेने के कारण है।

4.3 पंचम अध्याय वह योगी जो योग में निपुण है और जिसने अपनी इन्द्रियों को पूर्णतः वश में कर लिया है, वह जो कुछ भी कल्पना करता है, उसे प्राप्त कर लेता है। गुरु ही ब्रह्मा हैं, वे ही विष्णु हैं और वे ही देवों के देव सदाशिव हैं और तीनों लोकों में गुरु से बड़ा कोई नहीं है। हमें भक्तिपूर्वक उस परमेश्वर की पूजा करनी चाहिए, जो महान आत्मा है, जिसने हमें दिव्य ज्ञान सिखाया है। जो इस प्रकार उपासना करता है, उसे ज्ञान का पूर्ण फल मिलता है।

मन के डगमगाने के कारण उसे गूढ़ शक्तियों पर ध्यान केंद्रित नहीं करना चाहिए। जो इस तत्व को भली-भाँति जानता है, वही मोक्ष को प्राप्त करता है। इसमें कोई संदेह नहीं है। छठा अध्याय वह महान प्रकाश है, जिसमें भू लोक, भुवर लोक, सुवर लोक तथा सूर्य, चन्द्रमा और अग्निदेवता ॐ अक्षर में एक छोटा-सा अंश मात्र हैं। जब मन डगमगाता है, तो सांसारिक जीवन और जब मन दृढ़ होता है, तो मोक्ष फलित होता है।

इसलिए हे ब्रह्मा जी, हमें बड़ी बुद्धि का प्रयोग करके मन को डगमगाने से रोकना चाहिए। धन-संपत्ति की इच्छा का कारण मन ही है। जब वह नष्ट हो

जाता है, तो संसार नष्ट हो जाता है। इसका उपचार बहुत प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए। जब मनुष्य अपने मन को संभालता है मन को मन से देखकर और यह जानकर कि मन चलना बंद हो गया है, वह परब्रह्म को देखेगा, जिसे देखना बहुत कठिन है। मन को मन से देखकर योगी मोक्ष प्राप्त कर सकता है। हमें मन को मन से देखना है और उस उन्मत्त अवस्था की अभिलाषा करनी है। हमें मन को मन से देखना है और योग में स्थिर होना है।

६.१ जिस स्थान पर वायु चलती है, वहाँ मन भी डगमगाता है। मन को चन्द्रमा, सूर्य, वायु, दृष्टि और अग्नि कहते हैं। बिन्दु, नाधा और काल ये भगवान विष्णु, ब्रह्मा और ईश्वर हैं। नाधा के निरंतर अभ्यास से बुरे प्रभाव समाप्त हो जाते हैं। जो नाधा है, वही बिन्दु बन जाता है और फिर मन बन जाता है। हमें नाधा, बिन्दु और चिंता के एकीकरण का स्पष्ट लक्ष्य रखना चाहिए। मन ही बिन्दु है और वही संसार की उत्पत्ति का कारण है। गाय से दूध उत्पन्न होने के समान, बिन्दु मन से उत्पन्न होता है।

६.२ जो छह चक्रों (आज्ञा चक्रों) को भली-भाँति समझ लेता है, वह भोग-संसार में प्रवेश करता है। शरीर में स्थित वायु को नियंत्रित करके उसमें प्रवेश करना होता है। वायु को ऊपर की ओर भेजना होता है। वायु, बिन्दु चक्र और चिंता का अभ्यास करना होता है। जब योगी इनमें से किसी एक के द्वारा समाधि प्राप्त कर लेता है, तो उसे सब कुछ अमृत-तुल्य अनुभव होता है। जिस प्रकार लकड़ी के अन्दर की आग को दूसरी लकड़ी से मथे बिना बाहर नहीं निकाला जा सकता, उसी प्रकार अभ्यास के बिना ज्ञान का दीपक नहीं जलाया जा सकता।

अपने गुरु को जहाज चलाने वाला मानकर और उनकी शिक्षा को स्थिर जहाज मानकर, निरंतर अभ्यास के बल से मनुष्य इस जन्म रूपी समुद्र को पार कर जाता है। ऐसा यह उपनिषद् कहता है।ओम! वे हम दोनों की एक साथ रक्षा करें; वे हम दोनों का एक साथ पोषण करें; हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो; हम आपस में विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)।ओम! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित योग-शिखोपनिषद समाप्त होता है।

064 - तुरीयातीत अवधूत उपनिषद

ॐ ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है।
अनंत अनंत से ही निकलता है।
(तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर,
वह अनंत (ब्रह्म) ही रह जाता है।
ॐ ! मुझमें शांति हो!
मेरे परिवेश में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. अब सभी लोगों के पितामह (भगवान ब्रह्मा) ने अपने पिता आदिनारायण (भगवान विष्णु) के पास जाकर आदरपूर्वक कहा, 'तुरीयातीत अवस्था के बाद अवधूतों का मार्ग क्या है, और उनकी स्थिति क्या है?' भगवान नारायण ने उत्तर दिया: बुद्धिमान ऋषि मानते हैं कि जो अवधूत के मार्ग पर रहता है, वह संसार में बहुत दुर्लभ है और (ऐसे ऋषि) बहुत नहीं हैं; यदि कोई (अवधूत) हो जाता है, तो वह हमेशा शुद्ध रहता है, वह वास्तव में वैराग्य का अवतार है;

वह वास्तव में ज्ञान का प्रत्यक्ष रूप है और वह वास्तव में वेदपुरुष का अवतार है। वह (सचमुच) महान पुरुष है, क्योंकि उसका मन मुझमें ही रहता है। वास्तव में मैं भी उसमें रहता हूँ। यथाक्रम, पहले कुटी में रहने वाला तपस्वी (कुटीचक) होने के बाद, वह भिक्षुक (बहुदक) की अवस्था को प्राप्त करता है; भिक्षुक हंस तपस्वी की अवस्था को प्राप्त करता है;

हंस तपस्वी (तब) सर्वोच्च प्रकार का तपस्वी (परमहंस) बन जाता है। (इस अवस्था में) आत्मनिरीक्षण द्वारा वह संपूर्ण जगत को (अपने स्व से भिन्न नहीं) अनुभव करता है; जल (के) भण्डार में अपनी सभी निजी सम्पत्तियों का त्याग कर देता है, (जैसे) उसका प्रतीकात्मक डंडा, जलपात्र, कमरबंद, लंगोटी जो (उसके गुप्तांगों को) ढकती है और (पिछली अवस्था में) उसे दिए गए सभी कर्मकाण्डीय कर्तव्यों का त्याग कर देता है; निर्वस्त्र हो जाना (अर्थात् दिशासूचक चिह्नों से वस्त्र धारण करना); रंगहीन, घिसे हुए छाल के वस्त्र अथवा (मृग) चर्म को भी स्वीकार न करना; तत्पश्चात् (परमहंस की अवस्था के पश्चात) ऐसा आचरण करना जैसे कोई मंत्र का पालन न

करना (अर्थात् कोई अनुष्ठान न करना) तथा हजामत बनाना, तेल से स्नान करना, माथे पर चंदन का सीधा लेप लगाना आदि त्याग देना।

2. वह व्यक्ति है जिसने सभी धार्मिक और लौकिक कर्तव्यों का परित्याग कर दिया है; सभी परिस्थितियों में धार्मिक पुण्य से या अन्यथा मुक्त हो गया है; ज्ञान और अज्ञान दोनों को त्याग दिया है; सर्दी और गर्मी, सुख और दुख, मान और अपमान (के प्रभाव) को जीत लिया है; अव्यक्त प्रभाव से पहले ही जलकर भस्म हो गया है।

शरीर आदि की वासना, निन्दा, प्रशंसा, अभिमान, प्रतिद्वंद्विता, दिखावा, अभिमान, इच्छा, घृणा, प्रेम, क्रोध, लोभ, मोह, हर्ष, असहिष्णुता, ईर्ष्या, जीवन से आसक्ति आदि; अपने शरीर को शव के समान देखना; लाभ या हानि में सहजता और असंयम के साथ समभाव रखना; गाय की तरह (खाने को) मुँह में रखकर अपना जीवन निर्वाह करना; (भोजन) जैसा मिले, उससे (तृप्त) रहना, बिना उसकी तीव्र लालसा किए; विद्या और विद्वत्ता के भण्डार को भस्म कर देना; अपने आचरण की रक्षा करना (अपनी उत्तम जीवन-पद्धति का बखान किए बिना);

(किसी की भी) श्रेष्ठता या हीनता को नकारना; (स्वयं के) अद्वैत में (दृढ़ता से) स्थित होना, जो सबमें सर्वोच्च (सिद्धान्त) है और जो सब को अपने में समाहित करता है; यह विश्वास बनाए रखना कि 'मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं है'; जो केवल देवताओं द्वारा ज्ञात रहस्य के अतिरिक्त अन्य किसी भी अवधारणा का ईंधन अपने में लीन कर लेता है; दुःख से अछूता रहता है; सांसारिक सुखों के प्रति अनुत्तरदायी रहता है; ममता की इच्छा से रहित रहता है; शुभ-अशुभ से सर्वत्र अनासक्त रहता है; सभी इन्द्रियों को स्थिर रखता है; अपने आचरण, विद्या और नैतिक गुण (धर्म) की श्रेष्ठता की ओर ध्यान नहीं देता जो उसने अपने जीवन के पिछले चरणों में अर्जित किया था;

जाति और जीवन के चरण (वानप्रस्थ) के अनुरूप आचरण का त्याग कर देता है; स्वप्नहीन, क्योंकि उसके लिए रात और दिन एक समान हैं; सदैव सर्वत्र गतिशील रहता है; केवल शरीर ही उसके लिए छोड़ दिया जाता है; उसका जल-पात्र ही जल-स्थान होता है; सदैव समझदार (पर) अकेला घूमता रहता है मानो वह कोई बालक, पागल या भूत हो; सदैव मौन रहकर और अपने आत्मा का गहन ध्यान करते हुए, वह अपने आधार के रूप में स्थिर (ब्रह्म) को रखता है; अपने आत्म-लीनता के अनुरूप सब कुछ भूल जाता है;

यह तुरीयातीत ऋषि अवधूत तपस्वी की स्थिति में पहुँचकर और पूर्णतः अद्वैत (आत्मा) में लीन होकर अपना शरीर त्याग देता है, क्योंकि वह ॐ (प्रणव) के साथ एक हो गया है: ऐसा तपस्वी अवधूत है; उसने अपने जीवन का उद्देश्य पूरा कर लिया है। इस प्रकार उपनिषद (समाप्त) होता है। ॐ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है। अनंत अनंत से निकलता है। (तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेते हुए, यह केवल अनंत (ब्रह्म) के रूप में रहता है। ॐ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ शुक्ल-यजुर्वेद से संबंधित तुरीयातीतवधूतोपनिषद समाप्त होता है।

065 - संन्यास उपनिषद

ॐ ! मेरे अंग और वाणी, प्राण, नेत्र, कान, प्राणशक्ति
और सभी इंद्रियाँ बलवान बनें।
सारी सत्ता उपनिषदों का ब्रह्म है।
मैं कभी ब्रह्म को अस्वीकार न करूँ, न ब्रह्म मुझे अस्वीकार करे।
कोई भी अस्वीकार न हो:
कम से कम मेरी ओर से तो कोई अस्वीकार न हो।
उपनिषदों में जिन सद्गुणों की घोषणा की गई है, वे मुझमें हों,
जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।
ॐ ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

पहला अध्याय

1. अब हम त्याग पर उपनिषद की व्याख्या करेंगे। जो व्यक्ति (जीवन के चरणों में) उचित क्रम में (प्राथमिक प्रवृत्तियों जैसे धन की इच्छा, आदि) त्याग देता है, वह त्यागी बन जाता है (सांसारिक जीवन)। इसे त्याग क्या कहते हैं? त्याग कैसे किया जाता है ? जो व्यक्ति (निम्नलिखित) कर्मों

द्वारा अपने को सुरक्षित रखता है, जिसके (त्याग के लिए) माता, पिता, पत्नी, पुत्र और बन्धु-बान्धवों की स्वीकृति है, उसे अपने परिचित सभी पुरोहितों को एकत्रित करना चाहिए और पहले की तरह (उनकी स्वीकृति से) वैश्वानर यज्ञ (सभी लोगों के कल्याण के लिए) करना चाहिए। उसे (विभाजन के बाद) अपना सारा धन पुरोहितों को दे देना चाहिए।

क्योंकि पुरोहित ही (वैदिक स्तोत्रों के गायक हैं, जो दान के योग्य हैं)। प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन पाँच प्राणों को (प्रतीकात्मक रूप से) सभी यज्ञ पात्रों में पाँच पवित्र अग्नियों - आहवनीय, गृहपत्य, अन्वहार्यपाचन, सभ्य और अवसत्य - के ऊपर रखना चाहिए। वह अपने बालों को शिखा सहित मुंडवाकर, जनेऊ तोड़कर और अपने पुत्र को देखकर 'तुम ही ब्रह्मा हो, तुम ही यज्ञ हो, तुम ही सब कुछ हो' इन मंत्रों से अपने आपको पवित्र करे। यदि उसका कोई पुत्र न हो तो वह इस प्रकार अपने आपको पवित्र करे और किसी भी बात की चिंता न करते हुए भिक्षुक की तरह पूर्व या उत्तर की ओर चले। वह चारों वर्णों से भिक्षा ले सकता है। उसे अपने हाथ के बर्तन से भोजन करना चाहिए।

भोजन को औषधि के समान समझे। भोजन को औषधि के समान ही ले (अर्थात बहुत संयम से)। जब भी मिले (बिना असंतुष्टि के तथा बिना और मांगे, ओलिवर ट्विस्ट की तरह) उसे केवल जीविका के लिए खाना चाहिए तथा इस प्रकार खाना चाहिए कि चर्बी न बढ़े। दुबला होने पर वह एक रात गांव में, पांच रात शहर में आश्रय ले सकता है; वर्षा के चार महीने वह गांव या शहर में निवास कर सकता है।

पखवाड़े को महीने मानकर वह दो महीने तक (स्थिर निवास में) निवास कर सकता है। यदि वह (गर्मी या सर्दी) सहन करने में असमर्थ हो तो वह फटा हुआ वस्त्र या छाल का कपड़ा दान में ले सकता है। उसे अन्य कुछ भी स्वीकार नहीं करना चाहिए। क्योंकि तपस्या का अर्थ है (समभाव से) कष्ट सहना। फिर जो इस प्रकार विधिपूर्वक त्याग करता है तथा इस प्रकार (सही दृष्टिकोण से) उसे देखता है, उसके लिए जनेऊ, शिखा और जल पीना क्या है? उसके लिए (प्रश्नकर्ता के लिए) यही उत्तर है।

यही उसका जनेऊ है कि वह आत्मा का ध्यान करे, ब्रह्मविद्या का अभ्यास ही शिखा है, वह अपने उदर रूपी पात्र से प्यास बुझाता है, वह सर्वत्र विद्यमान जल से अपना कर्तव्य पूरा करता है। उसका निवास जल के किनारे है। जब सूर्य अस्त हो जाता है, तो वह जल कैसे पी सकता है? जैसे वह दिन में जल को छूता है, वैसे ही रात में भी; क्योंकि न तो उसके पास

रात है, न दिन। (ज्ञानी तपस्वी काल के बंधन से परे होता है)। इसे वैदिक ऋषि ने एक मंत्र में कहा है: 'उसके लिए केवल एक ही समय है, दिन।' जो ऐसा जानता है, वह इस (त्याग) के द्वारा आत्मा को प्राप्त करता है।

दूसरा अध्याय 1. वही व्यक्ति त्याग का अधिकारी है जिसने चालीस शुद्धि-कर्मों का पालन किया है, जो सांसारिक वस्तुओं से विरक्त है, जिसने मन की शुद्धता प्राप्त कर ली है, जिसने कामना, ईर्ष्या, असहिष्णुता और अहंकार को जला दिया है, तथा जो आध्यात्मिक जीवन की चार विधाओं (साधनाओं) से युक्त है।

2. जो त्याग का संकल्प करके उसे ग्रहण नहीं करता, उसे प्रायश्चित के रूप में अकेले ही प्रजापत्य तप करना चाहिए, तत्पश्चात वह संसार का त्याग करने का अधिकारी है।

3. जो त्याग का संकल्प करके बाद में उसका खंडन करता है, जो पतित तपस्वी का साथ देता है (मानो वह सच्चा हो) तथा जो (त्याग चाहने वालों के मार्ग में) बाधा डालता है - ये तीन (लोग) पतित कहे जाते हैं।

4. अब ये (व्यक्ति, वैराग्य रखने पर भी, त्याग के अधिकारी नहीं हैं - नपुंसक, पतित, अपंग, स्त्रियाँ, बहरा, बालक, गूंगा, विधर्मी, मुखबिर, विद्यार्थी (जिसने अपना अध्ययन पूरा न किया हो), वैखानस संन्यासी (वैष्णव सम्प्रदाय का), कट्टर शैव (हरद्विज), वेतनभोगी शिक्षक, रज्जुहीन तथा अग्नि-अनुष्ठान रहित व्यक्ति। यदि वे संसार का त्याग भी कर दें, तो भी वे महान् शास्त्रों (जैसे 'वह तू है') की शिक्षा के अधिकारी नहीं हैं।

5. तपस्वी कृपा से पतित व्यक्ति का पुत्र, नाखूनों का रोग, भूरे दाँत वाला, क्षय रोगी तथा विकृत व्यक्ति - ये कभी त्याग के अधिकारी नहीं हैं।

6. जो अभी-अभी गृहस्थ बने हैं, जिन्होंने बहुत बड़े पाप किए हैं, उन्हें कभी त्याग की अनुमति नहीं देनी चाहिए। पापी, मुख्य शुद्धिकरण कर्म (व्रत्य) न करने के कारण जाति खो चुके तथा शापित।

7. (पुनः) जो धार्मिक अनुष्ठानों, धार्मिक कृत्यों (यज्ञों), तप, दान, हवन, हवन तथा शास्त्राभ्यास से रहित है, तथा जो सत्य और पवित्रता से पतित है, उसे कभी भी त्याग की अनुमति नहीं देनी चाहिए। ये त्याग के योग्य

नहीं हैं; (तथा कोई भी) उचित आदेश का पालन नहीं कर सकता, सिवाय उस व्यक्ति के जो अत्यधिक पीड़ित है।

8. त्याग करने का अधिकारी व्यक्ति 'ॐ भूः स्वाहा' का उच्चारण करते हुए अपनी शिखा त्याग दे। 'जनेऊ बाहर न रहे। मुझे यश, बल, आध्यात्मिक ज्ञान, वैराग्य और बुद्धि प्रदान करें' मंत्र का उच्चारण करते हुए, वह पवित्र धागे को तोड़कर अपने वस्त्र और कमरबंद सहित 'ॐ स्वाहा' का उच्चारण करते हुए जल में छोड़ दे। फिर उसे तीन बार दोहराना चाहिए, 'मैंने त्याग कर दिया है।'

9. संसार का त्याग करने वाले ब्राह्मण को देखकर सूर्य अपने स्थान से हट जाता है (यह सोचकर), 'यह व्यक्ति मेरी डिस्क को तोड़कर ब्रह्म तक पहुँच जाएगा।'

10. वह बुद्धिमान व्यक्ति जो कहता है 'मैंने त्याग कर दिया है', अपने परिवार की साठ पीढ़ियों को गौरव प्रदान करता है।

11. दुष्ट पुत्रों से उत्पन्न सभी दोष तथा शारीरिक दुर्बलता से उत्पन्न सभी दोष, त्याग के समय की स्तुति अग्नि उसी प्रकार भस्म कर देगी, जैसे भूसा सोने को भस्म कर देता है।

12. (हे मित्र, मेरी रक्षा करो) मंत्र का उच्चारण करते हुए, त्यागी को दण्ड स्वीकार करना चाहिए।

13. तपस्वी को बांस का बना, चिकना, साबुत (छाल सहित), समतल जोड़ों वाला, पवित्र भूमि में उगाया हुआ तथा सभी दोषों से मुक्त दण्ड धारण करना चाहिए।

14. उस पर (जंगल की आग से) कोई दाग न हो, कीड़ों से कोई क्षति न हुई हो, उसके जोड़ चमक रहे हों, तथा नाक, सिर या भौंहों तक लंबी हो।

15. दण्ड और व्यक्ति के बीच सदैव घनिष्ठ संबंध होना चाहिए; बुद्धिमान व्यक्ति दण्ड के बिना तीर चलाने की दूरी से तीन गुना दूरी तक भी नहीं चलना चाहिए।

16. 'तुम ही जल के पात्र हो, जिससे जगत् धारण होता है; तुम मुझे कभी अस्वीकार मत करो, तुम सदैव सबके लिए अनुकूल हो', ऐसा मंत्र पढ़कर

जल का पात्र ग्रहण करे और योग वस्त्र धारण करके (ध्यान के लिए सहायक) सुखपूर्वक मन से भ्रमण करे।

17. धर्म और अधर्म का त्याग कर दे, सत्य और असत्य दोनों का त्याग कर दे; सत्य और असत्य दोनों का त्याग करके जिस द्वैत को त्यागता है, उसे त्याग दे।

18. वैराग्य से युक्त तपस्वी, ज्ञान से युक्त तपस्वी, ज्ञान और वैराग्य से युक्त तपस्वी और कर्म के त्याग से युक्त तपस्वी; ये चार प्रकार के तपस्वी प्राप्त होते हैं।

19. ऐसा ही है। जो देखे या सुने जाने वाले इन्द्रिय विषयों के प्रति उदासीन हो गया है तथा जिसने पूर्वकृत शुभ कर्मों के प्रभाव से संसार का त्याग कर दिया है, वही वैराग्य से युक्त तपस्वी है।

20. जो शास्त्र के ज्ञान के कारण सांसारिक जीवन से विरक्त हो गया है, तथा पाप-पुण्य में लोगों के अनुभव सुनकर शरीर, शास्त्र और संसार से आसक्ति त्यागकर तथा संसार के सभी कर्मों को उल्टी के समान व्यर्थ समझकर, चतुर्विध तपस्वी है, वह ज्ञान और वैराग्य से युक्त तपस्वी है।

21. जो ज्ञान और वैराग्य से आत्मा के स्वरूप का ध्यान करके अपने शरीर को ही अपने लिए छोड़ देता है, तथा फिर त्यागकर वस्त्रहीन हो जाता है (जैसा कि जन्म के समय था)।

22. ब्रह्मचर्य का पालन करके गृहस्थ होकर वानप्रस्थ अवस्था को ग्रहण करने वाला, जो वैराग्य रहित होकर भी केवल जीवन की अवस्थाओं के पालन के लिए संसार का त्याग करता है, वही कर्म का त्यागी तपस्वी है।

23. त्याग छः प्रकार का होता है: (तथा तपस्वी कहलाते हैं) कुटीचक, बहुदक, हंस, परमहंस, तुरीयातीत और अवधूत।

24. कुटीचक तपस्वी शिखा और जनेऊ धारण करता है, दंड और जलपात्र धारण करता है, लंगोटी और पैबंद लगा हुआ वस्त्र धारण करता है, पिता, माता और गुरु की सेवा में तत्पर रहता है, पात्र, कुदाल, गोफन आदि से सुसज्जित रहता है, अकेला रहता है, एक स्थान पर भोजन करने का आदी होता है, मस्तक पर श्वेत चंदन का लंबवत चिह्न धारण करता है और त्रिगुणात्मक दंड धारण करता है।

25. बहुदक तपस्वी शिखा आदि चिथड़ेदार वस्त्र धारण करता है तथा माथे पर पवित्र भस्म की तीन (क्षैतिज) रेखाएं लगाता है तथा सभी प्रकार से कुटीचक तपस्वी के समान होता है (सिवाय इसके कि) वह आठ घरों से भिक्षा के रूप में एकत्रित आठ कौर भोजन पर निर्वाह करता है, जैसे मधुमक्खी (शहद बनाती है)।

26. हंस तपस्वी जटाधारी धारण करता है, माथे पर पवित्र भस्म की क्षैतिज रेखाओं या चन्दन की लंबवत रेखाओं का चिह्न लगाता है, बिना किसी प्रतिबंध के भिक्षा के रूप में एकत्रित भोजन पर निर्वाह करता है तथा एक लंगोटी पहनता है।

27. परमहंस तपस्वी जटा और जनेऊ से रहित होता है, अपने हाथ के पात्र में भिक्षा ग्रहण करता है, एक लंगोटी पहनता है, एक ही वस्त्र धारण करता है, एक ही बाँस का डंडा रखता है, या तो एक ही वस्त्र धारण करता है या पवित्र भस्म से लिपटा होता है और उसने सभी (संपत्ति और आसक्ति) त्याग दी होती है।

28. तुरीयातीत तपस्वी गाय की तरह अपने मुँह में फल ग्रहण करके निर्वाह करता है; यदि वह पका हुआ खाता है तो वह भी उसके लिए अच्छा नहीं होता।

अवधूत तपस्वी के कोई निश्चित नियम नहीं होते। वह पतित या शापित व्यक्तियों को छोड़कर सभी जातियों के लोगों से जब भी भोजन प्राप्त करता है, अजगर की तरह खाता है और हमेशा आत्मा के स्वरूप का ध्यान करता है।

30. मैं निश्चित रूप से वृक्षों, घासों और पर्वतों से युक्त इस संसार का नहीं हूँ। मैं, परम सत्ता, यह बाह्य (घटना) जो अत्यंत जड़ है, कैसे हो सकता हूँ? मैं वह शरीर नहीं हूँ जो जड़ है और जो थोड़े समय में नष्ट हो जाता है।

31. मैं वह ध्वनि नहीं हूँ जो जड़ है, शून्य से आती है और शून्य के रूप की है और जो कान की जड़ गुहा द्वारा थोड़े समय के लिए पकड़ी जाती है।

32. मैं वह स्पर्श नहीं हूँ जो जड़ है, लेकिन जिसे चेतना के अनुग्रह से जीवन मिला है और जिसे क्षणिक अस्तित्व वाली त्वचा द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है, किसी अन्य तरीके से नहीं।

33. मैं वह स्वाद नहीं हूँ जो जड़ है, पदार्थ पर निर्भर है और अल्पकालिक है, महत्वहीन है और चंचल मन की सहायता से चंचल जीभ द्वारा अस्तित्व में लाया जाता है।

34. मैं वह रूप नहीं हूँ जो जड़ है, एकमात्र साक्षी (ब्रह्म) में मौजूद नहीं है, नाशवान है और जो दृष्टि और दृष्टि के विषय पर निर्भर है, जिनका अस्तित्व क्षणिक है।

35. मैं वह गंध नहीं हूँ जो अचेतन, सूक्ष्म और अवर्णनीय रूप वाली है और जो नाशवान नासिका द्वारा अस्तित्व में लाई गई है जो गंध के प्रति मृत है।

36. मैं केवल शुद्ध चेतना हूँ जो अंगों, 'मेरेपन' और विचारों से रहित है और जो शांत है और पाँच इंद्रियों के मोह से परे है।

37. मैं केवल चेतना हूँ, पूजा के स्थान से रहित, प्रकाशक, सर्वव्यापी (बाहरी और आंतरिक), अंगों और दागों से रहित, भेदहीन चेतना का प्रकाश, सर्वव्यापी और अकेला हूँ।

38. यह केवल मुझ चेतना के द्वारा ही है कि सूर्य पर्यन्त बर्तन और वस्त्र आदि सभी वस्तुएँ दीपक के समान आत्म-प्रकाश से प्रकाशित होती हैं।

39. यह केवल मैं ही हूँ, मेरे आंतरिक रूप से चमकते हुए तेज के द्वारा, विभिन्न इंद्रियाँ उसी प्रकार सक्रिय होती हैं, जैसे भीतर प्रज्वलित अग्नि के कारण चिंगारियाँ चमकती हैं।

40. यह शुद्ध चेतना का नेत्र, जो अनंत आनंद का आनंद लेता है और जो तब भी चमकता है जब अन्य सभी लुप्त हो जाते हैं, सभी आंखों में विजयी रूप से मौजूद है।

41. नमस्कार, नमस्कार केवल मुझको, जो अन्य सभी प्राणियों में मौजूद है और जो किसी वस्तु के प्रतिबंध से मुक्त चेतना से बना है और व्यक्तिगत आत्मा (चेतना) का रूप है।

42. विभिन्न स्पष्ट रूप से देखी जाने वाली शक्तियाँ (जैसे पृथ्वी, आदि) (वास्तव में) चेतना द्वारा विविध रूप में प्रस्तुत की जाती हैं जो परिवर्तन

से मुक्त है, एक संपूर्ण है और समय और भागों (काल) की सीमा से मुक्त है।

43. चेतना जो तीन अवधियों (भूत, वर्तमान और भविष्य) से परे है, वस्तुओं की धारणा के प्रतिबंध से रहित है और जो आत्मा की वैयक्तिकता को त्याग देती है, वहाँ केवल एकता (आत्मा और ब्रह्म की) शेष रहती है।

44. वस्तुतः वही (चेतना) शब्दों की पहुँच से परे होने के कारण स्वार्थ की परिणति (अर्थात् अद्वैत की स्थिति) को प्राप्त हुई प्रतीत होती है, मानो वह शाश्वत अ-अस्तित्व हो।

45. वही चेतना कामनाओं और अ-इच्छाओं के मल से किंचित् आवृत होकर, डोरी से बंधी हुई मादा पक्षी के समान ऊपर उठने में असमर्थ है।

46. कामना और द्वेष से उत्पन्न मोह से ग्रसित मनुष्य पृथ्वी की गुहाओं में डूबे हुए कीड़ों के समान हो जाते हैं।

47. हे आत्मा को, तुमको, जो चेतना से अभिन्न हो, नमस्कार है। अब मैं सत्य से ग्रसित हो गया हूँ, मैं जागृत हो गया हूँ, मैं मोह से ऊपर उठ गया हूँ। 48. मैं संशय से ऊपर उठ गया हूँ, मैं जो हूँ, वही हूँ; तुम्हें, तुम्हारे और मुझको, जो शाश्वत हैं, नमस्कार है। तुम्हारे लिए और मेरे लिए चेतना से मिलकर।

49. हे परब्रह्म परमेश्वर, आपको नमस्कार है और मुझ शिव को नमस्कार है। आत्मा बैठा हुआ होने पर भी बैठा नहीं है, जाता हुआ भी नहीं है। शांत होने पर भी वह कर्मों में लगा हुआ है, कर्म करता हुआ भी वह कलंकित नहीं है।

50. वह सर्वथा सुलभ है, वह निकट के स्वजन के समान सरलता से जाना जा सकता है; वह सबके शरीररूपी कमल के भीतर की मधुमक्खी है।

51. मुझे भोग की अवस्था की इच्छा नहीं है, न ही भोग को त्यागने की। जो आए सो आए, जो जाए सो जाए।

52. जब मन अपने में शान्त हो जाता है, अहंकार से रहित हो जाता है, तथा विचार अपने में विलीन हो जाते हैं, तब मैं अकेला, सुखी रहता हूँ।

53. मेरा शत्रु (द्वैत) विचार, अहंकार, मन और इच्छा से रहित होकर, केवल स्पंदनरूपी शुद्ध आत्मा में ही स्थित रहता है।

54. मेरे शरीर रूपी पिंजरे से तीव्र इच्छाओं के बंधनों को तोड़कर अहंकार रहित पक्षी कहाँ उड़कर चला गया, यह मैं नहीं जानता।

55. जिसके पास अहंकार नहीं है, जिसकी बुद्धि कलुषित नहीं है, तथा जो सब प्राणियों में समभाव रखता है - उसका जीवन उज्ज्वल है।

56. जो इस (अद्भुत जगत्) को (निष्पक्ष) साक्षी की भाँति मन से देखता है, भीतर से शांत रहता है, राग-द्वेष से मुक्त हो जाता है, उसका जीवन धन्य है।

57. जो ठीक से समझकर अवांछनीय और वांछनीय दोनों को त्याग देता है, तथा अपने मन को उसकी शांति में रखता है, उसका जीवन धन्य है।

58. जब वस्तु और व्यक्ति (जो उसे ग्रहण करता है) के बीच की कड़ी मिट जाती है, तब शांति आ जाती है। जब शांति स्थापित हो जाती है, तब उसे मोक्ष कहते हैं।

59. सूखे बीजों के समान सांसारिक जन्म का अंकुरण नहीं होता; जो मुक्त हो जाते हैं, उनके हृदय में छिपी हुई इच्छाएँ शुद्ध हो जाती हैं।

60. (साक्षात्कार प्राप्त आत्मा की अव्यक्त इच्छा) पवित्र करने वाली, अत्यंत उचित, शुद्ध प्रकृति के अंतर्गत आने वाली, आत्मा का ध्यान करने वाली और शाश्वत है; वह गहरी नींद में रहने के समान है।

61. मन के बिना समझना ही वास्तव में व्यक्तिगत चेतना कही जाती है। चूँकि यह शांत मन की प्रकृति है, इसलिए इसमें समझ (भेदों) की अशुद्धता नहीं होती।

62. जहाँ मन शांत हो जाता है, वहाँ सत्य और शुभ होता है; यह सच्ची स्थिति है; यह सर्वज्ञता है और वास्तव में यह पूर्ण संतुष्टि है।

63. बोलते, देते, लेते, आँखें खोलते और बंद करते समय, मैं शुद्ध चेतना हूँ, त्यागे गए विचार प्रक्रिया से प्राप्त होने वाला आनंद।

64. जानने योग्य वस्तुओं की अशुद्धता को त्यागकर, मन को पूरी तरह से शांत करके और इच्छा के बंधन की आग को काटकर, मैं शुद्ध चेतना ही हूँ।

65. मैंने अच्छे-बुरे विचारों को शांत कर दिया है, मैं चिंतामुक्त हूँ, प्रिय-अप्रिय की कल्पना से मुक्त हूँ; मैं केवल शुद्ध चेतना हूँ।

66. मैं अपने-पराये का विचार त्यागकर, सांसारिक घटनाओं में किसी का पक्ष न लेकर, आत्मा से चिपके हुए, अटल स्तंभ की तरह स्थिर हूँ।

67. मैं अपनी चेतना में स्थित हूँ जो शुद्ध और आशारहित है, इच्छाओं और अनचाहों से मुक्त है, अवांछनीय और वांछनीय दोनों से रहित है।

68. मैं आत्म-प्रकाश की स्थिति में रहते हुए आंतरिक आनंद कब प्राप्त करूँगा? मैं कब अपने मन को शांत रखते हुए पर्वत की गुफा में रहूँगा?

69. मैं कब निर्विकल्प समाधि का अभ्यास करके पत्थर के समान हो जाऊँगा, जब अखंड ध्यान की शांति में मूक रहते हुए, वन के पक्षी मेरे सिर पर अपने पत्तों के घोंसले बनाएंगे?

70. मन के वन में विचाररूपी वृक्षों और तीव्र कामनारूपी लताओं को काटकर और (आध्यात्मिक ज्ञान के) विस्तृत मैदान में पहुँचकर मैं सुखपूर्वक जीवन का आनंद लेता हूँ।

71. मैं उस (ज्ञानरूपी) मार्ग का अनुसरण करता हूँ, मैं अकेला हूँ (आसक्तियों से मुक्त), मैं सफल हूँ (सत्य को जानने में), मैं मुक्त हूँ, मैं कामनारहित हूँ, मैं अविभाज्य हूँ और मुझे कुछ भी इच्छा नहीं है।

72-73. पवित्रता, शक्ति, वास्तविकता, हार्दिकता, सत्य, सत्य, ज्ञान, आनंद, शांति,निरंतर आनंद, परिपूर्णता, सच्ची समृद्धि, तेज और सच्ची एकता का उदय - इस प्रकार अपने आत्मस्वरूप का विचार करके तथा अपने वास्तविक स्वरूप को जानकर, संशय-मुक्त होकर, भिक्षुक वास्तव में विकल्पहीन हो जाता है (अर्थात् ब्रह्म से एक हो जाता है)।

74. यदि कोई अत्यन्त पीड़ित व्यक्ति ठीक हो जाए, तो उसे निर्धारित क्रम में संन्यास ग्रहण करना चाहिए। (तपस्वी) को नीच जाति की स्त्री, सद्गुण से पतित व्यक्ति तथा अपने मार्ग में चलने वाली स्त्री से वार्तालाप नहीं

करना चाहिए। तपस्वी को देवताओं की पूजा नहीं करनी चाहिए, न ही (मंदिर में) उत्सवों को देखना चाहिए। तप का लक्ष्य एक ही स्वर्ग नहीं है। अत्यन्त पीड़ित और कुटीचक तपस्वी क्रमशः भूर और भुव लोकों को प्राप्त करते हैं। बहुदक तपस्वी को स्वर्ग (स्वर्ग) प्राप्त होता है। हंस तपस्वी को सत्यलोक (सत्यलोक) प्राप्त होता है। तुरीयातीत और अवधूत तपस्वी ततैया की कहावत के अनुसार आत्मा के वास्तविक स्वरूप पर गहन ध्यान करके अपने भीतर परम आनंद प्राप्त करते हैं।

75. शास्त्राभ्यास का अभ्यास, जो आत्मा के स्वरूप के ध्यान से भिन्न है, वह केसर के फूलों को ढोने के समान व्यर्थ है, जो ऊँट के लिए बोझ के समान हैं। तपस्वी को योग या सांख्य का अभ्यास नहीं करना चाहिए, उसे मंत्र और तंत्रों का अनुष्ठान नहीं करना चाहिए, न ही किसी अन्य धार्मिक ग्रंथ (शास्त्र) का अध्ययन करना चाहिए; यदि है भी, तो वह शव को सजाने के समान है। (ऐसा तपस्वी) मोची की तरह आध्यात्मिक विद्या से दूर रहता है। भिक्षुक को (जीवन के पिछले चरण में) अपना नाम नहीं लेना चाहिए। जो कर्म करता है, उसका फल उसे ही मिलता है। (इसलिए तपस्वी) सब कुछ त्याग दे, जैसे अरंडी के तेल का झाग त्याग देता है। देवता को चढ़ाए गए प्रसाद को ग्रहण नहीं करना चाहिए। वह बाहरी देवताओं की पूजा नहीं करेगा।

76. आत्मा के अलावा सब कुछ त्यागकर, अनेक घरों से भिक्षा में प्राप्त भोजन पर निर्वाह करना। (जैसे मधुमक्खी शहद इकट्ठा करती है), दुबला-पतला और चर्बी की वृद्धि से बचता हुआ वह घूमता-फिरता रहे। उसे हाथ या मुँह को पात्र बनाकर अनेक घरों से भिक्षा में प्राप्त भोजन करके समय व्यतीत करना चाहिए।

77. आत्म-स्थित महात्मा को ऐसा भोजन करना चाहिए जो आत्म-साक्षात्कार के लिए अनुकूल हो। पेट का दो चौथाई भाग अन्न से और एक चौथाई भाग जल से भरा होना चाहिए; चौथा भाग वायु के आवागमन के लिए छोड़ देना चाहिए।

78. उसे सदैव भिक्षा पर निर्वाह करना चाहिए; उसे कभी भी केवल एक घर से प्राप्त भिक्षा नहीं खानी चाहिए; उसे विशेष रूप से उन घरों में जाना चाहिए जहाँ के लोग शांतचित्त दिखाई देते हों (अर्थात जो भिक्षा देकर ही भोजन करते हों)।

79. उसे चार या सात घरों से भिक्षा की अपेक्षा करनी चाहिए (जहाँ गृहस्थ धार्मिक अनुष्ठान करता हो); उसे गायों के दुहने के समय तक (दोपहर में) भिक्षा की अपेक्षा करनी चाहिए;

80. भक्त से भोजन लेने की अपेक्षा उपवास श्रेष्ठ है, व्रत से अनायास प्राप्त भोजन श्रेष्ठ है, अनायास प्राप्त भोजन से भिक्षा मांगना श्रेष्ठ है, अतः भिक्षा पर निर्वाह करना चाहिए।

81. भिक्षा मांगते समय वह कभी भी बगल के द्वार से घर में प्रवेश नहीं करेगा, तथा भ्रमवश उस घर को पार नहीं करेगा, जहां ऐसा करने में कोई हानि नहीं दिखाई देती।

82. यदि वेदवेत्ता बिना श्रद्धा और भक्ति के भिक्षा मांगता है, तो उससे भिक्षा नहीं मांगनी चाहिए, तथा यदि द्विज जातिच्युत हो गया हो, तो श्रद्धा और भक्ति से भिक्षा मांग सकता है।

83. अनेक घरों से बिना योजना के भिक्षा, योजनापूर्वक, बिना मांगी गई, समय पर दी गई तथा मठ में दी गई भिक्षा, ये पांच प्रकार की भिक्षा कही गई है।

84. (प्रथम प्रकार) अनेक घरों से प्राप्त भिक्षा वह है जो बिना किसी पूर्वचिंतन के पाँच या सात घरों से प्राप्त की जाती है, जैसे मधुमक्खी के मामले में (फूलों से)।

85. (द्वितीय प्रकार) पूर्व-व्यवस्थित भिक्षा वह है जो भक्तों द्वारा उसी सुबह और पिछले दिन बार-बार अनुरोध करने के बाद स्वीकार की जाती है; फिर भी वह उससे निर्वाह कर सकता है।

86. (तीसरा प्रकार) बिना माँगे भिक्षा वह है जो किसी व्यक्ति द्वारा भोजन के लिए आमंत्रित किए जाने पर प्राप्त होती है, जब वह भिक्षा माँगने के लिए तैयार होता है; इसे तपस्वियों (मोक्ष की इच्छा रखने वाले) को खाना चाहिए।

87. (चौथा प्रकार) समय पर दिया जाने वाला भिक्षा वह (भोजन) कहलाता है जो ब्राह्मण द्वारा भिक्षा के लिए (किसी घर) जाने पर दिया जाता है; इसे तपस्वियों को खाना चाहिए।

88. मोक्ष की इच्छा रखने वाले ऋषि कहते हैं कि (पांचवें प्रकार का) भिक्षा, मठ में तपस्वी को दिया जाने वाला भोजन वह तैयार भोजन है जो ब्राह्मण मठ में लाता है।

89. तपस्वी को घर-घर जाकर भिक्षा मांगकर अपना निर्वाह करना चाहिए, चाहे वह भिक्षा अछूतों के घर से ही क्यों न हो। वह एक घर में भोजन नहीं करेगा, चाहे वह यजमान देवताओं के गुरु के बराबर ही क्यों न हो। वह चाहे मांगी गई हो या न मांगी गई भिक्षा पर निर्वाह करेगा।

90. वायु किसी वस्तु को छूने से, अग्नि जलाने से, जल मल-मूत्र के प्रवेश से तथा भिक्षुक भोजन की कमी से खराब नहीं होता।

91. जब घर में धुआँ बंद हो जाए, मूसल (चावल पीसने का) आराम कर ले, आग (भट्ठी में) बुझ जाए और लोग भोजन कर लें, तब तपस्वी को शाम के समय भिक्षा मांगनी चाहिए।

92. उसे शापित, पतित, विधर्मी तथा केवल मंदिर में पूजा करने वाले लोगों को छोड़कर अन्य किसी से भिक्षा नहीं लेनी चाहिए।

93-94. घी को कुत्ते का मूत्र, शहद को मादक मदिरा, तेल को सूअर का मूत्र, मसाले को लहसुन, उड़द की टिकिया को गोमांस तथा दूध को मूत्र के समान समझे। इसलिए तपस्वी को घी आदि का त्याग करना चाहिए।

95. योगी को घी, मसाले आदि से युक्त भोजन कभी नहीं करना चाहिए। हाथ को पात्र बनाकर उसे दिन में एक बार से अधिक भिक्षा के लिए नहीं जाना चाहिए।

96. जब तपस्वी गाय की तरह अपने मुख से भोजन की खोज करता है, तो वह सबके प्रति समभाव रखता है। इसलिए वह अमरत्व का अधिकारी हो जाता है।

97. तपस्वी को रक्त के समान घी का त्याग करना चाहिए, मांस के समान एक घर में भोजन करना चाहिए, अशुद्ध वस्तुओं से अपने को लिप्त करना चाहिए, जातिच्युत व्यक्ति के समान नमक और गुड़ का प्रयोग करना चाहिए, गंदे बर्तनों के समान वस्त्र धारण करना चाहिए, स्त्रियों के समान तेल से स्नान करना चाहिए, मूत्र के समान मित्रों का संग करना चाहिए, गोमांस के समान कामना करनी चाहिए, जातिच्युत व्यक्ति की

झोपड़ी के समान परिचित स्थान, सर्प के समान स्त्रियाँ, विष के समान सोना, श्मशान के समान सभा भवन, नरक के समान राजधानी और शवयात्रा के चावल के समान एक घर में भोजन करना चाहिए। देवताओं की पूजा नहीं करनी चाहिए। संसार के मार्ग को त्यागकर वह जीवित रहते हुए ही मुक्त हो जाएगा।

98. एक स्थान पर रहना, भिक्षापात्र प्राप्त करना, लाठी आदि एकत्रित करना, शिष्यों का समूह बनाना, दिन में सोना और व्यर्थ की बातें करना - ये तपस्वियों के छः पाप हैं। वर्षाकाल को छोड़कर एक ही स्थान पर निरन्तर रहना आसन कहलाता है।

तपस्वी द्वारा दैनिक उपयोग के लिए लौकी आदि का एक भी पात्र प्राप्त करना पात्र प्राप्ति कहलाता है। संचय करना भविष्य में उपयोग के लिए दूसरा डंडा आदि ग्रहण करना कहलाता है।

शिष्यों को दयावश (उनकी सहायता करने के लिए) न स्वीकार करके, व्यक्तिगत सेवा, लाभ, प्रतिष्ठा या यश के लिए ग्रहण करना शिष्यसंग्रह कहलाता है। विद्या को दिन कहते हैं, क्योंकि वह प्रकाश देने वाला है; अविद्या को रात्रि कहते हैं। विद्या में प्रमाद को दिन में सोना कहते हैं। आत्म विषयक बातचीत तथा दान लेते समय, आशीर्वाद देते समय, आत्म विषयक पूछताछ के अलावा अन्य कोई भी बातचीत व्यर्थ बातचीत (वृथाजल्पा) कही जाती है।

104. एक घर का भोजन, अभिमान, ईर्ष्या, अंगराग और पुष्प से श्रृंगार, पान चबाना, तेल से स्नान, खेल, भोग विलास की इच्छा, आयु बढ़ाने और बुढ़ापे को दूर करने वाली औषधि (राशयन);

105. शेखी बघारना, गाली-गलौज, आशीर्वाद देना, ज्योतिषीय भविष्यवाणी, क्रय-विक्रय, अनुष्ठान, अनुष्ठान पर बहस, गुरु और शास्त्र का उल्लंघन;

106-107. संधि, युद्ध, वाहन, खाट, श्वेत वस्त्र, वीर्य-स्राव, दिन में सोना, भिक्षापात्र, सोना, लोहबान, शस्त्र, बीज (खेती के लिए या रहस्यमय अक्षर जो देवता के मंत्र का आवश्यक अंग है), चोट, कठोरता, मैथुन, त्याग योग द्वारा त्यागी गई वस्तुएँ, गृहस्थ के कर्तव्य जैसे व्रत;

108. परिवार आदि, वेद की शाखाएँ (उसके आरंभिक काल की), पिता और माता के सभी कुल, तथा धन - ये सब तपस्वी के लिए निषिद्ध हैं। यदि वह इनका सहारा लेता है, तो वह (त्याग की अवस्था से) गिर जाता है।

109. बुद्धिमान पुरुष, चाहे कितना ही बूढ़ा क्यों न हो, उसे स्त्रियों पर भरोसा नहीं करना चाहिए। बहुत पुराने पैबंद लगे वस्त्रों में भी पुराना कपड़ा (सिले जाने पर) चिपक जाएगा। 110. अचल सम्पत्ति, चलने योग्य वस्तुएँ (नौकर), खेती के लिए बीज, सोना, लोहबान और हथियार - इन छहों को तपस्वी को मल-मूत्र के समान ग्रहण नहीं करना चाहिए।

111. तपस्वी को यात्रा के लिए थोड़ी सी भी वस्तु साथ नहीं ले जानी चाहिए, सिवाय संकट के समय में, पका हुआ अन्न न मिलने पर, वह पका हुआ अन्न ले सकता है।
112. भिक्षुक जो रोगी न हो, तथा युवा संन्यासी किसी गृहस्थ के घर में न रहे; वह किसी से कभी कुछ न ले, न दे।

113. तपस्वी को दीनतापूर्वक प्राणियों के कल्याण के लिए प्रयत्न करना चाहिए; पका हुआ या कच्चा भोजन (दूसरों से) मांगकर, वह तप से गिर जाता है।

114-115. दूसरों को भोजन कराने में उत्सुक, वस्त्र आदि तथा ऊनी वस्त्र या अन्य वस्त्र तथा अच्छे वस्त्र स्वीकार करने वाला तपस्वी निःसंदेह (पुण्य से) गिर जाता है। अद्वैत रूपी जहाज पर सवार होकर वह जीते जी मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

116. वाणी के संयम के लिए मौन धारण करना चाहिए, शरीर के संयम के लिए उपवास करना चाहिए; मन पर नियंत्रण के लिए प्राणायाम का विधान है।

117. जीव सांसारिक कर्मों से बंधा हुआ है, वह आध्यात्मिक ज्ञान से मुक्त हो जाता है। इसलिए दूरदर्शी तपस्वी सांसारिक कर्म नहीं करते।

118. सड़कों पर फटे हुए वस्त्र बिखरे पड़े हैं, भिक्षा सर्वत्र मिलती है, पृथ्वी एक विस्तृत बिछौना है, फिर तपस्वी कैसे दुःखी हो सकते हैं?

119. जो तपस्वी आध्यात्मिक ज्ञान की अग्नि में सम्पूर्ण जगत को आहुति के रूप में अर्पित करता है, तथा अग्नि को अपने में स्थानांतरित कर लेता है - वही महान तपस्वी सच्चा अग्निहोत्री है।

120. आध्यात्मिक मार्ग में उन्नति दो प्रकार की होती है - बिल्ली और बन्दरिया। जो आध्यात्मिक ज्ञान का अभ्यास करते हैं, वे बिल्लियों के समान हैं; अपरा-ब्रह्म का दूसरा मार्ग बन्दर की भाँति है।

121. तपस्वी को किसी से तब तक बात नहीं करनी चाहिए जब तक कि उससे कहा न जाए; और न ही उससे जो अनुचित रूप से पूछे। बुद्धिमान व्यक्ति को ज्ञानी होते हुए भी संसार में ऐसे व्यवहार करना चाहिए जैसे कि वह मंदबुद्धि हो।

122. जब पापों का समूह सामने आ जाए (अर्थात जब शरीर दुर्बल हो जाए, बुद्धि के आदेशों का पालन न करे) तो उसे प्रतिदिन बारह हजार बार तारक (ॐ) का (सार्थक) जप करना चाहिए; क्योंकि यह (पापों) को काटता है।

123. जो प्रतिदिन बारह हजार बार प्रणव का जप करता है, उस पर बारह महीनों में परम ब्रह्म प्रकाशित होता है। इस प्रकार उपनिषद् समाप्त होता है। ॐ! मेरे अंग, वाणी, प्राण, नेत्र, कान, प्राण और सभी इन्द्रियाँ बलवान बनें। समस्त अस्तित्व उपनिषद् का ब्रह्म है। मैं कभी ब्रह्म को अस्वीकार न करूँ, न ब्रह्म मुझे अस्वीकार करे।

किसी भी प्रकार का अस्वीकार न हो:कम से कम मेरी ओर से तो कोई अस्वीकार न हो।उपनिषदों में जिन गुणों की घोषणा की गई है, वे मुझमें हों,
जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।
ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

सामवेद में सम्मिलित संन्यासोपनिषद यहीं समाप्त होता है।

<u>**066 - परमहंस-परिव्राजक उपनिषद**</u>

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रभु इन्द्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. तब भगवान ब्रह्मा अपने पिता आदिनारायण, परम पुरुष के पास गए और उन्हें प्रणाम करते हुए पूछा: हे प्रभु, आपके मुख से जातियों और वर्णों की प्रकृति से संबंधित सभी बातें सुनी, जानी और समझी गई हैं। अब मैं परमहंस भिक्षु के लक्षण जानना चाहता हूँ। संन्यास का अधिकारी कौन है? भिक्षु के लक्षण क्या हैं? परमहंस भिक्षु कौन है? उसकी संन्यासवृत्ति कैसी होती है? (कृपया) मुझे यह सब बताइए।

तब भगवान आदिनारायण ने उत्तर दियाः (संन्यास का अधिकारी) वह बुद्धिमान व्यक्ति है जिसने अच्छे गुरु से पवित्र विद्या सीखने का कठिन मार्ग अपनाया है; इस लोक और परलोक में सुख के लिए आवश्यक सभी परिश्रम को समझ लिया है; तीन (प्राथमिक) इच्छाओं, तीन प्राथमिक प्रवृत्तियों (शरीर के प्रति सम्मान, आदि), 'मात्रत्व' और अहंकार को उल्टी की तरह त्यागने की आवश्यकता को समझ लिया है;

ब्रह्मचर्य की शिक्षा पूरी कर ली है जो मोक्ष के मार्ग तक पहुँचने का साधन है और गृहस्थ बन गया है। गृहस्थ अवस्था से वह वनवासी (वानप्रस्थ) बनेगा और फिर (सांसारिक जीवन) त्याग देगा। या फिर वह ब्रह्मचारी विद्यार्थी की अवस्था से या गृहस्थ अथवा वनवासी की अवस्था से त्याग कर सकता है। या फिर चाहे वह व्रत का पालन करने वाला हो या न हो, उसने अपना अध्ययन पूरा कर लिया हो, उसने अपना अग्नि-अनुष्ठान बंद कर दिया हो या पवित्र अग्नि को बनाए नहीं रखता हो, उसे उसी दिन त्याग करना चाहिए।

वह संसार से विरक्त हो चुका है। इस प्रकार समस्त सांसारिक कार्यों से असंतुष्ट होकर, चाहे वह ब्रह्मचारी विद्यार्थी हो, गृहस्थ हो या वनवासी हो, उसे अपने पिता, माता, पत्नी, निकट संबंधियों तथा इनके अभाव में शिष्य या सहवासी की स्वीकृति प्राप्त करनी चाहिए (तथा फिर संसार का त्याग करना चाहिए)।

2. कुछ (विधि-निर्माता) द्विज संन्यास ग्रहण करने से पहले प्रजापत्य नामक यज्ञ (जिसके अधिष्ठाता ब्रह्मा हैं) का विधान करते हैं। परंतु (यद्यपि ऐसा निर्धारित है) उसे ऐसा नहीं करना चाहिए। उसे केवल अग्नियि यज्ञ करना चाहिए (जिसका अधिष्ठाता अग्नि है, अग्नि के देवता)। क्योंकि अग्नि प्राण है। इस प्रकार वह प्राण को बल देता है (अर्थात उसे मजबूत करता है)। (तब) उसे त्रैधात्वीय यज्ञ करना चाहिए (जिसका अधिष्ठाता इंद्र है)। इस (यज्ञ) से सत्व (वीर्य), रज (रक्त) और तम (अंधकारमय) ये तीन प्राण (अग्नि के समान) प्रबल हो जाते हैं। (यज्ञ को विधिपूर्वक करने के पश्चात वह पवित्र अग्नि को सूंघेगा और निम्न मंत्र का उच्चारण करेगा) 'हे अग्नि, यह (प्राण) तुम्हारा स्रोत है; तुम उचित समय (वर्ष के) में जन्म लेने के कारण तेज से युक्त हो। उसे (आत्मा, अपने परम स्रोत) जानकर तुम (प्राण, अपने स्रोत) में विलीन हो जाओ।

तुम हमारे (परम ज्ञान के) धन को बढ़ाओ।' इस प्रकार मंत्र का उच्चारण करते हुए वह अग्नि को सूंघेगा। यह अग्नि का स्रोत, प्राणवायु है। तुम प्राण में जाओ, तुम अपने स्रोत में जाओ। स्वाहा। मंत्र में केवल इतना ही कहा गया है। वह किसी अच्छे वैदिक विद्वान के घर से पवित्र अग्नि प्राप्त करके पहले बताए गए तरीके से पवित्र अग्नि को सूंघेगा। यदि वह रोग से पीड़ित हो या उसे अग्नि न मिले, तो उसे जल में आहुति देनी चाहिए।

क्योंकि जल में सभी देवता निवास करते हैं। 'मैं सभी देवताओं को आहुति देता हूँ, स्वाहा' कहकर वह आहुति अर्पित करे और आहुति में घी मिलाकर थोड़ा सा भाग उठाकर खाए, क्योंकि यह लाभकारी है। (क्षत्रियों और अन्य लोगों के लिए जो त्याग के अधिकारी नहीं हैं) नियम यह है कि वे वीरों के मार्ग पर चलकर (युद्ध के मैदान में मृत्यु को गले लगाकर) मुक्ति की खोज कर सकते हैं या उपवास कर सकते हैं (मृत्यु तक अनुशासन के रूप में), या जल में प्रवेश कर सकते हैं (फिर कभी न उठना) या अग्नि में प्रवेश कर सकते हैं या महान यात्रा कर सकते हैं (जिसमें वे थक कर गिर जाते हैं)।

यदि वह रोग से पीड़ित हो तो वह मानसिक या वाणी द्वारा (मंत्रों का उच्चारण करके) त्याग कर सकता है। यही (उनके त्याग का) मार्ग है।

3. स्वस्थ व्यक्ति (यदि संसार का त्याग करना चाहता है) को जीवन के विभिन्न चरणों के अनुसार अपने लिए श्राद्ध कर्म तथा वासनाओं से मुक्ति के लिए अग्नि-अनुष्ठान (विराज होम) करना चाहिए। वह अपने शरीर में प्रतीकात्मक रूप से अग्नि को प्रज्वलित करेगा। संसार के कार्यों तथा वैदिक विद्या में उसकी प्रवीणता तथा उसके अधीन चौदह कर्म-साधन (करण) उसके पुत्र को (प्रतीकात्मक रूप से) हस्तांतरित होंगे। (पुत्र की अनुपस्थिति में) यह शिष्य को किया जाएगा; उसकी अनुपस्थिति में यह उसकी आत्मा में हस्तांतरित होगा। फिर वह अपने आत्मा के समान ब्रह्म का ध्यान करेगा तथा 'ब्रह्म तू ही है', 'यज्ञ तू ही है' शब्दों का उच्चारण करेगा।

वेद-माता, ब्राह्मणत्व की आधारशिला तथा समस्त विद्याओं के सार का स्वरूप, तीन व्याहृतियों (ॐ भूः आदि) का उच्चारण करते हुए जल में तथा तीनों व्याहृतियों को अ, उ तथा म (प्रणव के) अक्षरों में समाहित कर देगा। तत्पश्चात वह उस (प्रणव) पर ध्यान लगाते हुए विधिपूर्वक जल पीएगा; प्रणव का उच्चारण करते हुए शिखा को बाहर निकालेगा; जनेऊ को तोड़ेगा; वस्त्र को भी भूमि पर या जल में फेंक देगा; 'ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा तथा ॐ सुवः स्वाहा' मंत्र का उच्चारण करते हुए वस्त्रहीन हो जाएगा; अपने स्वरूप का ध्यान करेगा;

पुनः मन ही मन या वाणी से प्रणव तथा व्याहृतियों का अलग-अलग उच्चारण करेगा तथा तीन बार विदाई के शब्द 'मैंने त्याग किया, मैंने त्याग किया, मैंने त्याग किया' कोमल, मध्यम तथा तीव्र स्वर में बोलेगा; प्रणव का गहन ध्यान करें और अपना हाथ ऊपर उठाकर कहें, 'स्वाहा, मुझसे सभी को भय से मुक्ति मिले।' फिर वह 'ब्रह्म मैं हूँ', 'वह तू है' जैसे महान

शास्त्रों के अर्थ पर विचार करते हुए उत्तर की ओर प्रस्थान करेगा और निर्वस्त्र अवस्था में आगे बढ़ेगा। यह त्याग है। यदि कोई इस (त्याग के मार्ग) का अधिकारी नहीं है, तो उसे पहले गृहस्थ की प्रार्थना पढ़नी चाहिए और फिर 'सभी प्राणियों को भय से मुक्ति मिले, सभी चीजें मुझसे निकलती हैं, आप मेरे मित्र हैं और आप मेरी रक्षा करते हैं। आप शक्ति के स्रोत हैं।

आप इंद्र के वज्र (शस्त्र) हैं, जिसने वृत्र (राक्षस) को मार डाला। मेरे लिए आशीर्वाद बनो। जो पाप है उसे रोको।' इस मंत्र का जाप करने से पहले प्रणव के लिए वह प्रतीकात्मक बांस की छड़ी और पानी का बर्तन लेगा और कमरबंद, लंगोटी और एक फीका (यानी गेरू रंग का) वस्त्र पहनेगा; फिर एक अच्छे गुरु के पास जाएगा, उन्हें प्रणाम करेगा और गुरु के मुंह से महान शास्त्र पाठ 'तुम वही हो' प्राप्त करेगा, जिसके पहले प्रणव होगा। फिर वह एक फटा हुआ वस्त्र या छाल का वस्त्र या मृग-चर्म पहनेगा;

नदी के किनारे उतरने की जगह से बचें (स्नान करने के लिए, भीड़ के साथ मिलने से बचने के लिए), ऊपर जाएं (एक सीढ़ी), और एक घर से भिक्षा लें। वह तीन निर्धारित अवधि के दौरान स्नान करेगा, वेदान्त की व्याख्या सुनेगा और प्रणव का अभ्यास करेगा; ब्रह्म (साक्षात्कार) के मार्ग में अच्छी तरह से स्थापित होगा; अपनी पसंदीदा इच्छा को आत्मा में मिला देगा; 'मेरापन' से मुक्त हो जाएगा और स्वयं में स्थित हो जाएगा; काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, प्रतिद्वंद्विता, मिथ्या अभिमान, अहंकार, असहिष्णुता, दंभ, कामना, द्वेष, घमण्ड, उतावलापन, 'अपनापन' आदि का त्याग कर दे; बुद्धि और वैराग्य से युक्त होकर वह धन और स्त्रियों से विमुख हो जाए और शुद्ध मन वाला होकर वह समस्त उपनिषदों के सत्यों का मनन करे; ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, जगत्-घाती वृत्ति और सत्यनिष्ठा का विशेष ध्यान रखे; अपनी इन्द्रियों को वश में करे और बाह्य तथा आन्तरिक ममता से मुक्त हो; निरीह गाय के समान, शापित और पतित को छोड़कर, चारों वर्णों के सदस्यों से शरीर निर्वाह के लिए भिक्षा प्राप्त करे; ऐसा व्यक्ति ब्रह्मज्ञान के योग्य माना जाता है।

वह भिक्षा के लाभ या हानि को हर समय समभाव से देखे; मधुमक्खी के समान, हाथ को पात्र बनाकर, अनेक स्थानों से भिक्षा में प्राप्त भोजन को खाए; मोटा न हो (बल्कि) दुबला हो जाए; अपने को ब्रह्म समझे; गुरु की सेवा के लिए किसी गांव में जाए। वह आचरण में स्थिर रहे, आठ महीने तक अकेला भ्रमण करे और दो व्यक्तियों के रूप में (अर्थात किसी साथी के साथ) यात्रा न करे। जब उसे पर्याप्त सद्बुद्धि (अर्थात वैराग्य) प्राप्त हो

जाए तो वह कुटीचक, बहुदक, हंस या परमहंस तपस्वी बन सकता है। संबंधित मंत्रों का उच्चारण करते हुए वह अपनी कमरबंद, लंगोटी, लाठी और जलपात्र को जल में त्याग दे और निर्वस्त्र होकर विचरण करे। वह एक रात गांव में, तीन रातें किसी पवित्र स्थान पर, पांच रातें किसी नगर में और सात रातें किसी तीर्थ स्थान (क्षेत्र) में ठहरे।

वह किसी निश्चित निवास स्थान से रहित होगा, मन में स्थिरता रखेगा, अग्नि का आश्रय नहीं लेगा, भावनाओं से रहित होगा, कर्मकाण्ड और अकर्मकाण्ड दोनों का त्याग करेगा, गाय की तरह लाभ-हानि में समभाव से जीवन निर्वाह के लिए भिक्षा ग्रहण करेगा, उसका जलपात्र केवल जलपात्र के रूप में होगा और वह क्लेश से मुक्त एकान्त स्थान में निवास करेगा। वह लाभ-हानि के बारे में नहीं सोचेगा, बल्कि अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कार्यों को त्यागने में रुचि रखेगा, हमेशा जमीन पर सोएगा, हजामत बनाने का त्याग करेगा, चातुर्मास्य का पालन करने का बंधन त्याग देगा, शुद्ध ध्यान में गहरी रुचि रखेगा, धन, स्त्री और नगर से विमुख होगा, पूर्ण स्वस्थ होने पर भी पागलों जैसा आचरण करेगा, कोई विशिष्ट प्रतीक या विशिष्ट आचरण नहीं रखेगा, उसे स्वप्न नहीं आएंगे क्योंकि दिन और रात उसके लिए समान हैं और आत्मा के स्वरूप का अन्वेषण करते हुए प्रणव रूपी ब्रह्म के गहन ध्यान के मार्ग पर ध्यान लगाएगा। जो इस प्रकार संन्यास का आश्रय लेकर शरीर त्याग देता है, वह परमहंस भिक्षु है।

4. भगवान ब्रह्मा ने (नारायण) पूछा: प्रभु, ब्रह्म-प्रणव क्या है? (भगवान) नारायण ने उत्तर दिया: ब्रह्म-प्रणव सोलह भागों से मिलकर बना है और चार अवस्थाओं (जागृत आदि) में इसका चार गुना ज्ञान होता है। जाग्रत अवस्था में चार अवस्थाएँ होती हैं, जाग्रत के भीतर जाग्रत आदि (जागृत-जागृत); स्वप्न अवस्था में चार अवस्थाएँ होती हैं, स्वप्न के भीतर जाग्रत आदि (स्वप्न-जागृत); सुषुप्ति में सुषुप्ति के भीतर जाग्रत आदि चार अवस्थाएँ होती हैं (सुषुप्ति-जागृत); चौथी अवस्था (तुरीय) में तुरीय के भीतर जाग्रत आदि चार अवस्थाएँ होती हैं (तुरीय-जागृत)। वितरणात्मक व्याप्ति (व्यष्टि) की जाग्रत अवस्था में विश्व की चतुर्गुणता होती है, अर्थात् विश्व-विश्व, विश्व-तैजस, विश्व प्रज्ञा और विश्व-तुरिया।

वितरणात्मक व्यापकता की स्वप्न अवस्था में तैजस की चतुर्गुणता होती है, अर्थात् तैजसा-विश्व, तैजसा-तैजसा, तैजसा-प्रज्ञा और तैजसा-तुरिया। प्रज्ञ की सुषुप्ति अवस्था में चतुर्गुण होता है, अर्थात् प्रज्ञ-विश्व, प्रज्ञ-तैजस, प्रज्ञ-प्रज्ञा और प्रज्ञ-तुरीय। चौथी अवस्था (तुरीय) में तुरीय की चतुर्गुणता होती है, अर्थात् तुरीय-विश्व, तुरीय-तैजसा, तुरीय-प्रज्ञा (और

तुरीय-तुरिया)। ये उचित क्रम में सोलह भागों का निर्माण करते हैं। 'अ' (ओम के) अक्षर में जाग्रत-विश्व, 'उ' अक्षर में जाग्रत-तैजसा, 'म' अक्षर में जाग्रत-प्रज्ञा, अर्ध-मात्रा (ओम के) में जाग्रत-तुरिया, बिन्दु स्वप्न-विश्व, नाद स्वप्न-तैजसा, कला स्वप्न-प्रज्ञा, कलातीत स्वप्न है -तुरीय, शांति सुसुप्त-विश्व में, शांतितित सुसुप्त में-तैजस, पश्यन्ति में तुरीय-प्रज्ञा, परा तुरीय-तुरीय में।

जाग्रत के चार भाग 'अ' अक्षर से संबंधित हैं, स्वप्न के चार भाग 'उ' अक्षर से संबंधित हैं, सुषुप्ति के चार भाग 'म' अक्षर से संबंधित हैं, तुरीय के चार भाग अर्धमात्रा से संबंधित हैं। यह ब्रह्म-प्रणव है। इसकी पूजा परमहंस, तुरीयतीत और अवधूत तपस्वियों द्वारा की जानी चाहिए। इससे ब्रह्म प्रकाशित होता है। (यह) विदेह-मुक्ति है।

5. हे प्रभु, जनेऊ और शिखा के बिना वह व्यक्ति कैसे है जिसने सभी (सांसारिक) गतिविधियों को त्याग दिया है? वह केवल ब्रह्म में लीन कैसे है? वह ब्राह्मण कैसे है? ऐसा भगवान ब्रह्मा ने (नारायण) पूछा। भगवान विष्णु ने तब उत्तर दिया: हे बालक, जो अद्वैत आत्मा का ज्ञान रखता है, उसके पास वास्तविक जनेऊ है (अर्थात् वह ज्ञान ही जनेऊ है)। उसका ध्यान में लीन होना ही जनेऊ है। यह क्रिया ही पवित्र घास (पवित्र घास) की पवित्र करने वाली अंगूठी का अधिकार है। वह सभी कार्य करता है, वह ब्राह्मण है, वह ब्रह्म में गहराई से लीन है, वह प्रबुद्ध प्राणी (देव) है, वह ऋषि है, वह तपस्या करता है, वह सबसे महान है, वह सभी से श्रेष्ठ है; जान लो कि वह मैं हूँ। इस संसार में बहुत दुर्लभ है वह भिक्षु जो परमहंस है। यदि कोई है तो वह सदा शुद्ध है, वही वेद में पुरुष (महिमा) है। वह जो महान पुरुष (महापुरुष) है उसका मन मुझमें रहता है। मैं भी उसी में रहता हूँ। वह सदा संतुष्ट है। वह सर्दी-गर्मी, सुख-दुख, मान-अपमान से मुक्त है। वह अपमान और क्रोध को सहन कर लेता है।

वह छह मानवीय दुर्बलताओं (भूख-प्यास, शोक-मोह, बुढ़ापा-मृत्यु) से रहित है और छह गुणों (शरीर, जन्म, अस्तित्व, परिवर्तन, वृद्धि, क्षय और मृत्यु) से मुक्त है। वह बुढ़ापे या अन्य किसी भी स्थिति के हस्तक्षेप से रहित है। वह आत्मा के अलावा अन्य कुछ नहीं देखता। वस्त्रहीन (अर्थात् कम्पास के बिन्दुओं से आच्छादित), किसी को प्रणाम न करना, स्वाहा न कहना (क्योंकि वह किसी देवता की पूजा नहीं करता), स्वधा न कहना (पितरों को प्रसन्न करना), वापस न भेजना (देवताओं को क्योंकि उनका आह्वान नहीं किया गया है), दोष और स्तुति से मुक्त, मंत्र और अनुष्ठानों का सहारा न लेना, अन्य देवताओं (परमेश्वर के अतिरिक्त) का ध्यान न

करना, उद्देश्यों और उनकी अनुपस्थिति से विरत, सभी कार्यों को समाप्त करके, सत्ता, ज्ञान और आनन्द से युक्त चेतना में दृढ़तापूर्वक स्थित होकर, एक परम आनन्द के प्रति सचेत होकर, वह सदैव ब्रह्म-प्रणव का ध्यान करता है (इस आशय से) कि वह अकेला ब्रह्म है और इस प्रकार स्वयं को पूर्ण करता है; ऐसा व्यक्ति परमहंस भिक्षु है। इस प्रकार उपनिषद समाप्त होता है। ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ बातें सुनें; हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ बातें देखें! हम देवों द्वारा दी गई जीवन अवधि का आनंद लें,अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रसिद्ध इंद्र हमें आशीर्वाद दें!सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!ॐ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ अथर्ववेद में शामिल परमहंस-परिव्राजकोपनिषद समाप्त होता है।

067 - अक्ष मालिका उपनिषद

[मालाओं का उपनिषद]

ॐ ! मेरी वाणी मन पर आधारित हो (अर्थात् उसके अनुरूप हो);

मेरा मन वाणी पर आधारित हो।

हे आत्म-प्रकाशमान, अपने आप को मेरे सामने प्रकट करो।

तुम दोनों (वाणी और मन) मेरे लिए वेद के वाहक बनो।

मैंने जो कुछ सुना है, वह सब मुझसे दूर न हो।

मैं इस अध्ययन के द्वारा दिन और रात को एक साथ (अर्थात् मिटा दूँगा) जोड़ूँगा।

मैं वही बोलूँगा जो मौखिक रूप से सत्य है;

मैं वही बोलूँगा जो मानसिक रूप से सत्य है।

वह (ब्रह्म) मेरी रक्षा करे;

वह वक्ता (अर्थात् शिक्षक) की रक्षा करे,

वह मेरी रक्षा करे;

वह वक्ता की रक्षा करे - वह वक्ता की रक्षा करे।

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. तब प्रजापति ने गुह से पूछाः "हे महाराज, मुझे माला के नियम बताइए। इसकी विशेषता क्या है? माला कितने प्रकार की होती है? एक माला में कितने धागे होते हैं? इसे कैसे बनाना चाहिए? इसके रंग क्या हैं? इसकी प्राण प्रतिष्ठा कैसे की जाती है? इसके इष्टदेव कौन हैं? और इसका उपयोग करने से क्या लाभ है?"

2. गुह ने उत्तर दियाः "(यह निम्नलिखित 10 सामग्रियों में से किसी एक से बनी है) मूंगा, मोती, स्फटिक, शंख, चांदी, सोना, चंदन, पुत्र-जीविका, कमल या रुद्राक्ष। प्रत्येक सिर को क्षकार के देवताओं द्वारा समर्पित और माना जाना चाहिए। सुनहरे धागे को छिद्रों के माध्यम से मोतियों को बांधना चाहिए। इसके दाहिने तरफ चांदी (टोपी) और बाएं तरफ तांबा। एक मनके का मुख सामने की ओर होना चाहिए, दूसरे का मुख सिर की ओर तथा दूसरे का मुख पूंछ की ओर होना चाहिए। इस प्रकार एक गोलाकार संरचना बनाई जानी चाहिए।

3. आंतरिक धागे को ब्रह्म (परमात्मा) के रूप में माना जाना चाहिए। दायाँ भाग चांदी का बना होना चाहिए।शिव का स्थान और विष्णु से संबंधित तांबे की टोपी समझनी चाहिए। मुख को सरस्वती और पूंछ को गायत्री

समझना चाहिए। छेद ज्ञान है। गाँठ को प्रकृति समझना चाहिए। स्वरों का प्रतिनिधित्व करने वाले मनके सफेद होने चाहिए (क्योंकि वे सात्विक गुण का प्रतिनिधित्व करते हैं)। जो मूक-व्यंजन का प्रतिनिधित्व करते हैं वे पीले होने चाहिए (क्योंकि वे सत्व और तम के मिश्रण का परिणाम हैं)। शेष का रंग लाल होना चाहिए (क्योंकि वे राजसिक हैं)।

4. फिर (इस प्रकार माला के विभिन्न भागों में इष्टदेवों का ध्यान करने के बाद) इसे 5 प्रकार की गायों (जैसे नंदा) से प्राप्त दूध से स्नान कराएं (या साफ करें); फिर पंचगव्य (गाय के गोबर, मूत्र, घी, दही और दूध से बना पवित्र द्रव) और दर्भ घास को जल में डुबोकर रखें और फिर अलग-अलग पंचगव्य (उपर्युक्त 5 चीजों में अलग-अलग) और चंदन के जल में डुबोएं। फिर ओंकार बोलते हुए दर्भ घास से जल छिड़कें। इसे आठ सुगंधित (चंदन, कस्तूरी आदि मीठी महक वाले पदार्थ) से मलें। इसे फूलों पर रखें। माला के (सभी) अक्षरों का (या प्रत्येक मनके के प्रत्येक अक्षर का) ध्यान करें।

5. ॐ एकरा, मृत्यु को जीतने वाले, सर्वव्यापी, पहले सिर में स्थापित हों! ॐ एकरा, जो आकर्षित करने की प्रकृति वाले हैं, हर जगह पाए जाते हैं, दूसरे सिर में स्थापित हों! ॐ ऐकर, जो धन और दृढ़ता प्रदान करते हैं, तीसरे सिर में स्थापित हों!

ॐ ऐकर, जो वाणी में स्पष्टता और स्पष्टता प्रदान करते हैं, चौथे सिर में स्थापित हों!

ॐ ऐकर, जो शक्ति प्रदान करते हैं, जो सबका सार हैं, वे पाँचवें सिर में स्थापित हों!

ॐ ऐकर, जो बुरी आत्माओं को दूर भगाते हैं, असहनीय हैं, वे छठे सिर में स्थापित हों!

ॐ ऐकर, जो (अव्यवस्था को) विचलित करते हैं, जो चलते हैं, वे सातवें सिर में स्थापित हों!

ॐ ऐकर, जो धोखा देने वाले, तेजस्वी और चमकने वाले हैं, वे आठवें सिर में स्थापित हों!

ॐ ऐकर, जो घृणा करने वाले, बाकी सब को भस्म करने वाले (या जो सब कुछ छिपाते हैं), वे नौवें सिर में स्थापित हों!

ॐ एकरा, जो मोह करने वाला है, दसवें सिर में स्थापित हो!

ॐ एकरा, जो सबको आकर्षित करता है, शुद्ध-सत्व, ग्यारहवें सिर में स्थापित हो!

ॐ एकरा, जो शुद्ध और महान (शुद्ध-सात्विक) है, मनुष्यों को आकर्षित करता है, बारहवें सिर में स्थापित हो!

ॐ एकरा, जो संपूर्ण वाणी का (आधार) है, सदा शुद्ध है, तेरहवें सिर में स्थापित हो!
ॐ एकरा, जो वाणी की प्रकृति वाला है, जो शांतिपूर्ण को आकर्षित करने में सक्षम है, चौदहवें सिर में स्थापित हो!
ॐ एकरा, जो हाथी आदि को आकर्षित करने में सक्षम है, आकर्षित करने वाला है, पंद्रहवें सिर में स्थापित हो!
ॐ एकरा, जो भयंकर मृत्यु को नष्ट करने में सक्षम है, सोलहवें सिर में स्थापित हो!

ॐ कैकेर, सभी विषों को दूर करने वाले, शुभता प्रदान करने वाले, १७वें सिर में स्थापित हों ! ॐ खैकर, सर्वत्र फैलने वाले पीड़ा देने वाले, १८वें सिर में स्थापित हों ! ॐ गाएकर, सभी बाधाओं को दूर करने वाले, सबसे महान, १९वें सिर में स्थापित हों ! ॐ घैकर, ... (संभाष्य) देने वाले, स्तब्ध करने वाले, २०वें सिर में स्थापित हों ! ॐ Ñaëkàr, सभी विषों को नष्ट करने वाले, तीक्ष्ण, २१वें सिर में स्थापित हों ! ॐ कैकेर, ... (अभिचार) का नाश करने वाले, क्रूर, २२वें सिर में स्थापित हों ! ॐ चाकेर, भूतों का नाश करने वाले, भयानक, २३वें सिर में स्थापित हों ! ॐ जयकारा, ... (कृत्यों - अभिचार) का नाश करने वाले, अजेय, 24वें सिर में स्थापित हो!

ॐ जयकारा, ... (भूतों) का नाश करने वाले, 25वें सिर में स्थापित हों!
ॐ जयकारा, ... (मृत्यु) का मंथन करने वाले, 26वें सिर में स्थापित हों!
ॐ जयकारा, सभी रोगों को दूर करने वाले, अच्छे, 27वें सिर में स्थापित हों!
ॐ जयकारा, चंद्रमा की प्रकृति वाले, 28वें सिर में स्थापित हों!

ॐ जयकारा, गरुड़ की आत्मा, विषों को दूर करने वाले, 29वें सिर में स्थापित हों!
ॐ अहंकार, सभी सम्पत्तियों के दाता, अच्छे, ३०वें सिर में स्थापित हों!
ॐ अहंकार, सभी सिद्धियों के दाता, मोह को दूर करने वाले, ३१वें सिर में स्थापित हों!
ॐ ताएकरा, धन-धान्य के दाता, प्रसन्न करने वाले, ३२वें सिर में स्थापित हों!
ॐ ठाएकरा, धर्म के साथ जुए में बंधने वाले, दोषरहित, ३३वें सिर में स्थापित हों!
ॐ दाता, विकास के विकासक, मनभावन रूप वाले, ३४वें सिर में स्थापित हों

ॐ धाएकरा, सांसारिक दुखों का नाश करने वाला (विसज्वर), विस्तार करने वाला, 35वें सिर में स्थापित हो! ॐ नाएकरा, भोग और मोक्ष का दाता, शांति देने वाला, 36वें सिर में स्थापित हो! ॐ पाएकरा, विष और बाधाओं का नाश करने वाला, विकसित, 37वें सिर में स्थापित हो! ॐ फाएकरा, अणु रूप, ग्रहण करने की क्षमता, तेजोमय प्रकृति आदि आठ सिद्धियों का दाता, 38वें सिर में स्थापित हो! ॐ बाएकरा, सभी दोषों को दूर करने वाला, शुभ, 39वें सिर में स्थापित हो! ॐ भएकरा, भूतों को शांत करने वाला, भयानक, 40वें सिर में स्थापित हो! ॐ मयकार, द्वेषियों को भ्रमित करने वाले, ४१वें सिर में स्थापित हों !

ॐ याकार, सर्वव्यापी, पवित्र करने वाले, ४२वें सिर में स्थापित हों !
ॐ रायकार, ज्वलन्त, विषम आकार वाले, ४३वें सिर में स्थापित हों !
ॐ लाएकरा, जगत के श्रोता, तेजोमय, ४४वें सिर में स्थापित हों !
ॐ वैकार, सर्वव्यापी, श्रेष्ठतम, ४५वें सिर में स्थापित हों !
ॐ एकाकार, सभी फलों के दाता, पवित्र करने वाले, ४६वें सिर में स्थापित हों !
ॐ चाएकरा, धर्म, धन और सुख के दाता, ..., ४७वें सिर में स्थापित हों ! ॐ सैकरा, जो सबका कारण है, सभी अक्षरों का अंतर्धारा है, 48वें सिर में स्थापित हो! ॐ सैकरा, जो सभी वाणी का आधार है, शुद्ध है, 49वें सिर में स्थापित हो! ॐ सैकरा, जो सभी शक्तियों का दाता है, सर्वोच्च है, 50वें सिर में स्थापित हो! ॐ क्षेकरा, जो दुनिया की मुख्य और सहायक श्रेणियों का निर्देश देता है, सर्वोच्च तेज की प्रकृति का है, शिखा मणि में दृढ़ता से स्थापित हो! मृत्यु का अर्थ केवल मृत्यु नहीं है, बल्कि अध्यात्म के मार्ग से भटकने के परिणामस्वरूप लापरवाही, गैर-सतर्कता है। इसलिए अज्ञान, अज्ञान और भूख आदि जैसे शारीरिक संकटों को भी मृत्यु कहा जाता है। पवित्र अक्षरों (आवाहन), उनकी आत्माओं और किसी विशेष वरदान को प्रदान करने वाले देवता और किसी विशेष रूप की प्रकृति का आह्वान पहले सिर में किया जाना चाहिए - केंद्रीय सिर के दाईं ओर। आह्वान गोलाकार रूप से किया जाना चाहिए और शिखा रत्न में समाप्त होना चाहिए।

6. फिर कहना चाहिए: "उन देवताओं को नमस्कार है जो पृथ्वी पर हैं और विचरण करते हैं! इस माला में दृढ़ता से स्थापित हो जाओ और अक्ष-मालिका में स्थापित होने के बाद हमें और पूर्वजों को भी आशीर्वाद दें। हमें शुभ और कल्याण की अनुमति दें!"

7. फिर कहना चाहिए: "उन देवताओं को नमस्कार है जो वायुमंडल में हैं और विचरण करते हैं! इस माला में दृढ़ता से स्थापित हो जाओ और

अक्ष-मालिका में स्थापित होने के बाद हमें और पूर्वजों को भी आशीर्वाद दें। हमें शुभ और कल्याण की अनुमति दें!"

8. फिर कहना चाहिए: "उन देवताओं को नमस्कार है जो स्वर्ग में हैं और विचरण करते हैं! इस माला में दृढ़तापूर्वक स्थापित हो जाओ और अक्ष-मालिका में स्थापित होकर हमें और पितरों को भी आशीर्वाद दो। हमें मंगल और कल्याण की अनुमति दो!

9. फिर कहना चाहिए: "सात करोड़ मंत्रों और 64 कलाओं को नमस्कार है" और उनकी शक्तियों को माला में आह्वान करो।

10. फिर कहना चाहिए: "ब्रह्मा, विष्णु और शिव को नमस्कार है" और उनकी शक्तियों को माला में आह्वान करो।

11. फिर कहना चाहिए: "36 तत्त्वों (मूलभूत श्रेणियों) को नमस्कार है" और उसमें श्रेष्ठ तत्त्वों की उपस्थिति का आह्वान करते हुए उनसे प्रार्थना करो कि वे माला को दिव्य-गाय (कामधेनु) की तरह वांछित फल देने में सक्षम बनाएं।

12. फिर कहना चाहिए: "सैकड़ों शैव, वैष्णव और शाक्तों को नमस्कार है (और उनसे आशीर्वाद और माला का उपयोग करने की अनुमति मांगो); प्रसन्न हो जाओ और मुझे उपयोग करने की अनुमति दो"।

13. फिर कहना चाहिए: "मृत्यु की शक्तियों को नमस्कार; आप सभी मुझे खुश करें, प्रसन्न करें!"

14. फिर माला का ध्यान करते हुए सब कुछ भगवान के रूप में प्रतिनिधित्व करते हुए, पूर्व दिशा की ओर स्पर्श करना शुरू करना चाहिए, इसकी मदद के लिए आभारी होना चाहिए और 108 बार सिरों (मोतियों) को छूना चाहिए।

15. फिर उठकर, इसे (फूलों पर) रखकर परिक्रमा करते हुए निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण करें: "ओम, हे देवी, नमस्कार, सभी मंत्रों के रूपों की माँ, मोतियों की माला; वह जो आकर्षित करता है सभी को नमस्कार! हे देवी मंत्र मातृके, मनकों की माला, सभी को स्तब्ध करने वाली, नमस्कार! हे देवी, अभिचारों को दूर करने वाली, नमस्कार! हे देवी, सनातन, अविद्या को जीतने वाली, सभी को प्रकाशित करने वाली, सभी जगत की रक्षक,

सभी जगत को जीवन देने वाली, सभी की निर्माता, दिन की विधाता, रात की विधाता, अन्य नदियों को ले जाने वाली, अन्य स्थानों को ले जाने वाली, अन्य द्वीपों को ले जाने वाली, अन्य लोकों को ले जाने वाली, सदैव सर्वत्र प्रकाशित होने वाली, सभी हृदयों को प्रकाशित करने वाली! परा के रूप वाली आपको नमस्कार! पयंती के रूप वाली आपको नमस्कार! मध्यमा के रूप वाली आपको नमस्कार! वैखरी के रूप वाली आपको नमस्कार! नमस्कार! समस्त तत्त्वों के स्वरूप, समस्त ज्ञान, समस्त शक्तियों के स्वरूप, समस्त शुभ के स्वरूप, वसिष्ठ ऋषि द्वारा पूजित, विश्वामित्र ऋषि द्वारा अनुरक्षित आपको नमस्कार है।

16. प्रातःकाल इसका अध्ययन करने से रात्रि के पाप नष्ट हो जाते हैं। सायंकाल में इसका अध्ययन करने से दिन में किए गए पाप नष्ट हो जाते हैं। जो प्रातःकाल और सायंकाल दोनों समय इसका पाठ करता है, वह पापी होने पर भी पापों से मुक्त हो जाता है। माला से जपे गए मंत्रों से तुरन्त लाभ होता है।" गुहा ने प्रजापति से ऐसा कहा। इस प्रकार उपनिषद् समाप्त होती है। ॐ! मेरी वाणी मन पर आधारित हो; मेरा मन वाणी पर आधारित हो। हे आत्म-तेजस्वी, मुझे अपना दर्शन दीजिए।

आप दोनों (वाणी और मन) मेरे लिए वेद के वाहक बनें। मैंने जो कुछ सुना है, वह मुझसे दूर न हो। मैं इस अध्ययन के माध्यम से दिन और रात को एक साथ जोड़ूंगा (अर्थात् उनका भेद मिटा दूंगा)। मैं मौखिक रूप से जो सत्य है, वही बोलूंगा; मैं मानसिक रूप से जो सत्य है, वही बोलूंगा। वह (ब्रह्म) मेरी रक्षा करे; वह वक्ता (अर्थात् शिक्षक) की रक्षा करे, वह मेरी रक्षा करे; वह वक्ता की रक्षा करे - वह वक्ता की रक्षा करे। ॐ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ ऋग्वेद में निहित अक्ष-मालिकोपनिषद समाप्त होता है

<u>068 - अव्यक्त उपनिषद</u>

ॐ! मेरे अंग और वाणी, प्राण, नेत्र, कान, प्राणशक्ति
और सभी इंद्रियाँ शक्तिशाली बनें।

सभी अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है।
मैं कभी ब्रह्म को अस्वीकार न करूँ, न ही ब्रह्म मुझे अस्वीकार करे।
कोई भी अस्वीकार न हो:
कम से कम मेरी ओर से तो कोई अस्वीकार न हो।
उपनिषदों में जो गुण बताए गए हैं, वे मुझमें हों,
जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।
ॐ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

आरंभ में विकास की तीन अवस्थाएँ अव्यक्त (अनिश्चित), महत्तत्व (निर्धारित
अनिश्चित) और अहंकार (निर्धारित) थीं। इनमें से प्रत्येक के लिए एक सूक्त है।अव्यक्त - नासदेय सूक्त महत्तत्व - हिरण्यगर्भ सुक्त अहमकारा - पुरुष सूक्त नासदेय सूक्त

1. ना सा दासे ननो सा दासे तदानीम न सी द्रजो नो व्योमआपरो यत् कि मवारिवह कुहकस्य शरमन अम्बह किमासीद गहनं गभीरम्

2. न मृत्यु रसीद अमृतं न हरहि न रात्रिया अहना आसीथ प्रकेतः, अनी दवाथं स्वधाय थदेकम तस्माद् अन्य नं परः किंच नास

3. थमा आसीथ थमासा गुडहा मगरे प्रकेथं सलिलं सर्व मां इदं थुच्चे नाभु अपिहितं यदासीथ थपासः तनमहिना जया थैकम्।

4. कामः थडग्रे समावर्त ठाधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीठ सातो बंधु मासथि निराविन्दन हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा

5 थिराश्चीनो विट्ठथो रश्मी रेशम अधस्वी दासी दुपारी स्वि दासीठ रेथोधा आसन महिमान असत स्वधा अवस्थत प्रयथिह परस्थथ

6. को अद्धा वेद का इहा प्रवोचत कुथा अजाथा कुथ इयं विश्ृष्टिह अर्वाग्देवा अस्य विवर्जनेन आधा को वेद यता आबभूवा।

7. इदं विशृष्टि रयता आबभूवा यदि वा दधे यदि वा न दधे यो अस्य अध्यक्षः परमे व्योमन् सो अंग वेद यदि वा न वेद अनुवाद तब न तो कुछ था और न ही शून्य, न हवा थी और न ही आकाश। सबको किसने ढक रखा

था? क्या विश्राम कर रहा था सब? गहरे जल भरे गर्त में?न तो मृत्यु थी, न अमरता, न रात और दिन का परिवर्तन।वह एक शांत, आत्मनिर्भर साँस ले रहा था; उसके परे कुछ भी नहीं था।अंधकार में छिपा हुआ अंधकार पहले से ही मौजूद था-एक समुद्र जो नज़र नहीं आ रहा था।एक अराजकता में लिपटा हुआ शून्य, हमेशा के लिए भीतर से बढ़ता गया।इसके भीतर सबसे पहले इच्छा उत्पन्न हुई, मन का आदिम बीज,जिसे अस्तित्व से कोई नहीं जोड़ता, जैसे युग खोजते हैं।

अंधेरे और उदासी के पार जो प्रज्वलित किरण निकली, वह नीचे थी या ऊपर? कौन सा कवि इसका उत्तर दे सकता है?वहाँ उर्वर शक्तियाँ पाई गईं और शक्तिशाली ताकतें प्रयासरत थीं -नीचे एक आत्मनिर्भर द्रव्यमान और ऊपर ऊर्जा।कौन जानता है और जिसने भी बताया, यह विशाल सृष्टि कहाँ से उत्पन्न हुई? कोई देवता पैदा नहीं हुआ था। फिर कौन कभी सच्चाई का खुलासा कर सकता है कि यह दुनिया कहाँ से उत्पन्न हुई, चाहे इसे ईश्वरीय हाथ से बनाया गया हो या नहीं। स्वर्ग में इसका स्वामी ही बता सकता है, अगर वह दिखा सकता है। अनुवाद मुइर के मूल संस्कृत ग्रंथ, खंड V से लिया गया है)ॐ! मेरे अंग और वाणी, प्राण, आंखें, कान, जीवन शक्तिऔर सभी इन्द्रियाँ शक्तिशाली हो जाती हैं।

सारी सत्ता उपनिषदों का ब्रह्म है।मैं कभी ब्रह्म को अस्वीकार न करूँ, न ब्रह्म मुझे अस्वीकार करे।बिलकुल भी अस्वीकार न हो:कम से कम मेरी ओर से तो कोई अस्वीकार न हो।

उपनिषदों में जिन सद्गुणों की घोषणा की गई है, वे मुझमें हों,जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।ॐ ! मुझमें शांति हो !

मेरे वातावरण में शांति हो !मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो !

सामवेद में सम्मिलित अव्यक्तोपनिषद यहीं समाप्त होता है।

069 - एकाक्षर उपनिषद

ॐ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;
हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,
हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;
हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से घृणा न करें)।
ॐ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. आप अविनाशी में अविनाशी हैं, उमा के साथ संयुक्त हैं। जैसा कि सुषुम्ना के माध्यम से जाना जाता है, यहाँ (अनुभवजन्य तल पर), एक दृढ़ (तत्त्व आप हैं)। आप दुनिया के प्राचीन स्रोत हैं, प्राणियों के स्वामी हैं; आप पर्जन्य (जीवन देने वाले जल का सिद्धांत), दुनिया के रक्षक हैं।

2. आप सभी में निहित हैं; (दृष्टिकोण से) बुद्धिमानों के दृष्टिकोण से, आप, दुनिया के स्वामी, सभी जानने वाले (अग्नि) हैं। आदि में तुम अजन्मे हो, प्रथम जन्मे हो, यज्ञ भी तुम ही हो। तुम ही सर्वव्यापी और प्राचीन हो।

3. तुम ही जीवन के मूल हो, तुम ही अभिव्यक्ति (प्रकट जगत) हो, तुम ही जगत के मूल हो, तुम ही इस जगत में व्याप्त हो। तुम ही जगत के जन्मदाता, कारण, जीवन के अधिष्ठाता और गर्भ में श्रेष्ठ धनुष-बाण से सुसज्जित बालक हो।

4. तुम बाण को फैलाकर आकाश में युवा सूर्य के समान चमकते हो, तुम हिरण्यगर्भ के समान चमकते हो। तुमने प्रकाश के द्वारा आकाश में तेजस्वी गरुड़ (सूर्य) की रचना की है। तुम ही सुब्रह्मण्य हो, तुम ही अरिष्टनेमि (गरुड़ के भाई) हो।

5. तुम ही वज्र (इंद्र) के धारक, प्राणियों के स्वामी हो; तुम ही समस्त जीवों में और सोम (उमा सहित शिव) में प्रेम हो। आप पवित्र अक्षर स्वाहा, स्वधा और वसत् हैं; आप पशुओं के हृदय में अक्षुण्ण, स्थिर करने वाले रुद्र हैं।

6. आप पालनकर्ता, विधाता, शुद्ध करने वाले (वायु), सर्वव्यापी पूर्णता, दिव्य वराह, रात्रि और एकांत; भूत, भविष्य और वर्तमान हैं; आप सभी क्रियाएँ, काल, क्रम और सर्वोच्च अविनाशी हैं।

7. वैदिक श्लोक, गद्य सूत्र और गीत आपके मुख से निकलते हैं। आप वसुओं और आकाश के समान सर्वश्रेष्ठ चमकते हैं। आप यज्ञ के नेता,

सर्वव्यापी अग्नि और रुद्र हैं। इसी प्रकार आप दैत्यों और वसुओं के समूह भी हैं।

8. यह भगवान यहाँ सूर्य (आकाशीय रथ के पहिये) में निवास करते हैं और अन्यत्र अंधकार को दूर करते हैं। उनसे संबंधित सभी चीजें किसी अन्य आकाश में सोने की तरह सुंदर ढंग से चमकती हैं। (सापेक्षताओं का यह संसार इसी प्रकार चमकता है)।

9. वे सर्वज्ञ हैं, जगत के रक्षक हैं, सभी जन्मे प्राणियों की दृढ़ नाभि हैं। वे लंबाई और चौड़ाई में, क्रम से फैली हुई चीजों के योग के रूप में विद्यमान हैं। वे वेदों में गाये गए अजन्मा (अद्भुत जन्मों में से) प्रजापति हैं।

10. तुम ही हो जिसकी यज्ञों में ब्रह्म के ज्ञाता वैदिक स्तोत्रों, सूत्रों, अनुष्ठानों और सोम रस से आराधना करते हैं; तुम ही अंतिम (सत्य) हो, जो सभी मिश्रणों से रहित हो, स्वर्ण के समान, वेद जानने वालों में सर्वश्रेष्ठ हो।

11. तुम ही स्त्री हो, तुम ही पुरुष हो; तुम ही बालक और बालिका हो। तुम ही विधाता हो, तुम ही राजा वरुण हो, तुम ही वर्ष हो, तुम ही अर्यमा हो, तुम ही सब हो।

12. (तुम) मित्र हो, चमकीले पंखों वाले (गरुड़), चंद्रमा, इंद्र, वरुण, रुद्र, त्वष्टा, विष्णु, सविता, प्रकाश के स्वामी हो, तुम विष्णु सभी प्राणियों को आसुरी शक्तियों से बचाते हो; संसार तुमसे घिरा हुआ है; तुम ही सभी उत्पन्नों के गर्भ हो; तुम ही पृथ्वी, वायुमंडल, आकाश हो; तुम ही स्वयंभू हो; तुम ही सभी की ओर उन्मुख हो।

13. जो इस प्रकार हृदय की गुफा में स्थित सनातन भगवान को जान लेता है, जो ज्ञानियों का सर्वस्व, सुवर्णमय, परम लक्ष्य बन गया है, वही ज्ञानी है। वह सभी प्रकार के ज्ञान से परे रहता है। यही गुप्त सिद्धांत है।

ॐ ! वह हम दोनों की एक साथ रक्षा करे; वह हम दोनों का एक साथ पोषण करे; हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो; हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से द्वेष न करें)। ॐ ! मुझमें शांति हो ! मेरे वातावरण में शांति हो ! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो !

यहाँ कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित एकाक्षरोपनिषद समाप्त होता है

070 - अन्नपूर्णा उपनिषद

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रसिद्ध इंद्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

I-1-2. योगियों के राजा निदाघ ने ब्रहम के श्रेष्ठ ज्ञाता ऋभु को दंडवत प्रणाम किया। फिर, उठकर, उस तपस्वी ने आदरपूर्वक कहा, 'मुझे आत्मा के बारे में सत्य सिखाओ; हे ब्राहमण! किस प्रकार की आराधना से तुमने यह अवस्था प्राप्त की है? मुझे वह महान विद्या सिखाओ, जिससे मुक्ति के साम्राज्य पर प्रभुता प्राप्त होती है। 'तुमने बहुत अच्छा किया, निदाघ! उस शाश्वत विद्या को सुनो, जिसके ज्ञान से ही तुम मुक्त जीवन प्राप्त

करोगे। ॐ में स्थित, जो मूल (ब्रह्म) को आवृत करता है, 'उद्देश्य' अक्षर को सहारा देता है,

I-5-7। 'शाश्वत आनंद, स्वतंत्र ('ह्रीं'), प्रसिद्ध, प्रवाहमान तनावों ('सौः') के साथ, संसार ('श्रीं') की शासक, महालक्ष्मी, (एक साथ) इच्छा ('क्लिम'), पूर्ति और मानवता, दिव्य अन्नपूर्णा हैं। 'मैंने उनसे 27 अक्षरों के प्रसिद्ध और सर्वोत्कृष्ट मंत्र का उपयोग करके याचना की, जिसे महिला तपस्वियों के समूह द्वारा विकसित किया गया था,

I-8। 'अर्थात् ऐं, ह्रीं, सौं, श्रीं, क्लीं, ॐ नमो भगवत्यन्नापूर्णे ममभिलाषितं अन्नं देहि स्वाहा। [नमस्कार, हे दिव्य अन्नपूर्णा, मुझे इच्छित भोजन प्रदान करें]: 'इस प्रकार मुझे मेरे पिता ने निर्देश दिया है। तब से मैंने अपने आप को (इस) अनुशासन में स्थापित किया है, अपने स्थान (जीवन में) की गतिविधियों में बने रहने के लिए और इस मंत्र के दैनिक अभ्यास के लिए खुद को समर्पित कर दिया है।

1-9. 'जब इस प्रकार बहुत दिन बीत गए, तब मेरे सामने अन्नपूर्णा प्रकट हुईं, जिनके नेत्र बड़े थे, उनका मुख कमल के समान था, तथा मुस्कान से चमक रहा था। 1

-10. 'उन्हें देखकर मैंने भूमि पर लेटकर प्रणाम किया, और फिर हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। 'अच्छा, पुत्री, तुमने अच्छा किया; मुझसे वर मांगो, विलम्ब मत करो।'

1-11. हे (निदाघ), मुनियों में श्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने उन बड़े नेत्रों वाली (देवी) से छिपकर कहा: 'हे पर्वत की पुत्री, मेरे मन में आत्मतत्व का उदय हो।'

1-12. 'ऐसा ही हो' कहकर वे वहीं अंतर्धान हो गईं। तब जगत की अनेकता के बोध से मुझमें मति उत्पन्न हुई।

1-13. मोह पांच प्रकार का होता है; उसका वर्णन अभी किया जाएगा। प्रथम मोह के कारण जीव और ईश्वर भिन्न-भिन्न रूप वाले प्रतीत होते हैं।

1-14. दूसरे के कारण आत्मा में स्थित सत्ता का गुण वास्तविक प्रतीत होता है। तीसरे के अनुसार तीनों शरीरों से जुड़े जीव को आसक्तियुक्त माना जाता है। चौथा भ्रम जगत-कारण (ईश्वर) को परिवर्तनशील मानता

है। पाँचवाँ भ्रम जगत को उसके कारण से भिन्न मानकर उसे सत्य मानता है। तब मन में भी पाँच प्रकार के भ्रम का निरोध हो जाता है। उस क्षण से मेरा मन स्वतः ही ब्रह्म में लीन हो गया।

हे निदाघ! इसी प्रकार तुम भी सत्य का ज्ञान प्राप्त करो। नम्रता और आदर के साथ (निदाघ ने ऋभु से कहा: आप मुझ पर विश्वास रखते हुए, मुझे ब्रह्म का अद्वितीय विज्ञान प्रदान करें।

I-18. संतुष्ट होकर ऋभु ने कहा: 'ऐसा ही हो'। हे निष्पाप, मैं तुम्हें वास्तविकता का ज्ञान प्रदान करूँगा। एक शक्तिशाली कर्ता, उत्साही भोक्ता और महान त्यागी बनो। अपने वास्तविक स्वरूप की जाँच करके, सुखी रहो।

I-19. 'मैं ब्रह्म हूँ, सदा प्रकट, शुद्ध, प्रथम, अनंत; अन्य किसी भी चीज़ के साथ थोड़ी सी भी छेड़छाड़ के लिए कोई जगह नहीं है' - इस प्रकार विचार करो, निष्कलंक हो जाओ; मन की सभी गतिविधियों को शुद्ध और शांत करके निर्वाण (स्थायी शांति) प्राप्त करो।

I-20. जानो कि यहाँ जो कुछ भी दिखाई देता है, वह वहाँ नहीं है; यह सब 'आकाश में शहर' और 'रेगिस्तान में पानी' के समान है।

I-21. दूसरी ओर, जो कहीं भी नहीं देखा जाता है, वह (एक उपहार के रूप में) नहीं दिया जाता है। हे ऋषि, छठी इंद्रिय की सीमा से परे, मन, उसी में अपने को समाहित कर लो।

I-22. समझो: मैं वह हूँ जो अविनाशी, अनंत, आत्मा, सबका स्व, अभिन्न, परिपूर्ण, प्रचुर और अविभाज्य है।

I-23. अभाव (या शून्य) के पूर्ण चिंतन के कारण, जब मन क्षीण हो जाता है, तो सामान्य सत्ता (सत्ता-सामान्य) की स्थिति उत्पन्न होती है, जिसका सार अविभाज्य चेतना है।

I-24. निश्चय ही, सभी वस्तुनिष्ठ रंग से रहित, जब चेतना (चित) कम हो जाती है, तो सामान्य रूप से अत्यंत पारदर्शी सत्ता प्रकट होती है जो अ-अस्तित्व के समान होती है।

I-25. मुक्त आत्मा के लिए, देहधारी और अदेहधारी दोनों के लिए, निश्चय ही यह परम अनुभूति होती है जिसे चतुर्थ से परे की स्थिति के रूप में जाना जाता है।

I-26. हे निष्पाप! यह ज्ञानी के लिए समाधि से उठने पर भी होता है और समाधि में स्थित होने पर भी; क्योंकि यह ज्ञान से उत्पन्न होता है, इसलिए यह केवल अज्ञानी के लिए नहीं होता।

1-27. तर्क आदि की सभी अवस्थाओं के बीच के उतार-चढ़ाव बहुत पहले ही समाप्त हो जाने पर, ब्रह्मानंद के मनोहर प्रकाश में डूबा हुआ मुख, केवल सम्यक् ज्ञान के द्वारा ही परमपद को प्राप्त करता है।

1-28. जो इस अनेक गुणों को अनात्म रूप में देखता है, उसकी आंतरिक शीतलता (शांत विश्राम) को समाधि कहते हैं।

1-29. स्थिर मन अव्यक्त आवेगों से रहित होता है; वही चिंतन की अवस्था है। वही एकांत भी है। इसके अलावा, यह नित्य निश्चलता के अलावा और कुछ नहीं है।

1-30. क्षीण अव्यक्त आवेगों वाला मन सर्वोच्च अवस्था के लिए बद्ध कहा जाता है। इसके बाद, मन, ऐसे आवेगों के बिना, अकर्ता की स्थिति प्राप्त करता है।

I-31. दूसरी ओर, कर्ता होने की मन की कल्पना अव्यक्त आवेगों से भरी हुई है; यह सभी दुखों का कारण बनता है; इसलिए अव्यक्त आवेगों को कम कर देता है।

I-32. जब सभी वस्तुओं के साथ एकता की कल्पना मानसिक रूप से त्याग दी जाती है, तो इसकी निरंतर अंतर्मुखी स्थिति के कारण, सभी चीजें खाली जगह में विलीन हो जाती हैं।

I-33. जैसे बाजार में भीड़, हालांकि सक्रिय है, लेकिन जब वह उनसे संबंधित नहीं होता है तो (दर्शक के लिए) अस्तित्वहीन के समान होती है, वैसे ही, जानने वाले के लिए एक गाँव एक जंगल की तरह है।

I-34. आंतरिक रूप से वापस ले जाने वाला, जानने वाला, चाहे सो रहा हो, जाग रहा हो, चल रहा हो या पढ़ रहा हो, एक शहर, देहात या गाँव को इस

तरह देखता है जैसे कि वह एक जंगल के अलावा कुछ नहीं है (यानी पूरी तरह से निस्वार्थ भाव से)।

I-35. एक बार आंतरिक शीतलता जीत ली जाती है, तो दुनिया ठंडी हो जाती है। आंतरिक प्यास से झुलसने वालों के लिए, दुनिया आग है।

I-36. सभी (अनमुक्त) प्राणियों के लिए जो भीतर है वह बाहरी रूप से प्रक्षेपित होता है।

I-37. परन्तु अन्तःकरण का प्रेमी कर्मेन्द्रियों द्वारा कार्य करते हुए भी सुख-दुःख से अप्रभावित रहता है; वह एकाग्र कहलाता है।

1-38. जो मनुष्य भय से नहीं, बल्कि स्वभावतः ही सब प्राणियों को अपना ही स्वरूप और दूसरों की सम्पत्ति को मिट्टी के ढेले के समान देखता है, वही सम्यक् दृष्टि रखता है।

1-39. मृत्यु अभी आए या कल्प के अन्त में; वह कीचड़ में गिरे हुए सोने के समान निष्कलंक रहता है।

1-40. अपने मन में विचार करो: मैं कौन हूँ? यह सब कैसे होता है? मृत्यु और जन्म कैसे होते हैं? इस प्रकार विचार करने से तुम्हें महान् लाभ होगा।

1-41. जब तुम अपने वास्तविक स्वरूप को समझ लोगे, तो तुम्हारा मन अपना (विवेचनात्मक) रूप त्याग देगा और शांतिपूर्वक विश्राम प्राप्त करेगा।

1-42. हे ब्राह्मण! तुम्हारा मन ज्वर से मुक्त हो गया है, और वह अब भौतिक कार्यों में नहीं डूबता, जैसे हाथी गाय के खुर से बने गड्ढे में नहीं डूबता।

I-43. परन्तु हे ब्राह्मण, क्षुद्र मन किसी भी क्षुद्र कार्य में उसी प्रकार डूबता है, जैसे एक घायल मच्छर गाय के खुर से बने गड्ढे में एकत्रित जल में डूब जाता है।

I-44. हे तपस्वियों में श्रेष्ठ! जब तक सभी विषयों का सहज ही त्याग कर दिया जाता है, तब तक केवल परब्रह्म आत्मा, दिव्य ज्योति ही शेष रहती है।

I-45. जब तक सभी विषयों का त्याग नहीं किया जाता, तब तक आत्मा को जीता नहीं जा सकता। संपूर्ण विषय-वस्तु के त्याग के पश्चात जो शेष रह जाता है, उसे आत्मा कहते हैं।

I-46. अतः आत्मा को प्राप्त करने के लिए सब कुछ त्याग दो। सभी (विषयों) को त्यागकर, जो शेष रह जाता है, उसमें अपने को समाहित कर लो।

I-47. चारों ओर जो भी वस्तु दिखाई देती है, वह चेतना का स्पंदन मात्र है, वह स्थायी नहीं है।

1-48. हे ब्राह्मण, समाधि शब्द से ज्ञानीजन उस पारलौकिक ज्ञान को दर्शाते हैं, जो एकाग्र, शाश्वत रूप से शांत तथा वस्तुओं को उनके वास्तविक स्वरूप में जानने वाला होता है।

1-49. समाधि शब्द से स्थिर, पर्वत-जैसी स्थिति (स्वयं की) का बोध होता है, जो अविचल, अहंकार-रहित तथा द्वैत से असंबद्ध होती है।

1-50. हे ब्राह्मण, यह मन के उस पूर्ण प्रवाह को दर्शाता है, जो सुनिश्चित, निर्विकल्प तथा लक्ष्यहीन होता है।

1-51. वेदों के श्रेष्ठ ज्ञाता, महान लोग उस चौथे तथा स्थिर बोध को प्राप्त करते हैं, जो केवल आत्मा के प्रकाश के एक अंश के माध्यम से ही विकसित होता है।

1-52. (यह) सभी वस्तुओं के हृदय में स्थित है, तथा स्वप्नहीन निद्रा के समान ही है, जब मन तथा अहंकार शांत हो जाते हैं।

1-53. मन को मन से नष्ट करने के पश्चात् वह स्थिति - वह परम दिव्य आनंद-शरीर - स्वतः ही प्राप्त हो जाती है।

1-54. तत्पश्चात् विषयों की समस्त तृष्णाओं का नाश हो जाता है; तब शुभ और परम तेजस्वी प्रकाश का उदय होता है, और तब श्रेष्ठतम के मामले में समचित्तता के प्रभाव से आत्मा के तत्व में अनिर्वचनीय परिवर्तन होता है।

1-55. वास्तव में देवताओं के ईश्वर और सभी सत्ताओं के आत्मा के रूप में प्रत्यक्ष रूप से अनुभव किया जाने वाला, चलायमान और स्थिर यह आत्मा की समग्र और अनंत वास्तविकता है, जो तेजी से विकसित होने वाले मन में निवास करती है, जो बाह्य रूप से शांत हो जाती है।

1-56. अनासक्त, स्थिर और नियंत्रित मन संसार में प्रकट नहीं होता; आसक्त मन, यद्यपि लंबे समय तक तपस्या के अधीन होता है, लेकिन वह पूरी तरह से बंधा हुआ है।

I-57. आन्तरिक आसक्ति से मुक्त, जिसका मन आनन्दमय (ब्रह्म) में स्थित रहता है, वह बाह्य रूप से कार्य कर सकता है अथवा नहीं भी कर सकता; वह कभी भी न तो कर्ता हो सकता है, न ही अनुभवकर्ता।

II-1. निदाघ: आसक्ति कैसी है? यह किस प्रकार की आसक्ति है जो मनुष्य को बन्धन में डालती है? और यह किस प्रकार की आसक्ति है जो मुक्ति प्रदान करती है? इस (आसक्ति) का निवारण कैसे होता है?

II-2. (ऋभु): शरीर और देहधारी (आत्मा) के भेद को पूर्णतया अनदेखा करके कल्पना करना - शरीर में अनन्य विश्वास - आसक्ति को बाँधने वाला कहा गया है।

II-3. यह सब आत्मा है: यहाँ मैं क्या खोजूँ और किससे बचूँ? इसे जीवन्मुक्त द्वारा पोषित अनासक्ति की स्थिति जानो।

II-4. मैं नहीं हूँ; मेरे अतिरिक्त कोई भी नहीं है; न यह है, न पराया है। यह (दृष्टिकोण) अनासक्ति कहा गया है, जो सदैव 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा कहता है।

II-5. वह निष्क्रियता को स्वीकार नहीं करता, न ही वह गतिविधियों से चिपकता है। वह त्यागी, अत्यंत समदर्शी है; उसे अनासक्त कहा जाता है।

II-6. जो व्यक्ति केवल ठोस कार्य में नहीं, बल्कि मानसिक रूप से अपने सभी कार्यों के फल आदि का त्याग करता है - वह निपुण अनासक्त कहा जाता है।

II-7. कल्पनाओं और उनसे उत्पन्न होने वाली विविध गतिविधियों का इलाज, यहाँ, कल्पना में लिप्त न होने से किया जाता है; इस प्रकार कल्याण को बढ़ावा मिलता है।

II-8-9. जो मन कार्यों, विचारों और वस्तुओं से, भटकने और समय की गणना करने से नहीं चिपकता, बल्कि केवल चेतना में विश्राम करता है, किसी भी वस्तु की ओर मुड़ने पर भी उसे कोई आनंद नहीं मिलता, वह आत्मा में आनंदित होता है।

II-10. वह यह सब अनुभवजन्य क्रिया करे या न करे; करे या न करे, उसका सच्चा व्यवसाय आत्म आनंद है।

II-11. अथवा उस वस्तुगत तत्त्व को भी त्यागकर, स्थिर चेतना के रूप में, शान्त जीव, दीप्तिमान रत्न की भाँति आत्मा में स्थित रहता है।

II-12. समस्त वस्तुगत संदर्भों से मुक्त, क्षीण मन की शान्त अवस्था को, जाग्रतावस्था में गहन निद्रा कहा गया है।

II-13. हे निदाघ, अभ्यास द्वारा पूर्ण विकसित यह निद्रा अवस्था, सत्य के श्रेष्ठतम ज्ञाताओं द्वारा चतुर्थ अवस्था कही गई है।

II-14. इस चतुर्थ अवस्था में अविनाशी स्थिति को प्राप्त होकर, मनुष्य आनंदरहित संतुलन (मानो वह) को प्राप्त होता है, जिसका स्वभाव सदैव आनंदमय होता है।

II-15. तत्पश्चात् आनंदरहित और महाआनंद जैसे सभी सापेक्षताओं से ऊपर उठकर, कालातीत योगी चतुर्थ अवस्था से आगे की अवस्था को प्राप्त होकर, मुक्त कहा गया है।

II-16. जन्म के सभी बंधनों से मुक्त होकर, और सभी तामसिक अभिमानों को विलीन करके, महामुनि जल में लवण-क्रिस्टल की तरह परम आत्मा के आनंदमय स्वरूप में निवास करते हैं।

II-17. जो पारमार्थिक और अनुभवात्मक वास्तविकता है, जो भौतिक और चेतन की (विपरीत) धारणाओं में मौजूद है, वह सार है; ब्रह्म वही कहा जाता है।

II-18(क). बंधन विषय द्वारा आवृत है; इससे मुक्त होने पर मुक्ति प्राप्त होती है।

II-18(ख)-19. उस अव्यक्त अनुभव में विश्राम करते हुए, पदार्थ और धारणा के बीच के संबंध में विवेकशील होकर, तुम निवास करो; इस प्रकार तुम गहरी नींद की (शांति) प्राप्त करते हो। वह चतुर्थ में विकसित होता है; उस पर अपनी दृष्टि केंद्रित करो।

II-20. आत्मा न तो स्थूल है, न सूक्ष्म; न प्रकट है, न छिपा हुआ; न आध्यात्मिक है, न भौतिक; न असत् है, न सत्।

II-21. वह अद्वैत अविनाशी जो विषय, मन और समस्त इन्द्रियों का आधार बन गया है, वह न तो मैं है, न दूसरा; न एक है, न अनेक।

II-22. विषय और अनुभूति के सम्बन्ध में जो वास्तविक आनन्द (अनुभव) होता है, वही पारलौकिक अवस्था है; अतः वह मानो (स्वयं में) कुछ भी नहीं है।

II-23. मुक्ति न आकाश के शिखर पर है, न पाताल में है, न पृथ्वी पर है। मन का क्षीण हो जाना, जिसमें सब कामनाएँ सूख जाती हैं, उसे मुक्ति कहते हैं।

II-24. 'मुझे मुक्ति मिले', इस विचार से मन उठता है; यह सांसारिक बंधन मन में दृढ़ संकल्प और विचार से व्याकुलता।

II-25. मन की शुद्धि न करने मात्र से वह अत्यन्त देहान्तरण की स्थिति में पहुँच जाता है; दूसरी ओर, केवल उसकी शुद्धि ही मुक्ति कहलाती है।

II-26. जो आत्मा सब वस्तुओं से परे है अथवा सब रूपों में व्याप्त है, उसके सम्बन्ध में बंधन क्या है और मुक्ति क्या है? मुक्त भाव से विचार करो।

II-27. आत्मा से प्रेम करते हुए, सब आशाओं से ऊपर उठकर, पूर्ण, पवित्र मन से, अतुलनीय विश्राम की स्थिति को जीतकर, वह यहाँ कुछ भी नहीं चाहता।

II-28. वह जीवन्मुक्त (जीवन में मुक्त) कहलाता है, जो सबका पोषण करने वाली शुद्ध सत्ता में, उस अविवेकी आत्मा में, जो आत्मा है, अनासक्त भाव से रहता है।

II-29. वह जो अभी होने को है, उसकी लालसा नहीं करता; वह वर्तमान पर निर्भर नहीं रहता; वह भूतकाल को स्मरण नहीं करता; फिर भी वह सब कार्य करता है।

II-30. जो उससे लिपटे रहते हैं, उनसे सदा अनासक्त रहते हैं; भक्तों के प्रति समर्पित रहते हैं; वे कठोर लोगों के प्रति कठोर होते हैं।

II-31. बालकों के बीच बालक; प्रौढ़ों के बीच वयस्क; साहसी लोगों के बीच साहसी; युवाओं के बीच युवा; विलाप करने वालों के बीच विलाप करने वाले;

II-32. दृढ़, आनंदित, परिष्कृत, पवित्र वाणी वाले, बुद्धिमान, सरल और मधुर; कभी आत्म-दया में लीन नहीं होते;

II-33. अनुशासन के द्वारा जब प्राणों की धड़कन बंद हो जाती है, तो मन पूरी तरह से विलीन हो जाता है; निर्विशेष आनंद (निर्वाण) शेष रह जाता है;

II-34. जहाँ से सभी वाद-विवाद वापिस लौट जाते हैं। अपनी सभी मानसिक रचनाओं के मिट जाने पर वह (ब्राह्मी) स्थिति बनी रहती है।

II-35. यहाँ परम आत्मा है जिसका सार अनादि और अंत रहित चेतना का प्रकाश है;बुद्धिमान लोग इस प्रकाशमान निश्चय को ही सही ज्ञान मानते हैं।

II-36. 'सारा जगत् आत्मा ही है' इस ज्ञान के कारण जो परिपूर्णता है, वही विश्व में सर्वत्र आत्म-साक्षात्कार का सही मापदण्ड है।

II-37. सब कुछ आत्मा ही है; सत्ता और असत्ता की (अनुभवजन्य) अवस्थाएँ क्या हैं? वे कहाँ चली गई हैं? बंधन और मोक्ष की वे धारणाएँ कहाँ हैं? जो उभर कर आता है, वह है केवल ब्रह्म।

II-38. सब कुछ एक ही परम आकाश है। मोक्ष क्या है? बंधन क्या है? यह महान ब्रह्म है,विस्तारित रूप से,स्थिर रूप से,स्थित; द्वैत उससे दूर हो गया है; तू स्वयं,स्वयं ही,स्वयं ही हो।

II-39. जब जड़, पत्थर और वस्त्र का रूप ठीक से देखा जाता है, तब उसमें भेद की छाया भी नहीं रहती;तुम कहाँ हो?

II-40. यह अविनाशी और शांत तत्व, जो वस्तुओं और स्वयं के आदि और अंत में (उपस्थित) है,हमेशा वही हो।

II-41. द्वैत और अद्वैत के मानसिक भेदों तथा बुढ़ापे और मृत्यु के मोह से युक्त आत्मा ही अपने स्वरूपों में चमकती है, जैसे समुद्र अपनी तरंगों में चमकता है।

II-42. जो व्यक्ति दृढ़चित्त होकर, सदा उस शुद्ध आत्मा में, जो विपत्तियों के वृक्ष को गिरा देती है, परमानंद की स्थिति में स्थित रहता है, उसे इच्छित फलों का कौन-सा भोग विचलित कर सकता है?

II-43. मानसिक भोग उस व्यक्ति के शत्रु हैं, जिसने बहुत अधिक विचार किया है; वे उसे जरा भी नहीं हिला सकते, जैसे हल्की हवाएँ पहाड़ को नहीं हिला सकतीं।

II-44. 'बहुतायत विभिन्न कल्पनाओं में विद्यमान है, वास्तव में नहीं, जैसे सरोवर में जल के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है' - इस एक निश्चय से युक्त मनुष्य मुक्त कहलाता है; जिसने सत्य को देख लिया है।

III-1. (निदाघ): शरीर के बिना मुक्ति का स्वरूप क्या है? इसे प्राप्त करने वाला महान् मुनि कौन है? किस योग का आश्रय लेकर उन्होंने वह परमपद प्राप्त किया है?

III-2. ऋभु: सुमेरु क्षेत्र में कौण्डिन्य द्वारा बताए गए सत्य का आश्रय लेकर विख्यात ऋषि माण्डव्य जीवन्मुक्त हो गए।

III-3. जीवन्मुक्ति की स्थिति प्राप्त करके, ब्रह्म के श्रेष्ठ ज्ञाता, उन महान ऋषि ने एक बार अपनी सभी इन्द्रियों को (उनके संबंधित विषयों से) हटा लेने का मन बनाया।
III-4. वे कमल-आसन में बैठे, आँखें आधी बंद करके, धीरे-धीरे (विषयों के साथ) संपर्क से बचते हुए,बाह्य और आंतरिक।

III-5. तब उसने अपने निष्पाप मन से अपने मन की स्थिरता पर विचार किया: 'स्पष्टतः, यद्यपि यह मन पीछे हटा हुआ है, फिर भी मेरा यह मन अत्यंत चंचल है।'

III-6. यह कपड़े से बर्तन और फिर बड़ी गाड़ी में भटकता रहता है। मन वस्तुओं के बीच ऐसे भटकता है जैसे बंदर एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर भटकता है।

III-7. पाँच छिद्र, आँखें आदि, जिन्हें ज्ञानेन्द्रियाँ कहते हैं, मैं अपने मन से ध्यानपूर्वक देख रहा हूँ।

III-8. हे इन्द्रियों! धीरे-धीरे अपनी उत्तेजना की भावना को त्याग दो। मैं यहाँ हूँ, दिव्य आध्यात्मिक आत्मा, सबका साक्षी।

III-9. उस सर्वज्ञ आत्मा से मैंने नेत्र आदि (स्वरूप) को समझ लिया है। मैं पूर्णतः सुरक्षित और शान्त हूँ। सौभाग्य से मैं निर्भय हूँ।

III-10. मैं निरंतर अपनी आत्मा, चतुर्थ में विश्राम करता हूँ; मेरे प्राणमय श्वास, उसके विस्तार, सब, यथावत्, भीतर ही शांत हो गए हैं।

III-11. (मैं) उस अग्नि के समान हूँ, जिसकी असंख्य लपटें, जब ईंधन जल जाता है; वह प्रज्वलित हुई, किन्तु अब बुझ गई है - प्रज्वलित अग्नि, वास्तव में, बुझ गई है।

III-12. पूर्णतः शुद्ध हो जाने पर, मैं सम रहता हूँ, मानो सबका समान रूप से आनंद ले रहा हूँ। मैं गहरी नींद में भी जाग रहा हूँ; गहरी नींद में भी, मैं जाग रहा हूँ।

III-13-14. चतुर्थ का आश्रय लेकर, मैं शरीर के भीतर स्थिर स्थिति में रहता हूँ, तथा ॐ तक पहुँचने वाली ध्वनि के लंबे धागे के साथ, कल्पना द्वारा निर्मित तीनों लोकों की वस्तुओं को त्याग दिया है।

III-15. जैसे पक्षी आकाश में उड़ने के लिए जाल (जिसमें वह फँसा हुआ था) को छोड़ देता है, वैसे ही महामुनि इन्द्रियों के साथ अपनी पहचान त्याग देते हैं; तब वह अपने अंगों के प्रति जो भ्रमात्मक हो गया था, बोध त्याग देता है।

III-16. उसने नवजात शिशु का ज्ञान प्राप्त कर लिया है; जैसे वायु कंपन करने की अपनी शक्ति छोड़ दे, उसने चेतना की वस्तुओं से आसक्त होने की प्रवृत्ति को समाप्त कर दिया है।

III-17. तब वह चेतना की अपरिभाषित अवस्था को प्राप्त कर लेता है - शुद्ध सत्ता की अवस्था - स्वप्नरहित निद्रा की अवस्था में पहुँचकर, वह पर्वत के समान अचल रहता है।

III-18. स्वप्नरहित निद्रा की स्थिरता को प्राप्त कर वह चतुर्थ को प्राप्त कर लेता है; यद्यपि वह आनंद से परे चला गया है, फिर भी वह आनंदमय है; वह अस्तित्व और अअस्तित्व दोनों बन गया है।

III-19. तब वह वह बन जाता है जो शब्दों की सीमा से भी परे है जो शून्यवादियों का शून्य है और ब्रह्म के जानकारों का ब्रह्म है;

III-20. जो ज्ञान के ज्ञाताओं का शुद्ध दोषरहित ज्ञान है, सांख्यों का पुरुष और योगियों का ईश्वर है;

III-21. शिवागमों का शिव; काल को ही मूल सिद्धांत मानने वालों का काल; सभी शास्त्रों का अंतिम सिद्धांत और जो प्रत्येक हृदय के अनुकूल है;

III-22. जो सर्व है, सर्वव्यापी वास्तविकता, सत्य है। वह वह बन गया है, अव्यक्त, अचल, ज्योतियों का भी प्रकाशक;

III-23. वह तत्व जिसका एकमात्र प्रमाण उसका अनुभव है - वह वही बना हुआ है।

III-24. जो अजन्मा, अमर, आदि और प्रथम निष्कलंक अवस्था है, पूर्ण और अविभाज्य - वह वही बना हुआ है; आकाश की अवस्था से भी सूक्ष्म अवस्था। क्षण भर में, वह पवित्र ईश्वर बन गया है।

IV-1. क्या जीवन्मुक्त में अन्तरिक्ष में उड़ने की शक्ति आदि गुण हैं? यदि हैं, तो महामुनि! सिद्ध पुरुष में यह नहीं है (जैसा कि ऊपर वर्णित है)।

चतुर्थ-2. हे ब्राहमण! आत्मा को न जानने वाला, बन्धन में पड़ा हुआ भी, (विशिष्ट) द्रव्यों, मन्त्रों, साधनाओं तथा काल की शक्तियों के द्वारा अन्तरिक्ष में उड़ने की शक्ति प्राप्त कर लेता है।

चतुर्थ-3. यह आत्मज्ञानी का विषय नहीं है। आत्म में सन्तुष्ट रहने वाला व्यक्ति कभी अविद्या की लालसा नहीं करता।

चतुर्थ-4. संसार में जो भी वस्तुएँ हैं, वे अविद्या की वस्तुएँ हैं। फिर संसार में जो भी वस्तुएँ हैं, वे अविद्या की वस्तुएँ हैं।अविद्या को दूर करने वाले महान योगी क्या उनमें डूब सकते हैं?

IV-5. जो भी भ्रमित व्यक्ति या अल्प बुद्धि वाला व्यक्ति योगिक शक्तियों के समूह की इच्छा करता है, वह उन्हें, एक-एक करके, निर्धारित अभ्यासों के माध्यम से, उनके लिए निमित्त बनाता है।

IV-6. (उचित) समय पर किए गए पदार्थ, मंत्र, क्रियाएँ, सभी योगिक शक्तियाँ प्रदान करती हैं। उनमें से कोई भी मनुष्य को ईश्वर के स्तर तक नहीं पहुँचा सकता।

IV-7. केवल किसी इच्छा से प्रभावित होकर ही मनुष्य चमत्कारी शक्तियों के लिए काम करता है। पूर्ण मनुष्य, कुछ भी नहीं चाहता है, उसे कोई इच्छा नहीं हो सकती।

IV-8. हे ऋषि, जब सभी इच्छाएँ सूख जाती हैं, तो आत्मा जीत ली जाती है। बुद्धिहीन (ऋषि) चमत्कारी शक्तियों की इच्छा कैसे कर सकते हैं?

IV-9. जीवन में मुक्त व्यक्ति को कोई आश्चर्य नहीं होगा यदि सूर्य शीतल प्रकाश बिखेरे, चंद्रमा झुलसाने वाली किरणें या आग नीचे की ओर धधकती रहे।

IV-10. (सारा जगत) परम सत्य, भूमि पर उसी प्रकार आरोपित है, जैसे साँप रस्सी पर। इन आरोपित आश्चर्यों के विषय में कोई जिज्ञासा उत्पन्न नहीं होती।

IV-11. जो वास्तव में जान गए हैं कि क्या जानना है और सभी आसक्तियों को त्याग दिया है, जिनकी बुद्धि महान है, जिनके हृदय की गांठें कट गई हैं, वे शरीर में रहते हुए भी मुक्त हैं।

IV-12. वह मन मृत है जो सुख और दुःख में अविचल है, और जिसे कोई भी चीज समता से नहीं हिला सकती,
जैसे श्वास विशाल पर्वत को भी नहीं हिला सकती।

IV-13. वह मन मृत है जो खतरे, साधनहीनता, ऊर्जा, उल्लास, सुस्ती या महान आनंद से अविचल है।

IV-14. मन का नाश दो प्रकार का होता है, निश्चित और अनिश्चित। जीवन में मुक्ति की स्थिति में यह निश्चित है; असंशरीर मुक्ति की स्थिति में यह अनिश्चित है।

IV-15. मन की उपस्थिति दुःख का कारण बनती है; इसका नाश आनन्द को बढ़ाता है। विद्यमान मन को क्षीण करो और उसका नाश करो।

IV-16। हे पापरहित, मन का स्वभाव मूर्खता है, यह जान लो। जब उसका नाश हो जाता है, तो मनुष्य का वास्तविक सार, नासमझी, (जीती) है।

IV-17। जीवनमुक्त व्यक्ति का मन, मैत्री आदि गुणों से युक्त, उत्तम आवेगों से समृद्ध होता है, उसका पुनर्जन्म कभी नहीं होता।

IV-18। जीवनमुक्त के मन का यह नाश निश्चित है; निदाघ, देहरहित मुक्ति के साथ अनिश्चित नाश होता है।

IV-19। देहरहित मुक्त व्यक्ति वह है जो अखंड आत्मा को जान लेता है; उसका मन, जो सभी उत्तम गुणों का निवास था, विलीन हो जाता है।

IV-20-21। उस परम पवित्र, निष्कलंक मुक्ति की स्थिति में, जो 'मनशून्यता' से चिह्नित है, मन के अनिश्चित नाश की उस स्थिति में, कुछ भी शेष नहीं रहता, न गुण, न उनका अभाव; न महिमा, न उसका अभाव; संसार का कुछ भी नहीं;

IV-22. न सूर्योदय, न सूर्यास्त; न हर्ष या क्रोध की अनुभूति; न प्रकाश, न अंधकार; न संध्या, न दिन, न रात; न होना, न असत् होना, न केंद्रीयता (निराकार मुक्ति की) स्थिति को चिह्नित करती है।

IV-23. उन (जो निराकार में मुक्त हैं) की विशाल स्थिति, जो बुद्धि और सांसारिक जीवन के आडंबर से परे चले गए हैं, आकाश की तरह है, हवाओं का निवास है।

IV-24. महान (जीवन्मुक्त) जिनके शरीर सूक्ष्म आकाश हैं, वे वहाँ (निराकार मुक्ति की स्थिति में) निराकार हो जाते हैं; उनके सभी कष्ट दूर हो जाते हैं; वे अमूर्त हैं; पूर्णतया शान्त, आनन्द में स्थिर, रजस और तम से परे। उस अवस्था में अपने मन के बचे हुए भाग को विलीन कर दो।

IV-25. हे महामुनि निदाघ, अपने मन को सभी अव्यक्त प्रवृत्तियों से मुक्त करो; अपने मन को बलपूर्वक एकाग्र करो,और सभी मानसिक रचनाओं से परे जाओ।

IV-26. वह शाश्वत स्वयं प्रकाशित प्रकाश, जो संसार को प्रकाशित करता है, वही इस संसार का साक्षी है,सबका आत्मा है, शुद्ध एक है।

IV-27. संचित बुद्धि के रूप में यह सभी प्राणियों का आधार है। सत्य, ज्ञान और आनन्द से युक्त वह अद्वैत ब्रह्म ही ज्ञान का विषय है।

IV-28-29. मुनि इस अनुभूति के साथ अपना कर्तव्य पूरा करता है, 'मैं ही ब्रह्म हूँ'; (ब्रह्म ही)सबका आधार, अद्वैत, सर्वोच्च, शाश्वत, सत्ता, बुद्धि और आनंद का सार, शब्द और मन की सीमा से परे।

IV-30. वहाँ चंद्रमा और सूर्य के रूप नहीं चमकते; हवाएँ नहीं चलतीं; और कोई भी देवता नहीं है। यह देवत्व ही स्वयं में शुद्ध, रजोगुण से रहित, अस्तित्व के रूप में चमकता है।

IV-31. हृदय की गाँठ फट जाती है; सभी संदेह कट जाते हैं। जब वह, जो यहाँ और परे दोनों है, दिखाई देता है, तो उसके सभी कर्म क्षीण हो जाते हैं।

IV-32. इस शरीर में जीव और भगवान नामक पक्षी एक साथ रहते हैं। उनमें से जीव कर्म का फल खाता है, महान भगवान नहीं।
IV-33. अकेले साक्षी के रूप में, भागीदारी के बिना, महान भगवान स्वयं चमकते हैं। माया के माध्यम से उनके बीच अंतर स्थापित होता है। आत्मा अपने रूप से भिन्न है; चूँकि यह क्षीण नहीं होता है, इसलिए आत्मा (सभी वस्तुओं से) अलग नहीं है।

IV-34. जिस प्रकार तर्क और ज्ञान के माध्यम से आत्मा की एकता स्थापित हो जाती है, उसी प्रकार एकता को व्यापक रूप से जान लेने पर मनुष्य को फिर कभी दुःख नहीं होता, न ही वह मोह में पड़ता है।

IV-35. 'मैं ही सम्पूर्ण जगत का आधार हूँ, ठोस सत्य और ज्ञान हूँ', ऐसा निश्चित ज्ञान होने पर मुनि (सब) दुःखों को दूर कर सकते हैं।

IV-36. जिनके सारे दोष क्षीण हो गए हैं, वे अपने शरीर में सबके साक्षी को अनुभव करते हैं, जिसका सार स्वयं प्रकाशमान सत्ता है, न कि वे जो माया से घिरे हुए हैं।

IV-37. बुद्धिमान ब्राह्मण को चाहिए कि वह केवल उसी को जानकर बुद्धि का निर्माण करे, उसे शब्दों की अधिकता में नहीं रहना चाहिए, जो केवल मौखिक थकावट पैदा करती है।

IV-38. ब्रह्म के ज्ञान में निपुण होने पर उसे केवल बाल-सुलभता में रहना चाहिए। ब्रह्म-ज्ञान और बाल-सुलभता दोनों में निपुण होने पर मुनि को आत्मा प्राप्त हो जाती है।

IV-39. मूल शरीर को संसार की लता के बीज के रूप में जानो, जिसमें अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के अंकुर हैं, जिनकी शक्तियाँ (शरीर में) छिपी हुई हैं।

IV-40. इस शरीर का बीज तृष्णाओं के अनुकूल मन है; यह सक्रिय और निष्क्रिय मनोदशाओं का आवरण है, पीड़ा के रत्न को धारण करने वाला एक डिब्बा है।

IV-41. मन के वृक्ष के दो बीज हैं; एक प्राणवायु का कंपन है; दूसरा हठी कल्पना।

IV-42. जब प्राणवायु, तंत्रिका संपर्कों से उत्तेजित होकर कंपन करती है, तो मन तुरन्त संवेदनाओं के समूह में परिवर्तित हो जाता है।

IV-43. प्राणवायु के कंपन से वह सर्वव्यापी जागरूकता जागृत होती है। जागरूकता (वस्तुओं की) को दबा देना बेहतर है; प्राणवायु का कंपन कम हानिकारक है, आदि।

IV-44. मानसिक शांति के लिए योगीजन प्राण-संयम, ध्यान और तर्क-वितर्क द्वारा प्राणों को दबाते हैं।

IV-45. मानसिक शांति का फल देने वाले परम कारण को जानो: (अर्थात) ज्ञान का आनंदमय आत्म-संयम जिसे श्वास-संयम कहते हैं।

IV-46. अव्यक्त धारणा को कारण और प्रभाव के सभी विचारों के बावजूद, दृढ़ कल्पना के बल से किसी वस्तु को पकड़ना कहा जाता है।

IV-47. सब कुछ अस्वीकार करते हुए और कुछ भी कल्पना न करते हुए, चाहे चुनने के लिए हो या अस्वीकार करने के लिए, मन (अपने आप में) रहता है; अब मन अजन्मा है।

IV-48. अव्यक्त धारणाओं से निरंतर मुक्त होने के कारण, जब मन विचार करना बंद कर देता है, तब मनहीनता उत्पन्न होती है जो परम शांति प्रदान करती है।

IV-49. जब संसार में वस्तुओं का कोई पहलू कल्पना में नहीं आता, तो हृदय के शून्य आकाश में मन कैसे जन्म ले सकता है?

IV-50. किसी वस्तु की अनुपस्थिति की धारणा उसके न होने पर आधारित है; मनहीनता को वस्तु-जैसा-है के संदर्भ में स्थापित किया गया है।

IV-51. आंतरिक अस्वीकृति (सभी वस्तुओं की) के बाद, अपने आप में शांत रहने वाला मन, यद्यपि संशोधनों में, (फिर भी) गैर-अस्तित्व का रूप माना जाता है।

IV-52. वे वास्तव में जीवन में मुक्त माने जाते हैं जिनके अव्यक्त, अप्रयुक्त, संस्कार तले हुए बीजों की तरह हैं, जो आगे अंकुरित होने में असमर्थ हैं।

IV-53. उनके मन ने सत्व का रूप प्राप्त कर लिया है; वे ज्ञान के सुदूर तट से परे चले गए हैं; उन्हें बुद्धिहीन कहा गया है। शरीर के गिरने पर वे आकाश के समान हो जाते हैं।

IV-54. विषयों के त्याग से प्राणों के स्पंदन और अव्यक्त संस्कार दोनों ही शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, जैसे जड़ कट जाने पर वृक्ष नष्ट हो जाता है।

IV-55. ज्ञान की इस अवस्था में, जो कुछ भी पहले से अनुभव किया हुआ या सर्वथा नया प्रतीत होता है, उसे प्रत्येक उस व्यक्ति द्वारा सावधानीपूर्वक मिटा दिया जाना चाहिए, जिसका ज्ञान सुदृढ़ है।

IV-56. विशाल देहान्तर जीवन उन्हें नष्ट न कर पाने के कारण है; इसके विपरीत, मुक्ति को उनका विनाश ही माना गया है।

IV-57. सभी सुखों और ज्ञान को अस्वीकार करते हुए अभौतिक (आध्यात्मिक) बनो।

IV-58. ज्ञान विषयों की अवस्थाओं पर निर्भर करता है; ज्ञान न रखने वाला व्यक्ति अज्ञानी होता है, भले ही वह सौ कर्म करता हो; वह जड़ नहीं माना जाता।

IV-59. वह जीवन में मुक्त कहा जाता है, जिसके भावों का स्पष्ट क्षेत्र वस्तुओं से किंचित भी प्रभावित नहीं होता; उसका ज्ञान आध्यात्मिक होता है।

IV-60. जब कुछ भी कल्पना नहीं की जाती, तब मन में अव्यक्त संस्कारों के अभाव के कारण वह बालकों और गूंगों के समान अनुभूतियों के साथ स्थिर रहता है।

IV-61. अब ऋषि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता; क्योंकि वह (वस्तुनिष्ठ विधा में) विशाल बुद्धिमान अज्ञान का आश्रय लेता है।

IV-62. निर्विकारता की एकाग्रता के माध्यम से, सभी अव्यक्त संस्कारों को अस्वीकार करते हुए, वह उसके साथ एक हो जाता है; अनंत में वह भी विलीन हो जाता है।

IV-63. खड़े, चलते, स्पर्श करते, सूंघते हुए भी, बुद्धिमान ऋषि सभी आसक्तियों से रहित, (अस्थिर) सुखों और (विशेषों के) ज्ञान से छुटकारा पा लेता है; वह शांत हो जाता है।

IV-64. वह श्रेष्ठताओं का अथाह सागर है, वह दुःखों के सागर को पार कर जाता है, क्योंकि वह कष्टपूर्ण कार्यों के बीच भी इस दर्शन का आश्रय लेता है।

IV-65. सभी विशेषताओं से रहित, निर्मल, शुद्ध सत्ता एक विशाल सार है - जिसे (अपरिवर्तनीय) सत्ता का निवास माना जाता है।

IV-66. काल की सत्ता, क्षण की सत्ता, सत्ताओं की सत्ता जैसे भेदों को त्याग कर, केवल शुद्ध सत्ता के प्रति समर्पित हो।

IV-67. केवल एक अविभाज्य विश्व सत्ता का चिंतन करते हुए, सर्वव्यापी, पूर्ण, परम आनंदमय हो, सभी स्थानों को भर दे।

IV-68. विश्व सत्ता के किनारे पर स्थित, आदि और अंत से रहित, प्राचीन अकल्पनीय स्थिति, अकारण है।

IV-69. ज्ञान वहाँ विलीन हो जाता है। यह संदेह की संभावना से परे रहता है। जो व्यक्ति उस तक पहुँच जाता है, वह फिर कभी दुःखों की ओर नहीं लौटता।

IV-70. यह सभी प्राणियों का कारण है, इसका स्वयं कोई कारण नहीं है। वह समस्त सारभूत तत्वों का सार है, उससे अधिक सारभूत कुछ भी नहीं है।

IV-71. बुद्धि के उस विशाल दर्पण में ये सभी विषय-बोध उसी प्रकार प्रतिबिम्बित होते हैं, जैसे झील में किनारे के वृक्ष प्रतिबिम्बित होते हैं।

IV-72. वह आत्मा का शुद्ध अव्यक्त सत्य है; जब उसे जान लिया जाता है, तब मन शान्त हो जाता है।ज्ञान के द्वारा उसके सारतत्व को प्राप्त करके तुम संसार के भय से सचमुच मुक्त हो जाते हो।

IV-73. दुःख के कारणों के लिए मेरे द्वारा बताए गए उपायों के प्रयोग से वह (परम) पद प्राप्त होता है।
IV-74-75. हे सत्य के ज्ञाता! यदि तुम पुरुषार्थ द्वारा बलपूर्वक अव्यक्त संस्कारों का परित्याग कर दो और अपने आपको, अकेले ही, उस अविनाशी पद में, क्षण भर के लिए भी, विश्वसत्ता के शिखर पर स्थापित कर लो, तो ठीक है, तुम इसी क्षण उसे प्राप्त कर लोगे;

IV-76. अथवा, यदि तुम लगनपूर्वक विश्वव्यापी सत्ता की स्थिति का विकास करो, तो वह स्थिति तुम्हें कुछ अधिक प्रयास से प्राप्त होगी।

IV-77. निदाघ, यदि तुम ज्ञान के सिद्धांत पर ध्यान करते रहो, तो (और भी अधिक) प्रयास से तुम उस उच्च स्थिति को प्राप्त करोगे।

IV-78. अथवा, श्रीमान्, यदि तुम अव्यक्त संस्कारों को त्यागने का प्रयास करते हो (जान लो) कि जब तक मन विलीन नहीं हो जाता, तब तक अव्यक्त संस्कार नष्ट नहीं होते।

जब तक मन शांत नहीं होता, तब तक सत्य का ज्ञान नहीं होता, तब तक मानसिक शांति कैसे आ सकती है? जब तक मन शांत नहीं होता, तब तक सत्य को नहीं जाना जा सकता; जब तक सत्य का ज्ञान नहीं होता, तब तक मानसिक शांति कैसे आ सकती है? चतुर्थ-81-82. सत्य का ज्ञान, मन का नाश, गुप्त संस्कारों का नाश - ये सब एक दूसरे के कारण हैं; इनका होना कठिन है। इसलिए भोग की इच्छा को अपने से दूर करके इस त्रिविध का पालन करो। चतुर्थ-83. महात्मन्! बहुत समय से एक साथ प्रयत्न करने पर गुप्त संस्कारों का नाश, सत्य का ज्ञान और मन का नाश, ये तीनों ही सिद्ध होते हैं। चतुर्थ-84. इन तीनों के द्वारा, ठीक से साधना करने पर, हृदय की कठोर गांठें बिना किसी अवशेष के टूट जाती हैं, जैसे कमल के डंठलों को कुचलने पर उनके धागे टूट जाते हैं।

IV-85. सत्य-ज्ञानी जानते हैं कि श्वास-नियंत्रण अव्यक्त संस्कारों के परित्याग के अनुरूप है;इसलिए, श्वास-नियंत्रण द्वारा इसका भी अभ्यास करें।

IV-86. अव्यक्त संस्कारों के परित्याग से मन समाप्त हो जाता है; प्राण के कंपन को रोकने से भी (ऐसा होता है); जैसा आप चाहें वैसा करें।

IV-87. श्वास-नियंत्रण के निरंतर अभ्यास से, गुरु द्वारा सिखाए गए तर्क के अभ्यास से,योग आसनों के अभ्यास से और आहार के नियमन से, श्वास का कंपन बाधित होता है।
IV-88. आसक्ति रहित आचरण से, जन्म (और अनुभवजन्य जीवन) के चिंतन से बचने से और शरीर के पतन की धारणा से, अव्यक्त संस्कार कार्य करना बंद कर देते हैं।

IV-89. प्राण का स्पंदन मन के स्पंदन के समान ही है। बुद्धिमान मनुष्य को प्राण के स्पंदनों पर विजय पाने के लिए कठोर प्रयास करना चाहिए।

IV-90. बिना तर्क के मन को जीतना असंभव है। शुद्ध ज्ञान का आश्रय लेकर और आसक्ति को त्यागकर स्थिर रहो।

IV-91. हे महापुरुष! केवल हृदय में स्थित रहो, विषयों से रहित ज्ञान की प्राचीन, अद्वितीय, अतुलनीय और असंदिग्ध स्थिति का चिन्तन करो; लेकिन शांत ऐश्वर्य की ज्वाला में निष्क्रियता की स्थिति को प्राप्त करके कर्म करो।

IV-92. जिस मनुष्य ने, चाहे थोड़ी सी भी मात्रा में, युक्ति द्वारा अपने मन को मार डाला है, उसने अपने जीवन का उद्देश्य प्राप्त कर लिया है।

V-1. वह व्यक्ति मृत कहलाता है, जिसका मन चलते या खड़े होते समय, जागते या सोते समय अन्वेषण में नहीं लगता।

V-2. आत्मा को सम्यक् ज्ञान के प्रकाश के स्वरूप वाला जानो। वह निर्भय है, न पराधीन है, न उदास है। ज्ञानी जो भी भोजन खाता है, उसे - चाहे वह अशुद्ध हो, अस्वास्थ्यकर हो, विष के सम्पर्क से दूषित हो, अच्छी तरह पका हो या बासी हो, ऐसे पचाता है, जैसे वह 'मीठा' (अर्थात हार्दिक भोजन) हो। ज्ञानी मोक्ष को आसक्ति के त्याग के रूप में जानते हैं, उससे जन्म नहीं होता। विषयों के प्रति आसक्ति छोड़ दो;

हे निष्पाप! जीवन में मुक्त हो जाओ। आसक्ति अशुद्ध संस्कारों को माना जाता है, जो चाही गई वस्तुओं के उपस्थित या अनुपस्थित होने पर हर्ष और आक्रोश जैसी प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करते हैं। जीवन में मुक्त हुए लोगों के शरीर में जो संस्कार निहित है, वह शुद्ध है, जो पुनर्जन्म का कारण नहीं बनता तथा जो उल्लास या अवसाद से अदूषित है। इच्छाओं की दासता को त्यागकर अनासक्त हो जाओ।

V-8. 'देश और काल से अनिर्धारित, 'है' और 'नहीं है' की परिधि से परे, केवल ब्रह्म है,शुद्ध अविनाशी आत्मा, शांत और एक; अन्य कुछ नहीं है'।
V-9. इस प्रकार विचार करते हुए, एक साथ उपस्थित और अनुपस्थित शरीर से, (मुक्त) मौन मनुष्य, एकरस, शांत मन से आत्मा में रमण करते हुए बनो।

V-10. न तो मन है, न मन; न अविद्या है, न जीव। व्यक्त एक ब्रह्म है समुद्र के समान अकेला, जिसका न आदि है, न अंत।

V-11. जब तक मैं-इन्द्रिय शरीर से बंधी रहती है, तब तक मन आदि की भ्रांति बनी रहती है,

विषयों को आत्मा समझ लिया जाता है, तथा ‘यह मेरा है’ के रूप में व्यक्त स्वामित्व की भावना बनी रहती है।

V-12. ऋषिवर! जो व्यक्ति अंतर्मुखता के द्वारा, आत्मा की अग्नि में, इस त्रिविध जगत् रूपी सूखी घास को भीतर से जला देता है, उसके मन आदि की भ्रांति समाप्त हो जाती है।

V-13. मैं आत्मा हूँ, जो आत्मा है; मैं अविभाज्य हूँ। मेरा न तो कोई कारण है, न कोई प्रभाव। अपने विशाल (अनंत) स्वरूप को स्मरण करो; स्मृति के द्वारा, सीमित मत बनो।

V-14. आत्मविज्ञान के मन्त्र के द्वारा, भीतर चिन्तित होकर, तृष्णा रूपी घातक रोग, शरद ऋतु में कोहरे के समान क्षीण हो जाता है।

V-15. (ऋषियों) का मानना है कि ज्ञान के आधार पर अव्यक्त संस्कारों का त्याग, अर्थात् त्याग का सर्वश्रेष्ठ (स्वरूप) त्याग, एकाकीपन की स्थिति है, क्योंकि वह शुद्ध विश्वव्यापी सत्ता है।

V-16. जहाँ अव्यक्त संस्कार समाधान में रहते हैं, वहाँ 'गहरी नींद' होती है; यह पूर्णता नहीं लाती।
जहाँ संस्कार बीजरहित होते हैं, वहाँ 'चतुर्थ' होता है जो पूर्णता प्रदान करता है।

V-17. अव्यक्त संस्कारों, अग्नि, ऋण, रोग, शत्रुता, मोह, शत्रुता और विष का बहुत छोटा अवशेष भी व्यक्ति को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है।

V-18. अव्यक्त संस्कारों के बीजों को भस्म कर देने और विश्वव्यापी सत्ता के अनुरूप हो जाने पर, चाहे शरीर हो या न हो, व्यक्ति को फिर कोई दुःख नहीं होता।

V-19. 'यह ब्रह्म नहीं है' का निर्णय अज्ञान का योग है, जिसका विनाश 'यह ब्रह्म है' (विपरीत) निर्णय में होता है।

V-20. ब्रह्म आत्मा है, ब्रह्म जगत है। ब्रह्म प्राणियों का समूह है, ब्रह्म मैं हूँ, ब्रह्म आत्मा का विरोधी है, ब्रह्म आत्मा का मित्र और मित्र है।

V-21. एक बार यह अनुभव हो जाए कि ब्रह्म ही सब कुछ है, तो मनुष्य वास्तव में ब्रह्म ही है! वह उस सर्वव्यापी आत्मा का अनुभव करता है जो शांति है।

V-22. जब मन, जो अकृत्रिम इन्द्रियों का मार्गदर्शक है, पराये के सम्बन्ध में कार्य करना बन्द कर देता है, तो जो निर्मल, सर्वव्यापी चेतना (जो शेष रहती है), ब्रह्म-बुद्धि, मैं हूँ।

V-23. समस्त अटकलों, समस्त जिज्ञासाओं, समस्त भावनाओं की उग्रता को त्यागकर उस बुद्धिमान आत्मा का आश्रय लो।

V-24. इस प्रकार पूर्ण ज्ञान से युक्त, समचित्त, समस्त आसक्ति से रहित मन वाले बुद्धिमान प्राणी, न तो जीवन की प्रशंसा करते हैं, न ही मृत्यु की निन्दा करते हैं।

V-25-26. हे ब्राह्मण! प्राण में अविराम स्पंदन की शक्ति है; वह सदैव गतिशील रहता है। इस शरीर में, यह ऊपर जाने वाली प्राणवायु ऊपर स्थित है, नीचे की श्वास भी ऐसी ही है, केवल यह नीचे स्थित है।

27. वह सर्वोत्तम श्वास नियंत्रण जो विशेषज्ञ में काम करता है, चाहे वह जाग्रत हो या सोया हुआ - बेहतर होने के लिए उसका (एक) विवरण सुनें।

28. पूरक शरीर का संपर्क है ऊपर की श्वासों के साथ जो बारह अंगुल की चौड़ाई के स्थान से (नासिका से) आगे की ओर बढ़ती हैं।

29. अपान (नीचे की श्वास) वह चंद्रमा है जो शरीर को स्वस्थ रखता है, हे अनुशासित ऋषि! ऊपर की श्वास सूर्य या अग्नि है जो शरीर को आंतरिक रूप से गर्म करती है।

30. नीचे की श्वासों की आध्यात्मिक पहचान का सहारा लें जो उस बिंदु के पास रहती है जहां ऊपर की श्वास कम हो जाती है और नीचे की श्वास बढ़ जाती है।

31. जब श्वास रुक जाए और कुछ क्षण के लिए भी श्वास न उठे, तब उस अध्यात्म-निर्विकार तत्त्व का आश्रय लो।

32. श्वास के रुकने से पहले, जब श्वास रुक जाए और श्वास ऊपर की ओर चली जाए, उस अध्यात्म-निर्विकार तत्त्व का आश्रय लो।

33. ये तीनों लोक केवल आभास हैं, न तो इनका अस्तित्व है और न ही इनका अस्तित्व; बुद्धिमान लोग कहते हैं कि एक-दूसरे से सम्बन्ध का त्याग ही सम्यक् ज्ञान है।

34. हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! यह आभास भी मन के दर्पण से विकृत हो जाता है। अतः इसे भी त्यागकर, सब आभासों से छुटकारा पा लो।

35. स्थिरता के सार के लिए हानिकारक इस मनरूपी भयंकर राक्षस को जड़ से उखाड़कर, जो शेष रह जाए, वही शेष रह जाए।तुम हो; दृढ़ रहो।

V-36. आत्मा जो कारण और प्रभाव से परे है और जिसकी तुलना (असीम) आकाश से की जाती है, किसी भी (वास्तविक) वस्तु द्वारा टकराव में असमर्थ है; यह सभी मानसिक प्रक्रियाओं के अंत में रहता है।

V-37. इच्छा के क्षण में संतुष्टि (अनुभव) उसी इच्छा के कारण होती है। यह संतुष्टि केवल असंतोष (स्थापित होने) तक ही रहती है; इसलिए, इच्छा को अस्वीकार करें।

V-38. इच्छा को इच्छाहीनता में कम करें; अवधारणाओं को समाप्त होने दें; अपने आसक्ति रहित जीवन की प्रक्रिया में मन को मनहीनता में विकसित होने दें।
V-39. इंद्रियों के माध्यम से कार्य करते हुए, आकाश की तरह अव्यक्त आवेगों (बल) से मुक्त होकर, आप एक हजार गड़बड़ी होने पर भी नहीं बदलेंगे।

V-40. मन की सक्रियता और निष्क्रियता के कारण अनुभवजन्य जीवन शुरू होता है और कम होता है। अव्यक्त आवेगों और प्राण के दमन के माध्यम से, मन को निष्क्रियता में कम करें।

V-41. प्राणों की क्रियाशीलता और निष्क्रियता के कारण ही अनुभवजन्य जीवन का आरंभ और अवसान होता है। अभ्यास और प्रयोग के द्वारा उसे निष्क्रिय बनाओ। अज्ञान की क्रियाशीलता और निष्क्रियता के कारण ही क्रियाशीलता आरंभ और अवसान होती है। गुरु और शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त करके उसे (अज्ञान को) बलपूर्वक भंग करो। अनात्मज्ञान के मात्र स्पंदन से

या प्राणों के दमन से मन शून्य हो जाता है, यही परम पद है। ब्रह्म की अनुभूति द्वारा, अचूक रूप से उसी की ओर (आनंद की ओर) उन्मुख होकर, उस वास्तविक आनंद को देखो जो ज्ञेय (ब्रह्म के रूप में) के दर्शन से होता है। यही वह अनात्म आनंद है, जिस तक मन नहीं पहुंचता; यह ह्रास और वृद्धि से मुक्त है; यह न तो उदय होता है, न अस्त।

ज्ञाता के मन को मन नहीं कहते; मन ही आत्मा का सत्य है। अतः चौथी अवस्था में वह उस अवस्था से ऊपर उठ जाता है।

47. समस्त मानसिक रचनाओं का त्याग करके, समभाव से, शान्त मन से, संन्यास योग से युक्त, ज्ञान और मुक्ति दोनों से युक्त, मुनि बनो।

48. परम ब्रह्म वह है जो किसी भी प्रकार के चिन्तन के अनुकूल नहीं होता। (वही शेष रहता है) जब मानसिक क्रियाएँ पूर्णतः समाप्त हो जाती हैं और सभी अव्यक्त आवेगों का परित्याग हो जाता है।

49. सम्यक् ज्ञान प्राप्त करके, तथा सतत एकाग्रता द्वारा जो उपनिषदों के ज्ञान में प्रकाशित हो जाते हैं, वे सांख्य हैं और अन्य लोग योगी हैं।

50. वे योगी हैं, जो योग में पारंगत हैं, जो तप साधना द्वारा श्वासों की शान्त अवस्था के पश्चात, दुःखों से ऊपर, अनादि और अनन्त स्थिति को प्राप्त करते हैं।

51. सभी को जो प्राप्त करना आवश्यक है, वह है अकारण और स्थिर स्थिति; एक अपरिवर्तनशील सत्य का चिंतन, श्वासों का संयम, मन का क्षीण होना।

V-52. जब उनमें से एक सिद्ध हो जाता है, तो वह अन्य को भी सिद्ध करने में सहायता करता है। जीवों के प्राण और मन सभी सहवर्ती हैं।

V-53. पात्र और विषयवस्तु की भाँति वे भी एक के उपस्थित होने पर नष्ट हो जाते हैं। आत्म-विनाश द्वारा वे उस श्रेष्ठतम उत्पाद को उत्पन्न करते हैं, अर्थात् मोक्ष।

V-54. यदि तुम स्थिर रहकर समझ द्वारा इन सबका त्याग कर दोगे, तो मैं-भाव के समाप्त हो जाने पर तुम स्वयं परमपद हो।

V-55. केवल एक महान आत्मा है, जिसे सत्ता कहते हैं; वह दोषरहित, सम, शुद्ध, मैं-भाव से रहित है।

V-56. वह केवल एक बार चमकता है, शुद्ध, सदा उदित, एक ही। उसे अनेक नामों से वर्णित किया गया है, जैसे
ब्रह्म, परम आत्मा, आदि।

V-57. हे निदाघ! सृष्टि के लिए 'मैं वही हूँ' को जानते हुए, जो करना था, उसे करके, मैं कभी भूत या भविष्य के बारे में नहीं सोचता। 58. मैं पूरी तरह से उस दृष्टि से जुड़ा रहता हूँ जो यहाँ (और अभी) मौजूद है। 'मैंने आज यह जीत लिया है; मैं इस सुंदर (चीज) को प्राप्त करूँगा।' 59. मैं प्रशंसा नहीं करता, न ही मैं निंदा करता हूँ। आत्मा के अलावा कुछ भी कहीं नहीं है। अच्छाई की प्राप्ति मुझे खुश नहीं करती, बुराई मेरे पास आने से मुझे दुख नहीं होता।

60. हे मुनि! मेरे मन की व्याकुलताएँ पूर्णतया शान्त हो गई हैं; यह सब दुःखों की जड़ है। यह सब अभावों से मुक्त हो गया है। यह शान्त है। अतः मैं स्वस्थ हूँ, तथा बंधन-मुक्त हूँ।

61. 'यह मित्र है, वह शत्रु है; यह मन है, वह पराया है' - हे ब्राह्मण! ऐसा ज्ञान मुझे नहीं होता; मुझे कोई स्नेह नहीं छूता।

62. समस्त गुप्त संस्कारों से मुक्त होकर मन बुढ़ापे और मृत्यु से मुक्त हो जाता है। अपने में निहित गुप्त संस्कारों वाला मन ही ज्ञान है। जो जानना है, वह समस्त गुप्त संस्कारों से मुक्त मन है।

63. जब मन का त्याग हो जाता है, तो सभी ओर का यह द्वैत विलीन हो जाता है; परन्तु वही शांत परम एक, शुद्ध और बंधन-मुक्त रहता है। 64. अनंत, अजन्मा, अप्रकट, अजर, शांत, अव्यय, अद्वैत, अनादि और अनंत जो (फिर भी) प्रथम बोध है।

V-65. एक, आदि और अंत से रहित, पूर्णतया आत्मा, शुद्ध, व्यापक, आकाश से भी अधिक सूक्ष्म; तू निस्संदेह वह ब्रह्म है।

V-66. देश, काल आदि से अनिर्धारित; अति शुद्ध, सदा उत्पन्न, सर्वव्यापी, यह एक अंत ही सब कुछ है; तू वही शुद्ध आत्मा हो।

V-67. 'सब कुछ यह शांत एक है, आदि, मध्य और अंत से रहित। सब कुछ अजन्मा है, सत्ता और अ सत्ता दोनों' - ऐसा विचार करके, सुखी हो।

V-68. मैं न तो बंधा हूँ, न मुक्त। मैं वास्तव में बंधनरहित ब्रह्म हूं। मैं द्वैत से मुक्त हूँ। मैं सत्ता, बुद्धि, आनंद हूं।

V-69. विषयों की भीड़ को दूर रखकर, सदैव आत्मा में समर्पित रहो, तुम्हारा मन शांत हो।

70. 'यह ठीक है, यह ठीक नहीं है! - ऐसी भावना तुम्हारे विस्तारित दुःख का बीज है। जब वह निष्पक्षता की अग्नि में जल जाती है, तो दुःख का अवसर ही कहाँ रहता है?

71. पहले शास्त्रों के ज्ञान से और संतों की संगति करके ज्ञान बढ़ाओ।

72. सच्चा, वास्तविक और परम ब्रह्म, अति शुद्ध, सनातन, आदि और अंत से रहित, सभी प्रकार के देहान्तरण का उपाय है।

73. इसी प्रकार वह न तो स्थूल है, न ही स्थानबद्ध; न मूर्त है, न दृश्य; वह स्वादहीन और गंधहीन है; अज्ञेय और अद्वितीय है।

74. सुसंयमित (ऋषि)! मोक्ष प्राप्ति के लिए, मनुष्य को उस अशरीरी आत्मा का ध्यान करना चाहिए जो ब्रह्म है - जो अनंत चेतना और आनंद है - 'मैं (वह) हूं'।

V-75. एकाग्रता से ही परमात्मा और जीव की एकता के संबंध में ज्ञान की उत्पत्ति होती है। आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, अपरिवर्तनीय और दोषरहित है।

V-76. एक होने पर भी माया के द्वारा विभाजित हो जाती है, अपने सार में नहीं। इसलिए केवल अद्वैत ही है, कोई अनेकता नहीं, कोई अनुभवजन्य जीवन नहीं है।

V-77. जैसे अंतरिक्ष को 'पॉट-स्पेस' और 'महास्पेस' कहा जाता है, वैसे ही मोह के कारण आत्मा को दो तरह से जीव और ईश्वर कहा जाता है।

V-78. जब सर्वव्यापी आत्मा योगी के मन में बिना रुके हमेशा चमकती रहती है, तब वह स्वयं ही स्वयं बन जाता है।

V-79. वास्तव में, जब कोई अपनी आत्मा में सभी प्राणियों को और सभी प्राणियों में अपनी आत्मा को देखता है, तो वह ब्रह्म बन जाता है।

V-80. एकाग्रता की अवस्था में, परम पुरुष से युक्त होकर, मनुष्य किसी भी प्राणी को नहीं देखता; तब वह अकेला होता है।

V-81. पहला स्तर, मोक्ष की इच्छा उत्पन्न करने वाला, शास्त्रों के साथ घनिष्ठता और पवित्र लोगों की संगति के कारण अभ्यास (अनुशासन) और वैराग्य द्वारा चिह्नित है।

V-82. दूसरा स्तर अन्वेषण द्वारा चिह्नित है; तीसरा स्तर (सभी) इसके सहायक उपकरणों के साथ चिंतन द्वारा चिह्नित है; चौथा स्तर विलायक है क्योंकि इसमें अव्यक्त संस्कारों का विलयन होता है।

V-83. पांचवां स्तर आनंदमय है; यह विशुद्ध रूप से संज्ञानात्मक है। यह जीवन-मुक्त व्यक्ति का स्थान है, जो आधा जागा हुआ और आधा सोया हुआ है।

V-84. छठा स्तर गैर-संज्ञानात्मक है। यह गहरी नींद के समान है, जिसमें शुद्ध प्रकृति है और विशाल आनंद।
V-85. सातवाँ स्तर समता, पूर्ण शुद्धता, कोमलता से चिह्नित है; यह वास्तव में बिना किसी शर्त के मुक्ति है, शांत चौथी अवस्था है।

V-86. चौथे से परे पारलौकिक अवस्था, अपने सार में निर्वाण, पारलौकिक और विकसित सातवाँ स्तर है; यह नश्वर के दायरे में नहीं आता है।

V-87. पहले तीन जाग्रत जीवन का गठन करते हैं; चौथे को स्वप्न (अवस्था) कहा जाता है जहाँ दुनिया दुर्भाग्य से स्वप्न जैसी होती है।

V-88. पाँचवाँ, जो विशाल आनंद के अनुरूप है, गहरी नींद कहलाता है। इसके विपरीत छठा जो गैर संज्ञानात्मक है उसे चौथी अवस्था कहा जाता है।

V-89. सबसे उत्कृष्ट सातवाँ स्तर चौथे से परे की अवस्था है, मन और शब्दों की सीमा से परे, और आत्म-प्रकाशमान सत्ता के साथ पहचाना जाता है।

V-90. यदि ज्ञानेन्द्रियों के अपने में लीन हो जाने के कारण कोई भी वस्तु दिखाई न दे, तो उस महान् एकरूपता (दृष्टि) के द्वारा मनुष्य अवश्य ही मुक्त हो जाता है।

वि-91. 'मैं न मरता हूँ, न जीता हूँ; मैं मुख्यतः अस्तित्वहीन होने के कारण अस्तित्व में भी नहीं हूँ। 'मैं आत्मा के अतिरिक्त कुछ नहीं हूँ', ऐसा सोचकर बुद्धिमान जीवन्मुक्त को शोक नहीं होता।

वि-92. 'मैं निष्कलंक हूँ, अजर-अमर हूँ, मेरे सभी भाव शांत हो गए हैं। मैं अखण्ड आत्मा-आकाश हूँ', ऐसा सोचकर उसे शोक नहीं होता।

वि-93. 'मैं-इन्द्रिय से रहित, शुद्ध, जागृत, अजर-अमर, अमर, शान्त हूँ, मेरे लिए सभी दृश्य शांत हो गए हैं', ऐसा सोचकर उसे शोक नहीं होता।

वि-94. 'मैं उनसे एक हूँ जो घास की नोकों पर, आकाश में, सूर्य में, मनुष्य में, पर्वत में और देवताओं में निवास करता है', ऐसा विचार करके वह दुःखी नहीं होता।

V-95. विषयों के विषय में सभी मानसिक निर्माणों को त्यागकर, उनसे बहुत ऊपर उठकर, 'मैं, मुक्त, वह परम ब्रह्म हूँ जो शेष है' इस विचार पर ध्यान लगाओ।

V-96. शब्दों के दायरे से परे, विषयों की लालसा की दुविधा से मुक्त, जलवायु के आनंद के स्वाद से भी अप्रभावित, वह स्वयं आत्मा में आनंदित होता है।

V-97. सभी कर्मों का त्याग करके, हमेशा संतुष्ट, स्वतंत्र, न तो पुण्य से, न पाप से, न किसी और चीज से।

V-98. जैसे दर्पण प्रतिबिंबों से दागदार नहीं होता, वैसे ही ज्ञानी भी कर्मों के फलों से दागदार नहीं होता।

V-99. वह जनसमूह के बीच स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करता है, तथा जब उसके शरीर को यातना दी जाती है अथवा सम्मानित किया जाता है, तो उसे न तो पीड़ा का अनुभव होता है, न ही सुख का, मानो ये सब उसके मन के विचारों के लिए निर्देशित हैं।

V-100. स्तुति और परिवर्तन से परे, न तो पूजा को पहचानता है, न ही उसके उद्देश्य को, एक साथ सभी शिष्टाचार के नियमों का पालन करता है और उदासीन रहता है,

V-101. उसे अपने शरीर को या तो किसी पवित्र स्थान पर अथवा कुत्ते का मांस खाने वाले की झोपड़ी में त्याग देना चाहिए: एक बार ज्ञान प्राप्त हो जाने पर, वह ब्रहम का ज्ञानी बन जाता है, कर्म के सभी अव्यक्त संस्कारों से मुक्त हो जाता है।

V-102. बंधन का कारण मानसिक रचना है; उसका त्याग कर दो। मानसिक रचना के अभाव से मुक्ति मिलती है; इसका बुद्धिमानी से अभ्यास करो।

V-103. विषयों, इन्द्रियों और उनके सम्पर्क के संदर्भ में मानसिक रचना की अवस्थाओं से सावधान, सतत और स्थिर रूप से बचते हुए।

V-104. विषयों के आगे न झुको; इन्द्रियों के साथ तादात्म्य न करो। सभी निर्माणों को त्यागकर, जो शेष है, उसके साथ तादात्म्य करो। यदि तुम्हें कुछ भी अच्छा लगता है, तो तुम अनुभवजन्य जीवन में बंधन की स्थिति में हो; यदि तुम्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता, तो तुम यहीं मुक्त हो। घास आदि से लेकर जीवित शरीरों तक, गतिशील और स्थिर वस्तुओं की भीड़ में, ऐसा कुछ भी न हो, जो तुम्हें सुख दे। मैं-इन्द्रिय और उसके निषेध के अभाव में, जो एक साथ विद्यमान और अविद्यमान है, जो अनासक्त, स्वयं-समान, अतिशय शुद्ध और स्थिर रहता है, उसे चतुर्थ कहा जाता है। वह अतिशय शुद्ध एकरूपता, जीवन-मुक्ति की निष्क्रिय स्थिति,दर्शक को, अनुभवजन्य प्रयोग में, चौथी अवस्था कहा जाता है।

V-109. यह न तो जाग्रत अवस्था है, न स्वप्न, क्योंकि इसमें मानसिक निर्माणों के लिए कोई स्थान नहीं है। न ही यह गहरी नींद की अवस्था है, क्योंकि इसमें कोई जड़ता शामिल नहीं है।

V-110. यह संसार जैसा है, विलीन हो जाता है, और तब यह उन लोगों के लिए चौथी अवस्था है जो शांत हो गए हैं और ठीक से जागृत हैं; अजागृत लोगों के लिए यह अपरिवर्तित रहता है (जैसा कि यह अपनी बहुलता में है)।

V-111. जब मैं-इन्द्रिय का पहलू त्याग दिया जाता है, और समता हावी हो जाती है, और मन विघटित हो जाता है, तब चौथी अवस्था आती है।

V-112. वस्तुनिष्ठ अनेकता का खंडन आत्मा को स्थापित करने वाले शास्त्रों का सिद्धांत है।
यहां न तो अविद्या है और न ही माया; यह शांत ब्रह्म है, जो थका नहीं है।

V-113. आत्मा के निर्मल आकाश में, जिसे ब्रह्म कहते हैं, मनुष्य अवश्य ही शांत हो जाता है। जिसका सार शांति और समता है, तथा जो सभी शक्तियों से देदीप्यमान है।

V-114. हे निष्पाप, सब कुछ त्यागकर, अपार मौन में लीन हो जाओ। निर्वाण में लीन हो जाओ, तर्क-वितर्क से ऊपर उठ जाओ, मन क्षीण हो जाए और बुद्धि शांत हो जाए।

V-115. शांत मन से आत्मा में निवास करो, जैसे कोई गूंगा, अंधा और बहरा हो; सदा अंतर्मुखी, परम शुद्ध, भरपूर आंतरिक ज्ञान से युक्त।

V-116. हे द्विजों, जागृत अवस्था में ही गहन निद्रा में रहकर कर्म करो। भीतर से सब कुछ त्यागकर, अवसर आने पर बाह्य रूप से कर्म करो।

V-117. मन का होना ही दुख है, मन का त्याग ही आनंद है। इसलिए विषयों के अज्ञान के द्वारा मन को आत्मा के आकाश में क्षीण करो।
V-118. सुन्दर और कुरूप दोनों को पत्थर की तरह अविचलित देखकर - इस प्रकार अपने ही प्रयास से अनुभवजन्य सत्ता पर विजय प्राप्त होती है।

119. वेदान्त में जो छिपा है, जो अतीत में सिखाया गया है, उसे उस व्यक्ति को नहीं देना चाहिए जो शांत नहीं है, न ही उसे जो पुत्र या शिष्य नहीं है।

120. जो व्यक्ति अपने गुरु के आशीर्वाद से अन्नपूर्णोपनिषद् का अध्ययन करता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है और स्वयं ही पूर्ण ब्रह्म हो जाता है - यह उपनिषद् है। ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ बातें सुनें; हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ बातें देखें! हम देवों द्वारा दिए गए जीवन की अवधि का आनंद लें, अपने शरीर और अंगों को स्थिर करके उनकी स्तुति करें! हम पराक्रमी इन्द्र कृपा करें! हम पराक्रमी सूर्य कृपा करें! हम पराक्रमी गरुड़ कृपा करें! बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!ॐ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

अथर्ववेद में निहित अन्नपूर्णोपनिषद यहीं समाप्त होता है।

071 - सूर्य उपनिषद

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रभु इन्द्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

अब हम सूर्य के संबंध में अथर्वंगीरस की व्याख्या करेंगे: द्रष्टा ब्रह्मा हैं, छन्द गायत्री, आदित्य देवता, 'हंसस सोऽहम् अग्नि और नारायण बीज हैं, शक्ति हृल्लेख या ह्रीं है, पिन आकाश को खोलने की प्रक्रिया में शक्ति है आदि, प्रयोग चार मानव लक्ष्यों को जीतने के लिए पुनरावृत्ति में इसका उपयोग है। छह अंग बीज से मिलकर बने हैं जिसमें छह स्वर जोड़े गए हैं। वह वास्तव में एक ब्राह्मण है जो इस प्रकार धन्य सूर्य के साथ स्वर्ण

नारायण को जानता है, समय-चक्र का प्रवर्तक, चार भुजाओं और दो कमलों वाला, शरण और वरदान का वादा दिखाने वाला, लाल कमल में स्थापित सूर्य रथ पर सवार है।

ॐ, पृथ्वी, मध्य क्षेत्र और आकाश; हम सविता के आराध्य वैभव का ध्यान करते हैं जो हमारे विचारों को प्रेरित कर सकता है। सूर्य संसार का स्व है, चल और अचल दोनों। सूर्य से ही ये जीव उत्पन्न होते हैं, यज्ञ, पर्जन्य, अन्न और आत्मा। मैं आपको नमन करता हूँ आदित्य; आप स्वयं कर्ता हैं, प्रकट ब्रहम, रुद्र, विष्णु, ऋग्वेद आदि तथा सभी छन्द (मात्रवेद) हैं। आदित्य से वायु, भूमि, जल, अग्नि, आकाश, दिशाएँ, देवता, वेद उत्पन्न होते हैं; सूर्य इस क्षेत्र को तपता है; यह सूर्य ब्रहम है, अन्तःकरण, मन, बुद्धि, मनःस्थिति तथा अहंकार, प्राण आदि (पाँच वायु), पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध; वाणी, ग्रहण,(हाथों से) मल त्याग, आनन्द।
मैं मित्रा, भानु (मृत्यु से मेरी रक्षा करें), तेजोमय, जगत के कारण को प्रणाम करता हूँ।

सभी प्राणी सूर्य से उत्पन्न होते हैं और उन्हीं से रक्षित होते हैं, उन्हीं में विलीन हो जाते हैं - मैं स्वयं सूर्य हूँ।दिव्य सविता हमारी आँख है, पर्वत (काल-काल की आत्मा), हमारी आँख की रक्षा करें।हम सूर्य को जानते हैं, सहस्त्र किरणों वाले सूर्य का ध्यान करते हैं; सूर्य हमें प्रेरणा दें।सविता हमारे आगे भी है, पीछे भी, ऊपर भी, नीचे भी। वे हमें सर्वव्यापकता और दीर्घायु प्रदान करें!
ब्रहम एक अक्षर वाला ॐ है, 'घृणी' में दो अक्षर हैं, 'सूर्य' में भी, 'आदित्य' में तीन अक्षर हैं। यह आठ अक्षरों वाला मंत्र है।

जो प्रतिदिन इसका जप करता है, वह ब्राहमण है, जप करते समय सूर्य की ओर मुख करके वह महान रोगों के भय से मुक्त हो जाता है, उसकी दरिद्रता नष्ट हो जाती है। वह निषिद्ध भोजन, निषिद्ध मैथुन, पतित (पुरुषों) से वार्तालाप, गलत वार्तालाप के पापों से मुक्त हो जाता है। मध्यान्ह के समय सूर्य की ओर मुख करके जप करने से वह पाँच महापापों से मुक्त हो जाता है। उसे यह सावित्री विद्या किसी को भी नहीं देनी चाहिए। जो भोर में जप करता है, वह सौभाग्यशाली होता है, उसे पशुधन प्राप्त होता है, वेदों में निपुणता प्राप्त होती है; तीनों काल (भोर आदि) में जप करने से उसे सौ यज्ञों का फल मिलता है, सूर्य के अठारह अंगुल तक उदय होने पर जप करने से मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है। यह उपनिषद् है।

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ बातें सुनें; हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ बातें देखें! हम देवों द्वारा निर्धारित जीवन की अवधि का आनंद लें, अपने शरीर और अंगों को स्थिर करके उनकी स्तुति करें! हम पराक्रमी इंद्र की कृपा हो! हम पराक्रमी सूर्य की कृपा हो! बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें! बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें! ओम! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ अथर्ववेद में शामिल सूर्योपनिषद समाप्त होता है

<u>072 - अक्षि उपनिषद</u>

ओम! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;
हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,
हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;
हम एक दूसरे से विवाद न करें (या हम किसी से द्वेष न करें)।
ओम! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!
भाग-I
तब धन्य संकृति सूर्यलोक में चली गईं। सूर्य को नमन करते हुए उन्होंने ज्ञानियों के विज्ञान के माध्यम से सूर्य की महिमा की:
ओम, धन्य भगवान, तेजस्वी सूर्य, नेत्र की शक्ति को नमस्कार।
ओम, आकाश-भटकने वाले को नमस्कार।
ओम, सेना के सेनापति (प्रकाश की) को नमस्कार।
ओम, अंधकार (प्रकाश की अधिकता) को नमस्कार।
ओम, ऊर्जा को नमस्कार।
ओम, प्रकाश को नमस्कार।

मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो; मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो; मुझे मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो। पवित्रता के सार से, धन्य

एक (पापियों के पापों) को जलाता है। पवित्रता के सार से धन्य हंस, प्रोटोटाइप (बद्ध आत्मा, जीव का) है। यहाँ सूर्य उगता है, हजार किरणों वाला, असंख्य तरीकों से विद्यमान, सभी चेतन प्राणियों का जीवन। (मैं उसका ध्यान करता हूँ) जो) सर्वव्यापी, दयालु, सर्वज्ञ, अमृतमय, प्रकाश के सार का, झुलसाने वाला है।

ॐ, धन्य भगवान सूर्य, अनंत की संतान, आंख की शक्ति को नमस्कार। दिनों की बाढ़! बाढ़!! सभी को नमस्कार! इस प्रकार ज्ञानी के विज्ञान के माध्यम से महिमामंडित सूर्य-रूपी भगवान अत्यधिक संतुष्ट हुए। उन्होंने कहा: जो भी ब्राह्मण बिना रुके इस ज्ञानी के विज्ञान का अध्ययन करता है, वह कभी भी संकुचित नहीं होता।

1. तब संकृति ने सूर्य से कहा: हे प्रभु, मुझे ब्रह्मविद्या सिखाइए। सूर्य ने कहा: संकृति, सुनिए। मैं आपको ब्रह्मविद्या का ज्ञान देता हूँ, जो बहुत कठिन है; जिसके ज्ञान से ही आप शरीर में रहते हुए मुक्त हो जाएँगे।

2. सब एक है, अजन्मा है, शांत है, अनंत है, निश्चित है, अपरिवर्तनीय है। ब्रह्म को आत्मा के रूप में देखें; शांत और सहज रहें।

3. (सिद्ध) लोग योग को अज्ञान (अनेकता का), विषय-साधक मन का स्वतःस्फूर्त क्षय जानते हैं। योग में स्थित होकर कर्म करो, अथवा (सभी कर्मों से विमुख होकर) उन्हें बिल्कुल न करो।

4. जन्मजात प्रवृत्तियों (कार्य करने) से प्रतिदिन विमुखता अनुभव होती है; फिर भी, मनुष्य उत्साहपूर्वक श्रेष्ठ कर्मों में लग जाता है।

5-6. मनुष्य सदैव अजन्मे लोगों के सहज कर्मों के विषय में संकोच करता है; वह कभी दूसरों के लिए संकट उत्पन्न करने वाली बातों की ओर ध्यान नहीं देता, बल्कि उनके धर्माचरण पर ध्यान देता है। वह ऐसे कोमल कर्म करता है, जिनसे किसी को कष्ट न हो; वह सदैव पाप से डरता है और सभी प्रकार की इंद्रिय-तृप्ति से दूर रहता है।

7. ऐसे मनुष्य की वाणी स्नेह और प्रेम से युक्त होती है; वह समय और स्थान के अनुसार सुन्दर और उपयुक्त होती है।

8. उचित विचार, कर्म और वाणी से मनुष्य पुण्यात्माओं की प्रतीक्षा करता है। उन्हें सभी कल्पनीय स्रोतों से प्राप्त करके, मनुष्य शास्त्रों का अध्ययन करता है।

9-10(क)। तब मनुष्य योग की प्रथम अवस्था को प्राप्त होता है। जो व्यक्ति भवसागर से पार जाने के संबंध में ऐसा विचार करता है, उसे योग की अवस्था प्राप्त हुई कही जाती है। शेष सभी को केवल 'श्रेष्ठ' (आर्य) कहा जाता है।

10(ख)-11. योग के अगले चरण में, जिसे 'विश्लेषण' (विचार) कहा जाता है, साधक उन अग्रणी विद्वानों की शरण लेता है, जो श्रुति और स्मृति की गंभीर व्याख्या, अच्छे आचरण, स्थिर ध्यान, चिंतन और गतिविधियों के लिए जाने जाते हैं।

12. जैसे एक गृहस्थ अपने गृहस्थ को जानता है, वैसे ही, जो कुछ सीखना है, उसे सीखकर, साधक को क्या करना है और क्या नहीं करना है, इसके संबंध में श्रेणियाँ और सिद्धांत पता चल जाते हैं।

13. जैसे साँप अपने केंचुल को त्याग देता है, वैसे ही वह अभिमान, दंभ, असहिष्णुता, लोभ और मोह से तीव्र होने पर बाह्य वस्तुओं के प्रति थोड़ी सी आसक्ति भी त्याग देता है।

14. शास्त्रों, गुरु और पुण्यात्माओं की संगति के माध्यम से अनुशासित मन से, वह गुप्त सिद्धांतों सहित ज्ञान के पूरे शरीर पर सच्चाई से अधिकार कर लेता है।

15. जैसे प्रेमी फूलों की बेदाग सेज पर लेटता है, वैसे ही दूसरी से वह (साधक) वैराग्य नामक तीसरी अवस्था में पहुँचता है।

16-17. शास्त्रों के सत्यार्थ पर मन को स्थिर करके तथा तपस्वियों के आश्रमों के अनुरूप आध्यात्मिक ग्रंथों के पाठ में व्यस्त होकर वह अपना दीर्घ जीवन पत्थर या शिला की सेज पर बैठकर तथा अपने शांत मन से सुन्दर बनाए हुए वन में विहार करके व्यतीत करता है।

18. अपने पुण्य कर्मों के फलस्वरूप धर्मात्मा (साधक) वैराग्य के आनंद में अपना समय व्यतीत करता है, तथा बार-बार सकारात्मक शास्त्रों का अध्ययन करता है।

19. वास्तविकता की अनुभूति समय आने पर ही स्पष्ट होती है। ज्ञानी व्यक्ति तीसरी अवस्था में पहुँचकर स्वयं इसका अनुभव करता है।

20. वैराग्य दो प्रकार का होता है: भेद को जैसे-जैसे खींचा जाता है, वैसे-वैसे सुनता है। यह अनासक्ति दो प्रकार की होती है, एक सामान्य और दूसरी श्रेष्ठ।

21. सामान्य अनासक्ति वस्तुओं में आसक्ति न होना है, (इस धारणा पर आधारित) कि 'मैं न तो कर्ता हूँ, न भोक्ता, न परवर्ती, न परवर्ती।'

22. 'सब कुछ, चाहे वह सुख हो या दुख, पूर्व कर्मों से निर्मित है; अथवा, सब कुछ भगवान के अधीन है। मैं इसके संबंध में कुछ नहीं करता।'

23. 'भोग और अभोग भयंकर रोग हैं; संपत्ति महान विपत्तियाँ हैं। सभी संपर्क केवल अलगाव को बढ़ावा दें। दुख विचारों के रोग हैं।

24. 'काल निरंतर सभी चीजों को आकार दे रहा है' - इसलिए (साधक) की सामान्य अनासक्ति, जिसने (प्रमुख ग्रंथों) के अर्थ को समझ लिया है, सभी चीजों से विमुख होने और मानसिक रूप से उन पर ध्यान न देने में निहित है।

25-26. इस क्रम (चरणों) की खेती करने से, उदार (साधकों) के मामले में श्रेष्ठ अनासक्ति उत्पन्न होती है। इसे मौन, विश्राम और शांति कहा जाता है। क्योंकि वाणी और अर्थ सत्य के प्रकाश में बहुत दूर फेंक दिए गए हैं, 'मैं कोई कर्ता नहीं हूँ; कर्ता ईश्वर या मेरे अपने पूर्व कर्म हैं।'

27. पहली अवस्था जो होती है, वह संतुष्टि और आनंद (के कारण) मधुर होती है। साधक (पुमन) अभी-अभी अवस्थाओं के क्रम में कदम रखता है। पहली अवस्था एक अमृत अंकुर है।

28. प्रथम अवस्था अन्य अवस्थाओं का आंतरिक, शुद्ध, जन्मस्थान है। तत्पश्चात् मनुष्य द्वितीय और तृतीय अवस्थाओं को प्राप्त करता है।

29. इनमें सर्वव्यापी तृतीय अवस्था श्रेष्ठ है। यहाँ साधक कल्पना करने (और फँसने) की प्रवृत्ति से मुक्त हो जाता है।

30. तीनों अवस्थाओं के अभ्यास से अविद्या के क्षय होने पर जो लोग चतुर्थ अवस्था में पहुँचते हैं, वे सभी वस्तुओं को एक दृष्टि से देखते हैं।

31. जब अद्वैत की स्थापना हो जाती है और द्वैत का विलय हो जाता है, तब जो लोग चतुर्थ अवस्था में पहुँच जाते हैं, वे इस जगत् को स्वप्न के समान देखते हैं।

32. प्रथम तीन अवस्थाएँ जाग्रत अवस्था कहलाती हैं, चतुर्थ अवस्था स्वप्न अवस्था कहलाती है। और मन शरद ऋतु के बादल के टुकड़ों की भाँति विलीन हो जाता है।

33. जो पाँचवीं अवस्था में पहुँच जाता है, वह केवल अस्तित्व के रूप में जीवित रहता है। इस अवस्था में मन के विलय के कारण जगत्-विविधता प्रकट ही नहीं होती।

34. पांचवी अवस्था जिसे 'गहरी नींद' कहते हैं, में पहुंचकर साधक शुद्ध अद्वैत स्वरूप रहता है, सभी विशेषण पूर्णतः लुप्त हो जाते हैं।

35. पांचवी अवस्था में पहुंचकर साधक गहरी नींद में स्थिर, आनंदित, आंतरिक रूप से जागृत रहता है, सभी द्वैत भाव समाप्त हो जाते हैं।

36. भीतर की ओर देखते हुए, यहां तक कि बाहरी चीजों पर ध्यान देते हुए भी, वह हमेशा अंतर्मुखी प्रतीत होता है, अत्यंत थका हुआ।

37. इस पांचवी अवस्था में अभ्यास करते हुए, सभी जन्मजात आवेगों से मुक्त होकर, साधक स्वाभाविक रूप से छठी अवस्था जिसे 'चौथी' कहते हैं, में पहुंच जाता है।

38. जहां न तो अस्तित्व है, न अस्तित्व है, न 'मैं' है, न 'अ-मैं' है, जहां सभी विश्लेषणात्मक सोच समाप्त हो जाती है, वहां व्यक्ति अकेला, पूरी तरह से निर्भय, अद्वैत में रहता है।

39. ग्रन्थियों से परे, सब संशय रहित, जीवन्मुक्त, कल्पनाशून्य, अशान्त होते हुए भी बुझ गया हुआ, वह चित्रित ज्वाला के समान है।

40. छठी अवस्था में वास करके वह सातवीं अवस्था को प्राप्त होगा। देह-मुक्ति की अवस्था को योग की सातवीं अवस्था कहते हैं।

41-42(क)। यह सब अवस्थाओं की पराकाष्ठा है, शब्दों से परे, निश्चल। संसार के आचरणों और शरीर के आचरणों से बचकर, शास्त्रों के आचरण से बचकर, आत्मा पर आरोपित सब बंधनों से छुटकारा पाओ।

42(ख)। यहाँ जो कुछ है, विश्व, प्रज्ञा आदि, वह सब ॐ के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

43. क्योंकि अर्थ और अभिव्यक्ति में कोई भेद नहीं है, और क्योंकि एक दूसरे से पृथक होने के कारण इनमें से कोई भी ज्ञात नहीं है, इसलिए विश्व केवल 'अ' अक्षर है और 'उ' को तैजस कहा गया है।

44. प्रज्ञा अक्षर 'म' है। इस प्रकार, समाधि लगने से पहले, बड़े प्रयत्न से विवेक करते हुए, क्रम से जानो।

45-46. इस उचित क्रम में, स्थूल और सूक्ष्म सभी को आत्मिक आत्मा में लीन कर देना चाहिए और आत्मिक आत्मा को 'मैं ही वासुदेव, सदा शुद्ध, जाग्रत, मुक्त, विद्यमान, अद्वैतमय और परमानंद हूँ' यह अनुभव करते हुए (लीन हो जाना चाहिए) क्योंकि यह सब (वस्तुगत जगत) आदि, मध्य और अन्त में दुःख है।

47-48. इसलिए, हे निष्पाप पुरुष, सब कुछ त्यागकर, सत्य में समर्पित हो जाओ। विचार करो: मैं ब्रह्म हूँ,ठोस बुद्धि और आनंद, अशुद्धता से मुक्त, पवित्र, मन और शब्दों से ऊपर, अज्ञान के अंधेरे से परे, सभी दिखावे से परे। यह गुप्त सिद्धांत है।ओम! वह हम दोनों की एक साथ रक्षा करे; वह हम दोनों का एक साथ पोषण करे;हम महान ऊर्जा के साथ मिलकर काम करें,हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से नफरत न करें)।ओम! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर काम करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ कृष्ण-यजुर-वेद से संबंधित अक्ष्युपनिषद समाप्त होता है

<u>073 - अध्यात्म उपनिषद</u>

ओम! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है।
अनंत अनंत से ही निकलता है।
(तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर,
यह अनंत (ब्रह्म) ही रह जाता है।
ओम! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर काम करने वाली शक्तियों में शांति हो!
शरीर की गुफा में वह अजन्मा सदा से स्थित है।

पृथ्वी उसका शरीर है। (यद्यपि) पृथ्वी के भीतर घूमती हुई भी पृथ्वी उसे नहीं जानती।
जल उसका शरीर है। (यद्यपि) जल के भीतर घूमती हुई भी जल उसे नहीं जानता।
अग्नि उसका शरीर है। (यद्यपि) अग्नि के भीतर घूमती हुई भी अग्नि उसे नहीं जानती।
वायु उसका शरीर है। (यद्यपि) वायु के भीतर घूमती हुई भी वायु उसे नहीं जानती।
आकाश उसका शरीर है। (यद्यपि) आकाश के भीतर घूमती हुई भी आकाश उसे नहीं जानता।

मन ही उसका शरीर है। यद्यपि वह मन के भीतर घूमता है, परन्तु मन उसे नहीं जानता। बुद्धि ही उसका शरीर है। यद्यपि वह बुद्धि के भीतर घूमता है, परन्तु बुद्धि उसे नहीं जानती। अहंकार ही उसका शरीर है। यद्यपि वह अहंकार के भीतर घूमता है, परन्तु अहंकार उसे नहीं जानता। मन-पदार्थ उसका शरीर है। यद्यपि वह मन-पदार्थ के भीतर घूमता है, परन्तु मन-पदार्थ उसे नहीं जानता। अव्यक्त ही उसका शरीर है। यद्यपि वह अव्यक्त के भीतर घूमता है, परन्तु अव्यक्त ही उसे नहीं जानता। अविनाशी ही उसका शरीर है। यद्यपि वह अविनाशी के भीतर घूमता है, परन्तु अविनाशी उसे नहीं जानता। मृत्यु ही उसका शरीर है। यद्यपि वह मृत्यु के भीतर घूमता है, परन्तु मृत्यु उसे नहीं जानती। वह तो सभी प्राणियों का अन्तर्यामी, निष्पाप, स्वर्ग-जनित, प्रकाशमान, एकमात्र नारायण है।

1. 'मैं' हूँ और मेरे हैं यह विचार, शरीर, इन्द्रियाँ आदि, जो आत्मा से भिन्न हैं, यह विचार ही अधिरोपण है। ब्रह्म की भक्ति द्वारा बुद्धिमान व्यक्ति को इसका खंडन करना चाहिए।

2. अपने को विषय, बुद्धि और उसकी क्रियाओं का साक्षी जानकर, आत्मा को विषय से भिन्न जानकर, 'मैं' को उसी (विषय) में पहचानो।

3. संसार, शरीर और शास्त्रों की अनुरूपता को अस्वीकार करके, आत्मा पर आरोपितता हटाओ।

4. तर्क, श्रुति और अनुभव के द्वारा यह जानकर कि मैं ही सब प्राणियों की आत्मा हूँ, योगी का मन नष्ट हो जाता है, क्योंकि वह बिना रुके केवल आत्मा में रहता है।

5. नींद, गपशप, मौखिक आदान-प्रदान आदि और आत्म-विस्मृति के लिए एक क्षण भी जगह न देते हुए, आत्मा में आत्मा का ध्यान करो।

6. माता-पिता के स्राव से उत्पन्न संतान, क्योंकि उसकी स्थिति बहिष्कृत से अधिक नहीं है, शरीर को दूर फेंक दो और ब्रह्म बनकर पूर्णता की खोज करो।

7. आत्मा को परम आत्मा में लीन कर दो, जैसे कि घड़ा-स्थान अनंत अंतरिक्ष में लीन हो जाता है; हे मुनि! तब अनन्त के समान सदा के लिए मौन हो जाओ।

8. स्वयं प्रकाशमान मूलाधार बनकर, सत्ता के रूप में, स्थूल जगत और सूक्ष्म जगत दोनों को त्याग दो, जो अशुद्धियों के निवास हैं।

9. शरीर-बद्ध अहं-इन्द्रिय को सदा आनन्दमय आत्मस्वरूप में स्थित करके, सूक्ष्म शरीर का त्याग करो; सदा निरपेक्ष बनो।

10. 'मैं वह ब्रह्म हूँ' यह जानकर, जिसमें यह जगत दर्पण में प्रतिबिम्बित नगर के समान विद्यमान है, हे पापरहित!

11. अहंकार की पकड़ से मुक्त होकर, ग्रहण के पश्चात चन्द्रमा के समान, पूर्ण, सदा आनन्दमय, स्वयं प्रकाशमान होकर, मनुष्य अपने सार को प्राप्त करता है।

12. कर्मों के नाश से विचार का नाश होता है; तत्पश्चात् जन्मजात आवेगों का ह्रास होता है। जन्मजात आवेगों का नाश ही मुक्ति है; इसे जीवन में स्वतंत्रता माना जाता है।

13. सभी स्थानों पर और सभी उपायों से, सब कुछ को आत्मा के रूप में देखते हुए, मनुष्य जन्मजात आवेगों का विलयन प्राप्त करता है क्योंकि इससे विश्वव्यापी सद्भावना की भावना मजबूत होती है।

14. ब्रह्म की भक्ति में कभी प्रमाद नहीं करना चाहिए; 'प्रमाद मृत्यु है', ऐसा ब्रह्म के दार्शनिकों ने (इस) विज्ञान के संबंध में कहा है।

15. जैसे खींचा हुआ जल-सरकंडा एक क्षण के लिए भी स्थिर नहीं रहता है, वैसे ही माया (सत्य से अपना मुख मोड़ने वाले बुद्धिमान व्यक्ति को भी) निरंतर घेरे रहती है।

16. जो जीवित रहते हुए पूर्णता को प्राप्त कर लेता है, वह मृत्यु के बाद भी पूर्णता ही प्राप्त करता है। हे निष्पाप, एकाग्रता में स्थित होकर, स्थिर रहो।

17. अद्वैत आत्मा के दर्शन से अज्ञान की गांठों का विलयन हो जाता है, जो हृदय में रहती हैं।

18. इस दृष्टि के सामने आत्म-भाव को दृढ़ करते हुए, तथा अहंकार आदि के सामने इसे अस्वीकार करते हुए, बर्तन और वस्त्र आदि वस्तुओं के प्रति उदासीन बने रहें।

19. ब्रह्मा से लेकर घास के झुरमुट तक सभी वस्तुएँ अवास्तविक हैं। स्वयं को अपरिवर्तनशील पूर्णतया विद्यमान देखना।

20. स्वयं की आत्मा ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र और शिव हैं; यह संपूर्ण जगत स्वयं की आत्मा है; इस आत्मा के अलावा कुछ भी नहीं है।

21. स्वयं पर आरोपित सभी वस्तुनिष्ठ रूपों का खंडन करने के बाद, व्यक्ति केवल पूर्ण, अद्वैत, निश्चल परम ब्रह्म के रूप में ही रहता है।

22. जगत् एक धारणा है, जो अस्तित्वहीन है, उस एक ही वास्तविकता में जो अपरिवर्तनशील, निराकार, निर्विकार है; भेद कहाँ से आया?

23. (एक ही वास्तविकता में) द्रष्टा, प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष जैसे भेदों से रहित, तथा सभी दुखों से रहित, पूर्ण, आध्यात्मिक, आत्मा में, जैसे कि प्रलय के समय समुद्र, (भेद कहाँ से आया)?

24. प्रकाश की भाँति उसमें भी अन्धकार ही मोह का कारण है। परम अद्वैत और निर्गुण सत् में भेद कहाँ से आया?

25. इस एकरूप और परम सत् में भेद का कारक कैसे निवास कर सकता है? गहन निद्रा में जो आनन्द के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, जिसने भेद को देखा है?

26. भेद की यह अनुभूति मन में (ज्ञानी के) निहित है; मन के अभाव में इसका कुछ भी नहीं है। इसलिए मन को विषय के रूप में परम आत्मा पर केन्द्रित करो।

27. उस आत्मा को जो अखण्ड आनन्द है, अपने सार के रूप में अनुभव करने पर (इसके बाद) उस चिरन्तन आनन्द का, जो आत्मा है, बाह्य और आन्तरिक दोनों रूपों में आनन्द होता है।

28. वैराग्य का फल ज्ञान है, ज्ञान का फल निवृत्ति है। आनन्द के रूप में आत्मा का अनुभव शांति की ओर ले जाता है; फिर, निवृत्ति का फल शांति है।

29. परिणामी अवस्थाओं के बिना, पूर्ववर्ती अवस्थाएँ वास्तव में निष्फल हैं। निवृत्ति परम संतुष्टि है; अतुलनीय आनंद स्वतःस्फूर्त है।
30. तत् (ईश्वर) शब्द के व्यक्त अर्थ में माया उसका सहायक है; वह जगत् का कारण है। वह सर्वज्ञता आदि गुणों से युक्त है; वह पारलौकिकता से युक्त है, तथा मूलतः सत्य है इत्यादि।

31. 'त्वम्' शब्द का व्यक्त अर्थ 'मैं' के विचार और अभिव्यक्ति की विषय-वस्तु के रूप में चमकता है; यह मन (बोध की आंतरिक इंद्रिय) के साथ मिश्रित जागरूकता है।

32. केवल माया और अविद्या के बहिष्कार से ही ईश्वर और जीव के सहायक परम आत्मा, अविभाज्य सत्ता, चेतना और आनंद का संकेत मिलता है।

33. इस प्रकार 'सुनना' वाक्यों के माध्यम से उनके अर्थ का अनुसरण करना है। दूसरी ओर, 'सोचना' तर्क के साथ इसकी संगति को समझने में निहित है।

34. 'ध्यान' वस्तुतः मन का अनन्य ध्यान है जो श्रवण और मनन के माध्यम से असंदिग्ध हो जाता है।

35. 'एकाग्रता' उस मन को कहा गया है, जो ध्यान और ध्याता के बीच के द्वैत को पार करके धीरे-धीरे केवल ध्यान के विषय पर ही केन्द्रित हो जाता है और वायुहीन स्थान में प्रज्वलित होने वाली ज्वाला के समान हो जाता है।

36. उस अवस्था में आत्मा के सम्बन्ध में मन की वृत्तियाँ अज्ञात रहती हैं; समाधि अवस्था से बाहर निकलने के बाद वे केवल अतीत के रूप में ही समझी जाती हैं।

37. इस अनादि देहान्तर जीवन में संचित करोड़ों कर्म एकाग्रता के द्वारा विलीन हो जाते हैं, तब शुद्ध पुण्य फलने-फूलने लगता है।

38. योग के श्रेष्ठ ज्ञाता इस एकाग्रता को पुण्यों का बादल कहते हैं, क्योंकि यह पुण्यों की बाढ़ को हजारों धाराओं में बरसाता है।

39-40. जब इस (गुणों के बादल) के द्वारा जन्मजात आवेगों का भार बिना अवशेष के विलीन हो जाता है और अच्छे-बुरे कर्मों का ढेर पूरी तरह से मिट जाता है, तब मुख्य ग्रंथ, जो पहले तो तुरंत चमकता था, अब बिना किसी बाधा के, हथेली में हरड़ की तरह तत्काल जागरूकता प्रदान करता है।

41. भोग के विषयों के संबंध में आवेग (भोगने आदि) का न होना वैराग्य की पराकाष्ठा को दर्शाता है। जागरूकता की उच्चतम सीमा अहंकारपूर्ण भावना के न होने से (चिह्नित) होती है।

42(क)। निवृत्ति की पराकाष्ठा अव्यक्त आवेग (भोगने) के न होने से (चिह्नित) होती है।

42(ख)। वह दृढ़ ज्ञान वाला तपस्वी है जो सदा आनंद का आनंद लेता है;

43-44(क)। जिसका आत्मा केवल ब्रह्म में लीन है; जो अपरिवर्तनीय और शांत है। बुद्धि (प्रज्ञा) को अविचल आध्यात्मिक स्वरूप के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसका सार ब्रह्म और आत्मा की एकता है, जो (सभी सहायक तत्वों से) शुद्ध है।

44(ख)। जो कोई भी इसे (प्रज्ञा) बिना रुके धारण करता है, वह जीवन में मुक्त हो जाता है;

45. जिसे शरीर और इंद्रियों के संबंध में 'मैं' का कोई दंभ नहीं है; न ही उनके अलावा अन्य चीजों के संबंध में विषयों का दंभ है - जो किसी भी चीज के संबंध में इन दोनों दंभों से मुक्त है, वह जीवन में मुक्त है;

46. जो अपनी बुद्धि में विषय और ब्रह्म में कोई अंतर नहीं देखता; जो न तो निर्माता और न ही सृष्टि का उल्लेख करता है, वह जीवन में मुक्त है।

47. जिसका रवैया पुण्यवानों द्वारा सम्मानित होने पर और जब वह दुष्टों द्वारा सताया जाता है, दोनों में एक जैसा होता है, वह जीवन में मुक्त है।

48. जिसने ब्रह्म के सत्य को जान लिया है, वह अब तक की तरह फिर से आवागमन नहीं करता है; यदि वह ऐसा करता है, तो उसे इस सत्य का बोध नहीं हुआ है; वह केवल बहिर्मुखी है।

49. जब तक सुख आदि का अनुभव होता है, तब तक भूतकाल के कर्म बने रहते हैं। (कारणात्मक) कर्म, परिणाम के घटित होने से पहले होते हैं; कर्मों से पहले कभी ऐसा नहीं होता।

50. 'मैं ब्रह्म हूँ' इस अनुभव के फलस्वरूप कल्पों में संचित कर्म, जागने पर उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे स्वप्न में किये गये कर्म नष्ट हो जाते हैं।

51. जैसे आकाश में कुछ भी नहीं चिपकता, उसी प्रकार जो आत्मा को अनासक्त और उदासीन जानता है, उसके लिए भविष्य के कर्म किंचित मात्र भी नहीं चिपकते।

52. जैसे आकाश मदिरा के पात्र को स्पर्श करने पर भी उसकी गंध से प्रभावित नहीं होता, वैसे ही आत्मा भी उसके सहायक गुणों से प्रभावित नहीं होती।

53. ज्ञानोदय से पूर्व किये गये कर्म उस ज्ञान के फलस्वरूप नष्ट नहीं होते, उन्हें अपना उचित प्रभाव अवश्य डालना चाहिए, जैसे लक्ष्य पर लगने के लिए छोड़ा गया बाण लक्ष्य पर लगने से पहले नहीं रुकता।

54. बाघ समझकर छोड़ा गया बाण, लक्ष्य को गाय समझकर भी नहीं रुकता, बल्कि पूरी शक्ति से उस पर लग जाता है।

55. 'मैं अजर-अमर हूँ'; 'मैं अमर हूँ' - जो अपने आत्मा को ऐसा जानता है और उस ज्ञान के अनुसार जीता है, वह क्रियाशील भूत कर्मों का निर्माण कैसे कर सकता है?

56. क्रियाशील भूत कर्म तभी वास्तविक होता है, जब कोई अपने आत्मा को शरीर समझ लेता है। शरीर को आत्मा मानना अनुचित है; इसलिए क्रियाशील भूत कर्म की धारणा को अस्वीकार करो।

57. क्रियाशील भूत कर्मों का निर्माण भी, वास्तव में, इस शरीर के कारण एक भ्रम है।

58. आरोपित कैसे वास्तविक हो सकता है? अवास्तविक कैसे पैदा हो सकता है? अजन्मा कैसे नष्ट हो सकता है? अवास्तविक कैसे क्रियाशील भूत कर्मों का स्वामी हो सकता है?

59-60. मंदबुद्धि (जो) संदेहपूर्वक पूछते हैं कि यदि अज्ञान के समस्त प्रभाव उनके कारण सहित ज्ञान द्वारा नष्ट हो जाते हैं, तो यह शरीर कैसे बना रहता है, इसका उत्तर देने के लिए, श्रुति बाह्य दृष्टि से क्रियाशील भूत कर्मों का सिद्धांत प्रतिपादित करती है; बुद्धिमानों को यह सुझाव देने के लिए नहीं कि शरीर आदि वास्तविक हैं।

61. एक संपूर्ण पूर्णता, बिना आरंभ और अंत, माप और परिवर्तन के।
एकत्रित अस्तित्व और बुद्धि, एकत्रित शाश्वत आनंद, अविरल,

62. विषय के एकमात्र स्वाद के साथ, पूर्ण, अंतहीन, सभी को देखो,न तो त्यागने योग्य, न ही पकड़ने योग्य, न ही पकड़ने योग्य, न ही सहारा देने योग्य;

63. जड़ शक्तियों और क्रियाओं से परे, सूक्ष्म, निश्चित, निष्कलंक;जिसका सार विचार से परे, मध्य और शब्दों से परे है;

64. विद्यमान, एक पूर्णता, स्वयंसिद्ध, शुद्ध, जागृत और अतुलनीय।केवल एक अद्वैत ब्रह्म है; यहाँ कोई बहुलता नहीं है।अपंतरात्मस को यह विज्ञान प्रदान किया गया था।उन्होंने इसे ब्रह्मा को प्रदान किया, जिन्होंने इसे घोरांगीरस को दिया।बाद में इसे रैक्व को दिया गया और रैक्व ने राम को।
राम ने इसे सभी प्राणियों को प्रदान किया।यह निर्वाण के संबंध में आदेश है; यही वेदों का आदेश है, वेदों का। यही गुप्त शिक्षा है।

ॐ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है। अनंत अनंत से ही निकलता है। (तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर, वह केवल अनंत (ब्रह्म) ही रह जाता है। ॐ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ शुक्ल-यजुर्वेद से संबंधित अध्यात्मोपनिषद् समाप्त होता है।

074 - कुंडिका उपनिषद

ॐ ! मेरे अंग-प्रत्यंग, वाणी, प्राण, नेत्र, कान, प्राण
और सभी इंद्रियाँ बलवान बनें।
समस्त अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है।
मैं कभी ब्रह्म का खंडन न करूँ, न ब्रह्म मेरा खंडन करे।
किसी भी प्रकार का खंडन न हो:
कम से कम मेरी ओर से तो खंडन न हो।उपनिषदों में जिन गुणों की घोषणा की गई है, वे मुझमें हों,जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।
ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1-2. गुरु की सेवा में समर्पित होने वाले निष्कलंक शिष्यत्व काल में शास्त्रों का अध्ययन करने के पश्चात, गुरु की अनुमति से ब्रह्मचारी को योग्य पत्नी से विवाह करना चाहिए। फिर (गृहस्थ जीवन के अंत में) वह वीरतापूर्वक (त्याग के लिए) पवित्र अग्नि जलाएगा और एक दिन और रात तक चलने वाला यज्ञ करेगा, जिसमें ब्रह्मा आदि देवता होंगे।

3. फिर अपनी संपत्ति को अपने पुत्रों में उचित तरीके से विभाजित करके और सभी इंद्रिय सुखों को त्याग कर, वह वानप्रस्थ के रूप में पवित्र स्थानों की यात्रा करेगा।

4. केवल हवा पर या केवल (हवा और) पानी पर या अनुमोदित कंद (और फलों) के साथ निर्वाह करते हुए वह अपने शरीर में ही सभी सांसारिक जीवन पाएगा। वह (अपने पिछले सुखों को याद करते हुए) अपने आंसुओं को जमीन पर नहीं गिरने देगा।

5-7 (क)। एक आदमी, अपनी पत्नी के साथ, कैसे कहा जा सकता है कि उसने (सांसारिक जीवन का) त्याग किया है? जो (केवल) एक तपस्वी की उपाधि से जाना जाता है, उसे कैसे त्यागी कहा जा सकता है? अतः उसे (पहले) संयम (वानप्रस्थ) द्वारा अपने कर्मों के फल का त्याग करके स्वयं को शुद्ध करना चाहिए; तत्पश्चात संन्यास ग्रहण करना चाहिए। पवित्र अग्नि (गृहस्थ के रूप में) को बनाए रखने के पश्चात व्यक्ति वन-जीवन (वानप्रस्थ) की अवस्था में पहुँचता है। वह संयम के साथ वन-जीवन व्यतीत करता है।
अपनी पत्नी के साथ इस प्रकार रहता है मानो वह उससे आसक्त हो।

7(ख)-8. 'वह सांसारिक सुखों को त्यागकर व्यर्थ ही (भिक्षु का जीवन) क्यों भोग रहा है? वह कौन-सा (आने वाला) दुख है, जिसके विचार से उसे महान सुखों को त्यागना पड़े?' (ऐसा पत्नी का प्रश्न है)। 'मैं (दूसरी माँ के) गर्भ में (दुखद) जीवन से तथा गर्मी, सर्दी आदि के दुखों से डरता हूँ। (इसलिए) मैं त्याग की गुफा (आश्रय) में प्रवेश करना चाहता हूँ, जो (ब्रह्म की) पीड़ारहित पारलौकिक स्थिति का साधन है।' इस प्रकार (वह उत्तर देता है)।

9. पवित्र अग्नि को त्यागकर वह उसमें (उससे संबंधित मंत्रों का मानसिक जाप करते हुए भी) वापस नहीं जाएगा।

10. 'मैं (अर्थात् इस पवित्र अग्नि से सम्बन्धित मन्त्र) विलुप्त होकर (त्याग के साथ असंगत होने के कारण) आगामी (ब्रह्मज्ञान) में विलीन हो जाऊँगा।'

11. वह आत्म-साक्षात्कार से सम्बन्धित मन्त्रों का जप कर सकता है।

12. उसका अभिषेक होगा। (वह) (गेरू) रंग का वस्त्र पहनेगा। (वह) बगलों और गुप्तांगों के बालों को छोड़कर शेष सभी बालों को हटा देगा। (दाहिना) हाथ उठाकर (वह) सांसारिक जीवन का परित्याग करके भिक्षुक के रूप में आगे बढ़ेगा। (वह) बिना किसी निश्चित निवास के आगे बढ़ेगा।

भिक्षा पर जीवन यापन करते हुए, (वेदान्तिक ग्रन्थों का) गहन मनन करेगा और (परम ब्रह्म के साथ अपनी पहचान पर) ध्यान करेगा। सभी प्राणियों की रक्षा के लिए उसके पास शुद्ध ज्ञान (पवित्रम्) होगा।

13-14. (ये) श्लोक हैं (या एक ही विषय): (भिक्षु के पास) एक जलपात्र, एक भिक्षापात्र, एक गोफन (अपने सामान को ले जाने के लिए), एक लम्बी दूरी (शाब्दिक रूप से, तीन लोकों में) पार करने के लिए चप्पल, ठंड को सहने के लिए एक पैबंद, (अपने गुप्तांगों को) ढकने के लिए एक लंगोटी, एक पवित्र अंगूठी (पवित्र घास का पवित्रम), एक स्नान तौलिया और एक ऊपरी वस्त्र; इनके अलावा तपस्वी को बाकी सब कुछ त्याग देना चाहिए।

15. वह नदी के रेतीले तल पर या मंदिर के बाहर सोएगा। वह अपने शरीर को सुख या दुख से बहुत अधिक परेशान नहीं करेगा।

16. स्नान, पीने और सफाई के लिए शुद्ध पानी का उपयोग किया जाना चाहिए। वह प्रशंसा से प्रसन्न नहीं होगा और न ही निंदा करने पर शाप देगा।

17. उसका भिक्षापात्र पत्तों से बना (एक प्याला) होगा और धोने के लिए निर्धारित (ताजी मिट्टी) सामग्री होगी।

18. इस प्रकार जीविका के साधन प्राप्त हो जाने पर वह इन्द्रियों को वश में करके सदैव दार्शनिक मन्त्रों का उच्चारण करेगा। बुद्धिमान् (तपस्वी) अपने मन में (स्वयं की एकता) अनुभव करेगा जो कि ॐ का अर्थ है।
19. (ब्रह्म से आकाश उत्पन्न हुआ), आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई। इन मूल तत्त्वों को मैं

(आदरपूर्वक) प्रणाम करता हूँ। मैं उस अजर, अमर, अविनाशी ब्रह्म को प्रणाम करता हूँ।

20. मुझ शुद्ध आनन्द के सागर में माया की क्रीड़ा के कारण ब्रह्माण्ड की लहरें बहुत बार उठती और गिरती हैं।

21. जैसे आकाश बादलों से आसक्त नहीं होता, वैसे ही मैं अपने शरीर से आसक्त नहीं हूँ। अतः जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं में मैं शरीर के गुणों को कैसे धारण कर सकता हूँ?

22. मैं आकाश के समान सदैव कल्पना से परे हूँ, मैं उससे (शरीर से) वैसे ही भिन्न हूँ जैसे सूर्य प्रकाश के पदार्थों से भिन्न है, मैं अपरिवर्तनीय (अर्थात मेरु पर्वत) के समान सदैव अपरिवर्तनशील हूँ, और समुद्र के समान असीम हूँ।

23. मैं नारायण हूँ, मैं नरक का नाश करने वाला हूँ, मैं तीनों नगरों का नाश करने वाला शिव हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं परमेश्वर हूँ, मैं अविभाज्य चेतना हूँ, सबका साक्षी हूँ, मैं किसी से श्रेष्ठ नहीं हूँ, मैं अहंभाव और मेरेपन से रहित हूँ।

24-25. (तपस्वी) योगाभ्यास द्वारा शरीर में प्राण और अपान वायु को एक साथ लाएगा। वह दोनों हाथों की हथेलियों को मूलाधार पर रखेगा, धीरे से जीभ को जौ के दाने के बराबर बाहर निकालेगा। इसी प्रकार आंखों को उड़द के दाने के बराबर खोलकर कान के आकाश की ओर रखेगा (और पैरों को जमीन पर मजबूती से टिकाएगा) और कान को काम नहीं करने देगा और नाक को सूंघने नहीं देगा (अर्थात पांचों इंद्रियों को नियंत्रित करेगा)। (इस प्रकार वह प्राण और अपान वायु का मिलन कर लेता है)

26. (अतः प्राण वायु कुण्डलिनी और सुषुम्ना से होकर सिर के ऊपर सहस्रारचक्र में विलीन हो जाती है। फिर दृष्टि, मन, प्राण वायु और शरीर की अग्नि शिव के स्थान पर पहुँचकर विलीन हो जाती है; वही ब्रह्म है; वही पारमार्थिक ब्रह्म है। उस ब्रह्म की प्राप्ति योग के अभ्यास से होगी, जो पूर्व जन्मों के अभ्यास से संभव है।)

27. बाह्य और आन्तरिक इन्द्रियों (योग्य ब्रह्म का ज्ञान) जिसे तेज कहते हैं, की सहायता से हृदय में पहुँचकर और प्राण वायु की क्षमता (ऊपर की ओर बढ़ने की) द्वारा समर्थित होकर, सुषुम्ना नाड़ी से होकर जाती है और

शरीर के ऊपर कपाल को भेदती हुई अविनाशी योग्य ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

28. जो मुनि अपने शरीर के ऊपर कपाल में स्थित मार्ग से पारलौकिक अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं, वे फिर कभी संसार में नहीं लौटते, क्योंकि वे निम्नतर तथा उच्चतर (ब्रह्म) दोनों को ही जान लेते हैं।

29. देखी हुई वस्तुओं के गुण उस दर्शक को प्रभावित नहीं करते, जो उनसे भिन्न है। जो गृहस्थ है, उस पर उसके गुण प्रभाव नहीं डालते, जो बिना किसी मानसिक परिवर्तन के तटस्थ रहता है, जैसे दीपक (जो उसके द्वारा प्रकट की गई वस्तुओं से कोई परिवर्तन नहीं करता)।

30. मुझ तटस्थ मुनि को जल में या भूमि पर लोटने दो; मैं उनके गुणों से अछूता हूँ, जैसे घड़े में स्थित आकाश घड़े के गुणों से प्रभावित नहीं होता।

31-32. मैं कर्मों और परिवर्तनों से मुक्त हूँ, अंग और रूप से रहित हूँ, कल्पनाओं से रहित हूँ, नित्य हूँ, आधार से रहित हूँ और द्वैत से रहित हूँ। मैं सबका स्वरूप हूँ, मैं ही सब हूँ, मैं सबके परे हूँ, मैं ही दूसरा नहीं हूँ, मैं ही एक अविभाज्य ज्ञान हूँ और मैं ही आत्मा का संक्षिप्त आनन्द हूँ।

33. आत्मा को सर्वत्र देखता हुआ, आत्मा को ही दूसरा नहीं मानता हुआ, आत्मा के आनन्द का आनन्द लेता हुआ, मैं ही निर्विचार रहता हूँ।

34. आत्मा में रमण करने वाला बुद्धिमान ऋषि चलते हुए, खड़े हुए, बैठे हुए, लेटे हुए या अन्यत्र, अपनी इच्छानुसार जीवन व्यतीत करेगा (अपने कर्तव्यों का पालन करेगा; और संसार को त्यागने पर मोक्ष को प्राप्त करेगा)। इस प्रकार उपनिषद् समाप्त होता है। ॐ! मेरे अंग, वाणी, प्राण, नेत्र, कान, प्राण और सभी इन्द्रियाँ बलवान हों। समस्त अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है।

मैं कभी ब्रह्म का इन्कार न करूँ, और न ब्रह्म मेरा इन्कार करे। किसी भी प्रकार का इन्कार न हो: कम से कम मेरी ओर से तो कोई इन्कार न हो। उपनिषदों में जिन सद्गुणों की घोषणा की गई है, वे मुझमें हों, मैं आत्मा के प्रति समर्पित हूँ; वे मुझमें निवास करें। ॐ ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ सामवेद में सम्मिलित कुण्डीकोपनिषद समाप्त होता है।

075 - सावित्री उपनिषद

ॐ ! मेरे अंग और वाणी, प्राण, आँख, कान, प्राण और सभी इन्द्रियाँ शक्तिशाली बनें।सारी सत्ता उपनिषदों का ब्रह्म है।मैं कभी ब्रह्म को नकार न सकूँ, न ब्रह्म मुझे नकारे।कोई भी इनकार न हो:कम से कम मेरी ओर से तो कोई इनकार न हो।उपनिषदों में जो गुण बताए गए हैं, वे मुझमें हों,जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर काम करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1-2. सविता कौन है, सावित्री कौन है? सविता कौन है, सावित्री कौन है? अग्नि सविता है, पृथ्वी सावित्री है।जहाँ अग्नि है, वहाँ पृथ्वी है और जहाँ पृथ्वी है, वहाँ अग्नि है। ये दोनों कारण हैं, जो एक जोड़ा बनाते हैं। वरुण ही सविता है, जल - सावित्री। जब वरुण आदि होते हैं, - वे स्रोत होते हैं, जो एक जोड़ी बनाते हैं।

3-6. (फिर से) केवल वायु ही सविता है, आकाश ही सावित्री है। जहाँ वायु है वहाँ आकाश है (और इसके विपरीत) - वे जुड़वां स्रोत हैं, जो एक जोड़ी बनाते हैं। केवल यज्ञ ही सविता है और छन्द ही सावित्री हैं - जहाँ यज्ञ है वहाँ छन्द हैं (और इसके विपरीत)। गड़गड़ाहट सविता है और बिजली सावित्री है; जहाँ बिजली है (और इसके विपरीत)। ये दोनों जुड़वां स्रोत हैं।

7-8. चंद्रमा सावित्री है और तारे सावित्री हैं। जहाँ चंद्रमा है, वहाँ तारे हैं (और इसके विपरीत) - ये दोनों जुड़वां स्रोत हैं।

9. पुरुष सविता है, स्त्री सावित्री है। जहाँ पुरुष है वहाँ स्त्री है और इसके विपरीत। वे स्रोतों की एक जोड़ी बनाते हैं।

10. मन सविता है और जगत् सविता है - जहाँ मन है, वहाँ स्त्री है (और इसके विपरीत) - ये दोनों जुड़वाँ स्रोत हैं।

11. सविता का पहला पैर पृथ्वी है। 'उस सविता का, जो प्रशंसनीय है; अग्नि वास्तव में पूजनीय है, जल और चन्द्रमा पूजनीय हैं। दूसरा पाद भुवर है, मन क्षेत्र; 'हम उस देवता के तेज का ध्यान करते हैं' - अग्नि तेज है; सूर्य, चन्द्रमा तेज हैं।

12. तीसरा पाद आकाश है - जो हमारे विचारों को प्रेरित कर सकता है - यह स्त्री और पुरुष उत्पन्न करते हैं।

13. जो इस सावित्री को जानता है, वह मृत्यु को जीत लेता है।

14-15. बल और अतिबला में विराट पुरुष द्रष्टा है, गायत्री छन्द और देवता है। अ, उ, म बीज अक्षर आदि हैं। इनका प्रयोग भूख आदि को दूर करने के लिए है, 'क्लं' आदि छह अंगों का समूह है। ध्यान: मैं इन दोनों का निरंतर अभ्यास करता हूँ, सबके अंदर जीवन डालने वाले, पाप को दूर करने में निपुण, वैदिक ज्ञान की किरणें, जिनके रूप ओम् हैं, जिनके शरीर सौर रूप हैं! हे क्लिम्, चतुर्गुणी मानव लक्ष्य प्रदान करने वाले, सविता के वरदान को देने वाले; हे ह्रीं, देवता की आराध्य ज्योति! हे अतिबला, सभी दया के अवतार, भूख और थकान को नष्ट करने वाले, हम आपका ध्यान करते हैं, जो हमारे विचारों को प्रेरित कर सकते हैं।

हे प्रेरणा के सार, प्रणव, हुं, फट्, स्वाहा के मुकुट से सुशोभित। जो इस प्रकार जानता है, वह अपनी बातचीत को पूरा करता है और सावित्री के साथ अपना राज्य साझा करता है। यह उपनिषद है। ॐ! मेरे अंग और वाणी, प्राण, आंखें, कान, प्राण और सभी इंद्रियां शक्तिशाली बनें। सारा अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है। मैं कभी ब्रह्म को अस्वीकार न करूं, न ब्रह्म मुझे अस्वीकार करे। बिल्कुल भी अस्वीकार न हो: कम से कम मेरी ओर से तो कोई अस्वीकार न हो। उपनिषदों में जो गुण बताए गए हैं, वे मुझमें हों, जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें। ॐ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

सामवेद में सम्मिलित सावित्री उपनिषद यहीं समाप्त होता है।

076 - आत्म उपनिषद

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रसिद्ध इंद्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

I-1. अब अंगिराः आत्मा, तीन तरीकों से खुद को प्रकट करती है: स्वयं, आंतरिक आत्मा और सर्वोच्च आत्मा।

I-2. त्वचा, आंतरिक और बाह्य अंग: मांस, बाल, अंगूठा, उंगलियां, रीढ़ की हड्डी, नाखून, टखने, पेट, नाभि, लिंग, कूल्हे, जांघ, गाल, कान, भौंहें, माथा, हाथ, पार्श्व, सिर और आंखें; ये पैदा होते हैं और ये मरते हैं; इस प्रकार वे आत्मा का निर्माण करते हैं।

I-3. इसके बाद यह आंतरिक आत्मा (तत्वों द्वारा इंगित) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, इच्छा, भ्रम, संदेह, आदि है, और स्मृति, (उच्च स्वर और उच्चारणहीनता, लघु, दीर्घ और लम्बी (स्वर ध्वनियों) द्वारा चिह्नित, श्रोता, सूंघने वाला, चखने वाला, नेता,

कर्ता और ठोकर खाने, चिल्लाने, आनंद लेने, नाचने, गाने और संगीत वाद्ययंत्र बजाने के संबंध में ज्ञान की आत्मा। वह प्राचीन आत्मा है जो न्याय, मीमांसा और कानून की संस्थाओं तथा सुनने, सूंघने और समझने के विशिष्ट विषय के बीच अंतर करती है। वह आंतरिक आत्मा है।

I-4. इसके बाद सर्वोच्च आत्मा, अविनाशी, उसका ध्यान योगिक चरणों, श्वास नियंत्रण, इंद्रियों की वापसी, मन की स्थिरता, चिंतन और एकाग्रता की सहायता से किया जाना चाहिए, उसे आत्मा के बारे में विचारकों द्वारा बरगद के पेड़ के बीज या बाजरे के दाने के समान माना जाना चाहिए।

वह बाल के सौवें भाग के बराबर है। (इस प्रकार) वह जीता है और जाना नहीं जाता। वह न जन्मता है, न मरता है, न सूखता है, न गीला होता है, न जलता है, न कांपता है, न फटता है, न पसीना बहाता है। वह गुणों से परे है, दर्शक है, शुद्ध है, अविभाज्य है, अकेला है, सूक्ष्म है, निष्कलंक है, अक्षर है, शब्द, स्पर्श, रंग, स्वाद, गंध से रहित है, निर्विवाद है, अबूझ है, सर्वव्यापी है। वह अकल्पनीय और अदृश्य है। वह अशुद्ध और अपवित्र को शुद्ध करता है। वह कर्म नहीं करता। वह अनुभवजन्य अस्तित्व के अधीन नहीं है।

II-1. आत्मा नामक अच्छाई शुद्ध, एक और अद्वैत है, हमेशा ब्रह्म के रूप में। ब्रह्म ही चमकता है।

II-2. जैसे संसार अपने भेदों जैसे पुष्टि, निषेध आदि के साथ चमकता है, वैसे ही ब्रह्म ही चमकता है।

II-3. गुरु और शिष्य जैसे भेदों के साथ ब्रह्म ही प्रकट होता है। सत्य की दृष्टि से शुद्ध ब्रह्म ही है।

II-4. न ज्ञान है, न अज्ञान, न जगत् है, न कुछ और। अनुभवजन्य जीवन की शुरुआत जगत् का वास्तविक प्रतीत होना है।

II-5(क)। अनुभवजन्य जीवन का समापन अवास्तविक प्रतीत होना है।

II-5(ख)-6. 'यह घड़ा है' यह जानने के लिए कौन-सा अनुशासन चाहिए, सिवाय सम्यक् ज्ञान के साधनों की पर्याप्तता के? एक बार ज्ञान हो जाने

पर विषय का ज्ञान हो जाता है। नित्य वर्तमान आत्मा तब प्रकाशित होती है, जब उसके ज्ञान का साधन (उपस्थित) होता है।
II-7. न स्थान, न काल, न पवित्रता की आवश्यकता है। 'मैं देवदत्त हूँ' यह ज्ञान किसी और चीज़ पर निर्भर नहीं करता।

II-8. इसी प्रकार ब्रह्मज्ञ का 'मैं ब्रह्म हूँ' यह ज्ञान (स्वतंत्र) है। जैसे सूर्य के प्रकाश से सारा जगत् ब्रह्मज्ञान के तेज से प्रकाशित है।

II-9-10(क)। जो असार और मायामय है, उस असार को कौन प्रकाशित कर सकता है? जो वेद, शास्त्र, पुराण और अन्य सभी प्राणियों को महत्त्व प्रदान करता है, वह ज्ञाता क्या प्रकाशित करेगा?

II-10(ख)-11. बालक भूख और शारीरिक पीड़ा की उपेक्षा करके वस्तुओं से खेलता है। उसी प्रकार प्रसन्न ब्रह्मज्ञ 'मैं' और 'मेरा' के भाव से रहित होकर (अपने में) रमण करता है। इस प्रकार मौन ऋषि, जीवित और एकाकी, निष्कामता के स्वरूप, कामनाओं के विषयों का व्यवहार करता है।

II-12. वह सबका आत्मा होकर, अपने स्वरूप में स्थित होकर सदैव संतुष्ट रहता है। वह सब सम्पत्तियों से रहित होकर भी सदैव आनन्दित रहता है; यद्यपि संगी-साथी नहीं है, फिर भी वह पराक्रमी है।

II-13. वह न खाते हुए भी सदैव संतुष्ट रहता है, वह सबको समान रूप से देखता है, कर्म करते हुए भी कुछ नहीं करता, फल खाता हुआ भी उसका अनुभव नहीं करता।

II-14-17.शरीर में रहते हुए भी वह देहरहित है, निश्चयी होते हुए भी वह सर्वव्यापी है; यह देहरहित और नित्य विद्यमान ब्रह्मज्ञ कभी भी प्रिय-अप्रिय अथवा शुभ-अशुभ से प्रभावित नहीं होता।

राहु (अंधकार) से घिरा हुआ प्रतीत होने के कारण, अव्याप्त सूर्य को भी सत्य को न जानने वाले मोहग्रस्त मनुष्यों ने घेरा हुआ कहा है। इसी प्रकार मोहग्रस्त लोग देह आदि के बन्धन से मुक्त श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञ को देहधारी के समान देखते हैं, क्योंकि वह देहधारी प्रतीत होता है। मुक्त पुरुष का शरीर सर्प के केंचुल के समान रहता है।

II-18. प्राण के द्वारा थोड़ा इधर-उधर चलाकर वह शरीर बाढ़ के पानी में लकड़ी के टुकड़े की तरह ऊपर-नीचे बहाया जाता है।

II-19-20. भाग्य के द्वारा ही शरीर को उचित समय पर अनुभवों के संदर्भों में ले जाया जाता है। (इसके विपरीत) जो ज्ञान और अज्ञेय दोनों प्रकार के सभी प्रवासों को त्यागकर शुद्ध निर्विकार आत्मा के रूप में स्थित रहता है, वह स्वयं ही प्रकट शिव है। वह सभी ब्रह्म-ज्ञाताओं में सर्वश्रेष्ठ है। जीवन में ही सबसे प्रमुख ब्रह्म-ज्ञाता सदैव मुक्त है, उसने अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया है।

II-21. सभी उपांगों के नष्ट हो जाने पर वह ब्रह्म होकर अद्वैत ब्रह्म में समा जाता है, जैसे कोई व्यक्ति (उचित) वस्त्र धारण करके अभिनेता होता है और उसके बिना (अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ जाता है),

II-22(क)। इसी प्रकार ब्रह्म-ज्ञाताओं में सर्वश्रेष्ठ सदैव ब्रह्म ही होता है, अन्य कोई नहीं।

II-22(b)-23. जिस प्रकार (घेरे हुए) बर्तन के नष्ट हो जाने पर आकाश स्वयं आकाश बन जाता है, उसी प्रकार, जब विशेष ज्ञान विलीन हो जाता है, तो ब्रह्म-ज्ञाता स्वयं ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाता, जैसे दूध में दूध, तेल में तेल, तथा पानी में पानी डालने पर (दूध, तेल और पानी) बन जाते हैं।

II-24(a). जिस प्रकार संयुक्त होकर वे एक हो जाते हैं, उसी प्रकार आत्मा को जानने वाला ऋषि आत्मा में एक हो जाता है।

II-24(b). इस प्रकार देहरहित मोक्ष ही सत्ता की अनंत स्थिति है।

II-25. ब्रह्म की स्थिति प्राप्त कर लेने के बाद योगी का पुनर्जन्म नहीं होता, क्योंकि उसके अज्ञानजनित शरीर, सत्ता के प्रायोगिक ज्ञान द्वारा भस्म हो चुके होते हैं।

II-26-27(a). चूँकि वह योगी ब्रह्म बन चुका है, इसलिए ब्रह्म का पुनर्जन्म कैसे हो सकता है? माया द्वारा स्थापित बंधन और मोक्ष, आत्मा के संबंध में स्वयं में वास्तविक नहीं हैं, जैसे कि सर्प का प्रकट होना और गायब होना, स्थिर रस्सी के संबंध में वास्तविक नहीं हैं।

II-27(b). बंधन और मोक्ष को वास्तविक और अवास्तविक तथा अज्ञान (सत्य को छिपाने) के कारण बताया जा सकता है।
II-28-29. ब्रह्म किसी भी प्रकार के छिपाव से पीड़ित नहीं होता। वह अनावृत है, उसके अतिरिक्त (उसे ढकने के लिए) कुछ भी नहीं है। वास्तविकता के संबंध में 'वह है' और 'वह नहीं है', ये विचार केवल बुद्धि में विचार हैं। वे शाश्वत वास्तविकता से संबंधित नहीं हैं। इसलिए बंधन और मोक्ष माया द्वारा स्थापित हैं और आत्मा से संबंधित नहीं हैं।

II-30. आकाश की तरह परम सत्य में, निष्पक्ष, निष्क्रिय, शांत, दोषरहित, निष्कलंक और अद्वैत में (मानसिक) निर्माण के लिए जगह कहाँ है?

II-31. न दमन, न उत्पत्ति, न बंधन, न प्रयास; न मुक्ति की खोज, न मुक्त - यह आध्यात्मिक सत्य है। ॐ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें; हे पूज्यो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें! हम देवों द्वारा आवंटित जीवन की अवधि का आनंद लें, अपने शरीर और अंगों को स्थिर करके उनकी स्तुति करें! महिमावान इंद्र हमें आशीर्वाद दें! सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें! ॐ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ अथर्ववेद में निहित आत्मोपनिषद समाप्त होता है।

077 - पाशुपत ब्राह्मण उपनिषद

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

हम देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रभु इन्द्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

शिव, जो सभी प्राणियों के स्वामी (पशुपति) हैं, हमेशा हर चीज के साक्षी हैं। सभी लोगों के मन को केवल उन्हीं के द्वारा नियंत्रित किया जाता है और विभिन्न विषयों पर भेजा जाता है। आत्मा उन्हीं के कारण कार्य करती है।

शब्द उन्हीं के कारण बोलते हैं।

आँखें उन्हीं के कारण आकृतियाँ देखती हैं। कान सब कुछ उन्हीं के कारण सुनता है। अन्य इन्द्रियाँ भी उन्हीं के कारण अपने-अपने कार्य करती हैं। उनका यह कार्य स्वभाव के कारण नहीं, माया के कारण होता है। प्राणियों को जो कुछ 'सुना जाता है' ऐसा सिखाया गया है, वह पशुपति शिव ने ही सिखाया है और वही उन्हें 'सुना जाता है' का स्वरूप प्रदान करते हैं। वे जीवात्माओं के मन में प्रवेश करते हैं, उसके स्वभाव के रूप में वहाँ विराजमान होते हैं और उसे मन का पद प्रदान करते हैं।

इन्द्रियों द्वारा जो कुछ भी हमें ज्ञात होता है, उन सबसे वे भिन्न हैं। भिन्न-भिन्न इन्द्रियों को जो ज्ञान सिखाया जाता है, उसमें से वे ही उपयुक्त रूप धारण करके उपस्थित होते हैं और जीव को संगत अनुभव प्रदान करते हैं। इसलिए नेत्र, वाणी और अन्य इन्द्रियाँ उनके महान् स्वयंप्रकाशित स्वरूप में नहीं जातीं। जीवात्मा का वह तेज, जो उसके कर्म के कारण नहीं है, वह जीवात्मा के कारण ही है, इन्द्रियों के कारण नहीं।

मान लीजिए हम तर्क के नियमों को खत्म करने का फैसला करते हैं, तो यह कहा जा सकता है कि जो ब्रह्म को समझ लेता है, वही ब्रह्म का महान ज्ञाता बन जाता है। इस प्रकार का बाहरी ज्ञान सत्य, तप और जीवन के अन्य नियमों द्वारा प्राप्त किया जाना चाहिए।

ब्रह्मचर्य और वेदान्त के बताए हुए मार्ग से ही मनुष्य अपने शरीर में ही आत्मस्वरूप को देख सकता है। दूसरे लोग उसे नहीं देख सकते। आहार-विहार में अनुशासन रखने से मानसिक अनुशासन विकसित होता है। मानसिक अनुशासन से ज्ञान की प्राप्ति होती है। धीरे-धीरे मन के विकार सुलझते जाते हैं। ब्रह्मस्वरूप के ज्ञान से जब जगत् भोगने योग्य हो जाता है, तब वह अपने स्वरूप का ही भोग करता है।

अपने अतिरिक्त और कुछ नहीं है। ब्रह्म को जानने वाला विद्वान् जब जगत् को देखता है, तब उसे अपने से भिन्न कुछ नहीं दिखाई देता। यही उपनिषद् है। ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ बातें सुनें; हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ बातें देखें! हम देवों द्वारा निर्दिष्ट जीवन-अवधि का भोग करें, अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखकर उनकी स्तुति करें! देवराज इन्द्र हमारा कल्याण करें! सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!ॐ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ पाशुपत-ब्राह्मणोपनिषद समाप्त होता है, जैसा कि अथर्ववेद में निहित है

078 - परब्रह्म उपनिषद

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

हम देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रभु इन्द्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. तब महागृहस्थ शौनक ने अंगिरस कुल के पूज्य पिप्पलाद ऋषि के पास जाकर उनसे पूछा: (सभी निर्मित वस्तुएँ) निश्चित रूप से ब्रह्म (हिरण्यगर्भ) के हृदय के दिव्य आकाश में मौजूद हैं। महाप्रभु ने अपने में से ही विभिन्न योनियों में इनकी रचना कैसे की तथा यह महान् तथा शक्तिशाली विद्या कौन है ?

उनसे (पिप्पलाद ने) कहा : मैं अब जो ब्रह्म की श्रेष्ठ विद्या कहता हूँ, वही सत्य है। वह अतीन्द्रिय ब्रह्म की नगरी में चमकती है, क्योंकि वह रजोगुण से परे है, अखण्ड है, शुद्ध है, अविनाशी है, इन्द्रियों तथा प्राणों की शक्ति को धारण करती है। वह मधुमक्खियों के समूह (व्यक्तिगत आत्मा के रूप में) का निर्माता है तथा (उनकी बाह्य दृष्टि को) रोकता है। वह अपने आत्मरूपी नगरी में रहकर, कोई सांसारिक कार्य न करके (तपस्वी के रूप में) ब्रह्म से एकता का अनुभव करता है।

(किन्तु) कर्म करने वाला होकर वह किसान की भाँति (बार-बार जन्म-मरण का) फल भोगता है। कर्म के वास्तविक स्वरूप को जानने वाला (आसक्ति के बिना) कर्म करता है। कर्म का रहस्य जानकर (कि अनासक्त कर्म मोक्ष की ओर ले जाता है) (तपस्वी) कर्म करेगा। कौन व्यक्ति (विवेक से युक्त) एक (ब्रह्म को रोकने वाले) पर (प्रेरित कर्म का) जाल डालेगा? (निष्काम कर्म) उसे (संसारिकता में) नहीं खींचेगा, नहीं खींचेगा।

2. प्राण के अधिष्ठाता देवता चार हैं (विश्व, विराज, अतिर और तुर्या)। सभी नाड़ियाँ (जहाँ प्राण और देवता रहते हैं, वे भी चार हैं)। (राम और आराम में सक्रिय ये दोनों जागृत और स्वप्न अवस्था में थक जाते हैं और गहरी नींद में विश्राम करते हैं) जैसे आकाश में उड़ता हुआ बाज। जैसे आकाश में उड़ता हुआ बाज थक जाने पर अपने निवास, घोंसले में चला जाता है, वैसे ही वक्ता (आत्मा) इस (जागृत) और उस (स्वप्न) अवस्था में रहकर गहरी नींद में विश्राम करता है।

यह आत्मा स्वर्णिम पारलौकिक कोश (हृदय के आकाश) में (विश्राम करते हुए) और अमर होने के कारण तीन नाड़ियों (राम, आदि) में सक्रिय है। (इसका पहला पद अविद्या है) यह तीन चरणों में ब्रह्म अवस्था में रहता है। शेष पद (जीव) अपनी स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त करता है और फिर मोक्ष प्राप्त करता है। अतः अन्यत्र का भाषी (अविद्या में स्थित जीव) तथा अन्यत्र का भाषी (त्रिपद ब्रह्म) भिन्न माना जाता है, जिससे जीव बंधन में भटकता है।

यद्यपि जीव सुवर्णमय पारमार्थिक कोश (हृदय के आकाश) में रहता है, तथापि अविद्या के कारण ही वह जाग्रत आदि अवस्थाओं का अनुभव करता है। जैसे देवदत्त (अर्थात् कोई भी व्यक्ति) को डंडे से छेड़ने पर नींद से जगा देने पर वह तुरन्त वापस नहीं जाता (सो नहीं जाता, वैसे ही वेदान्त से ज्ञान प्राप्त करने वाला जीव जाग्रत आदि तीन अवस्थाओं का मोह नहीं करता) तथा वह अच्छे या बुरे कर्मों (जैसे ऐच्छिक) दान-पुण्य से दूषित नहीं होता। वह उस छोटे बालक के समान है, जो बिना किसी विशेष कामना के (जो भी वस्तु उसे प्राप्त हो, उसमें) आनन्द का अनुभव करता है।

जैसे ज्योतिर्मय प्राणी (जीव) जाग्रत और स्वप्न अवस्थाओं में थक जाने पर गहरी नींद के आनन्द का स्वागत करता है, वैसे ही वह उस परम तेज (ब्रह्म) को जानकर आनन्द का अनुभव करता है, जो सूर्य आदि ज्योतियों को सर्वत्र प्रकाशित करता है। इस प्रकार हृदय (चित्त) उस परम तेज (ब्रह्म) में लीन हो जाता है और इस प्रकार परमात्मा को जानकर आनन्द का अनुभव करता है। ईश्वर की कृपा से शुद्ध रंग (अर्थात् अभेद की स्थिति) उत्पन्न होती है। पुनः उसी तुर्य-स्वप्न (चतुर्थ अवस्था में स्वप्न देखने) के मार्ग से वह आत्मा को विश्राम देता है।

जैसे जोंक एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती है (जीव तुर्य की जाग्रत अवस्था से तुर्य की स्वप्न अवस्था में जाता है), यह (तुर्य में एक स्थान से

दूसरे स्थान पर जाने की) इच्छा ईश्वर की कृपा से उत्पन्न होती है। इससे जीव (भेदयुक्त और भेदरहित गहन ध्यान, सविकल्प और निर्विकल्प समाधि के द्वारा) आनंद प्राप्त करता है। व्यष्टि और परात्पर चेतना का संगम अस्वीकृत है, क्योंकि उसमें भेद का आभास है। (जब भेदरहितता ही विद्यमान है) तो वही सर्वोच्च (अर्थात् ब्रह्म) है, उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। (जब शास्त्राभ्यास आदि से आत्मसाक्षात्कार नहीं होता) तब अष्टांग योग का आश्रय लेना चाहिए; यह केले के फूल के समान (सदा तने से रगड़कर पुष्प की स्थिति को प्राप्त करके) सिद्धि प्राप्त करने में सफल होता है। जो इन्द्र (ईश्वर) का मूल है, वही वेद का मूल (परमेश्वर) होकर वहाँ सदा जागृत रहता है। अच्छे और बुरे के बंधनों से परे, वह (तपस्वी) अच्छे या बुरे कर्मों से कलंकित नहीं होता।

यह तेजोमय सत्ता अन्य देवताओं (जैसे ब्रह्मा जी) पर कृपा करने वाली, अनासक्त शुद्ध चेतना के स्वरूप, पुरुष, प्रणव के हंस, परम ब्रह्म का 'आंतरिक नियंत्रण' है। यह मुख्य प्राण (प्राणवायु) नहीं है। प्रणव आत्मा (जीव) है। (जीव की यह स्थिति) प्रथम तेजोमय सत्ता के रूप में बनी रहती है। जो इस प्रकार (प्रणव के वास्तविक स्वरूप को) जानता है, वह जीव और ब्रह्म में भेद कैसे बता सकता है? उसे यह अनुभूति होती है कि जीव ही ब्रह्म है।

3. तब इस साक्षात्कारी व्यक्ति के लिए वास्तविकता (अर्थात् सच्चा ज्ञान) आंतरिक शिखा और जनेऊ का निर्माण करती है। मोक्ष की इच्छा रखने वाले ब्राह्मण को आंतरिक शिखा और जनेऊ की स्थिति की अनुमति है। अनुष्ठान करने वाले गृहस्थों के लिए बाह्य रूप से दिखाई देने वाली शिखा और जनेऊ धारण करना आवश्यक है। आंतरिक जनेऊ की विशेषता बाह्य जनेऊ की तरह स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देती; यह आंतरिक रूप से वास्तविकता के साथ एकता है।

4. यह (अविद्या) अस्तित्व में नहीं है (क्योंकि कारण दिखाई नहीं देता), न ही अस्तित्वहीन (क्योंकि कार्य दृश्य जगत के रूप में दिखाई देता है), न ही दोनों (अस्तित्व और अस्तित्वहीन भाग, क्योंकि दोनों असंगत हैं)। यह भिन्न नहीं है (ब्रह्म से क्योंकि इसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है), न ही अविभाज्य (क्योंकि यह कोई पदार्थ नहीं है), न ही दोनों (भिन्न और अविभाज्य, क्योंकि यह असंभव है)। यह भागों से युक्त नहीं है (क्योंकि कारण में भाग अनुपस्थित हैं), न ही अविभाज्य (क्योंकि कार्य भागों से युक्त दिखाई देता है), न ही दोनों का संयोजन है। (इस प्रकार अविद्या अवर्णनीय है)। इसे ब्रह्म और आत्मा की एकता की प्राप्ति द्वारा त्याग

दिया जाना चाहिए; क्योंकि यह भ्रम का कारण है। इस प्रकार (इसे समझना चाहिए)।

5. पाँच पादों (अर्थात् तुर्यतीत) में ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। उसके लिए चार स्थान हैं।शरीर के अंदर चार चरणों से युक्त आंतरिक जीव-ब्रह्म को समझना। (व्यस्ति के चार चरण हैं: विश्व, तैजस, प्रज्ञा और तुरीय। समस्ति के चार चरण हैं: विराज, सूत्र, बीज और तुरीय)। नेत्र, कण्ठ, हृदय और सिर में जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय की (चार) अवस्थाएँ हैं। (इसके अलावा आत्मा की कल्पना) आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणा और सभ्य अग्नि के रूप में की जानी चाहिए।

जागृत अवस्था में (प्रधान देवता) भगवान ब्रह्मा हैं, स्वप्न अवस्था में विष्णु, सुषुप्ति में रुद्र हैं और चौथी अवस्था अविनाशी है, जिसमें चेतना है। अतः चार अवस्थाओं (जागना आदि) को चार अंगुल का आवरण मानना चाहिए और जैसे जनेऊ चार अंगुल की चौड़ाई में छियानबे होता है, वैसे ही आन्तरिक ब्रह्मसूत्र छियानबे श्रेणियों (तत्त्वों) का है। जैसे जनेऊ तीन धागों का होता है, वैसे ही आन्तरिक ब्रह्मसूत्र को तीन गुणों में से प्रत्येक में बत्तीस श्रेणियों की अवस्था में लाया जाता है। ज्ञान द्वारा शुद्ध की गई इस त्रयावस्था को तीन देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) के रूप में अलग से जानना चाहिए। इसे नौ गुणों वाले नौ ब्राह्मणों के रूप में जाना जाता है।

इन्हें नौ माना जाता है, तीन-तीन गुणों वाले तीन में परिवर्तित किया जाता है, जिन्हें सूर्य, चंद्रमा और अग्नि के अंकों से पहचाना जाता है। (त्रय में से) पहले और अंतिम को बीच में तीन बार घुमाया जाना चाहिए और उन्हें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर माना जाना चाहिए। प्रथम और अंतिम को मिलाना है और चेतना की गाँठ में अद्वैत की गाँठ बनानी है। फिर जो नाभि से ब्रह्मरन्ध्र तक फैला हुआ है और सत्ताईस तत्त्वों से पृथक् जुड़ा हुआ है तथा तीन गुणों से युक्त है, उसे एक ही मानना है, यद्यपि वे त्रिदेवों के लक्षण सहित देखे जाते हैं।

इस (आंतरिक) ब्रह्मसूत्र को बाएँ कंधे से लटकता हुआ दाएँ कूल्हे तक पहुँचता हुआ समझना है। प्रथम और अंतिम का एक साथ मिलना एक ही आधार वाला समझना है। मिट्टी से बनी हुई वस्तुएँ वास्तविक मानी जाती हैं (परन्तु) वह वाचालता (अज्ञान से उत्पन्न) है; परिवर्तन (मात्र) नाम है; वह मिट्टी ही है, यही सत्य है। (जैसे मिट्टी के बिना कोई बर्तन नहीं होता, वैसे ही मूल कारण, ब्रह्म ही वास्तविक है)। हंस के दो अक्षरों से (अर्थात् मैं

हंस हूँ, ब्रह्म हूँ) उसे आंतरिक शिखा और जनेऊ का विश्वास होना चाहिए। ब्राह्मण की अवस्था ब्रह्म के ध्यान के योग्य अवस्था है।

मुनि होने की अवस्था में प्रत्यक्ष शिखा और जनेऊ का अभाव होता है। इस प्रकार गृहस्थ के पास कर्मकांड करने के लिए प्रत्यक्ष शिखा और ज्ञान प्राप्ति के लिए जनेऊ होता है। ब्राह्मण होने की अवस्था में केशों का समूह और सूत से बना जनेऊ होता है। (ब्रह्मसूत्र एक ही है); यह चार (विश्व, विराज आदि) चौगुने से होता है। चौबीस तत्त्व धागे का निर्माण करते हैं। नौ तत्त्व एक पारलौकिक ब्रह्म का निर्माण करते हैं, (लेकिन लोग) दृष्टिकोण में अंतर के कारण कई मार्ग (जैसे सांख्य, योग आदि) प्रदान करते हैं।

मुक्ति सभी के लिए एक ही है, चाहे वे ब्रह्मा और अन्य देवता हों, दिव्य ऋषि हों या मनुष्य हों। ब्रह्म एक ही है। ब्राह्मण की अवस्था एक ही है। जातियाँ, जीवन की अवस्थाएँ और विशेष कर्तव्य भिन्न-भिन्न हैं। जातियाँ और जीवन की अवस्थाएँ एक ही हैं। मोक्ष चाहने वाले तपस्वी के लिए जनेऊ और शिखा का आधार, (बुद्धिमान) कहते हैं, प्रणव ही जनेऊ है। हंस जनेऊ है, प्रणव जनेऊ है और नाद जोड़ने वाली कड़ी है। यही धर्म है, कोई दूसरा धर्म नहीं है। यह कैसे? प्रणव, हंस और नाद मिलकर त्रिगुण सूत्र बनाते हैं और यही चेतना में हृदय में रहता है।

इसे त्रिगुण ब्रह्म जानो। (तपस्वी) सांसारिक जनेऊ और जनेऊ को त्याग देगा।

6. जनेऊ को हटाकर मुण्डन कराने के बाद बुद्धिमान व्यक्ति बाह्य जनेऊ को त्याग देगा। उसे जनेऊ के रूप में अविनाशी ब्रह्म की प्राप्ति होगी।

7. पुनर्जन्म से बचने के लिए उसे सदैव मोक्ष की कामना करनी चाहिए। सूत्र को इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह (मुक्ति) का संकेत करता है; सूत्र वास्तव में सर्वोच्च स्थान है।

8. सूत्र को वह जानता है जो मुक्ति का साधक बन गया है, भिक्षुक बन गया है। वह वेद का ज्ञाता है, जिसका आचरण निष्कलंक है। वह विद्वान ब्राह्मण है जो अपनी उपस्थिति से उन लोगों को पवित्र करता है जो उसके साथ भोजन करने के लिए एक ही पंक्ति में बैठते हैं।

9. योगी, जो योग का ज्ञाता है, एक ब्राह्मण और एक तपस्वी उस सूत्र को पहनेंगे जिससे यह सब (अद्भुत दुनिया) एक साथ (एकता के रूप में) जुड़ जाती है जैसे रत्न एक धागे में एक साथ पिरोए जाते हैं।

10. एक विद्वान ब्राह्मण जो योग और आध्यात्मिक ज्ञान में गहराई से इच्छुक है, उसे बाहरी पवित्र धागे को त्याग देना चाहिए। जो ब्रह्म की भक्ति से युक्त सूत्र पहनता है वह मोक्ष प्राप्त करता है।
11. जो लोग आध्यात्मिक ज्ञान के पवित्र धागे को धारण करके, आंतरिक रूप से सूत्र को धारण करते हैं, वे संसार में सूत्र के ज्ञाता हैं और वे पवित्र धागे के (सच्चे) धारक हैं।

12. उनके शिखा और पवित्र धागे में आध्यात्मिक ज्ञान (ज्ञान) है, वे ज्ञान में स्थित हैं; उनके लिए केवल ज्ञान ही सर्वोच्च है और यह ज्ञान पवित्र करने वाला घोषित किया गया है।

13. जिस बुद्धिमान व्यक्ति की शिखा में ज्ञान है और अन्य कुछ नहीं है, अग्नि से निकलने वाली ज्वाला की तरह, उसे (सच्चे) शिखा का स्वामी कहा जाता है, अन्य लोगों को नहीं जो बालों का गुच्छा पहनते हैं।

14. जो लोग वैदिक (अनुष्ठान) या सांसारिक कार्यों में डूबे रहते हैं, वे केवल नाम के लिए ब्राह्मण के रूप में रहते हैं, अपना पेट भरते हैं। वे दुःख पाते हैं और बार-बार पुनर्जन्म लेते हैं।

15. बाएं कंधे से दाएं कूल्हे तक लटका हुआ जनेऊ इसके विपरीत (मुक्ति के लिए) है। बुद्धिमान व्यक्ति को सच्चा ज्ञान धारण करना चाहिए, जो चेतना में निहित है, जिसमें सच्चे सिद्धांत (तत्त्व) रूपी धागे हैं और जो नाभि से लेकर सिर के मुकुट (ब्रह्मरंध्र) के छिद्र की नोक तक फैले हुए हैं।

16. यह जनेऊ जो अनुष्ठान का हिस्सा है और (सूती) धागे से बना है, उन्हें (अर्थात अज्ञानियों को) पहनना चाहिए। जिसके शिखा में ज्ञान और जनेऊ है, उसमें ब्राह्मण के सभी (सच्चे) लक्षण होते हैं, अन्य में बिल्कुल नहीं होते।

17. यह जनेऊ ही परम रामबाण है। जो बुद्धिमान व्यक्ति इस जनेऊ को पहनता है, उसे मुक्ति मिलती है। 18. वह विद्वान ब्राह्मण त्याग का अधिकारी है, जिसके भीतर और बाहर दोनों जगह जनेऊ है; परन्तु जिसके पास एक ही है (अर्थात बाह्य सूत्र) वह कभी त्याग का अधिकारी नहीं होता।

19. अतः तपस्वी को सभी प्रयत्नों द्वारा मोक्ष की कामना करनी चाहिए। बाह्य सूत्र को त्यागकर वह अपने भीतर आंतरिक सूत्र को धारण करेगा।

20. बाह्य जगत, जनेऊ और जनेऊ की उपेक्षा करके वह प्रणव और हंस रूपी जनेऊ और जनेऊ को धारण करेगा और इस प्रकार मोक्ष के लिए अपने को तैयार करेगा। इस प्रकार पूज्य ऋषि शौनक ने कहा है। इस प्रकार उपनिषद समाप्त होता है।

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ बातें सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ बातें देखें!

देवों द्वारा निर्दिष्ट जीवन की अवधि का हम आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रभु इन्द्र हमारा कल्याण करें!

सर्वज्ञ सूर्य हमारा कल्याण करें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें! बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें! ॐ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ अथर्ववेद में शामिल परब्रह्मोपनिषद समाप्त होता है।

079 - अवधूत उपनिषद

ॐ ! वे हम दोनों की एक साथ रक्षा करें; वे हम दोनों का एक साथ पोषण करें;
हम महान ऊर्जा के साथ मिलकर काम करें,

हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;
हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से घृणा न करें)।
ॐ ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. तब, ऐसा कहा जाता है, संकृति ने आदरणीय अवधूत दत्तात्रेय के पास जाकर प्रश्न किया: आदरणीय श्रीमान, अवधूत कौन है? उसकी स्थिति क्या है? उसकी विशेषता क्या है? और उसका सांसारिक अस्तित्व क्या है? परम दयालु आदरणीय दत्तात्रेय ने उत्तर दिया:

2. अवधूत को इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह अमर [अक्षर] है; वह सबसे महान [वरेण्य] है; उसने सांसारिक बंधनों [धूतासंसारबंधन] को त्याग दिया है; और वह 'तू वही है' आदि वाक्य का संकेतित अर्थ है [तत्त्वमास्यादि-लक्ष्य]।

3. जो जाति और अवस्थाओं (सामाजिक स्थिति) को पार करके निरंतर अपने में विश्राम करता है और इस प्रकार वर्ण और आश्रमों से ऊपर उठ जाता है और (ईश्वर से) एक हो जाता है, उसे अवधूत कहा जाता है।

4. उसका आनन्द [प्रिय] सिर है; आनन्द [मोद] उसका दाहिना पंख है; महान आनन्द [प्रमोद] उसका बायाँ पंख है; और आनन्द (उसका स्वयं का) है। इस प्रकार वह चतुर्विध अवस्था को ग्रहण करता है।

5. ब्रह्म को न तो सिर से, न मध्य भाग से और न ही नीचे से, बल्कि पूंछ (जो शेष है) से पहचानना चाहिए, क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि ब्रह्म 'पूंछ' और आधार है।इस प्रकार, जो लोग इस चतुर्विध विभाजन का चिंतन करते हैं, वे परम लक्ष्य को प्राप्त करते हैं।

6. कर्मकाण्ड से नहीं, संतानोत्पत्ति से नहीं, धन से नहीं, बल्कि त्याग से ही कुछ लोगों ने अमरत्व प्राप्त किया है।

7. उनका (अवधूत का) सांसारिक जीवन वस्त्र धारण करके या वस्त्रहीन होकर स्वतंत्र रूप से विचरण करने में ही निहित है। उनके लिए न कुछ धर्म है, न अधर्म; न कुछ पवित्र है, न अपवित्र। सर्वग्राही, सम्यक् ज्ञान (संग्रहनेष्टि) द्वारा (अवधूत) अपने भीतर अश्वमेध यज्ञ करते हैं। यही महानतम यज्ञ और महान योग है।

8. इस असाधारण, मुक्त कर्म का कुछ भी प्रकट नहीं करना चाहिए। यह महान व्रत है। वह अज्ञानी की तरह कलंकित नहीं होता।

9. जैसे सूर्य सब जलों को सोख लेता है और अग्नि सब वस्तुओं को भस्म कर देती है (उनसे अप्रभावित रहती है), वैसे ही शुद्ध योगी पुण्यों या पापों से अलिप्त होकर सब पदार्थों का भोग करता है।

10. जैसे समुद्र जिसमें सब जल बहते हैं, वह सब ओर से जल आने पर भी अपना स्वभाव बनाए रखता है, वैसे ही वह शांति प्राप्त करता है जिसमें सब इच्छाएँ उसी प्रकार प्रवाहित होती हैं, न कि वह जो भोगों की खोज करता है।

11. न मृत्यु है, न जन्म; कोई बंधता नहीं, कोई आकांक्षा नहीं करता। न कोई मोक्ष का साधक है, न कोई मुक्त; यह वास्तव में परम सत्य है।

12. अतीत में मेरे बहुत से कार्य संभवतः यहाँ और परलोक की प्राप्ति के लिए या मोक्ष प्राप्ति के लिए हुए थे। अब जो कुछ है, वह सब भूतकाल का है।

13. यही संतोष की स्थिति है। वस्तुतः वह उन्ही (अर्थात भूतकाल की) उपलब्धियों को स्मरण करके, विषयों से सम्बन्धित है, अब इस प्रकार सदा संतुष्ट रहता है। दुखी अज्ञानी, सन्तान आदि की इच्छा रखने वाले को कष्ट भोगना ही पड़ता है।

14. मैं जो परम आनन्द से युक्त हूँ, क्यों कष्ट भोगूँ? जो परलोक जाने की इच्छा रखते हैं, वे ही अनुष्ठान करें।

15. मैं जो सम्पूर्ण लोकों का स्वभाव वाला हूँ, क्या करूँ? किसलिए और कैसे? जो लोक हैं, वे ही क्या करूँ? किसलिए और कैसे? जो योग्य हैं, वे ही शास्त्रों का अर्थ करें या वेदों का उपदेश करें।

16. मुझमें ऐसी कोई योग्यता नहीं है, क्योंकि मैं कर्म से मुक्त हूँ। मुझे सोने, भिक्षा मांगने, स्नान करने या सफाई करने की कोई इच्छा नहीं है। मैं ये सब भी नहीं करता।

17. यदि दर्शक ऐसा आरोप लगाते हैं, तो उन्हें ऐसा करने दें। दूसरों के थोपे जाने से मुझे क्या मतलब ? (अब्रस प्रीकेटोरियस के) लाल-काले जामुनों का ढेर भी दूसरों के द्वारा आग लगाए जाने पर भी नहीं जलेगा। इसी प्रकार मैं दूसरों द्वारा मुझ पर आरोपित सांसारिक कर्तव्यों का पालन नहीं करता।

18. जो लोग वास्तविकता से अनभिज्ञ हैं, वे शास्त्रों का अध्ययन करें; वास्तविकता को जानते हुए मैं क्यों अध्ययन करूँ ? जिन्हें संदेह है, वे (अध्ययन किए गए विषय पर) विचार करें। संदेह न होने के कारण मैं विचार नहीं करता।

19. यदि मैं भ्रम में होता, तो ध्यान कर सकता; भ्रम न होने पर (मेरे लिए) क्या ध्यान हो सकता है ? शरीर और आत्मा का भ्रम, मुझे कभी अनुभव नहीं होता।

20. 'मैं मनुष्य हूँ' का अभ्यस्त प्रयोग इस भ्रम के बिना भी संभव है, क्योंकि यह लंबे समय से संचित संस्कारों के कारण है।

21. जब कर्मों के परिणाम (प्रारब्ध-कर्मण) समाप्त हो जाते हैं, तब अभ्यस्त उपयोग भी समाप्त हो जाता है। बार-बार ध्यान करने पर भी यह (सांसारिक उपयोग) समाप्त नहीं होता, जब तक कि ऐसे कर्म समाप्त न हो जाएँ।

22. यदि सांसारिक व्यवहारों की बारंबारता चाहनी है, तो तुम्हारे लिए चिंतन हो। मैं, जिसके लिए सांसारिक व्यवहार बाधा नहीं डालते, चिंतन क्यों करूँ?

23. चूँकि मेरे पास विक्षेप नहीं हैं, इसलिए मुझे एकाग्रता, विक्षेप या एकाग्रता की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मेरा मन परिवर्तन करने वाला है।

24. मेरे लिए, जो शाश्वत अनुभव की प्रकृति का हूँ, अलग से क्या अनुभव हो सकता है? जो करना है, वह हो गया, जो पाना है, वह सदा के लिए प्राप्त हो गया।

25. मेरे सांसारिक, शास्त्रीय या अन्य प्रकार के व्यवहार वैसे ही चलते रहें, जैसे वे शुरू हुए हैं, मैं न तो (कार्य का) कर्ता हूँ, न ही (उससे प्रभावित) हूँ।

26. अथवा, जो कुछ मुझे प्राप्त होना था, वह प्राप्त हो जाने पर भी मैं संसार के कल्याण के लिए शास्त्र मार्ग पर ही रहूँ। इससे मुझे क्या हानि है?

27. शरीर को देवताओं की पूजा, स्नान, सफाई, भिक्षाटन आदि में लगा रहने दूँ। वाणी को बार-बार तारा-मंत्र का उच्चारण करने दूँ या उपनिषदों का पाठ करने दूँ।

28. विचार को विष्णु का चिंतन करने दूँ या ब्रह्म के आनंद में लीन हो जाने दूँ। मैं साक्षी हूँ। मैं न तो कुछ करता हूँ और न करवाता हूँ।

29. अपने कर्तव्यों और उपलब्धियों से संतुष्ट होकर वह संतुष्ट मन से निरंतर इस प्रकार चिंतन करता है।
30. धन्य हूँ मैं, धन्य हूँ मैं। मैं स्वयं को प्रत्यक्ष और सदैव अनुभव करता हूँ। धन्य हूँ मैं, धन्य हूँ मैं, ब्रह्म का आनन्द मुझमें चमकता है।

31. धन्य हूँ मैं, धन्य हूँ मैं। मैं अस्तित्व के दुःख को नहीं देखता। धन्य हूँ मैं, धन्य हूँ मैं; मेरा अज्ञान भाग गया है।

32. धन्य हूँ मैं, धन्य हूँ मैं; मेरे लिए कोई कर्तव्य नहीं है। धन्य हूँ मैं, धन्य हूँ मैं; जो कुछ प्राप्त होना था वह अब प्राप्त हो गया है।

33. धन्य हूँ मैं, धन्य हूँ मैं। मेरे संतोष की दुनिया में क्या तुलना है! धन्य हूँ मैं, धन्य हूँ मैं; धन्य, धन्य, बार-बार धन्य।

34. तार्किक! अर्जित पुण्यों ने फल दिया है! निश्चित रूप से उन्होंने दिया है! पुण्य की समृद्धि से हम जैसे हैं वैसे हैं।

35. अद्भुत ज्ञान, अद्भुत ज्ञान! अद्भुत सुख, अद्भुत सुख!अद्भुत शास्त्र, अद्भुत शास्त्र!अद्भुत शिक्षक, अद्भुत शिक्षक!

36. जो इसका अध्ययन करता है, वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है। वह शराब पीने के पापों से मुक्त हो जाता है। वह सोना चुराने के पापों से मुक्त हो जाता है। वह ब्राह्मण की हत्या के पापों से मुक्त हो जाता है। वह विहित या निषिद्ध कर्मों से मुक्त हो जाता है। ऐसा जानकर वह अपनी इच्छा के अनुसार विचरण करे।

ओम, सत्य। इस प्रकार उपनिषद समाप्त होता है।ओम! वह हम दोनों की एक साथ रक्षा करे; वह हम दोनों का एक साथ पोषण करे;हम महान ऊर्जा के साथ मिलकर काम करें,हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;
हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से द्वेष न करें)।

ओम! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहां कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित अवधूत उपनिषद समाप्त होता है

080 - त्रिपुर तापिनी उपनिषद

ॐ ! देवगण ! कानों से हम शुभ सुनें;

पूज्य ! नेत्रों से हम शुभ देखें।

स्थिर अंगों से, स्तुति करते हुए शरीर से,

देवताओं द्वारा निर्दिष्ट जीवन का आनंद लें।

विख्यात इंद्र हमें कल्याण प्रदान करें;

पूसन और सभी देवता हमें कल्याण प्रदान करें।

निर्बाध गति वाले तारक्य हमें कल्याण प्रदान करें।

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें।

ॐ ! शांति ! शांति ! शांति !

I-1: अब, इस क्षेत्र (अज्ञान) में, भगवान (सदाशिव), प्रजापति, विष्णु और रुद्र का वेश धारण करके, देवी त्रिपुरा कहलाते हैं। उनकी आदि शक्ति से

तीन निवास बनते हैं - पृथ्वी, वायुमंडल और स्वर्ग, या स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल। ह्रीं के रूप में, हर की माया के समान, दिव्य ह्रीलेखा अपनी भयंकर शक्ति से तीन चोटियों के अंत में (दोनों भौंहों के मिलन बिंदु के ऊपर), तीन गुणों के संतुलन के स्थान और वह क्षेत्र जहाँ वस्तुओं की दुनिया विलीन हो जाती है, व्याप्त है। इसी दिव्यता को त्रिपुरा कहा जाता है।

I-2: उस आराध्य तेज पर हम दिव्य सृष्टिकर्ता का ध्यान करते हैं; वह हमारे विचारों को प्रेरित करे जो सभी अंधकार से परे है, ओम।

I-3: हम सर्वज्ञ अग्नि के लिए सोम को दबाएँ जो हमारे शत्रुओं के धन को भस्म कर देता है; जैसे नाव नदी के ऊपर से गुजरती है, वैसे ही वह सभी कठिनाइयों, सभी परेशानियों से हमें बचाए।

I-4: आइए हम तीन नेत्रों वाले भगवान की पूजा करें, जो सांसारिक विकास को बढ़ाने वाले सुगंधित हैं।जैसे ककड़ी का फल डंठल से अलग हो जाता है, वैसे ही मैं मृत्यु से मुक्त होकर अमरत्व की प्राप्ति करूँ।

1-5: सर्वोच्च अधिपति, तीन नगरों की देवी, तीन वेदों और 108 अक्षरों से युक्त सर्वोच्च ज्ञान की मूर्त रूप हैं। पहले चार विभाग ब्रह्म को स्पष्ट करते हैं; दूसरा शक्ति या शक्ति से संबंधित है; और तीसरा शिव, अच्छाई से संबंधित है।

1-6: यह दर्ज है कि दुनिया, वेद, विज्ञान, किंवदंतियाँ, संहिताएँ, चिकित्सा कार्य और खगोलीय ग्रंथ सभी शिव और शक्ति (अच्छाई और शक्ति) के मिलन से आगे बढ़े हैं।

1-7: अब हम इसके सर्वोच्च रहस्य (यानी ऊपर दिए गए मंत्र) को स्पष्ट करेंगे। महान मंत्र का अक्षर तत् सनातन ब्रह्म है, सर्वोच्च भगवान, अपरिभाषित, निर्दोष, बिना शर्त और बिना किसी बाधा के। वह सोचता है, अनुभव करता है, विकसित होता है, चेतना की स्थिति की इच्छा करता है। इस प्रकार वह एकमात्र देवता,अनिवार्यतः अच्छा, दृश्यमान जगत के रूप में विकसित होता है। तपस्वियों, यज्ञों, मनीषियों में, वह इच्छा करता है और जो इच्छा की जाती है, वह उत्पन्न होती है।

इच्छाओं से मुक्त (सत्य में) और निष्कलंक होने के कारण, वह प्रभुत्व रखता है। वह (अक्षरों) अ, क, च, त, त, प, य और स को प्रकट करता है। इसलिए भगवान का नाम इच्छा है। इसलिए, तकनीकी रूप से, (भगवान के

रूप में) इच्छा क में व्याप्त है। इच्छा ही यह तत् है। इस प्रकार कर्म को समझा जाता है। इसलिए यह तत् का अर्थ है।जो इस प्रकार जानता है (वह भगवान बन जाता है)।

I-8: सवितुर वरेण्यं। मूल परा का अर्थ है 'जीवित वस्तु को जन्म देना'। सवितुर जीवित वस्तुओं को जन्म देता है; शक्ति जन्म देती है।

I-9: यह आदि शक्ति त्रिपुरा है,सर्वोच्च अधिपति, त्रिपुरा;देवी जो अग्नि मंडल में निवास करने वाली, कुण्डल धारण किए हुए महान हैं।

I-10: जो कोई (इस ज्ञान को) प्राप्त कर लेता है, वह सब में व्याप्त हो जाता है। त्रिभुज की शक्ति (सर्प शक्ति) उच्च अक्षर इ की सहायता से सृष्टि करती है। इसलिए केवल इ अक्षर ही लिया जाता है।

I-11: वरेण्यं का अर्थ है श्रेष्ठ, पूजनीय, अविनाशी, वंदनीय। इसलिए वरेण्यं को इ अक्षर के रूप में समझा जाता है। जो इसे जानता है (वह सर्वश्रेष्ठ बन जाता है)।

I-12: भर्गो देवस्य धीमहि - इसका हम वर्णन करेंगे: ध का अर्थ है धारण करना। विचार से परम भगवान धारण किए जाते हैं। भर्ग मध्य में स्थित तेजोमय है; अविनाशी चौथा (अक्षर), तत्काल चौथा, सब, सबका अंतरतम। चौथा अक्षर इ शब्दों के मध्य में है। इस प्रकार भर्ग का रूप बताया गया है, वे कहते हैं। अतः इ अक्षर को भर्गो देवस्य धी के समतुल्य समझा जाता है।

I-13: मही का निरूपण। जिस अक्षर में महानता, जड़ता और कठोरता विद्यमान है, वह मही है।अक्षर ला परम धाम है। ल अक्षर क्षेत्र को दर्शाता है, जो मुख्यतः कठोर है, जिसमें समुद्र, पर्वत, सात द्वीप और वन सम्मिलित हैं, तथा जिसका स्वरूप तेजस्वी है। मही से देवी पृथ्वी का निरूपण होता है।

I-14: धियो यो नः प्रचोदयात्। परम आत्मा, आदि, पारलौकिक सदाशिव, (हमारे) विचारों को, (हमारे) प्रकाशमान आत्मा को, दृढ़ अक्षर ला द्वारा पारलौकिक, अविभेदित सत्य की ओर प्रेरित करें, जो चिंतन की इच्छा के क्षेत्र से परे है। मौखिक कथन के बिना, केवल इसे ध्यान में रखते हुए, ध्यान करना चाहिए।

I-15: परो राजसे सवदोम्। अन्त में वह (जो आत्मा से भिन्न है) परम ज्योति, शुद्ध चेतना, हृदय में निवास करने वाली दिव्यता बन जाती है, जिसका चिह्न चेतना है, और जो ह्रीं है, जिसका निवास हृदय है। इस प्रकार पाँच अक्षरों का समूह, वाग्भवकूट, जो पाँच तत्वों को जन्म देता है और पाँच खंडों से मिलकर बना है, स्पष्ट हो जाता है। जो इस प्रकार जानता है (वह फल भोगता है)।

1-16: अब अगला समूह जो कामकला बन गया है, उसे कामकूट कहते हैं, ऐसा बुद्धिमान लोग कहते हैं। बत्तीस पवित्र अक्षरों, तत् सवितुर वरेण्यं आदि के उच्चारण में, तत् परम आत्मा, सदाशिव, अविनाशी, शुद्ध, असंबद्ध है। अक्षर ह, जो शिव के साथ तादात्म्य स्थापित करता है, शिव का रूप है; यह अक्षर होते हुए भी अव्यक्त माना जाता है। इस प्रकार, बाह्य रहते हुए, यह (ह) शक्ति का सूचक है।

I-17: तत् सवितुह की पहले बताई गई रेखा के साथ चंद्रमा (जिसका बीज-अक्षर सा है) को सूर्य (जिसका बीज-अक्षर हा है) के बगल में रखा जाना चाहिए। (सूर्य का प्रकाश) मूल और मूल के बीच के क्षेत्र को भरता है। चक्र और मुकुट का पवित्र छिद्र। अक्षर सा को अद्वितीय कहा गया है। (जिसका ध्यान तत् और सवितुर के रूप में किया जाता है) वह दिव्य प्राणी है जिसका सार शिव और शक्ति है।

I-18: शिव सर्वोच्च ईश्वर हैं ऐसा (ब्रह्म-ज्ञानी) कहते हैं;शक्ति वह सब है जो पैदा होती है;सूर्य और चंद्रमा एक साथ हैंहंसा - गुणहीन ब्रह्म।

I-19: शिव सर्वोच्च से, जो इच्छा की वस्तुओं का निर्माण करते हैं, इच्छा को उभारते हैं;इच्छाओं के स्वामी, पसंद प्रकाश को अक्षर क के रूप में वर्णित किया गया है।

I-20: तत् सवितुर वरेण्यं भर्गो देवः। वह अविनाशी दूध जो कर्मों और उनके एजेंटों के प्रभावों को मिटा देता है, वह आत्मसात करने योग्य है। वह अविनाशी (दूध) सर्वोच्च आत्मा और व्यक्तिगत आत्मा के मिलन से जीता जाता है। वह स्पष्ट तीसरा अक्षर हा है। यह वास्तव में सदाशिव है, दोषरहित, चमकता हुआ देवत्व। इस प्रकार अंतिम अक्षर को परम धाम के रूप में व्याख्यायित किया गया है।

I-21: धी धारण करने को दर्शाता है; जड़ पदार्थ को धारण करने का संबंध महि से है, जिसे ला अक्षर से दर्शाया जाता है। ह के बाद आने वाला ला का

अर्थ शिव (ब्रह्म) है। अंतिम अक्षर परम आत्मा है। यह हमारे विचारों को प्रेरित करे!

I-22: परो राजसे सवदोम: यह समूह कामकला (अर्थात वाग्भव समूह) का निवास है। जो छह मार्गों (जैसे अक्षरों के मार्ग) पर चलता है, वह विष्णु के आसन पर पहुँचता है। जो ऐसा जानता है (वह उस आसन पर पहुँचता है)। इसके अलावा कुछ भी (मौजूद नहीं है), भगवान कहते हैं।

I-23: इसके बाद दूसरा, तीसरा समूह, शक्तिकूट, बत्तीस अक्षरों वाली गायत्री को प्राप्त करता है।

I-24: तत् सवितुर वरेण्यं। आत्मा से आकाश उत्पन्न होता है, आकाश से वायु निकलती है। उस पर आश्रित होकर जो उत्पन्न होता है, वह पूजनीय है। सवितुर के लिए वैयक्तिक आत्मा और परमात्म आत्मा का एक साथ आना उपयुक्त है। वैयक्तिक आत्मा का बोधक अक्षर (सा) स्पष्ट रूप से प्रकाशमान शक्ति का रूप प्राप्त करता है।

I-25: भर्गो देवस्य धी। इन शब्दों में शिव का बोधक अक्षर (क) गिना जाता है, जिसमें (सब) समाहित है। मही आदि के साथ (ला सम है)। इच्छित, मनोहर, दृश्य शेष (अर्थात धियो यो नः आदि) के साथ इच्छित, मनोहर (ह्ल्लेख सम है)। इस प्रकार शक्तिकूट की व्याख्या की गई है।

I-26: जो इस प्रकार त्रिपुरा के पंद्रह अक्षरों वाले मंत्र का जप करता है, वह सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है; वह सभी भोगों को प्राप्त कर लेता है; वह सभी लोकों को जीत लेता है; वह सभी शब्दों को प्रस्फुटित कर देता है; वह रुद्र की स्थिति प्राप्त करता है; विष्णु के निवास (माया के आवरण) को तोड़कर, वह परम ब्रह्म तक पहुँचता है।

I-27: आदि विद्या (मंत्र), शक्ति समूह (स का ला ह्रीं) और शक्ति और शिव (स का द्वारा निरूपित) को स्थापित करने के बाद (पहले निवास, जागृत अवस्था में) (चिंतन किया जाना चाहिए)। लोपामुद्रा मंत्र (ह स का ला ह्रीं) (चिंतन किया जाना चाहिए) दूसरे निवास, (स्वप्न अवस्था) में।

I-28: तीसरे निवास (या सामूहिक नींद की अवस्था) में पिछले मंत्र, शक्ति, ह्ल्लेखा, बिना नासिका ध्वनि (स का ला ह्रीं) का चिंतन किया जाना चाहिए, जिस मंत्र पर दुर्वासा, क्रोधी ऋषि ने ध्यान लगाया था।

I-29: पिछले मन्त्र के वाग्भाव समूह को मनु, चन्द्र और कुबेर से संबंधित बताया गया है।

I-30: मदन (या क्लिम्) के बाद शुभ वाग्भाव आता है; अगला कामकला (का, आदि) है; अगला शक्ति समूह, सा, आदि है। इस समूह को, इस क्रम में, मनु द्वारा पूजा गया था, और इसका चिंतन चौथे निवास (विश्व अवस्था) में किया जाना चाहिए।

I-31: (पहला) जिसे शिव और शक्ति (अर्थात् हा, आदि) कहा जाता है; फिर वाग्भाव; फिर शिव और शक्ति समूह; और तीसरा (सा, आदि) - यह मन्त्र, जो चन्द्र का पूजनीय है, का चिंतन पाँचवें निवास (तैजस अवस्था) में किया जाना चाहिए।

I-32: शिव आदि का मन्त्र, चन्द्र के मन्त्र के साथ मिलकर कुबेर का मन्त्र बन जाता है; इसका ध्यान छठे धाम (प्रज्ञा अवस्था) में करना चाहिए। जो इसे जानता है (वह कुबेर का धन प्राप्त करता है)।

I-33: चौथे स्वर इ को छोड़कर, और सूर्य और चंद्रमा (हा और सा द्वारा दर्शाए गए) को सभी (समूहों) के आरंभ में रखने पर, इच्छाओं पर शक्ति बढ़ाने वाली विद्या (मंत्र) प्राप्त होती है; इसका नाम अगस्त्य के नाम पर रखा गया है और इसका ध्यान सातवें धाम (विराज अवस्था) में किया जाना चाहिए।

I-34: ऊपर दिए गए (अगस्त्य के) मंत्र में, दोहरा ढंग से स्थापित, हा हा, जो काम और मदन से शुरू होने वाले मंत्रों का प्रतिनिधित्व करता है; फिर सा, शक्ति का बीज-अक्षर, और क, वाग्भाव का आरंभ। सा और क में, स्वरों को आधे अक्षरों में छोटा कर दें। यह आठवें धाम (सूत्रत्मन अवस्था) में नंदी (चिंतन करने योग्य) का मंत्र है।

I-35: वाग्भाव समूह; अगस्त्य का मन्त्र, जिसमें कामकला नामक शब्द और अर्थ हैं; (तब) माया की सारी शक्ति (शक्ति समूह) - (ये एकीकृत होकर सूर्य द्वारा पूजित थीं और इसलिए) इसे प्रभाकर का मन्त्र कहा जाता है। (इसका ध्यान) मन के निवास (कारण निवास की स्थिति) में करना चाहिए।

I-36: फिर से अगस्त्य का मन्त्र; (तब) वाग्भव; शक्ति का बीज-अक्षर (ह्रीं); काम का बीज-अक्षर (क्लिं); शिव और शक्ति के बीज-अक्षर (हंसा); (फिर

से) काम का बीज-अक्षर (क्लिं); पृथ्वी का बीज-अक्षर (लं); माया का (ह्रीं); कामकला का निवास (ह से शुरू होने वाले छह अक्षर); चंद्रमा और सूर्य के बीज-अक्षर (सोऽहम्); काम का बीज-अक्षर (क्लिम्); शिव का (हं); महिमन का (सा); तीसरा (अर्थात हंस, सोऽहम् और हंस) - (एकीकृत), षण्मुख द्वारा पूजित इस मन्त्र का ध्यान दसवें धाम में करना चाहिए।

I-37: षण्मुख के बाद अगस्त्य के मन्त्र को दोहराने से अंतिम क्षेत्र पर शासन करने वाले सर्वोच्च शिव का मन्त्र प्राप्त होता है। इसका ध्यान ग्यारहवें धाम (अनुजनातिर की भावना में) में करना चाहिए।

I-38: वाग्भव के साथ अगस्त्य के मन्त्र को दोहराने से, कुबेर के मन्त्र को, कामकला के निवास को और लोपामुद्रा के मन्त्र से उत्पन्न शक्ति के संप्रभु समूह को दोहराने से, विष्णु के मन्त्र की प्राप्ति होती है। इसका ध्यान बारहवें धाम में (शुद्ध अनुज्ञा की भावना से) करना चाहिए। जो इस प्रकार जानता है (वह विष्णु बन जाता है)।

I-39: भगवान (सदाशिव) ने सभी देवताओं से कहा: (मेरे द्वारा बताए गए) मंत्र को सुनकर और अपने आप को यह स्पष्ट करके ('मैं ब्रह्म हूँ'), (ब्रह्म के अलावा कुछ भी नहीं है) जानो और (जो कुछ भी इसके अलावा प्रकट होता है) उसे ब्रह्म में बदल दो। सर्वोच्च विद्या, हृदय में दिव्यता को विराजमान करो - काम नामक दिव्यता, आदिपुरुष; जिसका रूप चौथा है; जो चौथे से परे है, जो सभी से बढ़कर है; जो पवित्र मंत्रों से पवित्र किए गए सभी स्थानों पर कब्जा करता है; जो मुख्य और अधीनस्थ स्थानों पर बैठे देवताओं से चारों ओर घिरा हुआ है;

जो सभी भागों (प्राण से लेकर नमन तक) में व्याप्त है; जो देवता आनंद से भरा हुआ है; जो परम आत्मा के साथ एक है; जो हृदय में स्थित है; अमरता जिसका वरदान है; जो पूर्ण है और इन्द्रियों से युक्त है; जो सदा ही उदित रहती है; जो तीन समूहों से युक्त है; जिसके तीन निवास हैं, और जो सर्वोच्च तथा सबसे उत्तम माया है; जो विष्णु की सर्वोच्च शक्ति है। हृदय के कमल के अग्रभाग में सर्वोच्च, पवित्र लक्ष्मी विराजमान हैं, माया सदैव उदित रहती है; जो अपने भक्तों की इन्द्रियों को वश में रखती है; जो प्रेम के देवता को अभिभूत करती है; जो धनुष-बाण से सुसज्जित है; जो वाक्पटुता को प्रेरित करती है; जो चन्द्रमा के मध्य में निवास करती है, अर्धचन्द्र से सुशोभित है, और सत्रह प्रजापतियों का वेश धारण करती है। वह महान है, सदा विद्यमान है।

उसके पाश और अंकुश वाले हाथ आकर्षक हैं। वह तीन नेत्रों वाली, उगते हुए सूर्य के समान चमकती है। हृदय में उन महालक्ष्मी का ध्यान करो, जो समस्त ऐश्वर्यों को धारण करती हैं तथा समस्त शुभ लक्षणों से युक्त हैं। उनका स्वरूप आत्मा है। वे दोषरहित हैं। उनका नाम त्रिकुटा है। उनका मुख मुस्कुराता है, वे सुन्दर हैं, महान माया हैं तथा अत्यंत आकर्षक हैं। वे बड़े-बड़े कुण्डलों से सुशोभित हैं। वे त्रिगुण आसन पर विराजमान हैं तथा अनाम पवित्र धाम श्रीपीठ में निवास करती हैं। वे महान भैरवी हैं, आत्मा की शक्ति हैं, महान त्रिपुरा हैं। महान ध्यान योग के द्वारा उनका ध्यान करो। जो उन्हें इस प्रकार जानता है, वह अपना जीवन पूर्ण कर लेता है। यह महान उपनिषद् है।

II-1: अतः 'हम सर्वज्ञ अग्नि के लिए सोम का दबाव करें' आदि श्लोक का उच्चारण करने पर मनुष्य त्रिपुरा की प्राप्ति करता है।

II-2: ऋषियों ने कहा: महिमापूर्ण श्लोक के आरंभ, मध्य और अंत में निहित व्यापक बीज-अक्षरों का स्वरूप स्पष्ट कीजिए, 'हम सर्वज्ञ अग्नि के लिए…

II-3: भगवान ने उनसे कहा: श्लोक बोलो, 'हम सर्वज्ञ अग्नि के लिए सोम को दबाएँ", आदि। आदिविद्या के अंतिम समूह (अर्थात् स का ल ह्रीं) को पीछे की ओर दोहराएँ। पहले समूह के पहले अक्षर (जैसे का) और दूसरे समूह के पहले अक्षर (जैसे हा) को लंबा करें। (दोनों को मिलाकर हमें का हा मिलता है)। 'हम सोम को दबाएँ"। वे कहते हैं कि (यह श्लोक उस अवस्था को संदर्भित करता है जिसमें) ब्रह्मांडीय अज्ञान गायब हो जाता है; यह सक्षम है (ब्रह्म के अलावा अन्य सभी कल्पित चीजों को बुझाने के लिए); यह सबसे उत्कृष्ट और आनंदमय है; यह महान महिमा है।

II-4: पहला समूह (जिसे वाग्भाव कहा जाता है), सभी समृद्धि के समान, वस्तुओं की दुनिया का उदात्तीकरण करता है; दूसरा समूह (काम के नाम पर) समर्थन करता है (वस्तुओं की दुनिया); तीसरा (शक्ति के नाम पर) इसे अस्तित्व में लाता है। इस प्रकार तीनों समूहों का ध्यान करके, मन को शुद्ध करके, त्रिपुर के मंत्र का स्पष्टीकरण करके, 'सर्वज्ञ अग्नि के लिए सोम का दबाव करें' आदि मंत्र का उच्चारण करता है; तब महाविद्याश्वरी के मंत्र नामक ज्ञान का उदय होता है।

II-5: त्रिपुरेश्वरी के मंत्र का आश्रय लेकर, जटावेदसे ['सर्वज्ञ अग्नि के लिए'] शब्द का उच्चारण करके तथा शिव के दिव्य तत्त्व को इंगित करने वाले

बिंदु को प्रणव के अ आदि स्वरों के साथ जोड़कर, वह सर्प-शक्ति प्राप्त करता है जो अमरता के साथ एक हो गई है और जिसने (रीढ़ की हड्डी के मूल में) त्रिभुजाकार रूप धारण कर लिया है।

II-6: इस प्रकार आदिविद्या के मुख्य तत्त्व में से प्रथम समूह (क से आरंभ) वाग्भव है; दूसरा (ह से आरंभ) कामकला है। जटा अक्षरों के उच्चारण से परम आत्मा स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होती है।

II-7: जटा आदि अक्षरों से परम (अविभेदित) आत्मा शिव का बोध होता है।

II-8: जन्म से ही कामनाओं में लीन होकर मनुष्य (प्रभुत्व) की कामना करता है। (इच्छाओं का त्याग करने पर) पूर्णता (स्वभाव की) प्राप्त होती है। (ऐसा ब्रह्म के ज्ञाता) कहते हैं।

II-9: उसी वस्तु (शिव की पूर्ण आत्मा) को हम तीन ला-स, पृथ्वी के बीजाक्षरों में स्थापित करके ठीक-ठीक घोषित करते हैं। तीन ला-स (जो अस्तित्व-ज्ञान-आनंद के सूचक हैं) के महत्व के प्रकाश में मंत्रों के अक्षरों को स्पष्ट करते हुए, प्रत्येक (तीनों समूहों के बीच में) गोत्र शब्द को समझना चाहिए। कहा जाता है कि शिव का सिद्धांत इस गोत्र में स्थापित किया गया है। इस प्रकार इसे स्पष्ट किया गया है।

इसके बाद कामकला (हा से शुरू होने वाला दूसरा समूह) आती है। शेष को वामम् (सक्षम) के संदर्भ में पहले की तरह स्पष्ट किया जा सकता है। इस प्रकार समझाया गया मंत्र सर्वरक्षक कहा जाता है।

II-10: इस प्रकार जटावेदसे आदि श्लोक के माध्यम से त्रिपुरेशी के इस मंत्र को स्पष्ट करने के बाद, केवल एक सर्वोच्च दिव्यता, प्रकाश शेष रह जाता है। या (यह तीन समूहों से मिलकर) मंत्र से उत्पन्न होता है। चौथे का वरदान दें (अर्थात इस तथ्य पर ध्यान दें कि तीन समूह शिव से स्वतंत्र रूप से मौजूद नहीं हैं)। भगवान की प्रकृति के साथ 'मैं' - भावना को पूरी तरह से पहचानें। तीनों समूहों में से प्रत्येक को सर्वरक्षक नामक मंत्र के साथ संबंधित करें। आत्मसन रूप के मंत्र को भी स्पष्ट करें। जटावेदसे आदि श्लोक को दोहराएं, और (एक बार फिर) सर्वरक्षक मंत्र को ध्यान में रखें। (सर्वरक्षक मंत्र के) आरंभिक और अंतिम पदों पर शिव और शक्ति का स्वरूप स्थापित करें।

यह जान लें कि जटावेदे आदि श्लोक में अक्षर सा का सार शक्ति है और सोम शब्द उस शक्ति का प्रतीक है जिसका सार शिव है। जो इसे जानता है वह महान हो जाता है।

II-11: इस प्रकार इस मंत्र का स्पष्टीकरण करें जो त्रिपुरा में स्थित है और जो वृत्ताकार आसन में स्थापित है। जटावेदे आदि श्लोक को दोहराएँ और त्रिपुरेश्वरी का मंत्र भी दोहराएँ जो सदैव आरोही है और जिसका सार शिव और शक्ति है, जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है। जटावेदे शिव का प्रतीक है और सा का सार अविनाशी शक्ति है।

त्रिपुर, सदा आरोही महालक्ष्मी का वर्णन करें, जो मंत्रों के आसन (ह और स द्वारा प्रतीक) पर विश्राम करती हैं, जो सूर्य और चंद्रमा को दर्शाती हैं, तीनों समूहों में व्याप्त हैं और शिव और आदि शक्ति के बीच में स्थित हैं। जटावेदसे सुनावम सोमम् आदि श्लोक को दोहराएँ, और वास्तविक आत्मा के आसन से जुड़े पिछले मंत्र को याद करें। वेद आदि शब्दों के साथ, (श्लोक में), अनिवार्य रूप से ह द्वारा निरूपित सूर्य के समान, आत्मा की सार्वभौमिक शक्ति (चिच्छक्ति) को दर्शाया गया है जो सदा आरोही है। इसके ऊपर बिन्दु लगाएँ (शिव सिद्धांत को दर्शाते हुए)। त्रिपुर के मंत्र को स्पष्ट करें, जो माला पहने हुए हैं, सिद्ध के आसन पर निवास करते हैं। जटावेदसे सुनवमा सोमम आदि श्लोक दोहराएँ। मनमोहक त्रिपुरा पर भरोसा करते हुए, अक्षरों का ला में (उसका) चिंतन करें।

त्रिपुर के देहधारी मन्त्र को स्पष्ट करें, जो सभी मन्त्रों पर प्रभुत्व रखते हैं। जटावेदासे आदि का जप करें और त्रिपुर, लक्ष्मी पर भरोसा करके अग्नि को भस्म कर लें।

II-12: त्रिपुर, माता, जो कि त्रिगुणात्मक प्रकाश की अधिष्ठात्री हैं, के मन्त्र को स्पष्ट करें, यह जानते हुए कि वे अग्नि के मुख से भस्म करती हैं।

II-13: इस प्रकार सा मह परसाद अति दुर्गानि विश्वा शब्दों से वे परम को प्रकाशित करती हैं, वे जो कि अंतरात्मा हैं। यहाँ उनका मन्त्र प्रभाव बनकर जयजयकार के कार्य में प्रयुक्त होता है। वे सभी प्रकार से सक्षम मानी जाती हैं।

II-14: इस प्रकार इन आठ मन्त्रों, जो कि दिव्य महामाया के ही अंग हैं, को स्पष्ट किया गया है।

II-15: देवताओं ने भगवान से कहा: हमें सबसे प्रमुख चक्र के बारे में बताइए, जो सभी इच्छाओं को बढ़ावा देता है, सभी का आराध्य है, सभी रूप धारण करता है, सभी दिशाओं का सामना करता है, और मुक्ति का द्वार है, जिसकी पूजा करके योगीजन (भेदों की गांठ) को काटकर परम ब्रह्म के अभेद रहित आनंद में पहुंच जाते हैं।

II-16: उनसे भगवान ने कहा: हम श्रीचक्र की अवधारणा को स्पष्ट करेंगे।

II-17: तीन शीर्षों वाला एक त्रिभुज बनाएं। इसमें एक रेखा लें, इसे लंबा करें, और इसके आगे एक त्रिभुज बनाएं। पहले त्रिभुज के आधार के समानांतर, लेकिन सभी के ऊपर, एक और त्रिभुज बनाएं। पहला त्रिभुज चक्र है, दूसरा मध्यवर्ती क्षेत्र है, और तीसरे पर, आठ त्रिभुज अंकित हैं।

II-18: फिर, मध्यवर्ती दिशाओं से आगे की रेखा को आगे बढ़ाते हुए, आठ तीलियों वाले पहिये के सिरों पर साध्य आदि के लिए रेखा को आगे बढ़ाएँ। ऊपरी भाग को त्रिभुजों से चिह्नित करें। बंद क्षेत्रों से ऊपर की ओर जाने वाली चार रेखाएँ खींचें। उचित क्रम में, दो मापने वाली रेखाओं के साथ, पहिया दस त्रिभुजों से चिह्नित हो जाता है।

II-19: उसी तरह, फिर से, दस तीलियों वाला पहिया आकार लेता है।

II-20: चौदह तीलियों वाला पहिया दस तीलियों के भागों तक लाई गई माप रेखा को जोड़कर आकार लेता है, केंद्रीय त्रिभुजों के चार शीर्षों को चार रेखाओं के छोर पर स्थित त्रिभुजों के साथ जोड़ने के बाद।

II-21: फिर क्रमशः आठ कमल, सोलह कमल और चार द्वारों वाले पृथ्वी-चक्र को आकार दें।

II-22: इस प्रकार निर्माण की प्रक्रिया द्वारा पहिया को स्पष्ट किया गया है।

II-23: मैं नौ आत्माओं से युक्त चक्र (तत्वों) को उल्टे क्रम में गिनता हूँ। पहला चक्र तीनों लोकों को मोहित करता है; इसमें आठ शक्तियाँ हैं जैसे परमाणु आकार ग्रहण करने की शक्ति आदि; इसमें आठ माताएँ हैं; इसमें सर्व-उत्तेजक शक्ति से शुरू होने वाला दशक है; आदि; यह प्रकट है, त्रिपुरा द्वारा अधिगृहीत है, और सर्व-उत्तेजक शक्ति के रहस्यमय चिह्न द्वारा इसकी विशेषता है।

II-24: दूसरा चक्र सभी अपेक्षाओं को पूरा करता है, सकाम से शुरू होने वाली सोलह आकर्षक शक्तियों के साथ संयुक्त है। यह अच्छी तरह से संरक्षित है, संप्रभु त्रिपुरा द्वारा अधिगृहीत है, और सर्व-प्रकीर्णन शक्ति के रहस्यमय चिह्न द्वारा इसकी विशेषता है।

II-25: तीसरा पहिया सभी को उत्तेजित करता है और कामदेव के आठ फूलों से सुशोभित है। यह बेहतर रूप से सुरक्षित है, सुंदर त्रिपुरा द्वारा अधिगृहीत है, और सर्व-मोहक शक्ति के रहस्यमय चिह्न द्वारा इसकी विशेषता है।

II-26: चौथा चक्र सभी को श्रेष्ठता प्रदान करता है; इसमें सर्व-उत्तेजक शक्ति के समान चौदह शक्तियां हैं; यह एक परंपरा से जुड़ा है; तीन पुरियों में निवास करने वाले द्वारा अधिष्ठित है, तथा यह सर्व-वशीकरण शक्ति के रहस्यमय चिह्न से चिह्नित है।

II-27: चौथा चक्र, चौथे से आगे, सभी उद्देश्यों को पूरा करता है; इसमें सभी सिद्धियों को प्रदान करने वाली दस शक्तियां हैं; इसमें कौल की पूर्णता है; इसमें महालक्ष्मी हैं जो त्रिपुरा हैं, तथा यह महान उत्तेजक शक्ति के रहस्यमय चिह्न से चिह्नित है।

II-28: छठा चक्र सभी की रक्षा करता है; इसमें सर्वज्ञता जैसे दस लक्षण हैं; यह अन्तरालों से रहित है; इसमें मालाधारी त्रिपुरा है; तथा इसमें महान अंकुश का चिह्न है।

II-29: सातवां चक्र सभी रोगों को दूर करता है; इसमें वशीकरण करने वाली आठ शक्तियां हैं; इसके अपने रहस्य हैं; तथा यह खेचरी के रहस्यमय चिह्न को धारण करता है।

II-30: आठवाँ चक्र सभी सिद्धियाँ प्रदान करता है; चार हथियारों और रहस्यों से युक्त है, उच्चतर और निम्नतर। यह माँ त्रिपुरा द्वारा आसीन है, और इसमें बीज का रहस्यमय चिह्न है।

II-31: नौवां मुख्य चक्र सभी आनंद से परिपूर्ण है और त्रिदेवों जैसे कामेश्वरी से संबद्ध है। यह अत्यंत रहस्यमय है, इसमें महान त्रिपुर, सुंदर है, और इसमें त्रिकोण का रहस्यमय चिह्न है।

II-32: सभी मीटर वास्तव में चक्र में तीलियों के रूप में चले गए हैं। यह चक्र श्रीचक्र है।

II-33: इसके केंद्र में, अग्नि के क्षेत्र में, सूर्य और चंद्रमा हैं। वहाँ अक्षर ॐ के आसन की पूजा करें। वहाँ बिंदु के रूप में अविनाशी है। आकाश के समान, और उसमें निहित सर्वोच्च मंत्र को याद करें। वहाँ महान त्रिपुर, सुंदर को लाओ। एक ही श्लोक के साथ उसकी प्रार्थना करें: देवी! दूध में नहाए हुए, चंदन के लेप से लिपटे हुए! देवी! बिल्वपत्रों से पूजित! दुर्गा! मैं आपकी शरण लेता हूँ। मायालक्ष्मी के मंत्र के साथ उसकी पूजा करें। इस प्रकार धन्य भगवान बोले।

II-34: इन मंत्रों से देवी की आराधना करो। तब वे प्रसन्न होकर स्वयं प्रकट होती हैं। अतः जो कोई इन मंत्रों से पूजा करता है, वह ब्रह्म को देखता है। वह सब कुछ देखता है और अमरता प्राप्त करता है - जो कोई ऐसा जानता है। यह महान उपनिषद है।

III-1: देवताओं ने भगवान से कहा: हम रहस्यमय चिह्न बनाएंगे। भगवान ने उनसे कहा: पद्मासन में बैठकर घुटनों के क्षेत्र को पृथ्वी को छूते हुए रहस्यमय चिह्न बनाओ।

III-2: जो त्रिभुज के रहस्यमय चिह्न को जानता है, वह सबको आकर्षित करता है; वह सब कुछ जानता है; सभी फलों का आनंद लेता है; वह सबको तोड़ देता है और दुश्मन को स्थिर कर देता है। वह मध्यमा को अनामिका के ऊपर रखते हुए, छोटी उंगलियों और अंगूठे को एक साथ लाता है, तर्जनी को नीचे की ओर इशारा करते हुए छड़ की तरह मुक्त छोड़ देता है। इस प्रकार पहला चिह्न (त्रिभुज) बनता है।

III-3: मध्यमा को जोड़ने पर दूसरा (बीज) बनता है।

तृतीय-4: तीसरा अंकुश जैसा आकार वाला है।

तृतीय-5: हथेलियों को विपरीत क्रम में रगड़ने पर, अंगूठे और तर्जनी को साथ लाने पर चौथा अंकुश बनता है (महांक)।

तृतीय-6: अंगूठे को मध्यमा अंगुली के नाखूनों से जोड़ने पर पांचवां (महांक) बनता है, तर्जनी से कनिष्ठिका पर रगड़ने पर तथा अनामिका को मध्यमा अंगुली से सीधा रखने पर।

तृतीय-7: अंकुश के समान नोक वाला छठा (सर्व-वशीकरण) बनता है।

तृतीय-8: बाएं हाथ को दाहिनी ओर आराम की मुद्रा में रखते हुए, अनामिका को कनिष्ठिका के मध्य में तथा मध्यमा को तर्जनी के ऊपर क्रॉस करके, अंगूठे सीधे रखते हुए, सातवां, खेचरी (सर्व-आकर्षित करने वाला) बनता है।

III-9: पूर्ण सीधी, पूर्ण पीछे हटने वाली मुद्रा में, प्रत्येक छोटी उंगली को उसकी मध्यमा और अनामिका के बीच के स्थान में रखते हुए, और तर्जनी को दोनों तरफ अंकुश के आकार में रखते हुए, और अंगूठे और हथेलियों को संपर्क में रखते हुए, आठवां बनता है (सर्व-बिखरने वाला)।

III-10: अनामिका उंगलियां मध्यमा उंगलियों के पीछे टिकी रहती हैं; मध्यमा उंगलियों को पकड़े हुए अंगूठे, जिन पर तर्जनी टिकी रहती हैं, बीच में रहते हैं - इस प्रकार नौवां बनता है (सर्व-उत्तेजक)।

III-11: छोटी उंगलियों को समान रूप से और अंगूठे को भी समान रूप से रखते हुए, रहस्यमय चिह्न के तीन भाग हो जाते हैं। पाँच बाण, पाँच जैसे रहस्यमय चिह्न, स्पष्ट हैं।

III-12: क्रोम अंकुश का बीज है; (हा, सा शिव और शक्ति के हैं; खा, संहार के; प्रेम, मोह के); हा, सा, खा, प्रेम, खेचरी के; ह (सूर्य का); स्त्रुं (इच्छा का); (क) वाग्भाव का प्रथम बीज नौवां है। (हा, कामकूट का प्रथम बीज) दसवां है। जो ऐसा जानता है (वह मंत्र में पारंगत हो जाता है)।

III-13: अतः अब हम उस चक्र का वर्णन करेंगे जो कामकला बन गया है। ह्रीं, क्लीं, ऐम, ब्लम, स्त्रुं - ये पांच इच्छाएं पूरे चक्र में व्याप्त हैं। बीच की इच्छा, ऐम को भूतकाल में लपेटो, स्त्रुं, (अर्थात् ऐम, स्त्रुं, ऐम)। इस समूह को ब्लम के भीतर रखो। दोनों मध्यवर्ती लक्ष्यों से चाही गई वस्तु को दुगुना बांधो और उन्हें बर्च की छाल में स्थापित करके पूजा करो। जो यह जानता है चक्र सब कुछ जानता है, वह सब लोकों को आकर्षित करता है, वह सब कुछ स्थिर कर देता है। नील रंग से रंगा हुआ चक्र शत्रुओं का नाश करता है, सबकी गति को रोकता है।

लाख से लेप करने से सब लोकों पर अधिकार हो जाता है। इस सूत्र का नौ लाख बार उच्चारण करने से रुद्र पद की प्राप्ति होती है। (चक्र को) उत्कीर्ण

चित्र में लपेटने से विजय प्राप्त होती है। त्रिभुजाकार अग्नि में निर्मित अग्नि में आहुति देने से स्त्रियों पर विजय प्राप्त होती है। छड़ या वृत्ताकार अग्नि में आहुति देने से अतुलनीय धन की प्राप्ति होती है। वर्गाकार अग्नि में आहुति देने से वर्षा होती है।

त्रिभुजाकार अग्नि में आहुति देने से शत्रुओं का नाश होता है, गति रुक जाती है। पुष्प चढ़ाने से विजय प्राप्त होती है। उत्तम स्वाद वाले पदार्थ अर्पित करने से परम आनंद की प्राप्ति होती है। उत्तम स्वाद ये छह स्वाद हैं।

तृतीय-14: हम आपका आह्वान करते हैं, सेनाओं के नेता, कवियों में सबसे प्रसिद्ध; राजाओं के प्रमुख, ब्राह्मणों में सबसे श्रेष्ठ; ब्राह्मणों के स्वामी, हमारी ओर ध्यान दीजिए। हमारे घरों में सुरक्षा के साथ आइए। इस स्तोत्र का उच्चारण करते हुए, ऊपर के बिंदु से ग का उच्चारण करते हुए शरीर को स्पर्श करें। गणेश को गं कहते हुए प्रणाम करें। ओम, दुर्जेय पराक्रम वाले, राख से लिपटे अंगों वाले धन्य भगवान को प्रणाम करें। मार डालो! मार डालो!! जला दो! जला दो!! भस्म कर दो! भस्म कर दो!! वश में करो! वश में करो!! मिटा दो! मिटा दो!! हल को तोड़ने वाले! त्रिशूल के पैर में, प्रतीक की सिद्धि को सुरक्षित करो। सूख जाओ! सूख जाओ!! पूर्वी समुद्र! स्थिर कर दो! स्थिर कर दो!! तुम जो सलाह, मशीनों, रणनीति, दूतों, दुश्मन की सेनाओं को बाधित करते हो, फाड़ दो! फाड़ दो!! काटो ! काटो !! ह्रीं, फट्, स्वाहा। इस प्रकार से क्षेत्र के स्वामी की पूजा करो।

तृतीय-15: हे कुलीन वंश की दासी! हम जानते हैं, हम एक करोड़ मंत्रों का ध्यान करते हैं; इतने सारे कुलों की शक्ति हमें सदैव प्रेरित करती है। इस प्रकार उस युवती की पूजा करते हुए, जो भी साधक ध्यान करता है, वह अमरता प्राप्त करता है। वह यश और पूर्ण जीवन प्राप्त करता है। अथवा, परम ब्रह्म को जानकर वह निवास करता है। जो इस प्रकार जानता है (वह फल प्राप्त करता है)। यह महान उपनिषद है।

चतुर्थ-1: देवताओं ने, वास्तव में, धन्य भगवान से कहा: हे प्रभु! त्रिपुरा से संबंधित सबसे उत्कृष्ट गायत्री का हृदय हमें समझाया गया है।

चतुर्थ-2: जातवेद के सूक्त में त्रिपुरा की आठ (विद्याओं) का वर्णन किया गया है। इस प्रकार उनकी पूजा करने से, योगी जीवन के बंधनों से मुक्त हो जाता है।

चतुर्थ-३: अब मृत्युंजय (मृत्यु पर विजय) के बारे में बताइए। इस प्रकार बोलते हुए सभी देवताओं के वचनों को सुनकर, अनुष्टुभ छन्द में त्र्यम्बक के स्तोत्र के माध्यम से मृत्यु पर विजय प्रकट होती है।

चतुर्थ-४: त्र्यम्बक शब्द कहाँ से उत्पन्न हुआ है? तीन पुरों का स्वामी होने के कारण वे त्र्यम्बक हैं।

चतुर्थ-५: 'आओ बलिदान करें' क्यों कहा? 'बलि' का अर्थ है 'पूजा', 'वास्तविकता की प्रशंसा', दो अक्षरों 'माहे' द्वारा। अपरिवर्तनीय एक अक्षर 'कम्' (त्र्यम्ब के बाद) द्वारा मृत्यु पर विजय व्यक्त की जाती है। इसलिए कहा जाता है: 'आओ बलिदान करें'।

चतुर्थ-६: अब 'सुगंधित' क्यों कहा? वह सभी ओर यश प्राप्त करता है। इसलिए उसे 'सुगंधित' कहा जाता है।

चतुर्थ-७: 'वृद्धि करता है' क्यों कहा जाता है? वह सभी लोकों का निर्माण करता है, सभी लोकों का उद्धार करता है, सभी लोकों में व्याप्त है। इसलिए उन्हें वृद्धि बढ़ाने वाला कहा गया है।

IV-8: 'ककड़ी के फल की तरह... मुझे मुक्ति मिले' क्यों कहा गया है? जैसे ककड़ी डंठल से मजबूती से बंधी रहती है, वैसे ही (मनुष्य) मजबूती से बंधा रहता है, और वह मृत्यु से, आवागमन के बंधन से मुक्त हो जाता है; वह मुक्त हो जाता है।

IV-9: 'अमरता तक' क्यों कहा गया है? व्यक्ति अमरता प्राप्त करता है, अविनाशी को प्राप्त करता है; वह
रुद्र बन जाता है।

IV-10: देवताओं ने धन्य भगवान से वास्तव में कहा: सब कुछ हमें समझाया गया है। अब हमें शिव, विष्णु, सूर्य, गणेश से संबंधित वे सभी मंत्र बताएं, जिनके उच्चारण से भगवती प्रकट होंगी
स्वयं।

IV-11: धन्य भगवान ने कहा:श्लोक-मात्र में 'त्र्यम्बक' के साथ मृत्यु को जीतने वाले की पूजा करो;यह निर्धारित किया गया है कि एक अक्षर व्याप्त है, जैसा कि पहले दिखाया गया है।

IV-12: जो यजु के मंत्र, ‘ओम, शिव को नमस्कार’ के साथ पूजा करता है, वह रुद्र पद प्राप्त करता है और धन्यता प्राप्त करता है। जो ऐसा जानता है (ऐसा करता है)

।IV-13: विष्णु का वह परम धाम, आकाश के पार एक आँख की तरह, बुद्धिमान हमेशा देखता है।

।IV-14: विष्णु सभी दिशाओं का सामना करते हैं। जैसे तिल की गेंद को तेल घेरता है और भरता है, वैसे ही वे (सभी चीजों) में व्याप्त हैं।उनका परम धाम उच्च आकाश है। बुद्धिमान, अर्थात् ब्रह्मा जैसे देवता, इसे देखते हैं, यानी इसे हमेशा के लिए हृदय में रखते हैं। इसलिए, विष्णु का अपना रूप उनके सभी प्राणियों में रहने, विद्यमान होने से उत्पन्न हुआ है। वह वासुदेव (सबमें निवास करने वाला देवता) है।

IV-15: ओम नमः में तीन अक्षर हैं। भगवते में चार अक्षर हैं। वासुदेवाय में पाँच अक्षर हैं। यह वासुदेव का बारह अक्षरों वाला मंत्र है। वह (जो इसे जानता है) सभी कष्टों को पार कर जाता है, पूर्ण जीवन जीता है, प्राणियों पर प्रभुत्व प्राप्त करता है, और धन और पशुओं का आनंद उठाता है।

IV-16: प्रणव का गठन करने वाले अक्षर अ, उ और ध्यान आंतरिक आनंद, सर्वव्यापी ब्रह्म को दर्शाते हैं। उन्हें एक साथ रखने पर, ओम बनता है।

IV-17: शुद्ध आकाश में तैरता हंस, वायुमंडल में रहने वाला, वेदी के पास यज्ञ करने वाला, घर में आने वाला अतिथि, मनुष्यों में, महान चीजों में रहने वाला, दाईं ओर और आकाश में; जल में पैदा हुआ, प्रकाश में, दाईं ओर, पहाड़ों में पैदा हुआ; सही, महान - (वह भगवान हैं)।

IV-18: वह सभी फलों को जीतता है जो सूर्य के पिछले मंत्र को शक्तियों के साथ दोहराता है, अर्थात् सुबह, शाम, बुद्धि, जो सच्चे, व्यवस्थित, सन्निहित प्रकाश हैं। सूर्य के मंत्र में अन्य सभी चमकदार शब्दों द्वारा इसे बरकरार रखा जाता है। 'जल में पैदा हुआ', आदि जैसे शब्द शक्तियों को दर्शाते हैं। वह सूर्य से संबंधित उच्च निवास, स्वर्ग में रहता है।

IV-19: पहले दिए गए मंत्र (III-14), 'हम आपको बुलाते हैं, सेनाओं के नेता', आदि के साथ, त्रैस्तुभ छंद में, एकाक्षर के साथ, सेनाओं के भगवान की पूजा करते हैं, व्यक्ति गणेश की स्थिति प्राप्त करता है।

चतुर्थ-20: इसके बाद गायत्री, सावित्री, अघोषित मंत्र (अजपा), सरस्वती, मातृका (या वर्णमाला) रखी गई है: इसके द्वारा, यह सब व्याप्त हो गया है।

चतुर्थ-21: ऐं, वाणी की देवी! हम जानते हैं; क्लीं, इच्छा की देवी! हम ध्यान करते हैं; सौ, शक्ति हमें प्रेरित करे। इस प्रकार, सुबह में, गायत्री, दोपहर में, सावित्री; और शाम को, सरस्वती। अजपा, 'हंस', अघोषित (बिना रुके) जपा जाता है। अ से क्ष तक पचास अक्षरों वाली मातृका, सभी शब्दों, सभी शास्त्रों, सभी वेदों में व्याप्त है। देवी सभी चीजों में व्याप्त हैं। उन्हें प्रणाम, प्रणाम!

चतुर्थ-22: धन्य भगवान ने उनसे कहा: जो कोई इन मंत्रों के साथ देवी की निरंतर स्तुति करता है, वह सभी चीजों को देखता है। जो यह जानता है, वह अमरत्व प्राप्त करता है। यह उपनिषद है।
V-1: देवताओं ने, सचमुच, धन्य भगवान से कहा: हमें स्पष्ट रूप से गतिविधियों पर अनुभाग और सभी संबंधित विषयों के साथ त्रिपुरा से संबंधित क्या है, समझाया गया है। अब हमें निर्गुण परम के बारे में बताएं।

V-2: धन्य भगवान ने उनसे कहा: चौथी और अंतिम माया (अविद्या, ज्ञान, विज्ञान) के माध्यम से और सम्यग्ज्ञान), में परम ब्रह्म का संकेत किया गया है, परम व्यक्ति, परम आत्मा, जिसका सार चेतना है। श्रोता, विचारक, द्रष्टा, शिक्षक, स्पर्शक, उद्घोषक, जाननेवाला, परम ज्ञाता, सभी व्यक्तियों में आंतरिक व्यक्ति - उस आत्मा को पहचानना चाहिए।

श्लोक 3: उसमें न तो दृश्य जगत है और न अदृश्य; न देवता हैं न राक्षस; न पशु हैं न पशु; तपस्वी हैं न तपस्वी; बहिष्कृत हैं न बहिष्कृत; ब्राह्मण हैं न गैर ब्राह्मण। अकेला और एकाकी, परम ब्रह्म, सर्व-शान्त, चमकता है। वहाँ देवता, द्रष्टा, पितरों का कोई वास नहीं है। जागृत ज्ञाता, सर्वज्ञ ब्रह्म है।

श्लोक 4: इस संदर्भ में निम्नलिखित श्लोक हैं: इसलिए मुक्ति के साधक को अपने मन को विषय से हटा लेना चाहिए; क्योंकि, मुक्ति वास्तव में मन का विषयों से अलग हो जाना है।

5: मन दो प्रकार के होते हैं: शुद्ध और अशुद्ध; अशुद्ध मन, कामनाओं से भरा हुआ, शुद्ध इच्छाओं से मुक्त।

6: मन ही मनुष्य के बंधन और मुक्ति का कारण है; बंधन है विषयों से चिपके रहना; मन उससे दूर हो जाने पर मुक्ति मिलती है।

7: विषयों से आसक्ति से रहित और हृदय तक सीमित मन इस प्रकार मन नहीं रह जाता है ऐसी सर्वोच्च अवस्था है।

8: मन को तब तक नियंत्रित करें जब तक कि हृदय में शांति न आ जाए। यही ज्ञान और ध्यान है; बाकी सब केवल शब्द हैं।

9: ब्रह्म न तो अकेले सोचने योग्य है, न ही अकल्पनीय; सोचो मत; फिर भी, केवल सोचो; इस प्रकार, निश्चित रूप से, सभी के लिए समान ब्रह्म बन जाओ।

10: योगी स्वयं को स्वयं में समाहित कर लेता है, ध्यान (उच्च) के माध्यम से; अनात्मा का ध्यान करना बिल्कुल भी ध्यान नहीं माना जाता है।
श्लोक 11: वह ब्रह्म बिना किसी भाग के है अवधारणाओं से परे है, दोष रहित है।धीरे-धीरे 'मैं वह हूँ' को जानने पर एक ब्रह्म बन जाता है।

श्लोक 12: उसे अवधारणाओं से परे,अंतहीन, बिना कारण या समानांतर के रूप में जानने पर;अपर्याप्त और अनादि,ज्ञानी व्यक्ति मुक्त हो जाता है।
श्लोक 13: कोई प्रतिबंध नहीं है, कोई उत्पत्ति नहीं है;कोई बंधन में नहीं है: कोई भी प्रयास करने वाला नहीं है;कोई भी मुक्ति नहीं चाहता है; हाँ, कोई भी नहींमुक्त - यह सत्य है।
श्लोक 14: जाग्रत अवस्था में, स्वप्न में, सुषुप्ति मेंजानें कि आत्मा एक ही है;जो इन अवस्थाओं से परे चला जाता है, उसके लिए पुनर्जन्म नहीं होता।
श्लोक 15: एक ही वास्तविक आत्मा है विविध प्राणियों में; एक के रूप में, या अनेक के रूप में, जैसे जल की चमक में चंद्रमा दिखाई देता है।
श्लोक 16: जैसे घड़े को हिलाने पर,घड़े में बंधा आकाश नहीं हिलता
वैसे ही सजीव आत्मा भी स्थिर रहती है,जैसे घड़ा हिलने पर भी आकाश नहीं हिलता।
श्लोक 17: जब भिन्न-भिन्न रूपों में दोहराया जाता है,घड़े से घड़े की तरह, वह इन विभाजनों में नहीं जानता,और फिर भी हर समय जानता है।
श्लोक 18: जब तक शब्दों का भ्रम एक को घेरे रहता है,तब तक भेद बना रहता है;जब अंधकार बिखर जाता है,तो एकता ही दिखाई देती है।
श्लोक 19: निम्न ब्रह्म शब्द है; जब वह मिट जाता है,तो शाश्वत रहता है; उसका ज्ञाता मन की शांति के लिए,शाश्वत का ध्यान करेगा।

श्लोक 19: निम्न ब्रह्म शब्द है;शाश्वत, जब वह मिट जाता है,तो रहता ...
श्लोक 20: दो ब्रह्मों पर विचार करना चाहिए:शब्द और परम ब्रह्म;
शब्द में पारंगत होकर, व्यक्ति परम ब्रह्म को प्राप्त करता है।
श्लोक 21: ग्रंथों के अध्ययन के बाद, तीव्र मन,ज्ञान और बुद्धि पर ध्यान केंद्रित करता है,सब कुछ त्याग देता है, जैसे अन्न की खोज करने वाला व्यक्ति भूसी को त्याग देता है।
श्लोक 22: दूध का रंग एक ही होता है भले ही वह विभिन्न गायों से प्राप्त हो;
जैसे दूध ज्ञान है,उसका स्रोत गायों के समान है।
श्लोक 23: ज्ञान की आँख को केन्द्रित करते हुए यह विचार जगाएँ: 'मैं ब्रह्म हूँ,वह महान, परम धाम हूँ, जिसके कोई अंग या गति नहीं है, वह शांत है।'
श्लोक 24: जो इस प्रकार ब्रह्म के एक परम रूप को जानता है, वह सब प्राणियों में निवास करने वाला चौथा ब्रह्म है, वह अविनाशी परम धाम में निवास करता है।
25: मैं जीवन के लिए इस चौथी ज्ञानशक्ति की शरण लेता हूँ, जो ब्रह्म की अभिव्यक्ति का कारण है।
26: आकाश आदि के क्रम में आकाश ही इन सभी तत्वों का सर्वोच्च स्रोत है। ये सभी प्राणी आकाश से ही उत्पन्न होते हैं और आकाश में ही विलीन हो जाते हैं। जन्म लेने के बाद वे इसी के कारण जीवित रहते हैं। इसलिए आकाश को ही बीज जानो।
27: उसी को आकाश, वायु, अग्नि, जल और रत्नों का स्थान जानो। जो इसे जानता है, वह अमरत्व प्राप्त करता है।
V-28: इसलिए, जो कोई कामराज (मुक्ति में आत्मा) की महिमा से संबंधित इस चौथी (ज्ञान या विद्या) को उसके ग्यारह गुना अविनाशी ब्रह्म रूप के साथ जानता है, वह चौथी अवस्था को प्राप्त करता है - जो कोई इसे जानता है। यह महान उपनिषद है। ॐ ! देवताओं! कानों से हम अच्छा सुनें;

आराध्य! आँखों से हम अच्छा देखें।स्थिर अंगों से, स्तुति करते हुए शरीर से,
देवताओं द्वारा आवंटित जीवन का आनंद लें।व्यापक प्रसिद्धि वाले इंद्र हमें कल्याण प्रदान करें;पूसन और सभी देवता हमें कल्याण प्रदान करें।
निर्बाध गति वाले तार्क्ष्य हमें कल्याण प्रदान करें।बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें।ॐ ! शांति! शांति! शांति!

यहाँ अथर्ववेद में शामिल त्रिपुरा-तापिनी उपनिषद समाप्त होता है।

081 - देवी उपनिषद

ॐ ! देवगण ! कानों से हम शुभ सुनें;

पूज्य ! नेत्रों से हम शुभ देखें।

स्थिर अंगों से, स्तुति करते हुए शरीर से,

देवताओं द्वारा निर्दिष्ट जीवन का आनंद लें।

विख्यात इंद्र हमें कल्याण प्रदान करें;

पूसन और सभी देवता हमें कल्याण प्रदान करें।

निर्बाध गति वाले तारक्य हमें कल्याण प्रदान करें।

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें।

ॐ ! शांति ! शांति ! शांति !

1. सभी देवताओं ने देवी की सेवा की (और पूछा): 'महादेवी, आप कौन हैं?'

2. उन्होंने उत्तर दिया: मैं मूलतः ब्रह्म हूँ। मुझसे ही प्रकृति और पुरुष, शून्य और पूर्णता से युक्त जगत उत्पन्न हुआ है। मैं आनंद और अआनंद (सभी रूप) हूँ। ज्ञान और अज्ञान मैं ही हूँ। अथर्वन का शास्त्र कहता है कि ब्रह्म और अब्रह्म को जानना चाहिए।

3. मैं पाँच तत्व हूँ और उनसे भिन्न भी। मैं सम्पूर्ण जगत हूँ। मैं वेद भी हूँ और उससे भिन्न भी। मैं अजन्मा हूँ, मैं जन्मा हूँ। मैं नीचे, ऊपर और चारों ओर हूँ।

4. मैं रुद्रों और वसुओं के साथ, आदित्यों और विश्वेदेवों के साथ विचरण करता हूँ।मित्र और वरुण, इंद्र और अग्नि, मैं दोनों अश्विनों का पालन करता हूँ।

5. मैं सोम, त्वष्टीर, पूसन और भग,चौड़े-चौड़े कदम रखने वाले विष्णु, ब्रह्मा, प्रजापति का पालन करता हूँ।6. उत्साही यज्ञकर्ता को आहुति देकर सोम-रस का रस पीने से मैं धन प्रदान करता हूँ;मैं राज्य हूँ, धन का लाने वाला;सबसे ऊपर, मैं उसका रक्षक हूँ।

7. जो भीतरी समुद्र के जल में मेरे तत्व को जानता है,वह देवी के धाम को प्राप्त करता है।

8. उन देवताओं ने कहा:देवी को नमस्कार, महान देवी!शिव को, जो मंगलमय हैं, नमस्कार, सदैव।

प्रकृति को नमस्कार!

हम सदैव उन्हें नमन करते हैं।

9. मैं उनकी शरण चाहता हूँ, जो अग्नि के समान रंग की हैं,तपस्वी उत्साह से जलती हुई, देवि जो देवि हैं,

कर्मों के फल में आनंदित; हे तुम, जिन तक पहुँचना कठिन है,

अपनी उदासी दूर करो।

10. देवताओं ने दिव्य वाणी उत्पन्न की;

उसके द्वारा सभी प्रकार के पशु बोलते हैं;

वह गाय जो मीठे फल और शक्ति प्रदान करती है

हमारे लिए प्रशंसनीय वाणी प्रकट हो।

11. पवित्र शिव को, दक्ष की पुत्री को,

अदिति और सरस्वती को,

स्कंद की माता को,

विष्णु की शक्ति को,

ब्रह्मा द्वारा प्रशंसित मृत्यु की रात्रि को,

हम प्रणाम करते हैं।

12. हम महान लक्ष्मी को,

सौभाग्य की देवी को जानते हैं;

हम सभी सिद्धियों का ध्यान करते हैं।

देवी हमें प्रेरणा दें!

13. आपके द्वारा, दक्षायनी, अदिति का जन्म हुआ;वह आपकी पुत्री है; उसके जन्म के बाद शुभ देवता,अमर मित्र हुए।

14. प्रेम, गर्भ, प्रेम का अंग, वज्र का वाहक गुफा, ह-सा, वायु, बादल, इंद्र;फिर गुफा, माया के साथ स-का-ला इस प्रकार सभी को जन्म देने वाली पूर्ण आदिम विज्ञान चलती है।

15. यह आत्मा की शक्ति है, जो सभी को मोहित करती है, पाश, अंकुश, धनुष और बाण से सुसज्जित है।यह महान और पवित्र विज्ञान है।

16. जो इस प्रकार जानता है, वह दुःख से पार हो जाता है।

17. देवी माँ! आपको नमस्कार है; सभी संभव तरीकों से हमारी रक्षा करें।

18. वे, यहाँ, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य हैं, वे सभी देवता हैं, (वे) जो सोम पीते हैं और (वे) जो नहीं पीते हैं; वह भूत-प्रेत, राक्षस, दुष्ट प्राणी, भूत-प्रेत हैं; वह अतिमानवीय, अर्ध-दिव्य भी हैं। वह सत्व, रजस और तम हैं। वह प्रजापति, इंद्र और मनु हैं। वह ग्रह, तारे और प्रकाशमान क्षेत्र हैं। वह काल के विभाग हैं और आदि काल का स्वरूप हैं। मैं उन्हें सदैव नमस्कार करता हूँ:

19. देवी जो दुखों का नाश करती हैं सुख और मुक्ति दोनों प्रदान करती हैं, अनंत, विजयी, शुद्ध, शिव, शरणागत, कल्याण प्रदान करने वाली।

20. देवी के मंत्र का सर्वशक्तिशाली बीज, 'मैं' और अग्नि से युक्त आकाश है, अर्धचंद्र से सुशोभित है।

21. एक-अक्षर वाले मंत्र पर शुद्ध हृदय वाले ऋषिगण ध्यान करते हैं, परम आनंदित; ज्ञान के सागरों के समान।
22. वाणी से निर्मित; ब्रह्म से उत्पन्न; छठी मुख से सुसज्जित; सूर्य; बायां कान जहां बिंदु है; आठवीं और तीसरी संयुक्त।

23. नारायण से संयुक्त वायु,और होठ से; विच्छे, नौ अक्षर;अक्षर, ऊँचे लोगों को प्रसन्न करेगा।

24. कमल-हृदय में विराजमान,प्रातःकालीन सूर्य के समान तेजस्वी,देवी, पाश और अंकुश धारण करती हुई,भाव से वरदान देती हुई, भय को दूर करती हुई;कोमल, तीन नेत्रों वाली, लाल वस्त्र धारण करती हुई, भक्तों को उनके हृदय की इच्छाएं प्रदान करती हुई,मैं आपकी आराधना करता हूँ।

25. हे देवी, मैं आपको नमन करता हूँ,आप भयंकर भय को दूर करने वाली,बाधाओं को हरने वाली;आप महान दया के स्वरूप को धारण करने वाली हैं।

26. ब्रह्मा और अन्य लोग उसके सार को नहीं जानते; इसलिए उसे अज्ञेय कहा जाता है। उसका कोई अंत नहीं है; इसलिए उसे अनंत कहा जाता है। उसे समझा नहीं जा सकता, इसलिए उसे अज्ञेय कहा जाता है। उसका जन्म अज्ञात है, इसलिए उसे अजन्मा कहा जाता है। वह अकेली ही सर्वत्र विद्यमान है, इसलिए उसे एक कहा जाता है। वह अकेली ही सभी रूपों को धारण करती है, इसलिए उसे अनेक कहा जाता है। इन कारणों से उसे अज्ञेय, अनंत, अज्ञेय, अज्ञात, एक और अनेक कहा जाता है।

27. देवी सभी मंत्रों की स्रोत हैं: सभी शब्दों में ज्ञान उनका रूप है। उनका चेतन रूप सभी ज्ञान से परे है; वे सभी शून्यता की साक्षी हैं।

28. उनके परे कुछ भी नहीं है; वे प्रसिद्ध हैं, अगम्य हैं; जीवन से भयभीत हैं, मैं उन दुर्गम को नमन करता हूँ, सभी पापों से रक्षा करने वाली; वे पथप्रदर्शक हैं जो मुझे सांसारिक जीवन के सागर से पार उतारते हैं।

29. जो इस अथर्व उपनिषद् का अध्ययन करता है, उसे पाँच (अन्य) अथर्व उपनिषद् के जप का फल मिलता है; जो इस अथर्व उपनिषद् में निपुण होकर उपासना में लगा रहता है।

30. इस विद्या के दस लाख जप भी उपासना के फल से कम हैं। इसके आठ सौ पाठ ही इस अनुष्ठान का उद्घाटन हैं।

31. जो इसे दस बार पढ़ता है, वह तुरन्त पापों से मुक्त हो जाता है; महान देवी की कृपा से वह बड़ी-बड़ी बाधाओं को पार कर जाता है।

32. प्रातःकाल इसे पढ़ने से रात्रि के पाप नष्ट हो जाते हैं; सायंकाल में इसे पढ़ने से दिन में किए गए पाप नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार सायंकाल और प्रातःकाल दोनों समय इसे पढ़ने से पापी पापमुक्त हो जाता है। इसे मध्य रात्रि में पढ़ने से भी, जो चौथा 'संयोग' है, वाणी की सिद्धि होती है। किसी नई प्रतिमा के समक्ष इसका पाठ करने से देवता की उपस्थिति होती है। (प्रतिमा की) प्राण प्रतिष्ठा के समय इसका पाठ करने से यह ऊर्जा का केन्द्र बन जाता है। अश्विनी नक्षत्र में मंगलवार को महान देवी की उपस्थिति में इसका पाठ करने से, जो ऐसा जानता है, वह मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है। यही रहस्य है।ॐ ! देवो ! कानों से हम शुभ बातें सुनें हे प्यारे! हम अपनी आँखों से देखें कि क्या अच्छा है।

स्थिर अंगों से, स्तुति करते हुए शरीर से,

देवताओं द्वारा दिए गए जीवन का आनंद लें।

विख्यात इंद्र हमें कल्याण प्रदान करें;

पूसन और सभी देवता हमें कल्याण प्रदान करें।

निर्बाध गति वाले तारक्य हमें कल्याण प्रदान करें।

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें।

ॐ ! शांति ! शांति ! शांति !

यहाँ अथर्ववेद में शामिल देवी उपनिषद समाप्त होता है।

082 - त्रिपुरा उपनिषद

ओम! वाणी मेरे विचार (मन) में निहित है और मेरा विचार मेरी वाणी में निहित है।

मेरे लिए स्पष्ट, प्रत्यक्ष बनो; तुम दोनों मेरे लिए वेद के आधार बनो।

वैदिक विद्या मुझे न छोड़े।

इस सिद्ध विद्या के साथ, मैं दिन को रात से जोड़ता हूँ।

मैं वही बोलूँगा जो सही है; मैं वही बोलूँगा जो सत्य है।

वह मेरी रक्षा करे; वह वक्ता की रक्षा करे।

वह मेरी रक्षा करे।

वह वक्ता की रक्षा करे, वक्ता की रक्षा करे!

ओम! शांति! शांति! शांति!

1. वहाँ तीन शहर हैं, और सभी के लिए तीन रास्ते हैं।

(भाग्य के मंच पर) अ, क, थ और अन्य अक्षर हैं।

उनमें कभी बूढ़ा न होने वाला, प्राचीन,

देवताओं की अत्यधिक महिमा निवास करती है।

2. उसके अधीन जिसके स्रोत नौ हैं चमकते हुए नौ केंद्र और नौ योग,नौ देवता और ग्रहों के अधिपति नौ,कोमल उपचारक देवता नौ और इशारे नौ।

3. वह एक थी, सबसे आगे;वह नौ, उन्नीस और उनतीस थी;चालीस, वह; तीन उज्ज्वल ऊर्जाएँ,स्नेही माँ के प्यार की तरह, मुझे घेर लें।

4. शुरुआत में प्रज्वलित प्रकाश था;उदासी और गति अजर-अमर के चारों ओर फैली हुई थी;चाँदनी खुशी और आनंद देती है; ये क्षेत्र वास्तव में (ब्रह्म के जानकारों) को सुशोभित करते हैं।

5. तीन रेखाओं, निवासों, तीन दुनियाओं और तीन क्षेत्रों में से त्रिगुणात्मक घटकों के साथ (वह सहारा है)।कोशों में तीन का यह समूह प्रमुख है।रहस्यमय शब्दों से बनाए गए चित्र मेंभाग्य की देवी के साथ प्रेम के देवता निवास करते हैं।

6. उल्लासित और अभिमानी,शुभ, भाग्यशाली और प्यारे,पूर्ण, शर्मीले, बुद्धिमान,संतुष्ट, चुने हुए और पूर्ण,धनवान, निषिद्ध, कृपालु,वाक्पटु - (ये चेतना पर प्रतीक्षा करते हैं)।

7. इस प्रकार उपस्थित चेतना की शक्ति अमरता के घूंट से नशे में है;
उसे जानकर और उसके सिंहासन की पूजा करके (उसके भक्त) स्वर्ग की महान तिजोरी पर निवास करते हैं और सर्वोच्च त्रिगुणात्मक शहर में प्रवेश करते हैं।

8. इच्छा, गर्भ, इच्छा का अंक, वज्र चलाने वाला, गुफा, हवा, बादल, स्वर्ग का राजा, फिर से गुफा, सा का ला और माया ऐसी है आदिम बुद्धि, सबको गले लगाती हुई, विशाल ब्रह्मांड की माँ।

9. गुप्त रूप से अपने तीन मूल अक्षर बोलना छठा, सातवाँ और आठवाँ उपनिषदों के विषय भगवान की स्तुति करना द्रष्टा, निर्माता, स्वतंत्र इच्छा, (साधक) अमरता की स्थिति प्राप्त करते हैं।

10. ब्रह्मांड की माँ अपने निवास को बनाए रखती है - विध्वंसक का चेहरा, सूर्य का चक्र, ध्वनियों का मूल, समय की अवधि, शाश्वत, आधा चंद्र महीना; सोलह के साथ (वह उनके निवास के मूल को बनाए रखती है)।

11. अथवा कामना के अंक की पूजा उसके अनेक रूपों में, तीन गुफ़ाओं में विराजमान तथा गोल स्तनों और मुखों के चिह्नों में, कामनाओं से युक्त मनुष्य जो चाहता है, उसे प्राप्त करता है।

12. मछली, बकरे का मांस, पका हुआ चावल, मैथुन का सुख, जो देवी को महान अर्पण करता है, वह अपने लिए पुण्य और सफलता प्राप्त करता है।

13. (सरस्वती) सुन्दरी और (लक्ष्मी) जगत जननी, (गौरी), गुलाबी, आदि शक्ति, जगत को वापस लेने वाली, जो आसक्ति के मार्ग पर चलने वाले प्राणियों को पाश से बाँधती है, तथा धनुष और बाण से पाँच प्राणियों को शीघ्रता से मार गिराती है।

14-15. चेतना की शक्ति और कामना के स्वामी, शुभ शक्तियों के स्वामी, दोनों के समान हैं, समान पराक्रम वाले, समान ऊर्जा वाले, यहाँ सौभाग्यशाली को दान देते हैं। उन दोनों में से अजर-अमर शक्ति, विश्व का गर्भ, ज्ञान अर्पण से प्रसन्न साधक के दोहरे आवरण को हटाता है।मन को मोह के घेरे से हटाकर वह सृष्टिकर्ता, रक्षक,संसार का निरोधक बन जाता है;नहीं, वह ब्रह्माण्डीय सत्ता के साथ एक हो जाता है।

16. यह त्रिपुरा का महान उपनिषद् है,अविनाशी, जिसकी महिमामयी वाणी में ऋग्, यजु, सामन, अथर्वण तथा अन्य ज्ञान रूप स्तुति करते हैं।
ॐ, ह्रीं, ॐ, ह्रीं - इस प्रकार गुप्त सिद्धांत समाप्त होता है।ॐ! वाणी मेरे विचार (मन) में निहित है और मेरा विचार मेरी वाणी में निहित है।मेरे लिए प्रत्यक्ष बनो, प्रत्यक्ष बनो; तुम दोनों मेरे लिए वेद के आधार बनो।

वैदिक विद्या मुझे न छोड़े।इस सिद्ध विद्या के द्वारा मैं दिन को रात से जोड़ता हूँ।मैं वही बोलूँगा जो सही है; मैं वही बोलूँगा जो सत्य है।वह मेरी रक्षा करे; वह वक्ता की रक्षा करे।वह मेरी रक्षा करे।वह वक्ता की रक्षा करे, वक्ता की रक्षा करे!ॐ ! शांति ! शांति ! शांति !

यहाँ ऋग्वेद में सम्मिलित त्रिपुर उपनिषद् समाप्त होता है।

<u>083 - कथारुद्र उपनिषद</u>

ॐ ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;
हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,
हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;
हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से घृणा न करें)।
ॐ ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!
1. ऐसा कहा जाता है कि देवताओं ने पूज्य (ब्रह्मा) से प्रार्थना की: पूज्य महोदय, हमें आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करें। प्रजापति ने उत्तर दियाः

2. शिखा सहित केशों को हटाकर तथा जनेऊ को हटाकर अपने पुत्र की ओर देखकर यह कहेः 'तू शास्त्र है, तू यज्ञ है, तू वसत्कार है, तू ॐ अक्षर है, तू स्वाहा है, तू स्वधा है, तू कर्ता है और तू ही सृष्टिकर्ता है।' तब पुत्र कहेः 'मैं शास्त्र हूँ, मैं यज्ञ हूँ, मैं वसत्कार हूँ, मैं ॐ अक्षर हूँ, मैं स्वाहा हूँ, मैं स्वधा हूँ, मैं कर्ता हूँ और मैं सृष्टिकर्ता हूँ, मैं दिव्य शिल्पी (त्वष्टिर) हूँ, मैं आधार हूँ।' ये शब्द (उच्चारण करने योग्य) हैं। (पुत्र से) विदा होते समय उसे आँसू नहीं बहाने चाहिए।

यदि वह आँसू बहाएगा तो वंश की वंशावली टूट जाएगी। वह अपने गांव की दक्षिणावर्त परिक्रमा करके तथा किसी भी चीज की ओर न देखते हुए प्रस्थान करेगा। ऐसा व्यक्ति ब्रह्मलोक के योग्य होता है।

3. ब्रह्मचारी विद्यार्थी बनकर वेदों का अध्ययन करके, शास्त्रों में बताए गए कर्तव्यों का पालन करके, विवाह करके, पुत्र उत्पन्न करके तथा उन्हें उपयुक्त साधन प्रदान करके, यथाशक्ति यज्ञ करके, ज्येष्ठों तथा संबंधियों की आज्ञा से संन्यास धारण करेगा। वन में पहुंचकर वह अग्नि में दूध की आहुति देकर बारह रातों तक अग्निहोत्र करेगा; बारह रातों तक वह दूध पर निर्वाह करेगा। बारह रातों के अंत में, लकड़ी के बर्तन, जो उपयोग में नहीं आते, उन्हें इस मंत्र के साथ अग्नि में अर्पित कर देगा: 'यह वैश्वानर अग्नि में पके हुए चावल की आहुति है, प्रजापति को, (यह) विष्णु और अग्नि को तीन ठीकरों में नियुक्त आहुति है।'

मिट्टी के बर्तनों को जल में डाल दिया जाएगा; धातु वाले गुरु को इस मंत्र के साथ दिए जाएंगे: 'मुझसे अलग होते समय आप मुझे न छोड़ें, मैं भी आपसे अलग होते समय आपको न छोड़ूं वह तीन अग्नियों के सामने

दण्डवत करेगा – गृह-अग्नि, दक्षिण-अग्नि और वह अग्नि जिसमें आहुति दी जाती है। कुछ लोग कहते हैं कि वह उस स्थान की मुट्ठी भर राख खाएगा जहाँ अग्नि जलाने वाली लकड़ियाँ खड़ी हैं। शिखा सहित बालों को हटाकर उसे त्यागने के बाद, वह पवित्र धागे को 'भूः स्वाहा' मंत्र के साथ जल में छोड़ देगा। इसलिए, वह भूखा मर जाएगा या पानी में डूब जाएगा या आग में प्रवेश करेगा, या खुद को युद्ध के मैदान में ले जाएगा; या वह तब तक आगे की यात्रा करेगा जब तक वह गिर कर मर न जाए या वह वृद्ध तपस्वियों के आश्रम में प्रवेश कर जाए।

वह (शाम के भोजन) के रूप में दूध का सेवन करेगा। शाम के लिए वही उसका प्रसाद होगा। सुबह का वह (दूध) जो वह लेता है वह उसका सुबह का प्रसाद है; अमावस्या का, अमावस्या का बलिदान; पूर्णिमा का, पूर्णिमा का यज्ञ। बाल, दाढ़ी आदि का मुंडन, तथा वसंत ऋतु में नाखून काटना अग्निष्टोम यज्ञ है। 4. संन्यास के पश्चात् वह अग्नि-अनुष्ठान पुनः आरंभ नहीं करेगा। वह आध्यात्मिक मंत्र का जाप करेगा: 'क्योंकि मैं मृत्यु बन गया हूँ और जो अस्तित्व में आ रहा है (अर्थात ब्रह्म-ज्ञान) उसमें प्रवेश करूँगा', आदि। 'सभी प्राणियों का कल्याण हो' कहते हुए, तथा केवल आत्मा का चिंतन करते हुए, भुजाएँ उठाकर, वह ऐसा होगा जिसने (सामान्य) मार्ग त्याग दिया है; वह बिना किसी (स्थिर) निवास के विचरण करेगा।

वह भिक्षा पर निर्वाह करेगा, तथा कुछ भी (दान) नहीं देगा। वह पशु शरीर की रक्षा के लिए वर्षा ऋतु को छोड़कर, थोड़ा भी वस्त्र नहीं पहनेगा। यहाँ (इसकी पुष्टि के लिए) श्लोक दिए गए हैं: 5-6. जल का घड़ा, कलछी, गोफन (सामान ढोने के लिए), लाठी, पांव, शीत से बचने के लिए ओढ़नी, लंगोटी, वस्त्र (शरीर को ढकने के लिए), कुश की अंगूठी, स्नान करने का तौलिया, तथा ऊपर का वस्त्र, जनेऊ और शास्त्र - इन सबका संन्यासी को त्याग करना चाहिए। 7. शुद्ध जल से स्नान, स्नान और जल पीना चाहिए।

नदी के किनारे या मंदिर में सोना चाहिए। 8. शरीर को अत्यधिक सुख या कष्ट नहीं सहना चाहिए। प्रशंसा होने पर हर्षित नहीं होना चाहिए और दोष लगने पर शाप नहीं देना चाहिए।

9-11. जो संन्यासी लाठी धारण करता है, उसे ब्रह्मचर्य में अविचल रहना चाहिए। देखना, छूना, क्रीड़ा करना, बातचीत करना, गुप्त वार्तालाप करना, कल्पना करना, विचार करना या स्त्रियों के साथ शारीरिक भोग करना -

इसे ही विद्वान लोग अष्टांगिक सहवास कहते हैं। ब्रह्मचर्य इसके विपरीत है। मोक्ष चाहने वालों को इसका पालन करना चाहिए।

11-12. जो स्वयं प्रकाशित ज्योति जगत को प्रकाशित करती है, वह सदा चमकती रहती है। वह वास्तव में जगत की साक्षी है, सबकी आत्मा है, शुद्ध स्वरूप है, सभी प्राणियों का आधार है, जिसका स्वभाव शुद्ध चेतना है।

13. न कर्म से, न संतान उत्पन्न करने से, न किसी अन्य वस्तु से, केवल ब्रह्म को जानने से ही मनुष्य ब्रह्म को प्राप्त होता है।

14-15. जो ब्रह्म अद्वितीय है, जो सत्य, ज्ञान और सुख है, वही जानने का विषय है। जो द्विजों में श्रेष्ठ हैं, वे परम स्वर्ग नामक गुफा में स्थित ब्रह्म को जानते हैं, वे माया, अज्ञान आदि देहान्तर में, तत्क्षण ही समस्त इच्छित वस्तुओं को प्राप्त कर लेते हैं।

16. जो अपने स्वरूप को, जो अज्ञान और माया नामक शक्ति का साक्षी है, जान लेता है, वह 'मैं ही ब्रह्म हूँ' ऐसा जानकर स्वयं ब्रह्म हो जाता है।

17. इस ब्रह्म से एकरूप और शक्ति (अर्थात् माया) युक्त आत्मा से रस्सी के समान अव्यक्त आकाश उत्पन्न हुआ।

18. फिर उस आकाश से अव्यक्त स्पर्श उत्पन्न हुआ, जिसका नाम 'वायु' है। फिर वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई।

19. फिर उन समस्त सूक्ष्म (तत्त्वों) को पाँच भागों में विभक्त करके, उन्हीं से शुभ भगवान ने ब्रह्माण्डीय अण्ड की रचना की।

20. इस ब्रह्माण्डीय अण्डे में देवता, देवता, यक्ष, किन्नर, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि अपने-अपने कर्मों के अनुसार लिपटे हुए हैं।

21. प्राणियों के शरीर जो अस्थि, स्नायु आदि के रूप में दिखाई देते हैं, वे सर्वव्यापी आत्मा के लिए भोजन की प्रकृति वाले आत्मा हैं।

22. फिर, भीतर प्राण की आत्मा (पांच भागों में विभाजित) है। इससे भी भीतर मन की प्रकृति वाली आत्मा है जो (अन्यों से) भिन्न है।

23. इसके बाद, और भी अधिक भीतर तथा भिन्न है ज्ञानस्वरूप आत्मा। फिर, भीतर, पृथक है आनंदस्वरूप आत्मा।

24. अन्नस्वरूप आत्मा प्राणस्वरूप आत्मा से व्याप्त है; वैसे ही प्राणस्वरूप आत्मा मनस्वरूप आत्मा से व्याप्त है।

25. मनस्वरूप आत्मा ज्ञानस्वरूप आत्मा से व्याप्त है। ज्ञानस्वरूप सदा सुखी आत्मा आनंदस्वरूप आत्मा से व्याप्त है।

26. इसी प्रकार आनंदस्वरूप आत्मा साक्षी ब्रह्म से व्याप्त है, जो सबमें अंतरतम है। ब्रह्म किसी अन्य वस्तु से व्याप्त नहीं है।

27-28. इस ब्रह्म को, जिसे आधार (पूंछ पुच्छ) कहा गया है, जो सत्य, ज्ञान और अद्वैत स्वरूप है, सार, आनन्द, नित्य, शरीर में निवास करने वाला है, प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करने पर सर्वत्र सुखी हो जाता है। अन्यथा सुख कहाँ से हो सकता है?

28-29. यदि यह परम आनन्द जो सब प्राणियों का आत्मा है, विद्यमान न होता, तो कौन मनुष्य जीवित रह सकता है? कौन कभी क्रियाशील हो सकता है?

29-30. अतः यह सत्ता, जो चेतना में पूर्ण रूप से प्रकाशित है, उस व्यक्तिगत आत्मा को, जो अन्यथा दुःख से पूर्ण है, सदैव सुखी बनाती है।

30-32. जब महान तपस्वी इस अदृश्य आदि कहे गए स्वरूप से किसी भी भेद के बिना अपनी पूर्ण एकता को अनुभव कर लेता है, तभी उसे पूर्ण निर्भयता प्राप्त होती है। यही परम कल्याण, परम अमरता, पूर्ण सत्ता, तीनों खण्डों (काल) से परे पारलौकिक ब्रह्म है।

32-33. जब जीव को इस (पहचान) में किंचित भी भेद अनुभव होगा, तो उसे भय होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। इस आनन्दमय कोश के कारण ही भगवान विष्णु से लेकर स्तम्भ तक सभी को भिन्न-भिन्न मात्रा में सुख मिलता है। जो शास्त्रों का पारंगत है, पद पाने में निःस्वार्थ है, सुखी है, उसके लिए जो आनन्द स्वभावतः है, वह स्वयं प्रकाशित हो जाता है। यह सर्वविदित है कि शब्द किसी आधार (जैसे जाति, द्रव्य, क्रिया, गुण) के अधीन होकर कार्य करता है। ऐसे किसी आधार के अभाव के कारण शब्द (ब्रह्म से) पीछे हट जाता है। क्योंकि आधार से रहित परम आनन्द के

सम्बन्ध में शब्द कैसे कार्य कर सकता है? यह सूक्ष्म मन जो सब वस्तुओं को अपना विषय बनाता है, उससे पीछे हट जाता है, जिससे (इन्द्रियाँ), श्रवण, स्पर्श, दृष्टि आदि तथा कर्मेन्द्रियाँ भी पीछे हट जाती हैं; वे परब्रह्म तक पहुँचने में समर्थ नहीं हैं।

३८-३९। उस परमानंदस्वरूप, अद्वितीय, गुणों से रहित, सत्य और चेतना की एकता वाले ब्रह्म को अपनी आत्मा के रूप में जानकर मनुष्य को किसी बात का भय नहीं रहता।

३९-४०। जो अपने गुरु की शिक्षा से इस प्रकार जान लेता है, जो अपने आप पर शासन कर लेता है, वह कभी भी अच्छे या बुरे कर्मों के प्रभाव से ग्रस्त नहीं होता।

४०-४१। सारा जगत् जो पहले दण्ड देनेवाला और दण्डित होनेवाला प्रतीत होता था, अब वेदान्त की शिक्षा से उत्पन्न ज्ञान के कारण अपनी आत्मा के रूप में प्रकाशित हो रहा है।

४१-४२। शुद्ध (ब्रह्म), ईश्वर, व्यष्टि आत्मा, ज्ञाता, ज्ञान का साधन, ज्ञान का विषय और परिणाम - इस प्रकार, अनुभवजन्य प्रयोजनों के लिए, सात प्रकार का भेद किया गया है।

४३-४४। माया (ब्रह्माण्डीय अविद्या) से रहित (चेतना) शुद्ध (ब्रह्म) कहलाती है। ब्रह्माण्डीय अविद्या से सम्बन्धित होने पर वह ईश्वर है। वैयक्तिक अविद्या (अविद्या) के प्रभाव में वह वैयक्तिक आत्मा है। अन्तःकरण से सम्बन्धित होने पर वह ज्ञाता कहलाता है। अन्तःकरण की क्रियाओं के सम्बन्ध में उसे ज्ञान का साधन कहा जाता है।

45-46. जो चेतना ज्ञात नहीं है, उसे 'विषय' कहते हैं; और जो चेतना ज्ञात है, उसे 'परिणाम' कहते हैं। बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह अपने आप को समस्त बंधनों से रहित मानकर ध्यान करे।

46. जो इसे वास्तव में जानता है, वह स्वयं ब्रह्म हो जाता है।

47. अब मैं समस्त वेदान्त की शिक्षा का वास्तविक सार कहता हूँ: स्वयं को मरना, स्वयं को बनना, एक होना, फिर भी स्वयं बने रहना। इस प्रकार उपनिषद् समाप्त होता है।

ओम! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें; हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो; हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से घृणा न करें)। ओम! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित कथारुद्रोपनिषद यहीं समाप्त होता है।

084 - भावना उपनिषद

ॐ ! देवगण ! कानों से हम अच्छा सुनें;

पूज्य ! नेत्रों से हम अच्छा देखें।

स्थिर अंगों से, स्तुति करते हुए शरीर से,

देवताओं द्वारा निर्दिष्ट जीवन का आनंद लें।

विख्यात इंद्र हमें कल्याण प्रदान करें;

पूसन और सभी देवता हमें कल्याण प्रदान करें।

निर्बाध गति वाले तारक्य हमें कल्याण प्रदान करें।

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें।

ॐ ! शांति ! शांति ! शांति !

1. पवित्र गुरु वह शक्ति (परा-शक्ति) है जो सभी का कारण है।

2. उस शक्ति का रूप उसके नौ छिद्रों वाला शरीर है।

3. यह नौ पहियों की आड़ में पवित्र चक्र है।

4. वराह की शक्ति पितृ है: बलिदान की देवी कुरुकुल्ला मातृ है।
5. (चार) मानवीय लक्ष्य समुद्र (पुरुषार्थ - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) हैं।
6-7. त्वचा और बाल जैसे सात घटकों (रक्त, मांस, वसा, अस्थि, मज्जा और वीर्य) वाला शरीर नौ रत्नों का द्वीप है।
8. संकल्प इच्छा-पूर्ति करने वाले वृक्ष हैं; ऊर्जा (मन की) प्रचुरता के वृक्षों का बगीचा है।
9. छह ऋतुएँ स्वाद हैं, अर्थात् मीठा, खट्टा, कड़वा, तीखा, कसैला और नमकीन, जो जीभ द्वारा ग्रहण किए जाते हैं।

10. ज्ञान पूजा की सामग्री है; ज्ञान का विषय आहुति है; ज्ञाता आहुति देने वाला है। ज्ञान, उसका विषय और ज्ञाता, तीनों की पहचान का ध्यान, पवित्र चक्र की पूजा है।

11. भाग्य और प्रेम जैसी भावनाएँ अणुत्व आदि (चमत्कारी सिद्धियाँ) हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या, पुण्य, पाप - ये ब्रह्मा आदि की आठ शक्तियाँ हैं। (ब्रह्मा, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, रौद्री, चर्ममुण्डा और कालसम्पर्कसिनी)।

12. नौ निवास (मूलाधार आदि) रहस्यमय इशारों की शक्तियाँ हैं।

13. पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, कान, त्वचा, आँख, जीभ, नाक, वाणी, पैर, हाथ, इन्द्रियाँ।

14. वाणी, ग्रहण, गति, निष्कासन, उत्पत्ति, तथा अस्वीकृति, स्वीकृति और उदासीनता के भाव ये आठ (सत्ताएँ) हैं, जैसे प्रेम का पुष्प आदि।

15. अलम्बुषा, कुहू, विश्वोदरा, वरण, हस्तिजिह्वा, यशोवति, पयस्विनी, गांधारी, पूसा, शंखिनी, सरस्वती, इडा, पिंगला और सुषुम्ना - ये चौदह धमनियाँ चौदह शक्तियाँ हैं, जैसे सर्वशक्तिशाली आदि।

16. पाँच प्राण और पाँच लघु प्राण बाह्य तीलियों की दस देवियाँ हैं, (जिन्हें) सर्वसिद्धिप्रद आदि कहा जाता है।

17. इस प्रमुख श्वास के साथ अपने संबंध के आधार पर जठराग्नि पाँच गुना हो जाती है। (वे) जो बाहर निकालते हैं, जो पकाते हैं, जो सुखाते हैं, जो जलाते हैं और जो जलते हैं।

18. लघु श्वास की प्रधानता के कारण, मानव शरीर में ये (अग्नि) क्षय करने वाली, निकालने वाली, उत्तेजित करने वाली, जम्हाई लेने वाली और भ्रमित करने वाली कहलाती हैं। वे पाँच प्रकार के भोजन के पाचन को बढ़ावा देते हैं: खाया हुआ, चबाया हुआ, चूसा हुआ, चाटा हुआ और ग्रहण किया हुआ।

19. अग्नि के दस पहलू आंतरिक स्पोक, सर्वज्ञ आदि की दस दिव्यताएँ हैं।

20. सर्दी, गर्मी, सुख, दुःख, इच्छा, सत्व, रज और तम के गुण आठ शक्तियाँ, वासिनी आदि हैं।

21. पाँच, अल्पविकसित ध्वनि, आदि, पुष्पित शाफ्ट हैं।

22. मन गन्ने से बना धनुष है।

23. आसक्ति डोरी है (जो बांधती है)।

24. द्वेष ही बंधन है।

25. अव्यक्त, महान् और अहंकार का सिद्धांत आंतरिक त्रिभुज की दिव्यताएँ हैं:

कामेश्वरी, वज्रेश्वरी और भगमालिनी।

26. परम जागरूकता, वास्तव में, कामेश्वर है।

27. परम दिव्यता, ललिता, व्यक्ति की अपनी आनंदमय आत्मा है।

28. इन सबमें से विशिष्ट आशंका लाल चमक है।

29. पूर्णता मन की अनन्य एकाग्रता से होती है।

30. ध्यान के प्रदर्शन में सम्मानपूर्वक सेवा के (विभिन्न कार्य) शामिल हैं।

31. आहुति का कार्य मैं, तू, अस्तित्व, अनस्तित्व,

कर्तव्य की भावना और उसके निषेध, और दायित्व पूजा जैसे भेदों का आत्मा में विलय है।

32. शांति कल्पना की (सभी) वस्तुओं की पहचान का विचार है।

33. काल के पन्द्रह दिनों (आधे चन्द्र मास के) में परिवर्तन का दृष्टिकोण पन्द्रह शाश्वत (देवताओं) की ओर संकेत करता है।

34. इस प्रकार तीन क्षण, दो क्षण या एक क्षण भी ध्यान करने से मनुष्य जीते जी मुक्त हो जाता है; उसे शिव-योगी कहा जाता है।

35. शाक्त धर्म के सिद्धांतों के अनुसार यहाँ अन्तर्यामी चक्र के ध्यान की चर्चा की गई है।

36. जो इस प्रकार जानता है, वह अथर्वशिर का विद्यार्थी है। ॐ ! देवो ! हम कानों से अच्छा सुनें; ॐ आराध्यो ! हम आँखों से अच्छा देखें। ॐ स्थिर अंगों से, स्तुति करते हुए शरीर से, ॐ देवताओं द्वारा दिए गए जीवन का आनंद लें। ॐ सुविख्यात इन्द्र हमारा कल्याण करें; ॐ पूसन और सभी देवता हमारा कल्याण करें। ॐ अबाध गति वाले ताक्ष्र्य हमारा कल्याण करें। बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें।
ॐ ! शांति ! शांति ! शांति !

यहाँ अथर्ववेद में सम्मिलित भवनोपनिषद् समाप्त होता है।

085 - रुद्र हृदय उपनिषद

ॐ ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;
हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,
हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;

हम एक दूसरे से विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)।
ॐ ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!
अब, इस समय, मैं परम निरपेक्ष की उस शुद्ध अवस्था में शरण लेता हूँ जिसे विद्या द्वारा जाना जा सकता है, जिसे रुद्र हृदय उपनिषद कहा जाता है।श्री महादेव-रुद्र के प्रसिद्ध रूप को अपने हृदय में प्रणाम करके, पवित्र भस्म और रुद्राक्ष की पूजा करके और महान महावाक्य-मंत्र, तारासर का मानसिक जाप करके, श्री शुक ने अपने पिता श्री व्यास महर्षि से इस प्रकार पूछा:देवताओं का वास्तविक ईश्वर कौन है? ये सभी अस्तित्व किसमें स्थापित हैं? किसकी पूजा करके मैं सम्पूर्ण देवताओं को प्रसन्न कर सकता हूँ?

ये शब्द सुनकर श्री वेद व्यास ने उत्तर दिया: रुद्र सभी देवताओं का अवतार हैं। सभी देवता श्री रुद्र के ही विभिन्न रूप हैं। रुद्र के दाहिनी ओर सूर्य, फिर चतुर्मुख ब्रह्मा और फिर तीन अग्नियाँ हैं। बाईं ओर श्री उमादेवी हैं, तथा विष्णु और सोम (चन्द्रमा) भी हैं। उमा स्वयं विष्णु का रूप हैं। विष्णु स्वयं चन्द्रमा का रूप हैं। इसलिए जो भगवान विष्णु की पूजा करते हैं, वे स्वयं शिव की पूजा करते हैं। और जो शिव की पूजा करते हैं, वे वास्तव में भगवान विष्णु की पूजा करते हैं।

जो लोग श्री रुद्र से ईर्ष्या करते हैं और उनसे घृणा करते हैं, वे वास्तव में श्री विष्णु से घृणा करते हैं। जो लोग भगवान शिव की निंदा करते हैं, वे स्वयं विष्णु की निंदा करते हैं। रुद्र बीज के जनक हैं। विष्णु बीज के भ्रूण हैं। शिव स्वयं ब्रह्मा हैं और ब्रह्मा स्वयं अग्नि हैं। रुद्र ब्रह्मा और विष्णु से परिपूर्ण हैं। पूरा संसार अग्नि और सोम से भरा है। पुरुष लिंग भगवान शिव हैं। स्त्री लिंग श्री भवानी देवी हैं। इस ब्रह्मांड की सारी चल और अचल रचना उमा और रुद्र से भरी हुई है।

व्यक्त श्री उमा हैं और अव्यक्त भगवान शिव हैं। उमा और शंकर का संयोजन विष्णु है। इसलिए सभी को बड़ी भक्ति के साथ श्री महाविष्णु को प्रणाम करना चाहिए। वे आत्मा हैं। वे ही हैं परमात्मा। वह अन्तरात्मा है। ब्रह्मा अन्तरात्मा है। शिव परमात्मा है। विष्णु इस समस्त ब्रह्माण्ड के सनातन आत्मा हैं। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोकों की यह सम्पूर्ण सृष्टि एक विशाल वृक्ष है। विष्णु इस वृक्ष का शीर्ष भाग (शाखाएँ) हैं। ब्रह्मा तना है। जड़ भगवान शिव हैं। प्रभाव विष्णु है। क्रिया ब्रह्मा है। कारण शिव है।

लोकों के कल्याण के लिए। रुद्र ने ये तीन रूप धारण किए हैं। रुद्र धर्म है। विष्णु जगत है। ब्रह्मा ज्ञान है। इसलिए उनके नाम का कीर्तन करो, ‘रुद्र’, ‘रुद्र’। इस प्रकार इस महान भगवान का पवित्र नाम जपने से तुम्हारे सभी पाप नष्ट हो जाएंगे। रुद्र पुरुष हैं। उमा स्त्री हैं। उनको और उनको प्रणाम है। रुद्र ब्रह्मा हैं। उमा सरस्वती हैं। उनको और उनको प्रणाम है। रुद्र विष्णु हैं। उमा लक्ष्मी हैं। उनको और उनको प्रणाम। रुद्र सूर्य हैं। उमा छाया हैं। उनको और उनको प्रणाम। रुद्र चंद्रमा हैं। उमा तारा हैं। उनको और उनको प्रणाम। रुद्र दिन हैं।

उमा रात हैं। उनको और उनको प्रणाम। रुद्र यज्ञ हैं। उमा वेदी हैं। उनको और उनको प्रणाम। रुद्र अग्नि हैं, उमा स्वाहा हैं। उनको और उनको प्रणाम। रुद्र वेद हैं। उमा शास्त्र हैं। उनको और उनको प्रणाम। रुद्र वृक्ष हैं। उमा लता हैं। उनको और उनको प्रणाम। रुद्र सुगंध हैं। उमा फूल हैं। उनको और उनको प्रणाम। रुद्र अर्थ हैं। उमा शब्द हैं। उनको और उनको प्रणाम। रुद्र लिंग हैं। उमा पितृ हैं। उनको और उनको प्रणाम। भक्त को ऊपर बताए गए मंत्रों से श्री रुद्र और उमा की पूजा करनी चाहिए।

हे मेरे पुत्र, शुक! इन स्तोत्रों के द्वारा उस सनातन परब्रह्म का ध्यान करना चाहिए, जो इन्द्रियों की पहुँच से परे है, जो शुद्ध सत्, ज्ञान और आनन्द है तथा जिसे वाणी या मन से नहीं समझा जा सकता। इसे जानने के बाद और कुछ जानने को नहीं रह जाता, क्योंकि सब कुछ उसी का स्वरूप है, उससे पृथक् कुछ भी नहीं है। जानने योग्य दो विद्याएँ हैं। वे हैं परा और अपरा। अपरा विद्या चार वेदों और उनके छह अंगों का मूर्त रूप है। वे आत्मा के स्वरूप से संबंधित नहीं हैं। लेकिन परा विद्या को मोक्ष-शास्त्र कहा जाता है। यह परम सत्य के उस सर्वोच्च दर्शन से संबंधित है, जो अज्ञेय, अवैयक्तिक, निर्गुण, निराकार, बिना कान, बिना आँख, बिना हाथ, बिना पैर, शाश्वत, सर्वव्यापी, अविनाशी और बुद्धिमान साहसी ऋषियों द्वारा जानने योग्य है।

जो भगवान शिव परम ज्ञान-मार्ग के रूप में घोर तप करते हैं, उनसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है, जो कि प्राणियों का आहार है। यह जगत् माया है। यह स्वप्न के समान प्रतीत होता है। यह भगवान् पर उसी प्रकार आरोपित है, जैसे सर्प पर रस्सी। यही शाश्वत सत्य है। वस्तुतः कोई सृष्टि नहीं है। सब कुछ निरपेक्ष है। सब कुछ सत्य है। इसे जानकर मनुष्य तुरन्त मुक्त हो जाता है। ज्ञान के द्वारा ही तुम इस संसार से छुटकारा पा सकते हो। ज्ञान के द्वारा ही तुम इस अस्तित्व को समझ सकते हो, कर्म के द्वारा कभी नहीं। इसे ब्रह्मनिष्ठ-श्रोत्रिय गुरु के मार्गदर्शन से समझो।

गुरु शिष्य को ब्रह्म, निरपेक्ष का समस्त आवश्यक ज्ञान प्रदान करेंगे। अज्ञान अथवा अविद्या के बंधन को काटकर भगवान् सदाशिव की शरण में जाना चाहिए। सत्य की खोज करने वाले साधक को यही वास्तविक ज्ञान समझना चाहिए। प्रणव धनुष है। आत्मा बाण है। परब्रह्म लक्ष्य है। बाण की तरह आत्मा भी ब्रह्म में एक हो जाएगी। लेकिन धनुष, बाण और लक्ष्य ये तीनों उस सदाशिव से भिन्न नहीं हैं। वहाँ सूर्य, चन्द्रमा या तारों के शरीर नहीं चमकते। वहाँ हवा नहीं चलती, वहाँ अनेक देवता नहीं हैं। वह, एक भगवान ही विद्यमान है। वही, पवित्रताओं की पवित्रता, सदा-सदा के लिए चमकती है। इस शरीर में दो पक्षी हैं, जीव और परमात्मा।

जीव अपने कर्मों का फल खाता है, लेकिन परमात्मा किसी चीज से अछूता रहता है। परमात्मा केवल साक्षी है। वह कुछ नहीं करता। वह केवल अपनी माया से जीव का रूप धारण करता है, जैसे घड़े के अंदर का आकाश बाहर के आकाश से भिन्न प्रतीत होता है और घड़े का रूप धारण कर लेता है। वास्तव में सब कुछ शिव, अद्वैत, एक परम है। किसी भी प्रकार का भेद नहीं है। जब सब कुछ एक, ओंकार, परम समझ लिया जाता है, तब कोई दुःख नहीं रहता, कोई माया नहीं रहती।

तब अद्वैत-परमानंद की प्राप्ति बहुत सरल है। ऐसा समझो कि तुम ही इस सारे जगत के आधार हो, तुम ही एक हो, केवल हो, सत्-चित्-घन हो। सभी लोग इस सत्य को नहीं समझ सकते। माया से रहित लोग ही इस रहस्य को जान सकते हैं। इसे जानने के बाद आत्मा किसी भी स्थान की ओर नहीं जाती, किसी भी दिशा में नहीं जाती।
समय। यह निरपेक्ष के साथ एक हो जाता है, जैसे कि घटकास परमाकास के साथ। जैसे आकाश कहीं नहीं जाता, वैसे ही यह आत्मा भी कोई गति नहीं करती। यह ओम के साथ एक हो जाती है। जो इस महान गुप्त सत्य को जानता है, वही सच्चा मुनि है। वह स्वयं परब्रह्म बन जाता है। वह सच्चिदानंद बन जाता है। उसे स्थायी शांति प्राप्त होती है।

ओम! वह हम दोनों की एक साथ रक्षा करे; वह हम दोनों का एक साथ पोषण करे; हम महान ऊर्जा के साथ मिलकर काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो; हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से घृणा न करें)। ओम! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित रुद्र-हृदयोपनिषद यहीं समाप्त होता है।

086 - योग-कुण्डलिनी उपनिषद

ॐ ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;
हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,
हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;
हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से द्वेष न करें)।

ॐ ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

अध्याय - I

1. चित्त के दो कारण हैं, वासनाएँ और (प्राण) वायु। यदि उनमें से एक को नियंत्रित किया जाता है, तो दोनों नियंत्रित हो जाते हैं।

2. इन दोनों में से, व्यक्ति को संयमित भोजन, आसन और तीसरे शक्ति-चाल के माध्यम से (प्राण) वायु को हमेशा नियंत्रित करना चाहिए।
3-4. मैं इनका स्वरूप समझाऊँगा। हे गौतम, इसे सुनो। शिव (योगियों के संरक्षक) को प्रसन्न करने के लिए एक चौथाई (पेट) खाली छोड़कर मीठा और पौष्टिक भोजन करना चाहिए। इसे संयमित आहार कहते हैं। इसमें दो प्रकार के आसन अपेक्षित हैं, पद्म और वज्र।

5. दोनों एड़ियों को दोनों विपरीत जंघाओं पर रखना पद्म आसन है, जो सब पापों का नाश करने वाला है।

6. एक एड़ी मूलकण्ड के नीचे तथा दूसरी उसके ऊपर रखकर गर्दन, शरीर और सिर को सीधा करके बैठना वज्र आसन है।

7. शक्ति (ऊपर बताई गई) ही कुण्डलिनी है। बुद्धिमान पुरुष को इसे उसके स्थान (अर्थात नाभि से ऊपर) से भौंहों के मध्य तक ले जाना चाहिए। इसे शक्ति चाल कहते हैं।

8. इसके अभ्यास में दो बातें आवश्यक हैं, सरस्वती चालन और प्राण (श्वास) का संयम। फिर अभ्यास से कुण्डलिनी (जो सर्पिलाकार है) सीधी हो जाती है।

9-10(अ)। इन दोनों में से मैं तुम्हें पहले सरस्वती चालन समझाता हूँ। प्राचीन काल के बुद्धिमानों ने कहा है कि सरस्वती अरुंधती के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उसे जगाने से ही कुण्डलिनी जागृत होती है।

10(ख)-11(क)। जब प्राणवायु इड़ा (बाएं नथुने) से गुजर रही हो, तो उसे पद्मासन धारण करना चाहिए तथा 12 अंकों वाले आकाश को 4 अंकों तक अंदर की ओर खींचना चाहिए।

11(ब)-13(क). फिर बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि इस लम्बी (सांस) के द्वारा (सरस्वती) नाड़ी को बांधे और दोनों हाथों की तर्जनी और अंगूठों के द्वारा (अपनी दोनों पसलियों को नाभि के पास) मजबूती से पकड़कर (एक-एक हाथ दोनों ओर) पूरी शक्ति से कुण्डलिनी को दाएं से बाएं बार-बार हिलाए; दो मुहूर्त (48 मिनट) तक उसे निर्भय होकर हिलाना चाहिए।

13(ब)-14. फिर जब कुण्डलिनी सुषुम्ना में प्रवेश करे, तब उसे थोड़ा ऊपर खींच लेना चाहिए। इस प्रकार कुण्डलिनी सुषुम्ना के मुख में प्रवेश करती है। प्राण भी उस स्थान को छोड़कर (कुण्डलिनी के साथ) सुषुम्ना में प्रवेश करता है।

15. गर्दन को दबाकर नाभि को भी फैलाना चाहिए। फिर सरस्वती को हिलाने से प्राण छाती के ऊपर चला जाता है।

16-17. गर्दन के संकुचन से प्राण वक्षस्थल से ऊपर चला जाता है। जिस सरस्वती के गर्भ में ध्वनि है, उसे प्रतिदिन हिलाना चाहिए (या कंपन में डालना चाहिए)। अतः उसे हिलाने मात्र से ही रोग दूर हो जाते हैं।

18. गुल्म (प्लीहा रोग), जलोदर (जलोदर), प्लीहा (प्लीहा रोग) तथा पेट में उत्पन्न होने वाले अन्य सभी रोग इस शक्ति को हिलाने से निःसंदेह नष्ट हो जाते हैं।

19. अब मैं संक्षेप में प्राणायाम का वर्णन करूँगा। प्राण शरीर में गति करने वाली वायु है और उसके भीतर के संयम को कुम्भक कहते हैं।

20. यह दो प्रकार का होता है, सहित और केवल। केवल प्राप्त होने तक सहित का अभ्यास करना चाहिए।

21. सूर्य, उज्जयी, शीतली और भस्त्रिका ये चार भेद हैं। इन चारों से संबंधित कुम्भक को सहित कुम्भक कहते हैं। पद्मासन में बैठकर शुद्ध और सुखदायक आसन पर, जो न अधिक ऊँचा हो, न अधिक नीचा हो, तथा जो स्थान शुद्ध, मनोहर और कंकड़-पत्थर आदि से रहित हो, तथा जो धनुष की लम्बाई तक शीत, अग्नि और जल से मुक्त हो, सरस्वती को हिलाना (या कम्पन में डालना) चाहिए।

24. धीरे-धीरे बाहर से श्वास को, जितनी देर तक चाहे, दाहिनी नासिका से अन्दर खींचकर, बायीं नासिका से बाहर निकालना चाहिए।

25. कपाल को शुद्ध करके (श्वास को ऊपर की ओर खींचकर) श्वास को बाहर निकालना चाहिए। इससे वायु और कृमियों द्वारा उत्पन्न चारों प्रकार के दोष नष्ट हो जाते हैं।

26(क)। इसे बार-बार करना चाहिए और इसे ही सूर्यभेद कहा गया है।

26(ख)-27. मुख को बंद करके तथा पहले की भाँति श्वास को नाक से दोनों नाड़ियों में धीरे-धीरे खींचकर हृदय और गर्दन के बीच में रोककर बायीं नासिका से बाहर निकालना चाहिए।

28. इससे सिर की गर्मी और गले का कफ नष्ट हो जाता है। इससे सभी रोग दूर होते हैं, शरीर शुद्ध होता है और भीतर की जठराग्नि बढ़ती है।

29. इससे नाड़ियों में उत्पन्न होने वाले दोष, जलोदर और धातु भी दूर होते हैं। इस कुम्भक को उज्जयी कहते हैं और इसे चलते या खड़े होकर भी किया जा सकता है।

30. पहले की भाँति जीभ से 'सा' की ध्वनि करते हुए श्वास को अंदर खींचकर और पहले की भाँति रोककर, बुद्धिमान पुरुष को धीरे-धीरे दोनों नासिकाओं से बाहर निकालना चाहिए।

31. इसे शीतली कुंभक कहते हैं और यह गुल्म, पित्त, क्षय, पित्त, ज्वर, प्यास और विष आदि रोगों का नाश करता है।

32. पद्मासन में बैठकर पेट और गर्दन सीधी करके बुद्धिमान पुरुष को मुंह बंद करके नासिका से सावधानी से सांस बाहर निकालनी चाहिए।

33. फिर उसे हृदय तक तेज गति से सांस अंदर खींचनी चाहिए, ताकि गर्दन और खोपड़ी के बीच की जगह में सांस भर जाए।

34-35. फिर उसे उसी तरह सांस बाहर छोड़नी चाहिए और बार-बार सांस अंदर लेनी चाहिए। जैसे लोहार की धौंकनी चलती है (अर्थात अंदर हवा भरकर फिर हवा बाहर निकाल दी जाती है), वैसे ही उसे अपने शरीर के अंदर हवा को चलाना चाहिए। यदि शरीर थक जाए, तो उसे दाहिनी नासिका से सांस अंदर लेनी चाहिए।

36-37(क)। यदि पेट में वायु भरी हो तो तर्जनी को छोड़कर शेष सभी अंगुलियों से नासिका को अच्छी तरह दबाना चाहिए तथा पूर्ववत कुम्भक करते हुए बायीं नासिका से श्वास बाहर निकाल देना चाहिए।

37(ख)-38. इससे गले की अग्नि के रोग दूर होते हैं, भीतर जठराग्नि बढ़ती है, कुण्डलिनी का ज्ञान होता है, पापों का नाश होकर पवित्रता आती है, सुख मिलता है तथा सुख की प्राप्ति होती है।
यह ब्रह्म नाड़ी (अर्थात सुषुम्ना) के मुख पर स्थित द्वार के लिए बाधा उत्पन्न करने वाले कफ को नष्ट करता है।

39. यह तीन गुणों द्वारा विभेदित तीन ग्रंथियों (या गांठों) को भी छेदता है। इस कुंभक को भस्त्रिका कहते हैं और इसे विशेष रूप से करना चाहिए।

40. इन चार तरीकों से जब कुंभक निकट हो (या होने वाला हो) तो पापरहित योगी को तीन बंधों का अभ्यास करना चाहिए।

41. पहले को मूलबंध कहते हैं। दूसरे को उड्डियान और तीसरे को जालंधर कहते हैं। इनकी प्रकृति इस प्रकार बताई जाएगी।

42. अपान (सांस) जो नीचे की ओर प्रवृति रखता है, झुकने से ऊपर की ओर आता है। इस प्रक्रिया को मूलबंध कहते हैं।

43. जब अपान ऊपर उठकर अग्नि के क्षेत्र में पहुंचता है, तब अग्नि की ज्वाला लंबी हो जाती है, वायु द्वारा उड़ाए जाने पर।

44-45(क). तब अग्नि और अपान तप्त अवस्था में प्राण के पास आते हैं (या प्राण से मिल जाते हैं)। इस अग्नि के द्वारा जो अत्यन्त उग्र है, शरीर में ज्वाला (अथवा अग्नि) उत्पन्न होती है जो अपनी ऊष्मा से सोई हुई कुण्डलिनी को जगाती है।

45(ख)-46. तब यह कुण्डलिनी फुफकारती हुई ध्वनि करती है, डंडे से पीटे गए सर्प के समान खड़ी हो जाती है और ब्रह्मनाड़ी (सुषुम्ना) के छिद्र में प्रवेश कर जाती है। इसलिए योगियों को प्रतिदिन मूलबन्ध का अभ्यास करना चाहिए।

47-48(क). कुम्भक के अन्त में तथा निःश्वसन के प्रारम्भ में उड्डियान करना चाहिए।क्योंकि इस बन्ध में प्राण उड्डियाते (अर्थात् ऊपर जाता है), इसलिए योगियों द्वारा इसे उड्डियान कहा जाता है।

48(ख)-49(क). वज्र आसन में बैठकर दोनों हाथों से दोनों पैरों के अँगूठों को दृढ़ता से पकड़कर कण्ड और दोनों टखनों के पास के स्थान पर दबाव डालना चाहिए।

49(ख)-50. फिर धीरे-धीरे पश्चिम दिशा में स्थित तान (धागा या नाड़ी) को पहले उदर (नाभि के ऊपर पेट का ऊपरी भाग) तक, फिर हृदय तक और फिर गर्दन तक ऊपर उठाना चाहिए। जब प्राण नाभि की संधि (संधि) पर पहुँचता है, तो धीरे-धीरे नाभि में उपस्थित अशुद्धियों (या रोगों) को बाहर निकालता है। इसलिए इसका बार-बार अभ्यास करना चाहिए।

51. कुम्भक के अंत में जालंधर नामक बंध का अभ्यास करना चाहिए। यह जालंधर गर्दन के संकुचन के रूप का होता है और वायु के ऊपर जाने में बाधा उत्पन्न करता है।

52. जब गर्दन को नीचे की ओर झुकाकर एक बार सिकोड़ लिया जाता है (ताकि ठोड़ी वक्षस्थल को छू सके), तो प्राण मध्य में पश्चिमी तान पर स्थित ब्रह्मनाड़ी से होकर जाता है।

53. पूर्वोक्त आसन पर बैठकर सरस्वती को जगाना चाहिए तथा प्राण को वश में करना चाहिए।

54. पहले दिन चार बार कुम्भक करना चाहिए, दूसरे दिन दस बार तथा फिर पाँच बार अलग-अलग करना चाहिए।

55. तीसरे दिन बीस बार करना चाहिए तथा उसके बाद तीन बंधों के साथ प्रतिदिन पाँच बार बढ़ाते हुए कुम्भक करना चाहिए।

56-57. शरीर में रोग निम्न कारणों से उत्पन्न होते हैं, अर्थात् दिन में सोना, रात्रि में देर तक जागना, अधिक मैथुन करना, भीड़ में घूमना, मल-मूत्र का रुक जाना, अस्वास्थ्यकर भोजन का सेवन तथा प्राण के साथ मानसिक परिश्रम करना।

58. यदि योगी को ऐसे रोगों का भय हो (जब उन पर आक्रमण हो) तो वह कहता है, "मेरे रोग मेरे योगाभ्यास से उत्पन्न हुए हैं।" तब वह इस अभ्यास को छोड़ देता है। इसे योग में प्रथम बाधा कहा गया है।

59. दूसरी (बाधा) है संदेह, तीसरी है प्रमाद, चौथी है आलस्य, पांचवीं है निद्रा,

60. छठी है विषयों (इन्द्रियों) का न छोड़ना, सातवीं है भ्रांति, आठवीं है विषय-भोग, नौवीं है श्रद्धा का अभाव,

61. और दसवीं है योग के सत्य को प्राप्त न कर पाना। बुद्धिमान पुरुष को इन दस बाधाओं को बहुत सोच-विचार कर त्याग देना चाहिए।

62. सत्य पर मन को स्थिर करके प्रतिदिन प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। तब चित्त सुषुम्ना में लीन हो जाता है और प्राण कभी गति नहीं करता।

63. जब इस प्रकार चित्त की अशुद्धियाँ दूर हो जाती हैं और प्राण सुषुम्ना में लीन हो जाता है, तब वह योगाभ्यास करने वाला बन जाता है।

(सच्चे) योगी.

64. अपान, जिसकी प्रवृत्ति नीचे की ओर है, को (गुदा के) संकुचन द्वारा प्रयास से ऊपर उठाना चाहिए और इसे मूलबंध कहा जाता है.

65. इस प्रकार ऊपर उठा हुआ अपान अग्नि के साथ मिल जाता है और फिर वे तेजी से प्राण के स्थान पर चले जाते हैं. फिर प्राण और अपान एक दूसरे के साथ मिलकर कुंडलिनी में चले जाते हैं, जो कुंडलित और सोई हुई है.

66-67. अग्नि द्वारा गर्म और वायु द्वारा उत्तेजित कुंडलिनी, सुषुम्ना के मुख में अपना शरीर फैलाती है, रजस से बनी ब्रह्मग्रंथि को छेदती है और सुषुम्ना के मुख पर बिजली की तरह चमकती है.

68-69(क). फिर यह तुरंत विष्णुग्रंथि से हृदय तक जाती है. फिर यह रुद्रग्रंथि से ऊपर जाती है और उसके ऊपर भौंहों के मध्य तक जाती है; इस स्थान को छेदने के बाद, यह चंद्रमा के मंडल (गोले) तक जाती है.

६९(ब)-७०(क). यह सोलह पंखुड़ियों वाले अनाहत-चक्र में चन्द्रमा द्वारा उत्पन्न नमी को सुखा देता है।

७०(ब)-७१. जब रक्त प्राण की गति से उत्तेजित होता है, तो सूर्य के संपर्क से पित्त बन जाता है, जिसके बाद वह चन्द्रमा के मंडल में चला जाता है, जहाँ वह शुद्ध कफ के प्रवाह की प्रकृति का हो जाता है। वहाँ बहने पर वह (रक्त) जो बहुत ठंडा है, गर्म कैसे हो जाता है?

७२. (चूँकि) उसी समय चन्द्रमा का तीव्र श्वेत रूप तेजी से गर्म होता है। फिर उत्तेजित होकर वह ऊपर चला जाता है।

७३. इसे ग्रहण करने से चित्त जो बाह्य रूप से विषय-वस्तुओं के बीच घूम रहा था, वहीं निरुद्ध हो जाता है। इस उच्च अवस्था का आनंद लेने वाला नौसिखिया शांति प्राप्त करता है और आत्मा में लीन हो जाता है।

७४. कुण्डलिनी प्रकृति के आठ रूपों को धारण करती है और शिव को घेरकर उन्हें प्राप्त करती है और शिव में विलीन हो जाती है।

75. इस प्रकार रजोगुण (वीर्य) जो ऊपर उठता है, वह मरुत (वायु) के साथ शिव के पास जाता है; प्राण और अपान जो सदैव उत्पन्न होते रहते हैं, समान हो जाते हैं।

76. प्राण सभी वस्तुओं में प्रवाहित होते हैं, चाहे वे बड़ी हों या छोटी, वर्णन करने योग्य हों या अवर्णनीय, जैसे सोने में अग्नि प्रवाहित होती है।

77. तब यह शरीर जो अधिभौतिक (तत्वों से बना) है, अधिदैवत (संरक्षक देवता से संबंधित) हो जाता है और इस प्रकार शुद्ध हो जाता है। तब यह अतिवाहिका की स्थिति को प्राप्त होता है।

78. तब शरीर जड़ता से मुक्त होकर निर्मल और चित् के स्वभाव वाला हो जाता है। इसमें अतिवाहिका उस स्वभाव वाली होने के कारण सभी में प्रमुख हो जाती है।

79. जैसे रस्सी में साँप की कल्पना, वैसे ही जीवन और संसार से मुक्ति का विचार काल का भ्रम है।

80. जो कुछ भी दिखाई देता है वह असत्य है। जो कुछ भी लीन हो जाता है वह असत्य है। जैसे मोती में चाँदी की भ्रान्ति होती है, वैसे ही पुरुष और स्त्री की कल्पना भी होती है।

81. सूक्ष्म जगत और स्थूल जगत एक ही हैं; वैसे ही लिंग और सूत्रात्मा, स्वभाव और रूप, स्वयं प्रकाशित ज्योति और चिदात्म भी एक ही हैं।

82. कुण्डलिनी नामक शक्ति, जो कमल में धागे के समान है और तेजस्वी है, कमल के मूल में अपने फन (अर्थात् मुँह) के ऊपरी सिरे से मूलकण्ड को काट रही है।

83-84. अपने मुँह से अपनी पूँछ को पकड़कर, वह ब्रह्मरन्ध्र (सुषुम्ना) के छिद्र के सम्पर्क में है। यदि पद्मासन में बैठा हुआ व्यक्ति अपने गुदाद्वार को सिकोड़ने का अभ्यस्त होकर कुम्भक पर मन लगाकर वायु को ऊपर की ओर चलाता है, तो वायु के फूँकने से अग्नि प्रज्वलित होकर स्वाधिष्ठान में आ जाती है।

85. वायु और अग्नि के फूँकने से मुख्य (कुण्डलिनी) ब्रह्मग्रन्थि को और फिर विष्णुग्रन्थि को छेदती है।

86. फिर वह रुद्रग्रन्थि को और उसके बाद सभी छह कमलों को छेदती है। फिर शक्ति सहस्रार कमल (1000 कमलों का आसन या पीनियल ग्रंथि) में शिव के साथ प्रसन्न होती है। इसे सर्वोच्च अवस्था कहना चाहिए और यह ही परम सुख देने वाली है। इस प्रकार पहला अध्याय समाप्त होता है।

अध्याय - I

1. अब मैं खेचरी नामक विद्या का वर्णन करूँगा, जो ऐसी है कि जो इसे जानता है, वह इस संसार में बुढ़ापे और मृत्यु से मुक्त हो जाता है।

2. हे ऋषि! जो मनुष्य मृत्यु, रोग और बुढ़ापे के दुःखों से ग्रस्त है, उसे इस विद्या को जानकर मन को दृढ़ करके खेचरी का अभ्यास करना चाहिए।

3-4. जो व्यक्ति ग्रंथों के अर्थ और अभ्यास दोनों से बुढ़ापे और मृत्यु का नाश करने वाली खेचरी को जानता है, उसे पृथ्वी पर अपना गुरु मानना चाहिए और पूरे मन से उसका अभ्यास करना चाहिए। खेचरी विद्या और उसका अभ्यास दोनों ही आसानी से प्राप्त नहीं होते।

5. इसका अभ्यास और मेलन एक साथ नहीं होते। जो केवल अभ्यास पर ही अड़े रहते हैं, उन्हें मेलन नहीं मिलता।

6. हे ब्राह्मण! कई जन्मों के बाद केवल कुछ लोगों को ही अभ्यास मिलता है, लेकिन सौ जन्मों के बाद भी मेलन प्राप्त नहीं होता।

7. अनेक जन्मों के पश्चात् साधना करके कोई एकाकी योगी किसी जन्म में साधना के फलस्वरूप यह मेलन प्राप्त करता है।

8. जब कोई योगी अपने गुरु के मुख से यह मेलन प्राप्त करता है, तब उसे अनेक ग्रंथों में वर्णित सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

9. जब कोई मनुष्य ग्रंथों और महत्त्व के माध्यम से यह मेलन प्राप्त करता है, तब वह सभी पुनर्जन्मों से मुक्त होकर शिवपद को प्राप्त करता है।

10. पुस्तकों के बिना गुरु भी इसे नहीं जान सकते। इसलिए इस विद्या में पारंगत होना बहुत कठिन है।

11. जब तक यह विद्या प्राप्त न हो जाए, तब तक तपस्वी को पृथ्वी पर भटकना चाहिए और जब यह विद्या प्राप्त हो जाए, तब उसे सिद्धि प्राप्त हो जाती है (अर्थात् मानसिक शक्तियों पर अधिकार हो जाता है)।

12. इसलिए मेलन प्रदान करने वाले को तथा विद्या प्रदान करने वाले को भी अच्युत (विष्णु) मानना चाहिए।

13. जो इस विद्या को सिखाता है, उसे शिव मानना चाहिए। मुझसे यह विद्या पाकर तुम्हें इसे दूसरों को नहीं बताना चाहिए।

14-15. इसलिए जो इसे जानता है, उसे पूरे प्रयत्न से इसकी रक्षा करनी चाहिए (अर्थात् इसे किसी को नहीं देना चाहिए, सिवाय इसके कि जो इसके योग्य हो)। हे ब्राह्मण! जहाँ गुरु रहते हैं, जो दिव्य योग सिखाने में समर्थ हैं, वहाँ जाकर उनसे खेचरी विद्या सीखनी चाहिए और फिर उनसे अच्छी तरह सिखलाकर पहले ध्यानपूर्वक इसका अभ्यास करना चाहिए।

16-17. इस विद्या के द्वारा मनुष्य खेचरी की सिद्धि प्राप्त कर लेता है। खेचरी के बीज (अक्षर का बीज) से युक्त खेचरी की विद्या के द्वारा खेचरी शक्ति (अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति) के साथ जुड़कर मनुष्य खेचरों (देवों) का स्वामी बन जाता है और उनके बीच सदैव निवास करता है। खेचरी बीज (बीज-अक्षर) को जल से घिरा हुआ अग्नि तथा खेचरों (देवों) का निवास स्थान कहा गया है।

18. इस योग से सिद्धि प्राप्त होती है। सोमांश (सोम या चन्द्रमा का भाग) का नौवाँ (बीज) अक्षर भी उल्टे क्रम से बोलना चाहिए।

19. फिर चन्द्रमा के रूप के तीन अंशों से बना एक अक्षर बताया गया है; उसके बाद आठवें अक्षर को उल्टे क्रम से बोलना चाहिए।

20. फिर उसे सर्वोच्च और उसके आरंभ को पाँचवाँ मानकर यह कहा गया है कि चन्द्रमा के अनेक भिन्नों (या भागों) के कूट (सींगों) को यह कहा गया है।

21-22(क)। यह जो सभी योगों की सिद्धि में सहायक है, इसे गुरु की दीक्षा से सीखना चाहिए। जो मनुष्य प्रतिदिन बारह बार इसका पाठ करता है, उसे

निद्रा में भी वह माया नहीं मिलती, जो उसके शरीर में उत्पन्न होती है और जो समस्त पाप कर्मों की मूल है।

22(ख)-23. जो मनुष्य बड़ी सावधानी से पाँच लाख बार इसका पाठ करता है, उसे खेचरी विद्या प्रकट हो जाती है। समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं और देवता प्रसन्न होते हैं।

24. बालिपालित (झुर्रियाँ और सफेद बाल) का नाश निस्संदेह हो जाता है। इस महान विद्या को प्राप्त करके मनुष्य को बाद में इसका अभ्यास करना चाहिए।

25-26. यदि ऐसा न हो, तो हे ब्राह्मण! वह खेचरी के मार्ग में सिद्धि प्राप्त किए बिना ही दुःख भोगता है। यदि इस साधना में उसे यह अमृततुल्य विद्या प्राप्त न हो, तो उसे मेलाना के आरम्भ में इसे प्राप्त करना चाहिए और इसका सदैव जप करो, अन्यथा इससे रहित मनुष्य कभी सिद्धि प्राप्त नहीं करता।

27. इस विद्या के प्राप्त होते ही उसे इसका अभ्यास करना चाहिए, तब मुनि को शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

28. आत्मज्ञानी को अपने गुरु के उपदेशानुसार जीभ को तालु के मूल से बाहर निकालकर सात दिन तक जीभ की अशुद्धि को साफ करना चाहिए।

29. उसे एक तेज चाकू लेना चाहिए, जिसे तेल लगाकर साफ किया गया हो, तथा जो स्नुही (यूफोरबिया एंटीकोरम) नामक पौधे के पत्ते के समान हो, तथा उससे बाल के बराबर काटना चाहिए।

30. सैंधव (सेंधा नमक) तथा पथ्य (समुद्री नमक) को पीसकर उस स्थान पर लगाना चाहिए। सातवें दिन पुनः बाल के बराबर काटना चाहिए।

31. इस प्रकार छः महीने तक उसे बड़ी सावधानी से धीरे-धीरे इसका प्रयोग करना चाहिए। छः महीने में जीभ के मूल में स्थित सिरो-बन्ध नष्ट हो जाता है।

32. तत्पश्चात् समय पर कार्य करने वाले योगी को चाहिए कि वह सिरो-वस्त्र से वाक-ईश्वरी (वाणी के अधिष्ठाता देवता) को घेर ले और उसे ऊपर खींचे।

33. हे ऋषि! छः महीने तक प्रतिदिन उसे ऊपर खींचने से वह भौहों के मध्य तक और तिरछा होकर कानों के द्वार तक आ जाता है।

34. धीरे-धीरे अभ्यास करने पर वह ठोड़ी की जड़ तक पहुँच जाता है। फिर तीन वर्ष में वह आसानी से बालों के अंत तक पहुँच जाता है।

35-36. वह तिरछा होकर सखा तक और नीचे कंठ के कूप तक जाता है। अगले तीन वर्षों में वह ब्रह्मरंध्र में पहुँच जाता है और वहाँ निःसंदेह रुक जाता है। यह मंत्र धीरे-धीरे सिर के ऊपर तक जाता है और नीचे गले के कुएं तक जाता है।

37. धीरे-धीरे यह सिर में महान अदम्य द्वार खोलता है। दुर्लभ विज्ञान (खेचरी) बीज को पहले समझाया गया है।

38. इस मंत्र के छह अंगों को छह अलग-अलग स्वरों में उच्चारण करके करना चाहिए। सभी सिद्धियों को प्राप्त करने के लिए ऐसा करना चाहिए;

39. और यह करन्यासम धीरे-धीरे करना चाहिए, एक बार में नहीं, क्योंकि जो इसे एक बार में करता है उसका शरीर जल्द ही क्षीण हो जाता है।

40-41 (क)। इसलिए, हे मुनियों में श्रेष्ठ, इसे थोड़ा-थोड़ा करके अभ्यास करना चाहिए। जब जीभ बाहरी मार्ग से ब्रह्मरंध्र में जाती है, तब ब्रह्म के बोल्ट को हिलाने के बाद जीभ को रखना चाहिए, जिसे देवता वश में नहीं कर सकते।

41 (ख)-42। तीन वर्ष तक अँगुली की नोक से ऐसा करने पर जीभ को भीतर प्रविष्ट करा दे, फिर वह ब्रह्मद्वार में प्रविष्ट हो जाती है। ब्रह्मद्वार में प्रविष्ट होने पर अच्छी तरह मथन का अभ्यास करना चाहिए।

43. कुछ बुद्धिमान पुरुष मथन के बिना भी सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। खेचरी मन्त्र में पारंगत व्यक्ति मथन के बिना ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

44-46(क)। जप और मथन करने से शीघ्र ही फल की प्राप्ति होती है। सोने, चाँदी या लोहे के तार को दूध में भिगोये हुए धागे से नासिका से जोड़कर,

श्वास को हृदय में रोककर, सुविधाजनक आसन पर बैठकर, भौहों के बीच दृष्टि केन्द्रित करके, धीरे-धीरे मथन करना चाहिए।

46(ख)-47। छः महीने में मथन की अवस्था बच्चों की निद्रा के समान स्वाभाविक हो जाती है। तथा सदैव मथन करना उचित नहीं है। इसे प्रत्येक मास में केवल एक बार ही करना चाहिए।

48. योगी को अपनी जीभ को मार्ग में नहीं घुमाना चाहिए। ऐसा बारह वर्ष तक करने पर सिद्धि अवश्य प्राप्त होती है।

49. तब वह अपने शरीर में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आत्मा से भिन्न नहीं देखता। हे राजाओं में श्रेष्ठ! ऊर्ध्वकुण्डलिनी का यह मार्ग स्थूल जगत पर विजय प्राप्त करता है।इस प्रकार दूसरा अध्याय समाप्त होता है।

अध्याय - III

1. मेलन-मंत्र: ह्रीं, भं, सं, पं, फं, सं, क्षं। कमल-जनित (ब्रह्मा) ने कहा: "हे शंकर, अमावस्या और पूर्णिमा में से, जो इस (मंत्र का) चिह्न कहा गया है?

2. चन्द्र पक्ष के प्रथम दिन, अमावस्या और पूर्णिमा के दिनों में इसे दृढ़ करना चाहिए, इसके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय (या समय) नहीं है।

3. मनुष्य विषय की कामना से ही तृष्णा करता है और विषय की कामना से ही आसक्त होता है। इन दोनों को छोड़कर निरंजना की प्राप्ति करनी चाहिए।

4-5. जो कुछ उसे अपने लिए अनुकूल लगता है, उसे त्याग देना चाहिए। शक्ति के बीच में मन को और मन के बीच में शक्ति को रखकर मन के द्वारा मन को देखना चाहिए। तब वह सर्वोच्च अवस्था को भी छोड़ देता है। मन ही बिंदु है, जो सृष्टि और पालन का कारण है।

6. दूध से दही की तरह ही मन से ही बिंदु उत्पन्न होता है। मन का अंग वह नहीं है, जो बंधन के बीच में स्थित है।

7-8(अ)। बंधन वहीं है, जहां शक्ति सूर्य और चन्द्रमा के बीच में है। सुषुम्ना और उसके भेद (भेदन) को जानकर तथा वायु को मध्य में ले जाकर बिन्दु के आसन पर खड़े होकर नासिका को बंद कर लेना चाहिए।

8(ख)-9(क)। वायु, उपर्युक्त बिन्दु और सत्व-प्रकृति तथा छह चक्रों को जानकर सुख-मण्डल (अर्थात् सहस्रार या पीनियल ग्रंथि, सुख का क्षेत्र) में प्रवेश करना चाहिए।

9(ख)-11। छह चक्र हैं। मूलाधार गुदा में है; स्वाधिष्ठान जननांग के पास है; मणिपूरक नाभि में है; अनाहत हृदय में है; विशुद्धि गर्दन के मूल में है और आज्ञा सिर में (दोनों भौंहों के बीच में) है।

12. इन छह मंडलों को जानकर मनुष्य को सुख-मंडल (पीनियल ग्रंथि) में प्रवेश करना चाहिए, वायु को ऊपर खींचकर उसे ऊपर की ओर भेजना चाहिए।

13. जो इस प्रकार वायु को नियंत्रित करता है, वह ब्रह्माण्ड से एक हो जाता है। उसे वायु, बिन्दु, चित्त और चक्र का अभ्यास करना चाहिए।

14-15. योगी समाधि के द्वारा ही समता रूपी अमृत को प्राप्त करते हैं। जैसे यज्ञ की लकड़ी में निहित अग्नि मंथन के बिना प्रकट नहीं होती, वैसे ही अभ्यास योग के बिना ज्ञान रूपी दीपक नहीं उठता। पात्र में रखी अग्नि बाहर प्रकाश नहीं देती।

16. पात्र के टूट जाने पर उसका प्रकाश बाहर प्रकट होता है। शरीर को पात्र कहा गया है और 'उस' का स्थान भीतर की अग्नि (या प्रकाश) है। और जब गुरु के वचनों के द्वारा यह (शरीर) टूट जाता है, तब ब्रह्मज्ञान की ज्योति प्रकाशित हो जाती है।

गुरु को कर्णधार मानकर मनुष्य अभ्यास के द्वारा सूक्ष्म शरीर और संसार सागर को पार कर जाता है।

18(ख)-19. जो वाक (वाणी) परा में अंकुरित होती है, पश्यंती में दो पत्ते देती है, मध्यमा में कलियाँ निकलती है और वैखरी में पुष्पित होती है - वह वाक जिसका पहले वर्णन किया जा चुका है, उपरोक्त क्रम को उलटकर (अर्थात वैखरी से आरम्भ आदि) शब्द के अवशोषण की अवस्था को प्राप्त होता है।

20-21(क) जो यह विचार करता है कि जो उस वाक का महान् स्वामी है, जो अविभेदित है और जो उस वाक का प्रकाशक है, वही आत्मा है; जो इस प्रकार विचार करता है, वह कभी भी ऊँचे या नीचे (या अच्छे या बुरे) शब्दों से प्रभावित नहीं होता।

21(ख)-23(क)। विश्व, तैजस और प्रज्ञा (मनुष्य में), तीन विराट, हिरण्यगर्भ और ईश्वर, ब्रह्माण्ड का अण्डा, मनुष्य का अण्डा और सात लोक - ये सभी क्रमशः अपनी-अपनी उपाधियों के अवशोषण द्वारा प्रत्यगत्मन में लीन हो जाते हैं।

23(ख)-24(क)। ज्ञानाग्नि से तपा हुआ अण्डा अपने कारण सहित परमात्मा में लीन हो जाता है। तब वह परब्रह्म से एक हो जाता है।

24(ख)-25। तब वह न स्थिरता रह जाती है, न गहराई, न प्रकाश रह जाता है, न अन्धकार, न वर्णनीय रह जाता है, न भेदनीय। केवल सत् (अस्तित्व) ही शेष रह जाता है। आत्मा को शरीर के भीतर एक पात्र में प्रकाश की भाँति समझना चाहिए।

26. आत्मा अंगूठे के बराबर है, धुंआ रहित और आकारहीन प्रकाश है, शरीर के भीतर चमकता है और अविभाज्य तथा अपरिवर्तनीय है।

27-28(क)। इस शरीर में निवास करने वाला विज्ञान आत्मा जाग्रत अवस्था में माया द्वारा मोहित हो जाता है,स्वप्न और स्वप्नरहित निद्रा में रहता है; किन्तु अनेक जन्मों के पश्चात् शुभ कर्मों के प्रभाव से अपनी ही स्थिति को प्राप्त करना चाहता है। मैं कौन हूँ? यह संसार रूपी दाग मुझ पर कैसे लगा है? जाग्रत और स्वप्नावस्था में व्यापार करने वाले मुझ स्वप्नरहित निद्रा में क्या हो जाता है?

जैसे अग्नि से रूई का गट्ठा जल जाता है, वैसे ही अविद्या का परिणाम चिदाभास भी उपरोक्त (बुद्धिमान) विचारों से तथा अपने ही परम प्रकाश से जल जाता है। (संसार में शरीर का जैसा जलना होता है) बाह्य जलना कोई जलना नहीं है।

जब सांसारिक बुद्धि नष्ट हो जाती है, तब दहार (हृदय का आकाश) में स्थित प्रत्यगात्मा विज्ञान प्राप्त करता है, तथा सब जगह फैलकर, क्षण

भर में ज्ञानमय और मनोमय (कोश) में जल जाता है। इसके बाद, वह स्वयं सदैव भीतर, पात्र के भीतर प्रकाश की भाँति चमकता रहता है।

33. जो मुनि इस प्रकार निद्रा पर्यन्त और मृत्यु पर्यन्त चिन्तन करता है, उसे जीवन्मुक्त कहना चाहिए। जो करने योग्य है, उसे करके वह भाग्यशाली व्यक्ति है।

34. और जीवन्मुक्त की अवस्था को भी त्यागकर, शरीर के नष्ट हो जाने पर वह विदेहमुक्त (देह-मुक्ति) को प्राप्त होता है। वह वायु में विचरण करने जैसी अवस्था को प्राप्त होता है।

35. तब वही शेष रह जाता है जो ध्वनिरहित, स्पर्शरहित, निराकार और अमर है, जो रस है, नित्य और गंधरहित है, जिसका न आदि है न अंत, जो महान से भी महान है, जो नित्य, निर्मल और क्षयरहित है। इस प्रकार तीसरा अध्याय समाप्त होता है। हरि ॐ तत् सत् !

ॐ ! वह हम दोनों की एक साथ रक्षा करे, हम दोनों का एक साथ पोषण करे, हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ कार्य करें, हमारा अध्ययन प्रबल और प्रभावी हो, हम आपस में विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)। ॐ ! मुझमें शांति हो ! मेरे वातावरण में शांति हो ! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो !

कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित योगकुंडलिनी उपनिषद यहीं समाप्त होता है।

087 - भस्म जाबाल उपनिषद

ॐ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रभु इन्द्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

मैं ही वह पूर्ण ब्रह्म हूँ, जो अपने वास्तविक स्वरूप (इस आत्मा के साथ एक) को समझकर, इस ब्रह्माण्ड को विद्यमान (वास्तविक) तथा अपने स्वरूप से पृथक मानने की अज्ञानता (भ्रम या माया) को (परम) ज्ञान की विनाशकारी अग्नि द्वारा भस्म कर देता हूँ!

एक बार जाबालि के वंशज भुशुण्ड ने कैलास पर्वत पर जाकर भगवान महादेव शिव को प्रणाम किया, जो ओंकार के स्वरूप हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की त्रिमूर्ति से परे हैं। भुशुण्ड ने फल, पुष्प तथा पत्तों द्वारा बार-बार बड़ी भक्ति के साथ शिव की पूजा की। फिर उन्होंने भगवान शिव से प्रश्न कियाः "भगवन्! मुझे सभी वेदों का सारभूत ज्ञान प्रदान करने की कृपा करें, जिसमें भस्म (पवित्र राख) के प्रयोग की विधि और तकनीक समाहित हो, क्योंकि यह मोक्ष प्राप्ति का एकमात्र साधन है। भस्म किससे बनी होती है? इसे कहाँ लगाना चाहिए? कौन-से मंत्र का जाप करना चाहिए? इसके लिए कौन-से व्यक्ति उपयुक्त हैं? इसके क्या नियम हैं?

कृपया मुझे उपदेश दीजिए, क्योंकि मैं दलित वर्ग में जन्मा हूँ। दयालु भगवान परमेश्वर ने कहाः सर्वप्रथम भक्त को चाहिए कि वह निर्धारित समय पर देवताओं के प्रभाव को समझकर प्रातःकाल कुछ पवित्र एवं शुद्ध गोबर लाकर उसे पलाश के पत्ते पर रखकर त्र्यम्बकं आदि वैदिक मंत्र से धूप में सुखा दे। फिर उस सूखे गोबर को अपने सम्प्रदाय के गृहयसूत्र में बताए गए नियमों के अनुसार किसी सुविधाजनक स्थान पर रखकर किसी भी

उपलब्ध अग्नि में जला दे, फिर तिल और धान की आहुतियां घी सहित सोमाय स्वाहा मंत्र से दे। आहुतियां 1008 होनी चाहिए।

यदि संभव हो तो इसका डेढ़ गुना करें। घी डालने का यंत्र पत्तों का बना होना चाहिए, ऐसी स्थिति में मनुष्य को कोई पाप नहीं लगता। फिर अंत में पूर्णाहुति के समय श्वेताकृता की आहुति 'त्र्यम्बकं' आदि मंत्र से देनी चाहिए। उसी मंत्र से अग्नि की आठ दिशाओं में बलि रखनी चाहिए। उस भस्म को गायत्री मंत्र से जल के साथ छिड़कना चाहिए। फिर उस पवित्र भस्म को सोने, चांदी, तांबे या मिट्टी के बर्तन में रखकर रुद्र मंत्रों से छिड़कना चाहिए। फिर उसे स्वच्छ और सभ्य स्थान पर रखना चाहिए।

फिर भक्त को ब्राहमणों को भव्य भोज देकर सम्मानित करना चाहिए। तभी वह शुद्ध होगा। फिर उसे पंच-ब्रहम-मंत्रों, 'मनस्तोक', 'सद्यो जातम्' आदि के साथ बर्तन से भस्म लेनी चाहिए, और यह विचार करना चाहिए कि 'अग्नि भस्म है, वायु भस्म है, जल भस्म है, पृथ्वी भस्म है, आकाश भस्म है, देवता भस्म हैं, ऋषि भस्म हैं, यह सारा ब्रहमांड और अस्तित्व भस्म है; मैं इस पवित्र और शुद्ध करने वाली भस्म को प्रणाम करता हूं जो मेरे सभी पापों को नष्ट कर देती है।'

इस प्रकार, भक्त को अपने बाएं हाथ की स्वच्छ हथेली से थोड़ी सी भस्म रखनी चाहिए, 'वामदेवाय' (यह वामदेव के लिए है) मंत्र 'त्र्यंबकम' आदि से छिड़कना चाहिए, और 'शुद्धम सुद्धेन' आदि मंत्र से इसे साफ करना चाहिए। फिर उसे अच्छी तरह से छानना चाहिए। फिर उसे सिर से पैर तक पांच ब्रहम-मंत्रों के साथ लगाना चाहिए। प्रथम अँगुली, मध्यमा और अनामिका से उसे सिर के मध्य में लगाते हुए 'सिर को' और 'हे भस्म! तुम अग्नि से आये हो!' उसे 'मूर्धनम्' मंत्र के साथ सिर के ऊपर भस्म लगानी चाहिए। माथे पर 'त्र्यम्बकं आदि', गर्दन पर 'नीलग्रीवय आदि', गर्दन के दाहिने भाग पर 'त्र्यायुषम् आदि तथा वामा आदि', गालों पर 'कलया आदि', आंखों पर 'त्रिलोचनय आदि', कानों पर 'श्रीनवम आदि', मुख पर 'प्रब्रवाम आदि', हृदय (छाती) पर 'आत्मने आदि', नाभि पर 'नाभिः आदि', दाहिने कंधे पर 'भवय आदि', दाहिनी कोहनी पर 'रुद्रय आदि', दाहिनी कलाई पर 'सर्वय आदि', दाहिनी हथेली के पृष्ठ भाग पर 'पशुपतये' 'आदि', बायें कंधे पर 'उग्रय आदि',

बायें कोहनी पर 'अग्रे-वधय आदि', बायें कलाई पर 'दुरे-वधय आदि', बायें हथेली के पृष्ठ भाग पर 'नमो हरत्रे आदि', तथा कंधे की हड्डियों पर 'शंकराय आदि'। इसके पश्चात भक्त को 'सोमया' आदि मंत्र से शिव को

प्रणाम करना चाहिए। हाथ धोकर 'आपः पुनन्तु' आदि मंत्र से उस भस्म-जल को पीना चाहिए। जल को किसी भी कारण से गिराना नहीं चाहिए।

इस प्रकार भस्मधारण का यह अभ्यास प्रातः, मध्यान्ह तथा सायंकाल को करना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं करता, तो पतित हो जाता है। यही बात सभी ब्राह्मणों का विहित धर्म है। इस प्रकार भस्मधारण किए बिना उसे कभी भी अन्न, जल आदि ग्रहण नहीं करना चाहिए। यदि भूलवश यह साधना भूल जाए तो उस दिन गायत्री का पुनः जाप नहीं करना चाहिए।

उस दिन कोई यज्ञ नहीं करना चाहिए, देवता, ऋषि या पितरों को तर्पण नहीं करना चाहिए। यह सनातन धर्म है, जो सब पापों का नाश कर मोक्ष की परम गति प्रदान करता है। ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासियों का यही नित्य कर्म है। यदि यह एक बार भी भूल जाए तो उसे गले तक जल में खड़े होकर १०८ बार गायत्री का जाप करना चाहिए और सारा दिन उपवास करना चाहिए।

यदि संन्यासी एक दिन भी भस्म धारण न करे तो उसे सारा दिन उपवास करना चाहिए और पुनः शुद्ध होने के लिए १००० प्रणव जप करना चाहिए। अन्यथा भगवान ऐसे संन्यासियों को कुत्तों और भेड़ियों के सामने फेंक देंगे। यदि यह भस्म उपलब्ध न हो तो कोई अन्य भस्म जो उपलब्ध हो, उसे विहित मंत्रों के साथ प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार का अभ्यास मनुष्य द्वारा किए गए किसी भी प्रकार के पाप को नष्ट कर देगा।

तब भुशुंड ने शिव से पूछा: ब्राह्मण को कौन से दैनिक कर्म करने चाहिए, जिनकी उपेक्षा करने से वह पाप का भागी बनता है? फिर किसका ध्यान करना चाहिए? किसका स्मरण करना चाहिए? ध्यान कैसे करना चाहिए? इसका अभ्यास कहाँ करना चाहिए? कृपया मुझे विस्तार से बताएँ। भगवान ने संक्षेप में उत्तर दिया: सबसे पहले भक्त को सुबह जल्दी उठना चाहिए सूर्योदय के समय स्नान करना चाहिए। रुद्र सूक्त से शरीर को शुद्ध करना चाहिए।

फिर स्वच्छ वस्त्र धारण करना चाहिए। इसके बाद सूर्यदेव का ध्यान करना चाहिए और शरीर के सभी निर्धारित अंगों पर भस्म लगाना चाहिए। फिर उसे बताए अनुसार सफेद रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। कुछ लोग रुद्राक्ष धारण करने का निम्न तरीका बताते हैं: सिर पर चालीस रुद्राक्ष की माला पहननी चाहिए। छाती पर एक या तीन माला। दोनों कानों में बारह माला।

गले में बत्तीस माला। प्रत्येक ऊपरी भुजा में सोलह माला। प्रत्येक कलाई में बारह माला। प्रत्येक अंगूठे में छह माला। फिर भक्त को हाथ में कुशा लेकर संध्या करनी चाहिए। उसे शिव-षडाक्षर या शिव-अष्टाक्षर में से किसी एक का जप करना चाहिए। 'ॐ नमः शिवाय' और 'ॐ नमो महादेवाय' ये दो मंत्र हैं। यह सर्वोच्च सत्य और महानतम निर्देश है। मैं स्वयं वह महान भगवान शिव हूँ, सभी देवताओं का ईश्वर, सभी ब्रह्मांडों का सर्वोच्च नियंत्रक हूँ।

मैं वह निराकार ब्रह्म हूँ, मैं ओंकार हूँ, मैं सबका निर्माता, संरक्षक और संहारक हूँ। मेरे भय से ही सभी ठीक से काम कर रहे हैं। मैं यह संसार और पाँच तत्व हूँ। मैं सर्वोच्च सत्य हूँ, उपनिषदों का ब्रह्म हूँ। यह सबसे बड़ी विद्या है। मैं ही मोक्ष का एकमात्र दाता हूँ। इसलिए सभी लोग अंतिम सहायता के लिए मेरे पास आते हैं। इसीलिए मैं उन प्राणियों को अपने अस्तित्व में समाहित कर लेता हूँ जो अपने प्राण बनारस में छोड़ते हैं जो मेरे त्रिशूल के शीर्ष पर स्थित है। इसलिए सभी को बनारस में ही तपस्या करनी चाहिए। किसी भी परिस्थिति में बनारस की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

सभी को यथासंभव बनारस में रहने का प्रयास करना चाहिए। बनारस से बढ़कर कोई स्थान नहीं है। बनारस में भी सबसे अधिक प्रसिद्ध शिव का मंदिर है, जहाँ पूर्व में धन का स्थान है, दक्षिण में विचार का स्थान है, पश्चिम में वैराग्य का स्थान है और उत्तर में ज्ञान का स्थान है। वहाँ बीच में मुझ सनातन आत्मा की पूजा करनी चाहिए। बनारस का वह लिंग सूर्य, चन्द्रमा या तारों से प्रकाशित नहीं है। वह स्वयं प्रकाशमान लिंग जिसे 'विश्वेश्वर' कहते हैं, उसका मूल पाताल में है। वह मैं ही हूँ।

जो व्यक्ति पवित्र भस्म और रुद्राक्ष धारण करता है, उसे मेरी पूजा करनी चाहिए। मैं उसे सभी पापों और दुखों से मुक्ति दिलाऊँगा। मेरा अभिषेक करने से वह मेरी सायुज्य अवस्था को प्राप्त करता है। मेरे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। मैं सभी को तारक मंत्र से दीक्षा देता हूँ। जो मुक्ति चाहते हैं, उन्हें बनारस में रहना चाहिए। मैं उनका ध्यान रखूँगा।

मैं ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र का स्वामी हूँ। सबसे भ्रष्ट पुरुष या स्त्री बनारस में मरने पर मोक्ष प्राप्त करेगा। अन्य पापी मरने के बाद जलते हुए अंगारों में तले जाएँगे। इसलिए, सभी को बनारस में रहने का प्रयास करना चाहिए जो स्वयं मेरा प्राणलिंग है।

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;
ॐ हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!
ॐ हम देवों द्वारा दिए गए जीवन की अवधि का आनंद लें,
ॐ अपने शरीर और अंगों को स्थिर करके उनकी स्तुति करें!
ॐ महाप्रतापी इंद्र हमें आशीर्वाद दें!
ॐ सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!
ॐ बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!
ॐ बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!
ॐ ! मुझमें शांति हो!
ॐ मेरे वातावरण में शांति हो!
ॐ मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहां अथर्ववेद में निहित भस्म-जाबालोपनिषद् समाप्त होता है।

088 - रुद्राक्ष जाबाला उपनिषद

ॐ ! मेरे अंग और वाणी, प्राण, नेत्र, कान, प्राणशक्ति
और सभी इंद्रियों में शक्ति बढ़े।
सारी सत्ता उपनिषदों का ब्रह्म है।
मैं कभी ब्रह्म को अस्वीकार न करूँ, न ब्रह्म मुझे अस्वीकार करे।
कोई भी अस्वीकार न हो:
कम से कम मेरी ओर से तो कोई अस्वीकार न हो।
उपनिषदों में वर्णित गुण मुझमें हों,
जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।
ॐ ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!
जय हो ॐ! मैं श्री महारुद्र से संबंधित परम शांति की दीप्तिमान अवस्था की स्तुति करता हूँ, जिसे रुद्राक्ष जाबाला उपनिषद के माध्यम से जाना जाता है।
भुशुंड ने भगवान कालाग्निरुद्र से पूछा: रुद्राक्ष की माला की शुरुआत क्या है?

इन्हें शरीर पर धारण करने से क्या लाभ है? भगवान कालाग्निरुद्र ने उत्तर दिया: मैंने त्रिपुर असुरों का नाश करने के लिए अपनी आँखें बंद कर लीं। मेरी इस प्रकार बंद की गई आँखों से जल की बूँदें पृथ्वी पर गिरीं। ये आँसू की बूँदें रुद्राक्ष में बदल गईं। 'रुद्राक्ष' के नाम के उच्चारण मात्र से दस गायों के दान का फल मिलता है।

इसे देखने और छूने से दुगुना फल मिलता है। मैं इसकी और अधिक प्रशंसा करने में असमर्थ हूँ। मैंने एक हजार दिव्य वर्ष तक अपनी आँखें बंद कीं। फिर मेरी पलकों से जल की बूँदें टपकीं और भक्तों को आशीर्वाद देने के लिए स्थिर अवस्था में पहुँच गईं। इसे धारण करने से भक्तों के रात और दिन में किए गए पापों का नाश होता है। रुद्राक्ष के दर्शन मात्र से एक लाख का लाभ होगा। लेकिन इसे धारण करने से एक करोड़ का लाभ होगा। क्यों, यह सौ करोड़ के बराबर होगा।

लेकिन जब कोई रुद्राक्ष के साथ जप करता है और इसे हर समय पहनता है तो यह एक हजार लाख करोड़ और सौ लाख करोड़ गुना शक्तिशाली होगा। रुद्राक्षों में, आमलका (हरड़) जितना बड़ा एक सबसे अच्छा माना जाता है।

बदरी का फल मध्यम श्रेणी का माना जाता है। लेकिन चने जितना बड़ा फल सबसे खराब माना जाता है। रुद्राक्ष की माला के आकार के बारे में मेरा यही विचार है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार प्रकार के लोग पृथ्वी पर केवल एक बेकार बोझ के रूप में पैदा होते हैं। असली ब्राह्मण सफेद रुद्राक्ष है। लाल क्षत्रिय है। पीला वैश्य है। और काला शूद्र है।

इसलिए ब्राह्मण को सफेद, क्षत्रिय को लाल, वैश्य को पीला और शूद्र को काला रुद्राक्ष पहनना चाहिए। ऐसे रुद्राक्ष पहनने चाहिए जो सुंदर, सुंदर, मजबूत, बड़े, शुभ और कांटेदार हों। कीड़े खाए हुए, टूटे हुए, कांटों रहित और घाव वाले रुद्राक्ष नहीं पहनने चाहिए। स्वयं छिद्रित रुद्राक्ष सबसे अच्छी किस्म का होता है। परंतु जो मनुष्य के प्रयत्न से छेद किया गया हो, वह अधिक बुरा माना जाता है। श्रेष्ठ रुद्राक्षों को श्वेत धागे में पिरोना चाहिए।

शिवभक्त को पूरे शरीर में रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। उसे शिखा पर एक, सिर पर तीन सौ, गले में छत्तीस, भुजाओं में सोलह, वक्ष पर बारह तथा कमर में पाँच सौ धारण करने चाहिए। उसे एक सौ आठ रुद्राक्षों का यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए। उसे गले में दो, तीन, पाँच अथवा सात रुद्राक्ष की मालाएँ धारण करनी चाहिए।

शिवभक्त को अपने मुकुट, कान की बाली, माला, कान में, बाजूबंद में, हर समय तथा विशेष रूप से पेट में रुद्राक्ष धारण करना चाहिए, चाहे वह सो रहा हो, पी रहा हो, आदि। यदि भक्त तीन सौ मनके धारण करे, तो यह सबसे बुरा है, यदि वह पाँच सौ धारण करे, तो यह मध्यम है, परंतु एक हजार धारण करना सबसे अच्छा है।

भक्त को सिर पर रुद्राक्ष धारण करते समय अपने इष्ट मंत्र का जाप करना चाहिए, गले में धारण करते समय तत्पुरुष मंत्र का जाप करना चाहिए तथा गले में धारण करते समय अघोर मंत्र का जाप करना चाहिए। वक्षस्थल पर धारण करते समय भी यही मंत्र (अघोर) जपना चाहिए। अघोर बीज मंत्र के साथ भुजाओं में भी रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। तब भुशुण्ड ने भगवान कालाग्निरुद्र से पूछाः रुद्राक्ष की माला के विभिन्न रूप और प्रभाव क्या हैं? कृपया मुझे इनके विभिन्न मुखों सहित इनके रहस्य के बारे में बताइए, जो सभी बुराइयों से मुक्ति का साधन है।

भगवान कालाग्निरुद्र ने कहाः एक मुख वाली माला परम सत्य का स्वरूप है। इन रुद्राक्षों को धारण करने के बाद अनुशासित व्यक्ति (अपनी इन्द्रियों को वश में करके) एक शाश्वत सत्य में एकाकार हो जाता है। दो मुख वाला मनका अर्धनारीश्वर का रूप है और इसे पहनने वाला भक्त अर्धनारीश्वर (शक्ति के साथ एकाकार शिव) की कृपा प्राप्त करता है। तीन मुख वाला मनका तीन अग्नि का रूप है और इसे पहनने वाला भक्त अग्नि की कृपा प्राप्त करता है। चार मुख वाला मनका चार मुख वाले ब्रह्मा का रूप है और इसे पहनने वाला भक्त ब्रह्मा की कृपा प्राप्त करता है।

पांच मुख वाला मनका पंचब्रह्म (पांच मुख वाले शिव) का रूप है और इसे पहनने वाला भक्त पंचब्रह्म की कृपा प्राप्त करता है और हत्या के पाप को दूर करता है। छह मुख वाला मनका छह मुख वाले कार्तिकेय या गणेश का रूप है और इसे पहनने वाला भक्त धन और स्वास्थ्य, स्पष्ट बुद्धि और ज्ञान, और शुद्धि की कृपा प्राप्त करता है। सात मुखों वाला मनका सात मात्राओं (माता देवियों) का रूप है और इसे पहनने वाले भक्त को धन और स्वास्थ्य, सही धारणा और मन की शुद्धता की कृपा प्राप्त होती है।

आठ मुखों वाला मनका आठ गुना प्रकृति (पांच तत्व, मन, अहंकार और पदार्थ) या आठ वसुओं का रूप है और इसे पहनने वाला भक्त इन देवताओं की कृपा प्राप्त करता है और सत्यवादी बन जाता है। नौ मुखों वाला मनका

नव-शक्तियों का रूप है और इसे पहनने वाला भक्त नौ शक्तियों की कृपा प्राप्त करता है।

दस मुखों वाला मनका योगियों द्वारा उपयोग किए जाने वाले दस यम साधनों का रूप है और इसे पहनने वाला भक्त मन की शांति प्राप्त करने की कृपा प्राप्त करता है। ग्यारह मुखों वाला मनका ग्यारह रुद्रों का रूप है और इसे पहनने वाला भक्त कल्याण और धन की वृद्धि की कृपा प्राप्त करता है। बारह मुखों वाला मनका महाविष्णु या बारह आदित्यों का रूप है और इसे पहनने वाले भक्त को मोक्ष की कृपा प्राप्त होती है।

तेरह मुखों वाला मनका कामदेव (कामदेव या प्रेम के देवता) का रूप है और इसे पहनने वाले भक्त को सभी इच्छाओं को पूरा करने में कामदेव की कृपा प्राप्त होती है। चौदह मुखों वाला मनका रुद्र का रूप है जो उनकी आँखों से उत्पन्न होता है और इसे पहनने वाले भक्त को सभी रोगों के विनाश की कृपा प्राप्त होती है।

रुद्राक्ष धारण करने वाले को मादक द्रव्य, मांस, लहसुन, प्याज, गाजर तथा ऐसी सभी निषिद्ध चीजों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। ग्रहण, विषुसंक्रांति (मीन का अंत और मेष मास का प्रारंभ), अमावस्या, पूर्णिमा तथा ऐसे अन्य शुभ दिनों में रुद्राक्ष धारण करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है। रुद्राक्ष का आधार ब्रह्मा, नाभि विष्णु, मुख रुद्र तथा छिद्र सभी देवताओं का निवास है।

एक दिन सनत्कुमार ने कालाग्निरुद्र से पूछाः "हे प्रभु! मुझे रुद्राक्ष धारण करने के नियम बताइए।" उस समय निदाघ, जड़भरत, दत्तात्रेय, कात्यायन, भारद्वाज, कपिल, वशिष्ठ, पिप्पलाद आदि कालाग्निरुद्र के पास आए। तब भगवान कालाग्निरुद्र ने उनसे पूछा कि वे सब समूह में क्यों आए हैं। उन सबने उत्तर दिया कि हम रुद्राक्ष धारण करने की विधि सुनने आये हैं।
कालाग्निरुद्र ने कहा: जो रुद्र की अक्षियों (आँखों) से उत्पन्न होते हैं, उन्हें रुद्राक्ष कहते हैं। इन मणियों को एक बार भी हाथ से स्पर्श करने पर एक साथ दो हजार गायों का दान करने का फल प्राप्त होता है। इन्हें कानों में धारण करने पर ग्यारह हजार गायों का दान करने का फल प्राप्त होता है। वह ग्यारह रुद्रों की गति को भी प्राप्त करता है। मणियों को सिर पर धारण करने पर एक करोड़ गायों का दान करने का फल प्राप्त होता है। इन सभी स्थानों में से कानों में धारण करने पर मिलने वाले लाभ को मैं तुम्हें बताने में असमर्थ हूँ।

जो कोई भी इस रुद्राक्ष जाबालोपनिषद् का अध्ययन करता है, चाहे वह बालक हो या युवा, वह महान हो जाता है। वह सबका गुरु और सभी मंत्रों का शिक्षक बन जाता है। इन (उपनिषद् के) मंत्रों से हवन और अर्चन करना चाहिए। जो ब्राह्मण सायंकाल में इस उपनिषद् का पाठ करता है, वह दिन में किये गये पापों का नाश करता है, दोपहर में पाठ करने वाला छह जन्मों के पापों का नाश करता है, प्रातः और सायंकाल में पाठ करने वाला अनेक जन्मों के पापों का नाश करता है।

उसे छह हजार लाख गायत्री जप करने का फल मिलता है। वह ब्राह्मण की हत्या, ताड़ी पीना, सोना चुराना, गुरुपत्नी के पास जाना, उसके साथ संभोग करना, भ्रष्ट व्यक्ति से बात करना आदि सभी पापों से शुद्ध हो जाता है। उसे सभी तीर्थों और नदी-स्नानों का लाभ मिलता है। उसे शिव-सायुज्य की प्राप्ति होती है। वह फिर से जन्म में नहीं आता। ॐ ! मेरे अंग, वाणी, प्राण, नेत्र, कान, प्राण और सभी इन्द्रियाँ बलवान हों। समस्त अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है। मैं कभी ब्रह्म का खंडन न करूँ, न ब्रह्म मेरा खंडन करे। किसी भी प्रकार का खंडन न हो:

कम से कम मेरी ओर से तो कोई खंडन न हो।

उपनिषदों में जिन गुणों की घोषणा की गई है, वे मुझमें हों,

मैं आत्मा के प्रति समर्पित हूँ; वे मुझमें निवास करें।

ॐ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

सामवेद में सम्मिलित रुद्राक्ष जाबालोपनिषद यहीं समाप्त होता है

089 - गणपति उपनिषद

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रसिद्ध इंद्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

सुनने वालों को शुभ हो ---- इस प्रकार शांति।

1. ॐ गम। मैं गणपति को नमन करता हूँ।

2. आप स्पष्ट रूप से तत्व हैं। आप ही निर्माता हैं। आप ही पालनकर्ता हैं। आप ही संहारक हैं। इन सबमें आप निश्चित रूप से ब्रह्म हैं। आप स्पष्ट रूप से सार हैं।

3. मैं सदैव अमृत बोलता हूँ। मैं जो सत्य बोलता हूँ।

4. मेरी रक्षा करें। बोलने वालों की रक्षा करें। सुनने वालों की रक्षा करें। देने वालों की रक्षा करें। धारकों की रक्षा करें। दोहराने वाले शिष्य की रक्षा करें। पूर्व में उसकी रक्षा करें। दक्षिण में उसकी रक्षा करें। पश्चिम में उसकी रक्षा करें। उत्तर में उसकी रक्षा करें। ऊपर की रक्षा करें। नीचे की रक्षा करें। हर जगह रक्षा करें! मेरी रक्षा करें हर जगह!

5. आप वाणी हैं। आप चेतना हैं। आप आनंद हैं। आप ब्रह्म हैं। आप चेतना-आनंद हैं। आप अद्वैत हैं। आप स्पष्ट रूप से ब्रह्म हैं। आप ज्ञान हैं। आप बुद्धि हैं।

6. आप इस सारे संसार का निर्माण करते हैं। आप इस सारे संसार का पालन करते हैं। यह सारा संसार आप में दिखाई देता है आप तीनों कालों से परे हैं। आप हमेशा मूलाधार में स्थित रहते हैं। आप तीनों शक्तियों की सत्ता हैं। योगीजन हमेशा आपका ध्यान करते हैं। आप ब्रह्मा हैं, आप विष्णु हैं, आप रुद्र हैं, आप अग्नि हैं, आप वायु हैं, आप सूर्य हैं, आप चंद्रमा हैं, आप ब्रह्मा हैं,भूर्-भुवः-स्वर।

7 ग पहला अक्षर है, उसके बाद पहला अक्षर, उसके बाद म, फिर अर्धचन्द्र सब एक साथ। म से मिलकर यह मंत्र रूप है।

8 ग अक्षर पहला रूप है, अ अक्षर मध्य रूप है, म अंतिम रूप है। बिन्दु उच्चतर रूप है, नाद एक साथ जुड़ना, संहिता संधि। यह भगवान गणेश की विद्या है।

9 गणक द्रष्टा हैं, नृकद-गायत्री छंद है, श्री महागणपति देवता हैं। ओम गणपतये नमः।

10 आइए हम एकदंत का चिंतन करें, टेढ़ी सूंड का ध्यान करें, वह दांत हमारा मार्गदर्शन करे।

11. एक दांत, चार भुजाएँ, पाश और अंकुश धारण किए हुए, अपने हाथों से भय दूर करने वाले और वरदान देने वाले, अपने ध्वज के रूप में एक चूहे के साथ।

12. लाल, बड़े पेट वाले, फटकने वाली टोकरी के समान कान वाले, लाल वस्त्र पहने हुए, लाल सुगंध से सने अंगों वाले, लाल फूलों से पूजित।

13. भक्तों को दयालु देव, जगत के रचयिता, आदि कारण, जो सृष्टि के आरंभ में प्रकृति और मनुष्य से भी महान थे, की जय हो।

14. जो इस प्रकार ध्यान करता है, वह योगियों से श्रेष्ठ योगी है।

15. व्रतों के स्वामी की जय हो, गणपति की जय हो, प्रथम देव की जय हो, बड़े पेट वाले, एक दांत वाले, विघ्न विनाशक, शिवपुत्र, वरदाता की जय हो, जय हो!

16. जो इस अथर्व ग्रन्थ का अध्ययन करता है, वह ब्रह्म की ओर अग्रसर होता है। वह सदैव आनंदित रहता है। वह किसी भी बाधा से बंधा नहीं रहता। वह पाँच बड़े और पाँच छोटे पापों से मुक्त हो जाता है। संध्या का ध्यान रात्रि के अकृत्यों का नाश करता है। सायंकाल और प्रातःकाल दोनों समय वह पाप से मुक्त हो जाता है और धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करता है।

17. यह अथर्व ग्रन्थ उन लोगों को नहीं देना चाहिए जो शिष्य नहीं हैं। यदि कोई व्यक्ति मोहवश ऐसा देता है, तो वह बुरा व्यक्ति है।

18. जो कोई कुछ चाहता है, वह इसके एक हजार पाठ करने से अपनी इच्छा पूरी कर सकता है। जो इसे गणपति पर छिड़कता है, वह वाक्पटु हो जाता है। जो चौथे दिन इसका पाठ करता है, वह विद्या का ज्ञाता हो जाता है। यह एक अथर्व कथन है: 'जो ब्रह्मविद्या की ओर बढ़ता है, वह कभी नहीं डरता।' जो भुने हुए अन्न से पूजा करता है, वह प्रसिद्ध और बुद्धिमान हो जाता है।

जो मोदक से पूजा करता है, वह मनोवांछित फल प्राप्त करता है। जो समित और घी से पूजा करता है, उसे सब कुछ प्राप्त हो जाता है, उसे सब कुछ प्राप्त हो जाता है। जो आठ ब्राह्मणों को यह समझाता है, वह सूर्य की किरणों के समान हो जाता है। सूर्यग्रहण में, किसी बड़ी नदी में, अथवा किसी प्रतिमा के सामने इस मंत्र का जप करने से वह सिद्ध हो जाता है। वह महान बाधाओं से मुक्त हो जाता है। वह महान दुर्भाग्यों से मुक्त हो जाता है।

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ बातें सुनें; ॐ हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ बातें देखें! ॐ हम देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें, ॐ अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

ॐ महाप्रतापी इंद्र हमें आशीर्वाद दें! ॐ सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें! ॐ बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें! ॐ बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें! ॐ ! मुझमें शांति हो! ॐ मेरे वातावरण में शांति हो! ॐ मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

ॐ यहाँ अथर्ववेद में निहित गणपति उपनिषद समाप्त होता है।

090 - जाबाल दर्शन उपनिषद

ॐ ! मेरे अंग और वाणी, प्राण, नेत्र, कान, प्राणशक्ति
और सभी इंद्रियाँ शक्तिशाली बनें।
सारी सत्ता उपनिषदों का ब्रह्म है।
मैं कभी ब्रह्म को अस्वीकार न करूँ, न ब्रह्म मुझे अस्वीकार करे।
कोई भी अस्वीकार न हो:
कम से कम मेरी ओर से तो कोई अस्वीकार न हो।
उपनिषदों में जिन गुणों की घोषणा की गई है, वे मुझमें हों,
जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।
ॐ ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!
भगवान दत्तात्रेय चार भुजाधारी विष्णु के अवतार हैं और वे संसार के शासक हैं। संकृति
एक महान भक्त और ऋषि हैं और योग में निपुण हैं और दत्तात्रेय की शिष्या भी हैं। वह अपने गुरु (भगवान दत्तात्रेय) के पास विनम्रतापूर्वक और हाथ जोड़कर गया, जब उसके गुरु अकेले थे और उनसे प्रार्थना की, "हे भगवान, कृपया मुझे योग के विज्ञान के बारे में बताएं जिसकी आठ शाखाएं और पांच अलग-अलग स्थान हैं जिन्हें जानने से मुझे मोक्ष प्राप्त होगा। दत्तात्रेय ने उससे कहा, "हे संकृति, मैं तुम्हें योग के बारे में बताऊंगा जिसकी आठ शाखाएं हैं।

आठ शाखाएं यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि हैं। यम जो पहला है, अहिंसा, सत्य, दूसरों की संपत्ति न लेना,

ब्रह्मचर्य, दया, ईमानदारी, धैर्य, स्थिरता, भोजन अनुशासन और स्वच्छता का अभ्यास है।

1 नियम तपस्या, आनंद, रूढ़ि, दान, ईश्वर की पूजा, दर्शन का श्रवण, बुरे कार्यों से डरना, स्पष्ट बुद्धि, जप और तपस्या के दस पहलू हैं।

2 नौ महत्वपूर्ण आसन (बैठने की स्थिति) स्वस्तिक (स्वस्तिक), गोमुख (गाय का चेहरा), पद्म (स्वर),(कमल), वीर (वीर), सिंह, बद्र (सुरक्षित), मुक्त (स्वतंत्र), मयूर (मोर) और सुख (सुखद)। हे ऋषिवर, वह आसन, चाहे वह कोई भी हो, लेकिन जो आपको आरामदायक बनाता है और आपको योग करने का साहस देता है, उसे सुखासन कहा जाता है। जिन लोगों में अन्य आसन करने की शक्ति नहीं है, वे इसका उपयोग कर सकते हैं। बैठने की स्थिति में विजय तीनों लोकों पर विजय के समान है। एक बार आसन स्थापित हो जाने के बाद, प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

3 पहाड़ की चोटी पर या नदी के किनारे या जंगल में बिल्व वृक्ष के नीचे, मन को स्वीकार्य स्वच्छ स्थान चुनकर और तप (आश्रम) करने के लिए स्थान स्थापित करने के बाद, पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके सबसे परिचित आसन में बैठें। फिर शरीर, गर्दन और सिर को सीधी रेखा में रखकर बैठ जाएं, चेहरे को ढक लें और दृष्टि को नाक के अंत में चंद्र जैसे बिंदु की चौथी अवस्था से बहते अमृत पर यथासंभव केंद्रित करें।
\
फेफड़ों का उपयोग करके हवा को अंदर खींचें, इसे पेट में जमा करें, शरीर के अंदर अग्नि की ज्वाला का ध्यान करें और फिर ध्यान को अग्नि की जड़ पर उसकी ध्वनि और बिंदु के साथ स्थानांतरित करें। फिर बुद्धिमान व्यक्ति सांस छोड़ेगा और पिंगला (नाड़ी जो सुषुम्ना नाड़ी के दाईं ओर है) का उपयोग करके प्राण को खींचेगा और अग्निभिज का ध्यान करेगा। फिर उसे बीच में इड़ा (नाड़ी जो सुखद है और सुषुम्ना के बाईं ओर है) का उपयोग करके सांस छोड़नी और फिर से सांस लेनी है। व्यक्ति को एक गुप्त स्थान पर रहना चाहिए और इस अभ्यास का अभ्यास 3-4 दिन या 3-4 सप्ताह तक सुबह, दोपहर और शाम को छह बार करना चाहिए। इससे उसे नाड़ियों को साफ करने में मदद मिलेगी। धीरे-धीरे चिहन दिखने लगेंगे। शरीर हल्का हो जाएगा, पेट की अग्नि अच्छी तरह जलेगी और आवाज साफ हो जाएगी। ये सिद्धि के चिहन हैं। जब तक ये न दिख जाए, तब तक अभ्यास करते रहना है।

4 अब मैं तुम्हें प्रत्याहार के बारे में बताता हूँ। बल का प्रयोग करके जो इन्द्रियाँ स्वभावतः गति करती हैं, उन्हें मोड़ना प्रत्याहार है। ब्रह्म को जानने वाले कहते हैं कि जो कुछ भी हम देखते हैं, उसे ब्रह्म का रूप मानना प्रत्याहार है। ब्रह्म से संबंधित शुद्ध या अशुद्ध कर्म करना भी प्रत्याहार है। इसके अलावा दैनिक धार्मिक क्रियाएँ भगवान को समर्पित करके करना और इसी प्रकार अपनी इच्छानुसार क्रियाएँ करना भी प्रत्याहार है। इसके अलावा हवा (ऑक्सीजन) को अंदर लेना और उसे अलग-अलग स्थानों पर रोकना भी प्रत्याहार है।

बुद्धिमान व्यक्ति स्वस्तिकासन में बैठकर, सिर से पैर तक श्वास भरकर दोनों पैरों, मूलाधार, पेट, हृदय के मध्य, गर्दन के नीचे, जबड़े, पलकों के मध्य, माथे और कपाल के ऊपर रोककर रखे। फिर शरीर को स्वयं मानने की धारणा को त्याग दे और उस विचार को निर्विकल्प बनाकर परमात्मा में लीन कर दे। वेदान्त के विशेषज्ञ कहते हैं कि यही सच्चा प्रत्याहार है। ऐसा कोई भी साधन नहीं है जो इस प्रकार अभ्यास करने वालों को प्राप्त न हो सके।

5 अब मैं तुम्हें धारणा के पाँच प्रकार (स्थिर धारण - ध्यान की एक अवस्था - यहाँ हम जिस पर ध्यान कर रहे हैं उसे बिना डगमगाए धारण करने का प्रयास करते हैं) के बारे में बताता हूँ। शरीर के मध्य में जो आकाश है, उसमें बाहर के आकाश की धारणा करनी चाहिए। इसी प्रकार श्वास में बाहर के वायु की धारणा करनी चाहिए। पेट की अग्नि में बाहर की अग्नि की धारणा करनी चाहिए। शरीर के द्रव्य पहलुओं में बाहर के जल की धारणा करनी चाहिए।

शरीर के पार्थिव पहलुओं में बाहर की पृथ्वी की धारणा करनी चाहिए। मुनिवर, हं, यम, राम, वं और लम नामक पंचभूत मंत्रों का जप करना भी आवश्यक है। कहा जाता है कि यह महान धारणा सभी पापों का नाश करती है। शरीर में घुटने तक पृथ्वी का पहलू है, वहाँ से कूल्हे तक जल का पहलू है, हृदय तक अग्नि का पहलू है, पलकों के मध्य तक वायु का पहलू है और फिर कपाल के मध्य तक आकाश का पहलू है। पृथ्वी के पहलू में ब्रह्मा को, जल के पहलू में विष्णु को, अग्नि के पहलू में रुद्र को, वायु के पहलू में ईश्वर को और आकाश के पहलू में सदाशिव को रखना चाहिए। हे महामुनि, मैं आपको एक और धारणा भी बताता हूँ।

जीवात्मा में उन भगवान शिव को स्थापित करना चाहिए जो सब पर शासन करते हैं और जो बुद्धि के साक्षात् स्वरूप हैं। समस्त पापों से

छुटकारा पाने के लिए बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह कारणात्मक आत्मा में ब्रह्मा आदि देवताओं का दमन करे और अव्यक्त (जो स्पष्ट नहीं है) को, जो निराकार है और जो मूल कारण है, प्रणव के जप द्वारा सम्पूर्ण आत्मा के अन्दर स्थापित करे। उसे इन्द्रियों को वश में करके उन पर नियंत्रण करना चाहिए।

6 अब मैं तुम्हें ध्यान के विषय में बताता हूँ जो दुःखों का नाश करने वाला है। जो जन्म से उत्पन्न होने वाले कष्टों की औषधि है, जो जगत् के अनुशासन और मूल आधार हैं, जो परब्रह्म स्वरूप हैं, जिनकी पुरुष शक्ति ऊपर की ओर है, जो जगत् के स्वरूप हैं, जो विरुपाक्ष हैं, तथा जो सभी योगियों के मुखिया हैं, जैसे कि "मैं हूँ वही"।

फिर जो ध्यान की पहुँच से परे है, जो सच्चिदानंद ब्रह्म का साक्षात् स्वरूप है, तथा जो मोक्ष प्राप्ति के लिए "मैं हूँ वही" रूप में साक्षात् आत्मा है, उसका ध्यान करते रहो। जो इस प्रकार अभ्यास करेगा, उसके मन में वेदान्त का विज्ञान स्वतः ही प्रकट हो जाएगा। इसमें कोई संदेह नहीं है।

7 अब मैं तुम्हें समाधि (गहन ध्यान अवस्था) के बारे में बताता हूँ जो जन्म-मरण के दोषों को नष्ट कर देती है।समाधि वह अवस्था है जिसमें यह ज्ञान होता है कि जीवात्मा और परमात्मा एक हैं। आत्मा सर्वत्र व्याप्त है और उसमें कोई गति या दाग नहीं है। एक होते हुए भी माया के प्रभाव से वह भिन्न-भिन्न वस्तुओं के रूप में दिखाई देती है। वास्तव में इन तथाकथित वस्तुओं में कोई अंतर नहीं है। जब कोई व्यक्ति सभी वस्तुओं को अपने भीतर और स्वयं को सभी वस्तुओं का एक अंश मानता है, तो वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

जब कोई व्यक्ति समाधि में डूब जाता है और विभिन्न वस्तुओं को भिन्न-भिन्न नहीं देखता, तब उसे मोक्ष का एकमात्र लक्ष्य प्राप्त होता है। जब उसे केवल सच्ची आत्मा दिखाई देती है और सारा संसार उसे माया के रूप में दिखाई देता है, तब वह सभी दुखों से मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार भगवान दत्तात्रेय के उपदेश से ऋषि संकृति का सारा भय समाप्त हो गया और वे अपने भीतर उस आनंदमय अवस्था को प्राप्त हुए।

ॐ ! मेरे अंग और वाणी, प्राण, आंखें, कान, प्राण और सभी इंद्रियां शक्तिशाली बनें। सारा अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है। मैं कभी ब्रह्म को अस्वीकार न करूं, न ब्रह्म मुझे अस्वीकार करे। बिलकुल भी अस्वीकार न

हो: कम से कम मेरी ओर से तो कोई अस्वीकार न हो। उपनिषदों में जिन गुणों की घोषणा की गई है, वे मुझमें हों, मैं आत्मा के प्रति समर्पित हूं; वे मुझमें निवास करें। ॐ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ सामवेद में शामिल जाबाला दर्शनोपनिषद समाप्त होता है।

091 - तारा सार उपनिषद

ॐ ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है।
अनंत अनंत से ही निकलता है।
(तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेते हुए,
यह केवल अनंत (ब्रह्म) ही रह जाता है।
ॐ ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!
अध्याय - I
1. हरि ॐ। बृहस्पति ने याज्ञवल्क्य से पूछा: "जिसे कुरुक्षेत्र कहा जाता है, वह देवताओं के यज्ञ का स्थान और सभी प्राणियों का आध्यात्मिक स्थान है। इसलिए मनुष्य को कहाँ जाना चाहिए ताकि वह कुरुक्षेत्र को पहचान सके, जो देवताओं के यज्ञ का स्थान और सभी प्राणियों का आध्यात्मिक स्थान है?" (जिस पर याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया): "अविमुक्त कुरुक्षेत्र है, देवों के यज्ञ और ब्रह्म के अध्ययन का स्थान, क्योंकि यहीं पर रुद्र प्राण (जीवन) के निकल जाने पर व्यक्ति को तारक ब्रह्म में दीक्षित करते हैं।

इससे व्यक्ति अमर हो जाता है और मोक्ष का भोगी बन जाता है। इसलिए व्यक्ति को हमेशा उस स्थान अविमुक्त के बीच में रहना चाहिए और उसे कभी नहीं छोड़ना चाहिए, हे पूज्य महोदय, अविमुक्त।" इस प्रकार याज्ञवल्क्य ने कहा। 2. तब भरद्वाज ने याज्ञवल्क्य से पूछा: "तारक क्या है? वह क्या है जो व्यक्ति को (इस सांसारिक अस्तित्व को) पार कराता है"। जिस पर याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया: "ओम नमो नारायणाय तारक है। इसकी चिदात्मा के रूप में पूजा की जानी चाहिए।

ओम् एक अक्षर है और आत्मा की प्रकृति का है। नमः दो अक्षरों का है और प्रकृति की प्रकृति का है। नारायणाय पाँच अक्षरों वाला है और परब्रह्म के समान है। जो इसे जानता है, वह अमर हो जाता है। 'ॐ' से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं, 'न' से विष्णु उत्पन्न होते हैं, 'मा' से रुद्र उत्पन्न होते हैं, 'न' से ईश्वर उत्पन्न होते हैं, 'रा' से अण्ड-विराट (या ब्रह्माण्ड का विराट) उत्पन्न होता है, 'य' से पुरुष उत्पन्न होता है, 'न' से भगवान उत्पन्न होते हैं, और 'य' से परमात्मा उत्पन्न होते हैं।

नारायण का यह अष्टाक्षर (आठ अक्षर) सर्वोच्च और सर्वोच्च पुरुष है। इस प्रकार प्रथम पाद (या अर्ध) वाला ऋग्वेद है।

अध्याय - 2

जो ॐ है, वह अविनाशी, परब्रह्म है। उसी की पूजा करनी चाहिए। यही आठ सूक्ष्म अक्षरों में से एक है। और यह आठ रूपों वाला होने के कारण आठ हो जाता है। 'अ' पहला अक्षर है, 'उ' दूसरा है, 'म' तीसरा है, बिन्दु चौथा है, नाद पाँचवाँ है, काल छठा है, कालतीत (जो कला से परे है) सातवाँ है, और जो इनसे परे है, वह आठवाँ है।

इसे तारक कहा जाता है, क्योंकि यह इस सांसारिक अस्तित्व को पार करने में सक्षम बनाता है। जान लें कि तारक ही ब्रह्म है और केवल उसी की पूजा करनी चाहिए। (निम्नलिखित) श्लोक यहाँ उद्धृत किए जा सकते हैं:

1. "अ अक्षर से जाम्बवान (भालू) नामक ब्रह्मा उत्पन्न हुए। 'उ' अक्षर से उपेन्द्र उत्पन्न हुए, जिनका नाम हरि पड़ा।

2. 'म' अक्षर से शिव उत्पन्न हुए, जिन्हें हनुमान कहा जाता है। बिन्दु का नाम ईश्वर है और वह शत्रुघ्न है, जो स्वयं चर्चा का स्वामी है। 3. नाद को भरत नामक महान भगवान और शंख की ध्वनि के रूप में जाना जाना चाहिए। काल से ही पुरुष का जन्म हुआ, जो लक्ष्मण के रूप में पृथ्वी का वाहक है। 4. कालतीता को देवी सीता के रूप में जाना जाता है। जो परे है, वह श्री राम नामक परमात्मा है और वह सर्वोच्च पुरुष है। यह सब ॐ अक्षर की व्याख्या है, जो भूत, वर्तमान और भविष्य है और जो इनसे भिन्न है (अर्थात,) तत्त्व, मंत्र, वर्ण, देवता, छंद, ऋक्, काल, शक्ति और सृष्टि।

जो इसे जानता है, वह अमर हो जाता है। (इस प्रकार) दूसरे पाद वाला यजुर्वेद है।

अध्याय - III

तब भरद्वाज ने याज्ञवल्क्य से पूछाः "परमात्मा किस मन्त्र से प्रसन्न होते हैं तथा अपनी आत्मा का दर्शन कराते हैं? कृपया यह बताइए"। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दियाः

1. ॐ. जो श्री-परमात्मा, नारायण तथा भगवान हैं, जो 'अ' अक्षर से वर्णित हैं तथा जाम्बवान (भालू) तथा भूः, भुवः तथा सुवः हैं; उनको नमस्कार है!
2. ॐ. जो श्री-परमात्मा, नारायण तथा भगवान हैं, जो 'उ' अक्षर से वर्णित हैं तथा उपेन्द्र हैं, या हरि हैं, या भूः, भुवः तथा सुवः हैं; उनको नमस्कार है!
3. ॐ. जो श्री-परमात्मा, नारायण तथा भगवान हैं, जो 'म' अक्षर से वर्णित हैं तथा शिव (या) हनुमान् तथा भूः, भुवः तथा सुवः के स्वरूप हैं; उनको नमस्कार है!
4. ॐ. वे जो श्री-परमात्मा, नारायण, शत्रुघ्न के स्वामी, बिन्दु रूप और भूः, भुव: और सुव: हैं; उनको नमस्कार है!
5. ॐ. वे जो श्री-परमात्मा, नारायण और भगवान हैं, और नाद रूप और भूः, भुव: और सुव: वाले भरत हैं; उनको नमस्कार है!
6. ॐ. वे जो श्री-परमात्मा, नारायण और भगवान हैं, और काल रूप और भूः, भुव: और सुव: वाले लक्ष्मण हैं; उनको नमस्कार है!
7. ॐ. वे जो श्री-परमात्मा, नारायण और भगवान हैं, और चित् रूप और भूः, भुव: और सुव: वाली कालतीता, देवी सीता हैं; उनको नमस्कार है!
8. ॐ. जो श्रीपरमात्मा, नारायण और उससे परे (कालतीत) भगवान हैं, परम पुरुष हैं और पुरातन पुरुषोत्तम हैं, शाश्वत, निष्कलंक, प्रबुद्ध, मुक्त, सत्य, परमानंद, अनंत, अद्वितीय और पूर्ण हैं - वह ब्रह्म मैं हूँ। मैं राम हूँ और भूः, भुवः और सुवः हूँ; उनको नमस्कार है! जिसने इस अष्टांगिक मंत्र में निपुणता प्राप्त कर ली है, वह अग्नि से पवित्र हो जाता है, वह वायु से पवित्र हो जाता है, वह सूर्य से पवित्र हो जाता है, वह शिव से पवित्र हो जाता है, वह सभी देवताओं द्वारा जाना जाता है। वह इतिहास, पुराण, रुद्र (मंत्र) को एक लाख बार जपने का फल प्राप्त करता है। जो नारायण के अष्टाक्षर मंत्र का बार-बार स्मरण करता है, उसे गायत्री के एक लाख या प्रणव (ॐ) के असंख्य जप का फल मिलता है। वह अपने पूर्वजों को दस डिग्री ऊपर और अपने वंशजों को दस डिग्री नीचे पवित्र करता है।

वह नारायण की स्थिति को प्राप्त करता है। जो इसे जानता है, वह नारायण की स्थिति को प्राप्त करता है। जैसे आँख (जो बिना किसी बाधा के) आकाश में फैली हुई चीजों को देखती है, वैसे ही बुद्धिमान लोग विष्णु के इस सर्वोच्च स्थान को हमेशा देखते हैं। आध्यात्मिक रूप से जागृत ब्राह्मण विभिन्न तरीकों से स्तुति करते हैं और प्रकाश देते हैं भगवान विष्णु का परमधाम। इस प्रकार उपनिषद है। (इस प्रकार) तीसरे पाद वाला सामवेद है। हरि ओम तत् सत्!

ओम! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है।अनंत से अनंत की उत्पत्ति होती है।(तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेते हुए,यह केवल अनंत (ब्रह्म) के रूप में रहता है।ओम! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ शुक्ल-यजुर्वेद से संबंधित तारासर उपनिषद समाप्त होता है।

<u>092 - महावाक्य उपनिषद</u>

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रसिद्ध इंद्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

भगवान ब्रह्मा ने कहा:

मैं इस उपनिषद की व्याख्या अपने अनुभव के आधार पर करूँगा। यह व्यक्तिगत ज्ञान कि "यह सूर्य ब्रह्म है" अजभ गायत्री अर्थात "हंससोहम्" के जाप से प्राप्त होता है। प्राणायाम द्वारा प्राण और अपान को वश में करके, पूरक और रेचक (स्थूल, सूक्ष्म तथा साथ-साथ) का निरंतर और दीर्घ अभ्यास करके तथा मन को तीन चरणों में एक ही ब्रह्म में एकाग्र करके, उस (प्राणायाम) को प्राप्त करके, नित्य आनन्दमय परमात्मा का आविर्भाव हो जाएगा।

वह एक हजार सूर्यों के समान चमकेगा और तटहीन समुद्र के समान पूर्ण होगा। वह अनुभव न तो समाधि है, न योगसिद्धि है और न ही मन का मिलन है। वह ब्रह्म में मिल जाना है, क्योंकि ब्रह्म सदैव एक ही है। इसका अनुभव करने वाले ऋषिगण इस प्रकार कहते हैं: मैं उस तेजोमय पुरुष को जानता हूँ, जो अंधकार से परे है, जो आकृतियाँ बनाता है, उनका नामकरण करता है, उनकी व्यवस्था करता है और जो वीर पुरुषोत्तम है।

जो उस पुरुष को, जिसे आदिकाल में ब्रह्मा ने परब्रह्म घोषित किया था और जिसे इन्द्र ने चारों दिशाओं में खोज निकाला था, पा लेता है, वह इसी जन्म में अमर अवस्था को प्राप्त हो जाता है। मोक्ष प्राप्ति का कोई अन्य उपाय नहीं है।

मैं वह सूर्य हूँ जो आकाशीय प्रकाश है। मैं वह शिव हूँ जो ज्ञान का सूर्य है। मैं आत्मा का अत्यन्त निर्मल प्रकाश हूँ। मैं वह समस्त प्रकाश हूँ जिसे हम जानते हैं। ॐ। जो कोई अथर्ववेद के इस उपनिषद् को पढ़ता है, उसे सम्पूर्ण वेदों को पढ़ने के समान ही पवित्रता प्राप्त होती है। वह अवश्य ही महाविष्णु के स्थान को प्राप्त करता है।

ॐ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ बातें सुनें; हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ बातें देखें! हम देवों द्वारा निर्दिष्ट जीवन अवधि का आनंद

लें, अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें! यशस्वी इन्द्र हमारा कल्याण करें! सर्वज्ञ सूर्य हमारा कल्याण करें! बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमारा कल्याण करें! बृहस्पति हमारा कल्याण करें! ॐ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ अथर्ववेद में निहित महावाक्योपनिषद समाप्त होता है

093 - पंच ब्रह्म उपनिषद

ओम! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;
हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,
हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;
हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से घृणा न करें)।
ओम! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!
ऋषि पिप्पलाद ने भगवान ईश्वर से पूछा, "हे भगवान, सबसे पहले कौन प्रकट हुआ?"
जिसके लिए, भगवान महेश्वर ने उत्तर दिया:
परब्रह्म ने सत्योजात, अघोरा, वामदेव, तत्पुरुष और ईशान के चरणों में आकार लिया।

1 सत्योजात पृथ्वी का पहलू है और सूर्य, देवी लक्ष्मी, ब्रह्मा, ओम अक्षर, ऋग्वेद,गृहपथ्यग्नि (घरेलू अग्नि), मंत्र, सप्त स्वर (सात स्वर) और पीला रंग है। यह वह सब देता है जिसकी कामना की जाती है।

2 अघोरा जल का स्वरूप है और यह चंद्रमा, देवी पार्वती, यजुर्वेद, बादल का नीला रंग, दक्षिणाग्नि (दक्षिण की अग्नि) और पचास अक्षर हैं। यह सभी पापों को दूर करता है, सभी बुराइयों को नष्ट करता है और धन प्रदान करता है।

3 वामदेव महान ज्ञान देते हैं और सभी पापों का नाश करते हैं। यह अग्नि का स्वरूप है, करोड़ों सूर्यों की रोशनी है, सामवेद, आठ प्रकार के गीत, साहसी स्वर, आहवानीयाग्नि, ज्ञान की शक्ति, विनाश करने की शक्ति और थोड़ा काला सफेद रंग है। यह पूर्ण चेतना देता है, तीनों लोकों पर शासन करता है, तीनों लोकों में फैला हुआ है और किए गए कार्यों के लिए सभी प्रकार का भाग्य और परिणाम प्रदान करता है।

4 तत्पुरुष आठ अक्षरों (आ, क, च, त, थ, प, य, स) वाला है और आठ पंखुड़ियों वाले कमल में स्थित है और सामान्यतः वायु से घिरा रहता है। इसमें पाँच अग्नियाँ हैं, यह मंत्रों के प्रभाव की रक्षा करता है, पचास व्यंजनों का मानवीकरण करता है, अथर्ववेद का रूप है, करोड़ों गणों का प्रधान है, इसका आकार बहुत बड़ा है, लाल रंग का है, जो भी माँगा जाए वह देता है, चिंता और रोगों की औषधि है और सृष्टि, स्थिति और लय का मूल है।

यह सभी शक्तियों का आधार है। यह थुरेय है जो तीन सामान्य अवस्थाओं से परे है और जिसे ब्रहम कहा जाता है। इसकी पूजा ब्रहमा, शिव और विष्णु करते हैं। यह वह दर्शन है जिससे अन्य सभी उत्पन्न होते हैं।

5 आपको यह समझना चाहिए कि ईशान बुद्धि का साक्षी है और मस्तिष्क का उत्प्रेरक है। यह आकाश का पहलू है और इसे देखा नहीं जा सकता। यह "ॐ" की ध्वनि से सुशोभित है। इसमें सभी देवों का स्वरूप है। यह शांत है। यह शांति से परे है। यह ध्वनि से परे है। यह 'आ' है और स्वरों में प्रमुख है। यह पंच ब्रहम का स्वरूप है जो सर्वत्र है और सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव और मंगल इन पाँच क्रियाओं को सक्रिय करता है।

यह पंच ब्रहम को अपने भीतर छिपाकर स्वयं के रूप में विद्यमान है और अपने प्रकाश से पंच ब्रहम से परे चमकता है। यह बिना किसी कारण के आरंभ, मध्य और अंत में चमकता है। वे सभी देवता जो महेश्वर की माया से स्तब्ध हैं, वे यह ठीक से नहीं समझ पाएंगे कि महादेव जो कि जगत के शिक्षक हैं, वे सभी कारणों के कारण हैं। उनका आकार आँखों के सामने प्रकट नहीं होता। यह जगत उस परात्पर पुरुष के कारण चमक रहा है जिसमें यह जगत विद्यमान है। यह उसी में लीन हो जाता है।
वह ईशान पहलू परब्रहम है जो शांति की ऊपरी सीमा है। परब्रहम स्वयं ही है और सत्यो जातम् (सत्य का जन्म) का उदय ही परब्रहम है, ऐसा ज्ञान। जो कुछ भी देखा या सुना जाता है, वह परब्रहम की आत्मा है।

6 पांच रूपों में विद्यमान होने को ब्रह्म कार्य कहते हैं। ब्रह्म कार्य को समझ लेने के बाद ईशान की प्रशंसा होती है। परब्रह्म से उत्पन्न होने वाली सभी चीजों को अपनी आत्मा में रखने के बाद ज्ञानी पुरुष यह अनुभव करता है और समझता है कि "यह मैं ही हूँ" और ब्रह्म के साथ-साथ अमर भी हो जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि जो इस ब्रह्म को समझ लेता है, वह मुक्त हो जाता है।

पंचाक्षर मंत्र का जाप करना चाहिए जो न से य (नमशिवाय) तक है और जो पांच अक्षरों के आकार का है और भगवान शिव का शरीर है। पंचब्रह्म की आत्मा के दर्शन को समझने के बाद, यह समझना चाहिए कि प्रत्येक रूप उन पांचों का रूप है। जो पंचब्रह्म की आत्मा के इस ज्ञान का अध्ययन करता है, वह स्वयं पंचब्रह्म के रूप में प्रकाशित होगा। यह उपनिषद् बताता है कि भगवान शिव, जो इस संसार के दैनिक जीवन से मनुष्य को मोक्ष प्रदान करते हैं, सभी प्राणियों के हृदय में बिना किसी भेदभाव के साक्षी के रूप में विद्यमान हैं और उन्हें हृदयम् (जो भीतर विद्यमान है) कहा जाता है।

ॐ ! वे हम दोनों की एक साथ रक्षा करें; वे हम दोनों का एक साथ पोषण करें; हम महान ऊर्जा के साथ मिलकर काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो; हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से घृणा न करें)। ॐ ! मुझमें शांति हो ! मेरे वातावरण में शांति हो ! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो !

कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित पंच-ब्रह्मोपनिषद् यहीं समाप्त होता है।

<u>094 - प्राणाग्निहोत्र उपनिषद</u>

ॐ ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;

हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,

हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;

हम एक दूसरे से विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)।

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. इसलिए, अब हम 'भोजन का स्तोत्र' प्रस्तुत करेंगे जो सभी अनुभवजन्य ज्ञान से परे है,सभी उपनिषदों का सार है, जो शरीर में किए जाने वाले त्याग से संबंधित है, जिसके द्वारा देहधारी मनुष्य अग्निहोत्र और सांख्य के ज्ञान के बिना ही देह-प्रवास से मुक्त हो जाता है।

2. उचित विधि के अनुसार, (पका हुआ) चावल जमीन पर रखकर 'या ओषधय…' से शुरू होने वाले तीन श्लोकों और 'अन्नपते…' से शुरू होने वाले दो श्लोकों का उच्चारण करें।

3. सोमदेव के शासन में जो सैकड़ों रूप और आकृतियाँ हैं, बृहस्पतिदेव के कहने पर, आप हमें विपत्तियों से मुक्ति दिलाएँ।

4. फलदार और फलहीन, फूलदार और फूलहीन, बृहस्पतिदेव के कहने पर, आप हमें विपत्तियों से मुक्ति दिलाएँ।

5. मैं आपके लिए उन पौधों को न बाँधूँ जो जीवित हैं और दूसरों को जीवन देते हैं, जो दुर्गुणों से मुक्त हैं; उन्हें बलि देने वाले से बुरी आत्माओं से लड़ने में मदद करें।

6. अन्न के स्वामी! हमें ऐसा भोजन दें जो स्वच्छ और ऊर्जा से भरपूर हो; अन्नदाता की (जीवन के संकटों से) रक्षा करें। हमें, द्विपाद और चतुर्भुजों को शक्ति प्रदान करें।

7. हमारा भोजन अग्नि हो; (यद्यपि) यह रुद्रों और बुरी आत्माओं के लिए प्रतिकूल है और यह संतानों की पीढ़ियों को बढ़ावा दे। हे प्रभु! इसे भय के सभी बीजों से शुद्ध करें और इसे मंगलमय बनायें। हे प्रभु! आप सभी को देखकर गुप्त स्थानों में विचरण करते हैं। आप ही यज्ञ हैं; आप ही ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु हैं। आप ही पवित्र अक्षर वसत्, प्रकाश, रस, अमर ब्रह्म, पृथ्वी, मध्य क्षेत्र और आकाश हैं। ॐ नमस्कार

9. जल पृथ्वी को पवित्र करे; पवित्र पृथ्वी मुझे पवित्र करे। (जल) वेद के स्वामी को पवित्र करे; पवित्र वैदिक सार मुझे पवित्र करे। जो कुछ भी खाने योग्य नहीं है या मेरा जो भी कर्म पापपूर्ण है - वह सब जल पवित्र करे; और अधर्मियों से प्राप्त दान भी। जय हो! 1

0. आप अमृत हैं; एक अमृतमय आधार। आप प्राण के संबंध में अमृत हैं; पवित्र अर्पण, अंतिम आशीर्वाद के लिए उपयुक्त हैं। ॐ, प्राण को नमस्कार। ॐ, अपान को नमस्कार। ॐ, व्यान को नमस्कार। ॐ, उदान को नमस्कार। ॐ, समान को नमस्कार। ॐ, ब्रह्म को नमस्कार। ॐ, अमरता की जीत के लिए मैं स्वयं ब्रह्म में रहूँ।

11. कनिष्ठिका और अँगूठे से प्राण की आहुति दी जाती है। अनामिका और अँगूठे से अपान की आहुति दी जाती है। मध्यमा और अँगूठे से व्यान की आहुति दी जाती है, सभी अँगुलियों से उदान की आहुति दी जाती है और तर्जनी और अँगूठे से समान की आहुति दी जाती है।

12. मौन भाव से एक ऋचा से एक आहुति दी जाती है, दो आहवनीय में, एक दक्षिणा अग्नि में, एक गार्हपत्य में और एक सभी प्रायश्चित अनुष्ठानों के लिए अग्नि में।

13. फिर, 'आप अमरता के ढक्कन हैं' - अमरता जीतने के लिए। एक घूँट भरकर फिर से पीना चाहिए और फिर से छूना चाहिए।

14. दाहिनी हथेली में जल लेकर उसे हृदय के पास रखते हुए यह उच्चारण करना चाहिए: प्राण अग्नि है; पाँच प्राणों से घिरा हुआ परम आत्मा है। सभी जीवों को अभय! मुझमें कभी भय नहीं रहता।

15. आप (प्राण) विश्व और वैश्वानर हैं; आपके द्वारा ही यह बहुरूपी जगत् अपने आप में स्थित है। जहाँ आप हैं, अमर ब्रह्म, वहाँ सभी हवन हैं।

16. यह महान और नवीन आत्मा (पैर के अंगूठे के सिरे पर) स्थापित है। मैं (अनुष्ठान भोजन के) अंत में अमरता प्राप्त करने के लिए उसके चारों ओर जल डालता हूँ।
17. इस बाह्य आत्मा को विशिष्ट कार्यों का ध्यान करने दो - इस प्रकार अग्नि में हवन करो। (कर्ता) सभी का पुत्र हो। अनुष्ठान की आहुतियाँ अग्नि में पवित्र की जाती हैं।

18. मैं अपने शरीर में हवन करूँगा। चार अग्नि हैं, कोई तुच्छ नहीं, जो आधे अक्षर वाले ॐ के चार भागों के अनुरूप हैं।

19. कोई सौर अग्नि नहीं है, जो सौर डिस्क के आकार की हो, एक हजार किरणों से आच्छादित हो, जो सूर्य द्रष्टा के रूप में मुकुट में निवास करती हो। ऊपर वर्णित दर्शनरूपी अग्नि अपने चार रूपों सहित आहवनीय बनकर मुख में स्थित होती है। शरीररूपी अग्नि वृद्धावस्था का नाश करने वाली आहुतियों को भस्म करती है। दक्षिणाग्नि बनकर अर्धचन्द्राकार होकर हृदय में स्थित होती है। फिर जठराग्नि है जो गार्हपत्य बनकर नाभि में स्थित होकर खाए, पिए, चाटे और चूसे हुए सबका भक्षण करती है।

20. नीचे मन की तीन क्षैतिज अवस्थाएँ हैं - चन्द्रमा, भगवान और उत्पत्ति का कारक।

21. इस शारीरिक यज्ञ में, यज्ञ-स्तंभ के चारों ओर करधनी से अलंकृत हुए बिना, यज्ञकर्ता कौन है? उसकी पत्नी कौन है? पुरोहित कौन हैं? सेवक कौन हैं? यज्ञपात्र कौन-कौन से हैं? आहुति क्या हैं? वेदी कौन-सी है? वेदी का भीतरी भाग कौन-सा है? (सोम रस के लिए) लकड़ी का पात्र कौन सा है? रथ कौन सा है? बलि का पशु कौन सा है? कार्यवाहक पुरोहित कौन है? आह्वान करने वाला पुरोहित कौन है? मुख्य पुरोहित का सहायक कौन है? अध्वर्यु का सहायक कौन है? प्रथम मंत्रोच्चार करने वाला कौन है? होतीर का सहायक कौन है? साम गीत कौन ऊँची आवाज़ में गाता है? (अग्नि) को कौन सा आहुति दी जाती है? ब्रह्मा पुरोहित का सहायक कौन है? दर्भा घास क्या है? करछुल कौन सी है? घी का पात्र कौन सा है? घी के दो आहुति कौन से हैं? घी के दो भाग कौन से हैं? प्रारंभिक आहुति क्या हैं? अंतिम आहुति कौन सी है? इड़ा आहुति (दोनों के बीच में) कौन सी है? पाठ क्या है? समयोर्वाका सूत्र क्या है? चार आज्य आहुतियाँ कौन सी हैं ? यज्ञ का आसन कौन सा है ? यज्ञ की डोरी कौन सी है ? इष्टियाँ (मक्खन, फल आदि की आहुति) कौन सी हैं ? यज्ञ की फीस क्या है ? यज्ञ के बाद किया जाने वाला स्नान क्या है ?

22. शारीरिक यज्ञ में यज्ञ आसन के चारों ओर की डोरी से अलंकृत न होकर, यज्ञकर्ता आत्मा है; (उसकी) पत्नी बुद्धि है। महान् पुरोहित वेद हैं। अहंकार अध्वर्यु है। मन-तत्त्व आवाहन करने वाला पुरोहित है। प्राण मुख्य पुरोहित का सहायक है; अपान मुख्य पुरोहित का सहायक है अध्वर्यु। व्यान प्रथम गायक है। उदान उच्च स्वर में साम गायक है। समाना होतीर का

सहायक है। शरीर वेदी है। नाक वेदी का आंतरिक भाग है। शिखा लकड़ी का पात्र है। पैर रथ है। दाहिना हाथ कलछी है। बायां हाथ घी का पात्र है। कान घी की दो आहुति हैं। आंखें घी के दो भाग हैं। गर्दन आहुति है। तन्मात्राएं ब्रह्म पुरोहित की सहायक हैं। महातत्व परिचारक हैं। गुण पूरक आहुति हैं। जिह्वा अंतिम आहुति है। दांत और होठ मध्य आहुति हैं। तालु भजन-पाठ है। स्मृति समयोर्वाक सूत्र है। दया, सहनशीलता, अहिंसा चार आज्य आहुति हैं (सोम आदि को)। ॐ यज्ञ का पद है। इच्छा डोरी है। मन ही रथ है। वासना बलि पशु है। केश दर्भ घास है। इन्द्रियाँ यज्ञ पात्र हैं। कर्मेन्द्रियाँ आहुति हैं। अहिंसा इष्ट है। त्याग ही यज्ञ है। मृत्यु के बाद यज्ञोपरांत स्नान होता है। इस शरीर में सभी देवता स्थित हैं।

23. बनारस में मृत्यु होती है या इस उपनिषद् को पढ़ने वाला ब्राह्मण एक ही जीवन में मोक्ष प्राप्त कर लेता है। यह गुप्त सिद्धांत है। ॐ ! वे हम दोनों की रक्षा करें, हम दोनों का पोषण करें, हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें, हमारा अध्ययन सशक्त और प्रभावी हो, हम आपस में विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)। ॐ ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहां कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित प्राणाग्निहोत्रोपनिषद् समाप्त होता है।

<u>095 - गोपाल-तपनीय उपनिषद</u>

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रसिद्ध इंद्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

अध्याय एक

1. ॐ नमः। मैं उन श्री कृष्ण को सादर प्रणाम करता हूँ, जिनका स्वरूप सनातन, ज्ञान और आनन्द से परिपूर्ण है, जो संकट से बचाने वाले हैं, जो वेदान्त से समझे जाने वाले हैं, जो परम गुरु हैं और जो सबके हृदय में साक्षी हैं।

2. ॐ कुछ ऋषियों ने ब्रह्माजी से पूछा: "परम पुरुषोत्तम भगवान कौन हैं? मृत्यु किससे डरती है? किसे जानने से बाकी सब ज्ञात हो जाता है? इस संसार की रचना किसने की है?"

3. ब्रह्माजी ने उन्हें उत्तर दिया: "कृष्ण परम पुरुषोत्तम भगवान हैं। मृत्यु गोविंद से डरती है। गोपीजनवल्लभ को समझने से सब कुछ ज्ञात हो जाता है। "स्वाहा" शब्द के उच्चारण से भगवान ने संसार की रचना की।

4. फिर उन्होंने कहा: "कृष्ण कौन हैं? गोविंद कौन हैं? गोपीजनवल्लभ कौन हैं? स्वाहा क्या है?"

5. ब्रह्मा ने उनसे कहा: "कृष्ण का अर्थ है वह जो पाप से मुक्ति दिलाता है, गोविंदा का अर्थ है वह जो पृथ्वी पर, वेदों में और सुरभि गायों में प्रसिद्ध है, गोपीजनवल्लभ का अर्थ है वह जो गोपियों को मोहित करता है, और स्वाहा का अर्थ है सर्वोच्च शक्ति। ये सभी नाम भगवान के सर्वोच्च व्यक्तित्व को संदर्भित करते हैं।

6. जो व्यक्ति भगवान के इस सर्वोच्च व्यक्तित्व का ध्यान करता है, उनकी महिमा करता है और उनकी पूजा करता है, वह मुक्त हो जाता है। वह मुक्त हो जाता है।

7. उन्होंने कहा: उसका रूप क्या है? उसकी महिमा क्या है? कोई उसकी पूजा कैसे कर सकता है? कृपया इसका वर्णन हमें दीजिए। ब्रह्मा ने कहा: वे ग्वालबाल के समान प्रतीत होते हैं। उनका रंग वर्षा ऋतु के मेघ के समान है। वे कल्पवृक्ष के नीचे रहते हैं। निम्नलिखित श्लोक उनका वर्णन करते हैं।

10. जिनके नेत्र सुन्दर कमल पुष्प के समान हैं, जिनका रंग वर्षा ऋतु के मेघ के समान है, जिनके वस्त्र बिजली के समान हैं, जिनके दो भुजाएँ हैं, जो दिव्य ज्ञान से समृद्ध हैं, जो वन पुष्पों की माला पहनते हैं, जो परम नियन्ता हैं, जो गोपों, गोपियों और सुरभि गायों से घिरे हुए हैं, जो सुरद्रुम वृक्ष के नीचे विश्राम करते हैं, जो भव्य आभूषणों से सुशोभित हैं, जो लाल कमल पुष्प के मध्य में खड़े हैं और जिनकी सेवा यमुना की तरंगों को स्पर्श करने वाली हवाएँ कर रही हैं, उनका पूरे मन से ध्यान करने वाला व्यक्ति बार-बार के जन्म और मृत्यु से मुक्त हो जाता है।

11. इस मंत्र का बार-बार जाप करना चाहिए: "क्लिम कृष्णाय गोविंदाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा"।

12. इन पाँच नामों का जाप करने से भगवान की प्राप्ति होती है, जिनकी शक्तियाँ स्वर्ग, पृथ्वी, सूर्य, चंद्रमा और अग्नि के रूप में प्रकट होती हैं।

13. जो व्यक्ति एक बार भी "क्लिम कृष्णाय गोविंदाय गोपीजनवल्लभ स्वाहा" मंत्र का जाप करता है, उसे शीघ्र ही भगवान कृष्ण की संगति प्राप्त हो जाती है। उसे कोई अन्य फल प्राप्त नहीं होता।

14. भगवान कृष्ण की भक्ति तब की जाती है, जब हृदय इस जीवन या अगले जीवन में किसी भी भौतिक लाभ की इच्छा नहीं रखता। यह कर्म के बंधनों से मुक्ति है।

15. बहुत से ब्राह्मण कृष्ण की पूजा करते हैं। बहुत से लोग सनातन गोविंद की पूजा करते हैं। गोपीजनवल्लभ संसार का पालन करते हैं। शक्तिशाली स्वाहा ब्रह्मांड को चलाते हैं।

16. यद्यपि मूलतः एक ही है, फिर भी वायु सभी जीवों के शरीर में पाँच प्राणवायु बन जाती है। उसी प्रकार जगत के कल्याण के लिए भगवान कृष्ण इन पाँच शब्दों के रूप में प्रकट होते हैं।

17. उन्होंने कहा: कृपया सबका पालन करने वाले परमात्मा गोविंद की पूजा का वर्णन करें।

18. ब्रह्मा ने कहा: भगवान की वेदी आठ पंखुड़ियों वाला एक स्वर्ण कमल होना चाहिए। उस कमल के भीतर दो त्रिकोण रखने चाहिए और उसमें 'क्लिम कृष्णाय नमः', 'काम-गायत्री' (क्लिम कृष्णाय गोविंदाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) और 'अनंग-गायत्री' (कामदेवाय सर्व-जन-प्रियाय सर्व-जन सम्मोहनाय ज्वाला ज्वाला प्रज्वला प्रज्वला सर्व-जनस्य हृदयं मे वासं कुरु कुरु स्वाहा) मंत्र लिखना चाहिए। फिर सूल-मात्रा (अस्त्रय फट्) से अंग अर्पित करना चाहिए। फिर रुक्मिणी से आरंभ करके भगवान के अंशों की पूजा करनी चाहिए, फिर इंद्र के नेतृत्व में भक्तों की, राजा वसुदेव के नेतृत्व में भक्तों की, अर्जुन के नेतृत्व में भक्तों की और इंद्रनिधि के नेतृत्व में भक्तों की।

19. जो सूर्योदय, दोपहर और सूर्यास्त के समय देवता को विभिन्न प्रकार की भेंटें अर्पित करता है, उसे सब कुछ प्राप्त होता है। उसे सब कुछ प्राप्त होता है।

20. इस विषय में निम्नलिखित श्लोक हैं: भगवान कृष्ण पूजनीय, सर्वव्यापी सर्वोच्च नियन्ता हैं और यद्यपि वे एक हैं, फिर भी वे कई रूपों में प्रकट होते हैं। जो बुद्धिमान हैं वे उनकी पूजा करते हैं क्योंकि वे अपनी वेदी पर खड़े हैं। वे, अन्य नहीं, शाश्वत सुख प्राप्त करते हैं।

21. जो ब्राह्मण भगवान विष्णु की वेदी पर खड़े होकर पूजा करते हैं, जो सनातनों में श्रेष्ठतम, चेतन पुरुषों में महानतम, अनेकों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं, वे ही सिद्धि प्राप्त करते हैं, अन्य नहीं।

22. जो लोग भगवान विष्णु के दिव्य रूप की सदैव लगन से पूजा करते हैं, उन्हें भगवान अपने मूल ग्वालबाल रूप में अपने चरणकमल दिखाते हैं।

23. कृष्ण ने ही आदि में ब्रह्मा को वैदिक ज्ञान की शिक्षा दी थी और अतीत में वैदिक ज्ञान का प्रसार किया था। जो मोक्ष की इच्छा रखते हैं, वे उन

भगवान की शरण में जाते हैं, जो अपने भक्तों को दिव्य ज्ञान प्रदान करते हैं।

24. जो लोग ॐ और गोविंद (ॐ कृष्णाय गोविंदाय गोपीजनवल्लभ स्वाहा) के साथ पंचाक्षर मंत्र का जाप करते हैं, उन्हें भगवान अपना रूप दिखाते हैं। अतएव मोक्ष की इच्छा रखने वालों को दिव्य शांति प्राप्त करने के लिए इस मंत्र का नियमित जप करना चाहिए।

25. इस पाँच अक्षरों वाले मंत्र से मानव समाज में अन्य सभी गोविंद मंत्र उत्पन्न हुए हैं, जिनमें इंद्र के अनुयायियों और ऐश्वर्य की इच्छा रखने वालों द्वारा जपा जाने वाला दस अक्षरों वाला गोविंद मंत्र भी शामिल है।

26. उन्होंने पूछा: कृपया हमें इस मंत्र का स्वरूप बताइए। 27-28. ब्रह्मा ने कहा: मैंने लाखों वर्षों तक निरंतर भगवान की स्तुति की और उनका ध्यान किया, और अंत में मैं भगवान के दिव्य रूप को श्री कृष्ण के रूप में समझने में सक्षम हुआ, जो एक वेश में थे।मैंने हृदय में भक्ति रखकर उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने मुझे सृष्टि-कार्य के लिए अठारह अक्षरों का मंत्र दिया और फिर वे अंतर्ध्यान हो गए।

29. जब मैंने ब्रह्माण्ड की रचना करने की इच्छा की, तब वे पुनः मेरे सामने प्रकट हुए और इन अक्षरों में मुझे होने वाले ब्रह्माण्ड को दिखाया।

30. क अक्षर से मैंने जल, ल अक्षर से पृथ्वी, इ अक्षर से अग्नि, म अक्षर से चन्द्रमा और सम्पूर्ण क्लीं अक्षर से सूर्य की रचना की। कृष्ण शब्द से आकाश, गोविंदय से वायु, गोपीजनवल्लभ से ज्ञान और सुरभि गायों की रचना की तथा स्वाहा से नर, नारी और अन्य सभी वस्तुओं की रचना की। अन्य सभी वस्तुओं की।

31. उनकी आराधना करके शिव मोह से मुक्त हो गए और एकान्त स्थान में इस मंत्र का जप करके उन्होंने भगवान को प्राप्त कर लिया।

32. देवतागण विष्णु के निवास को देखते हैं, जो आकाश में एक शानदार सूर्य की तरह है।

33. इसलिए व्यक्ति को नियमित रूप से इस मंत्र का जाप करना चाहिए। व्यक्ति को नियमित रूप से इस मंत्र का जाप करना चाहिए।

34. कुछ लोगों ने कहा है कि इस मंत्र के पहले शब्द से पृथ्वी, दूसरे शब्द से जल, तीसरे से अग्नि, चौथे से वायु और पांचवें से आकाश की उत्पत्ति हुई। मोक्ष प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को इस पांच-शब्द वैष्णव मंत्र का जाप करना चाहिए, जो भगवान कृष्ण को प्रकट करता है।

35. इसके बारे में निम्नलिखित श्लोक हैं: व्यक्ति को इस मंत्र का जाप करना चाहिए, जिसके पहले शब्द से पृथ्वी तत्व आया, दूसरे शब्द से जल, तीसरे से अग्नि, चौथे से वायु और पांचवें से आकाश।

36. इस मंत्र का जाप करके शिव भगवान विष्णु के शाश्वत आध्यात्मिक धाम में प्रवेश कर गए।

37. वह परम पवित्र, अदूषित, दुःखों से रहित, लोभ तथा अन्य सभी दोषों से रहित तथा इस पंचाक्षरी मंत्र के समान वह आध्यात्मिक जगत भगवान वासुदेव से प्रकट हुआ है। वह उनसे पृथक नहीं है।

38. मैं तथा मरुतगण भगवान गोविंद को, जिनका स्वरूप सनातन, ज्ञान तथा आनन्द से पूर्ण है, जो वृन्दावन में कल्पवृक्ष के नीचे रहते हैं तथा जो यह पंचाक्षरी मंत्र हैं, वाणी द्वारा प्रसन्न करते हैं।

39. ॐ नमः। जो भगवान गोविंद इस जगत के स्वरूप हैं, जो जगत के रचयिता, पालक, संहारक, जगत के स्वामी तथा स्वयं जगत हैं, उन भगवान गोविंद को मैं सादर प्रणाम करता हूँ।

40. जो ज्ञान से पूर्ण, परम आनन्द से पूर्ण, सर्व-आकर्षक तथा गोपियों के स्वामी हैं, उन भगवान गोविंद को मैं नमस्कार करता हूँ।

41. उनको नमस्कार है, जिनके नेत्र कमल के फूल हैं। उनको नमस्कार है, जो कमल के पुष्पों से सजे हैं। उनको नमस्कार है, उनकी नाभि कमल है। उनको नमस्कार है, जो भाग्य की देवियों के पति हैं।

42. भगवान गोविंदा को नमस्कार है, जो मोर के पंख के मुकुट से सुशोभित हैं, बलराम के समान हैं, उनकी बुद्धि तीक्ष्ण है, और वे भाग्य की देवी के विचारों के मानस झील में हंस हैं।

43. उनको नमस्कार है, जो कंस और उसके सहयोगियों का वध करते हैं, केशी और चाणूर के हत्यारे हैं, शिव के पूजनीय हैं, और अर्जुन के सारथी हैं।

44. उनको नमस्कार है, जो बांसुरी बजाने के शौकीन ग्वालबाल हैं, कालिया को कुचलने वाले हैं, जो यमुना के तट पर चलते हैं और जिनके कुंडल सुंदर ढंग से इधर-उधर झूलते हैं।

45. शरणागत आत्माओं के रक्षक श्री कृष्ण को नमस्कार है। गोपियों की करकमलों की माला से सुशोभित कुशल नर्तक को नमस्कार है।

46. पाप के नाश करने वाले, गोवर्धन पर्वत को उठाने वाले, पूतना के जीवन का अंत करने वाले, तृणावर्त के जीवन को चुराने वाले को नमस्कार है।

47. स्वर्ण हार से सुशोभित, आकर्षक, शुद्ध, अपवित्रता के शत्रु, अद्वितीय, सबसे महान श्री कृष्ण को नमस्कार है।

48. हे आनंदमय, दयालु बनो। हे परमेश्वर, दयालु बनो। हे प्रभु, शारीरिक और मानसिक पीड़ा के साँप द्वारा डसे हुए मुझे बचाओ।

49. हे कृष्ण, हे रुक्मिणी के पति, हे गोपियों के मोहक, हे ब्रह्मांड के स्वामी, कृपया बार-बार जन्म और मृत्यु के सागर में डूबते हुए मुझे बचाओ।

50. हे केशव, हे नारायण, हे गोविंदा, हे जनार्दन, हे सभी पारलौकिक आनंद के स्रोत, हे भगवान जो भक्तों को संकट से बचाते हैं, हे माधव, कृपया मुझे बचाओ।

51. ब्रह्मा ने कहा: जैसे मैं उनकी पूजा करता हूँ, वैसे ही तुम्हें भी करना चाहिए। इस पंचाक्षरी मंत्र का जप करने और भगवान कृष्ण का ध्यान करने से तुम जन्म-मृत्यु के संसार से पार हो जाओगे।

52. जो इस पंचाक्षरी मंत्र का जप करता है, वह सरलता से उनके दिव्य धाम को प्राप्त करता है।

53. यद्यपि भगवान अपने धाम में स्थित हैं, फिर भी वे मन से भी अधिक तीव्र हैं और अन्य सभी को परास्त कर सकते हैं। शक्तिशाली देवता भी उनके निकट नहीं पहुँच सकते।

54. इसलिए, कृष्ण भगवान के सर्वोच्च व्यक्तित्व हैं। उनका ध्यान करना चाहिए, उनकी महिमा करनी चाहिए, उनकी सेवा करनी चाहिए और उनकी पूजा करनी चाहिए। ॐ तत् सत्।

अध्याय दो 1-2। एक बार, जब उन्होंने पूरी रात उनके साथ बिताई, तो व्रज की कामुक कन्याएँ ग्वालबाल कृष्ण से बोलीं, जो भगवान के सर्वोच्च व्यक्तित्व हैं, और उन्होंने भी उनसे बात की।

3. गोपियों ने कहा: किस ब्राह्मण को दान देना चाहिए?

4. कृष्ण ने कहा: दुर्वासा।

5. गोपियों ने कहा: हम यमुना के जल को कैसे पार करेंगे और उसके पास कैसे जाएँगे, जिससे महान आशीर्वाद मिलेगा?

6. कृष्ण ने कहा: हे ब्रह्मचारी कृष्ण, ये शब्द बोलो और यमुना तुम्हें मार्ग देगी।

7. मेरा स्मरण करने से उथला व्यक्ति गहरा हो जाता है। मेरा स्मरण करने से अशुद्ध व्यक्ति पवित्र हो जाता है। मेरा स्मरण करने से अपवित्र व्यक्ति पवित्र हो जाता है। मेरा स्मरण करने से भौतिक इच्छाओं से भरा हुआ व्यक्ति इच्छा रहित हो जाता है। मेरा स्मरण करने से मूर्ख व्यक्ति विद्वान हो जाता है।

8. ये शब्द सुनकर, उन्होंने दुर्वासा का ध्यान किया और इन शब्दों के साथ यमुना को पार कर लिया। वे बहुत पवित्र आश्रम में गए और ऋषियों में सर्वश्रेष्ठ दुर्वासा मुनि को प्रणाम किया। उन्होंने ब्राह्मण को दूध और घी से बने स्वादिष्ट भोजन दिए।

9. प्रसन्न होकर उन्होंने स्नान किया, भोजन किया, उन्हें आशीर्वाद दिया और जाने की अनुमति दी।

10. उन्होंने कहा: हम यमुना कैसे पार करेंगे?

11. उन्होंने कहा: मुझे एक ऋषि के रूप में ध्यान करें जो केवल दूर्वा घास खाता है, और यमुना आपको एक रास्ता देगी।

12. उनमें से श्रेष्ठ गंधर्वी (श्रीमती राधारानी) ने एक पल के लिए विचार किया।

13. उसने कहा: कृष्ण एक ब्रह्मचारी कैसे हैं? यह ऋषि कैसे व्यक्ति है जो केवल दूर्वा घास खाता है?

14. उन्हें अपने नेता के रूप में स्वीकार करते हुए, अन्य लड़कियां चुप हो गईं।

15. दुर्वासा मुनि ने उत्तर दिया: ध्वनि आकाश के तत्व में निहित है, हालांकि ध्वनि और आकाश अलग हैं। ध्वनि आकाश के भीतर निहित है। यह आकाश नहीं जानता। मैं आत्मा हूं। मैं एक भौतिकवादी भोगी कैसे हो सकता हूं।

16. स्पर्श वायु के तत्व में निहित है, हालांकि स्पर्श और वायु अलग हैं। स्पर्श वायु में समाहित है। यह वायु नहीं जानती। मैं आत्मा हूँ। मैं भौतिक भोगी कैसे हो सकता हूँ?

17. रूप अग्नि तत्व में समाहित है, यद्यपि रूप और अग्नि भिन्न हैं। रूप अग्नि में समाहित है। यह अग्नि नहीं जानती। मैं आत्मा हूँ। मैं भौतिक भोगी कैसे हो सकता हूँ?

18. स्वाद जल तत्व में समाहित है, यद्यपि स्वाद और अपशिष्ट भिन्न हैं। स्वाद जल में समाहित है। यह जल नहीं जानता। मैं आत्मा हूँ। मैं भौतिक भोगी कैसे हो सकता हूँ?

19. सुगंध पृथ्वी तत्व में समाहित है, यद्यपि सुगंध और पृथ्वी भिन्न हैं। सुगंध पृथ्वी में समाहित है। यह पृथ्वी नहीं जानती। मैं आत्मा हूँ। मैं भौतिक भोगी कैसे हो सकता हूँ?

20. मन ही है जो इन्द्रियों के बीच रहता है और उन्हें ग्रहण करता है।

21. जब आत्मा ही सब कुछ है तो व्यक्ति कैसे सोचे? व्यक्ति कहाँ जाए? मैं आत्मा हूँ, मैं भौतिक भोगी कैसे हो सकता हूँ?

22. आपके प्रिय कृष्ण दो प्रकार के शरीरों के मूल निर्माता हैं।

23. शरीर के वृक्ष पर दो पक्षी हैं। एक भगवान के पूर्ण व्यक्तित्व का विस्तार है। वह साक्षी है। दूसरा भोक्ता है। वे भोक्ता और अभोक्ता हैं। पहला भोगता है, और दूसरा कृष्ण है।

24. उनमें हमें भौतिक तथाकथित ज्ञान और अज्ञान नहीं मिलता। यह अज्ञान और वास्तविक ज्ञान अलग-अलग हैं। कृष्ण, जो वास्तविक ज्ञान से भरे हुए हैं, भौतिक भोगी कैसे हो सकते हैं?

25-26. जो सुख की लालसा करता है, वह कामी है। जो सुख की लालसा नहीं करता, वह कामी नहीं है।

27. जन्म-मरण से रहित, अपरिवर्तनशील, कटने से रहित, यमुना के किनारे रहने वाले, सुरभि गायों के बीच रहने वाले, सुरभि गायों की रक्षा करने वाले, ग्वालबालों के बीच रहने वाले, सभी वेदों में निवास करने वाले, सभी वेदों से महिमावान, सभी जीवों में प्रविष्ट और सभी जीवों को नियंत्रित करने वाले कृष्ण ही आपके पति हैं।

28. गंधर्वी (राधा) ने कहा: भगवान ने हमारे बीच ग्वालबाल के रूप में जन्म क्यों लिया है? हे ऋषि, आप कृष्ण के बारे में यह कैसे जानते हैं? उनका मंत्र क्या है? उनका निवास क्या है? उन्होंने देवकी के गर्भ से जन्म क्यों लिया है? उनके बड़े भाई बलराम कौन हैं? उनकी पूजा कैसे की जाती है? भगवान, जो इस संसार से बहुत ऊपर हैं, इस पृथ्वी पर क्यों अवतरित हुए हैं?

29. उन्होंने कहा: आरंभ में केवल भगवान नारायण ही थे। उनमें ही भौतिक जगत करघे पर धागे की तरह बुने हुए हैं। उनके हृदय कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए।

30. जब ब्रह्मा ने घोर तपस्या की, तो भगवान नारायण ने उन्हें वरदान दिया।

31. ब्रह्मा ने एक प्रश्न चुना।

32. भगवान नारायण ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

33-34. ब्रह्मा ने कहा: आपके अनेक अवतारों में से कौन सा अवतार श्रेष्ठ है, जो मनुष्य और देवताओं को सुख पहुँचाता है, जिसका स्मरण करने से वे बार-बार जन्म-मरण से मुक्त हो जाते हैं? यह अवतार श्रेष्ठ क्यों है?

35. भगवान नारायण ने कहा:

36. जैसे मेरु पर्वत के शिखर पर सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले सात नगर हैं, वैसे ही पृथ्वी पर भी कामनाओं को पूर्ण करने वाले और मुक्ति प्रदान करने वाले सात नगर हैं। उनमें गोपालपुरी नगर प्रत्यक्ष आध्यात्मिक जगत है।

37. इस नगरी में देवताओं तथा अन्य सभी प्राणियों की इच्छाएँ पूरी होती हैं तथा सभी को मोक्ष की प्राप्ति होती है।

38. मेरे चक्र द्वारा रक्षित यह मथुरा नगरी अथवा गोपालपुरी इस संसार में उसी प्रकार स्थित है, जैसे सरोवर में कमल स्थित होता है। 39. गोपाल पुरी में ये वन हैं:

1. बृहदवन का महान वन, 2. मधुवन, मधु दानव का पूर्व निवास, 3. तालवन, ताड़ के वृक्षों से भरा, 4. रमणीय काम्यवन, 5. महान बहुलावन, 6. कमल के फूलों और कुमुदिनी से भरा कुमुदवन, 7. खदिरा वृक्षों से भरा खदिरावन, 8. भद्रवन, भगवान बलराम का प्रिय स्थान, 9. भांडीरावन, बरगद के वृक्षों वाला महान वन, 10. श्रीवन, भाग्य की देवी का निवास, 11. लोहवन, लोहा दानव का पूर्व निवास और 12. वृंदावन, वृंदा देवी द्वारा शासित। 40. इन वनों में देवता, मनुष्य, गंधर्व, नाग और किन्नर गाते और नृत्य करते हैं। 41. बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र, आठ वसु, सात ऋषि, ब्रह्मा, नारद, पाँच विनायक, वीरेश्वर, रुद्रेश्वर, अम्बिकेश्वर, गणेश्वर, नीलकंठेश्वर, विश्वेश्वर, गोपालेश्वर, भद्रेश्वर तथा अन्य 24 लिंग वहाँ निवास करते हैं। 42. ये वन दो समूहों में विभाजित हैं: 1. कृष्णवन, या कृष्ण के वन, और 2. भद्रवन, या बलराम के वन। इन बारह वनों में से कुछ पवित्र हैं और अन्य सबसे पवित्र हैं। 43. वहाँ देवता निवास करते हैं। वहाँ सिद्ध प्राणियों ने सिद्धि प्राप्त की। 44. इस स्थान पर राम का एक विग्रह, प्रद्युम्न का एक विग्रह, अनिरुद्ध का एक विग्रह और कृष्ण का एक विग्रह है। 45. इस प्रकार मथुरा के वनों में बारह विग्रह हैं। 46. रुद्र प्रथम देवता की पूजा करते हैं, ब्रह्मा दूसरे की पूजा करते हैं, ब्रह्मा के पुत्र तीसरे की पूजा करते हैं, मरुत चौथे की पूजा करते हैं, विनायक पांचवें की पूजा करते हैं, वसु छठे की पूजा करते हैं, ऋषि सातवें की पूजा करते हैं,

गंधर्व आठवें की पूजा करते हैं, अप्सराएँ नौवें की पूजा करती हैं, दसवां देवता अब अदृश्य है, ग्यारहवां देवता अपने लोक को चला गया है, और बारहवां देवता अब पृथ्वी पर है। 47. जो लोग इस देवता की पूजा करते हैं, वे मृत्यु को पार कर मोक्ष प्राप्त करते हैं। वे जन्म, जरा और मृत्यु के तीन गुना दुखों से परे हो जाते हैं। 48. ये श्लोक हैं: भगवान कृष्ण, अपनी तीन शक्तियों के साथ, और बलराम के साथ,अनिरुद्ध, प्रद्युम्न और रुक्मिणी रमणीय मथुरा पुरी में रहते हैं, जिसकी ब्रह्मा और अन्य देवता पूजा करते हैं और जो शंख, चक्र, गदा और शार्ङ्ग धनुष से सुरक्षित है। ये चारों नाम ॐ नाम के समान हैं। 49. मनुष्य को सोचना चाहिए: मैं आध्यात्मिक हूँ, भौतिक वासनाओं से परे हूँ। मनुष्य को सोचना चाहिए: मैं भगवान गोपक का हूँ। इस प्रकार मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है। उसे अपने आध्यात्मिक स्वरूप का बोध होता है। वह आत्मा का ज्ञाता बन जाता है। 50. चूँकि सृष्टि के आरंभ से ही वे बद्धजीवों (गोप) की प्रेमपूर्वक रक्षा (अलति) करते हैं, इसलिए उन्हें गोपाल कहा जाता है।

ॐ तत् सत्। मैं आत्मा हूँ। मैं कृष्ण का अंश हूँ। मेरा आध्यात्मिक रूप सदा आनंद से भरा हुआ है। ॐ। 51. इसलिए भगवान को गोपाल कहा जाता है। 52. सम्पूर्ण हृदय से यह विचार करना चाहिए कि मैं गोपाल का हूँ। 53. भगवान गोपाल अव्यक्त, असीम और सनातन हैं। 54. भगवान नारायण ने आगे कहा: हे ब्रह्मा, वन-पुष्पों की माला से सुशोभित और शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए हुए, मैं मथुरा में नित्य निवास करूँगा। 55. हे ब्रह्मा, जो सम्पूर्ण हृदय से मेरा ध्यान करता है, जिसका स्वरूप सभी रूपों का विश्राम-स्थल है, जिसका स्वरूप परम शक्तिशाली और तेजस्वी है, जिसका स्वरूप अद्भुत है और जिसका कोई भौतिक स्वरूप नहीं है, वह मेरे धाम को जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं है। 56. हे ब्रह्मा, जो इस पृथ्वी लोक का निवासी है, जो मथुरा जिले में रहता है और मुझे विग्रह रूप में पूजता है, वह मुझे बहुत प्रिय हो जाता है। 57. तुम्हें मथुरा में सदैव कृष्ण के रूप में मेरी पूजा करनी चाहिए। 58. चार प्रकार के लोग मेरी पूजा करते हैं। 59. युग के लिए निर्धारित भक्ति विधि का पालन करते हुए, इस संसार में बुद्धिमान भक्त भगवान गोपाल की पूजा करते हैं, जिनके साथ उनके बड़े भाई बलराम और रानी रुक्मिणी भी हैं।

60. मैं अजन्मा, शाश्वत गोपाल हूँ। मैं शाश्वत प्रद्युम्न हूँ। मैं राम हूँ। मैं अनिरुद्ध हूँ। जो बुद्धिमान है वह मेरी पूजा करता है। 61. सभी अशुद्ध इच्छाओं से मुक्त, कृष्णवन और भद्रवन के निवासी मेरी पूजा करते हैं, भक्ति के नियमों का पालन करते हुए जो मैंने स्वयं कहा है। 62. वे लोग भी जो पहले धर्म के सिद्धांतों को अस्वीकार कर चुके थे और कलियुग

द्वारा निगल लिए गए थे, वे मेरे प्रति भक्त हो सकते हैं, और मथुरा में भी निवास कर सकते हैं। 63. जो कोई मेरा सच्चा भक्त बन जाता है वह मुझे बहुत प्रिय हो जाता है। आप और आपके पुत्रों के समान प्रिय, शिव और उनके गुह्य सहयोगियों के समान प्रिय, भाग्य की देवी लक्ष्मी के समान प्रिय। 64. ब्रह्मा ने कहा: एक भगवान चार देवता कैसे बन गए? एक पवित्र अक्षर ॐ कैसे अनेक हो गया? 65. भगवान ने उनसे कहा: भौतिक जगत के प्रकट होने से पहले, केवल भगवान का पूर्ण व्यक्तित्व, जो कि अद्वितीय है, विद्यमान था। उनसे निराकार ब्रह्म उत्पन्न हुआ। उससे ॐ अक्षर उत्पन्न हुआ।

ॐ से महत्-तत्त्व उत्पन्न हुआ। महत्-तत्त्व से मिथ्या-अहंकार उत्पन्न हुआ। मिथ्या-अहंकार से पाँच तन्मात्राएँ उत्पन्न हुईं। उनसे तत्व उत्पन्न हुए। ॐ इन चीज़ों से आच्छादित है। 66. मैं पवित्र अक्षर हूँ। मैं ॐ हूँ। मैं अजर, अमर, अमृतमय, निर्भय परम महान हूँ। मैं मुक्त हूँ। मैं अपरिवर्तनशील हूँ। 67. सनातन भगवान ने स्वयं को सर्वव्यापी सार्वभौमिक रूप में प्रकट किया। इसी प्रकार भगवान, जो एक हैं, अपनी दिव्य शक्ति से स्वयं को चार में विस्तारित कर लिया। 68. पवित्र अक्षर ॐ में तीन अक्षर हैं: अ, उ और म। रोहिणी के पुत्र बलराम अ अक्षर हैं। तेजस्वी प्रद्युम्न उ अक्षर हैं। बुद्धिमान अनिरुद्ध म अक्षर हैं। भगवान कृष्ण, जिनमें संपूर्ण ब्रह्मांड स्थित है, अर्धमात्र अक्षर (म) हैं, जो ॐ अक्षर को पूरा करता है। 70. रुक्मिणी भगवान कृष्ण की पत्नी हैं। वे लोकों की निर्माता और भौतिक प्रकृति की जड़ हैं। 71. वैदिक साहित्य बताते हैं कि भाग्य की देवी व्रज की महिलाओं के बीच प्रकट हुई थीं। विद्वान पारलौकिकवादी कहते हैं कि भगवान की शक्ति ॐ अक्षर है। 72. इसलिए, सर्वव्यापी भगवान गोपाल ॐ अक्षर हैं।

73. विद्वान अध्यात्मवादी कहते हैं कि ॐ अक्षर पवित्र अक्षर क्लिम् से भिन्न नहीं है। 74. जो मेरा ध्यान करता है, वह मथुरा में प्रकट होता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है। 75-78. अपने मन में मुझे हृदय के खिले हुए अष्टदल कमल पर खड़ा हुआ, मेरे दोनों पैरों में शंख, ध्वजा और छत्र है, मेरा वक्षस्थल श्रीवत्स से अंकित है और कौतभ मणि से शोभायमान है, मेरी चार भुजाओं में शंख, चक्र, गदा और शार्ङ्ग धनुष है, मेरी भुजाएँ बाजूबंदों से सुशोभित हैं, मेरा कंठ पुष्पमाला से शोभायमान है, मेरे सिर पर भव्य मुकुट है, मेरे कान चमचमाते हुए कुण्डलों से सुशोभित हैं, मेरा स्वरूप भव्य और सुन्दर है, मेरे हाथ में बाँसुरी और भैंसे के सींग का बिगुल है, और मैं भक्तों को अभय प्रदान करता हूँ। 79. जब सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आध्यात्मिक ज्ञान की मथानी से मथा जाता है (मथ्यते), तो जो मक्खन

उत्पन्न होता है, वह मथुरा में भगवान का स्वरूप है। इसीलिए इसे मथुरा कहते हैं। 80. मैं अपने हृदय में इस भौतिक जगत का ध्यान करता हूँ, जिसमें आठ दिक्पाल (दिशाओं के रक्षक) हैं, जैसे कि जन्म-मृत्यु के सागर में खिले हुए कमल का फूल। 81. सूर्य और चन्द्रमा मेरे शरीर की शोभा हैं। स्वर्णमय मेरु पर्वत मेरा तेजस्वी ध्वज है। ब्रह्मलोक मेरा छत्र है। सात निम्न ग्रह मेरे चरण हैं। 82. मैं श्रीवत्स और स्वरूप से चिन्हित हूँ। इसलिए विद्वान ऋषिगण मुझे श्रीवत्स-लंचन (श्रीवत्स से चिन्हित) कहते हैं। 83. मेरी श्रेष्ठता को जानते हुए ऋषिगण कहते हैं कि सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि और वाक्पटु वाणी का तेज मेरी चमकती हुई कौस्तुभ मणि से उत्पन्न हुआ है। 84. मेरे विश्वरूप की चार भुजाएँ हैं - सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण और अहंकार।

पाँच भौतिक तत्त्व शंख हैं, जिसे मैं रजोगुणी हाथ में धारण करता हूँ। 85. बचपन को चक्र कहा गया है, मूल मायावी शक्ति को शार्ङ्ग धनुष कहा गया है और विश्वरूप के हाथ में कमल पुष्प को ब्रह्माण्ड कहा गया है। 86. अज्ञान का मूल वह गदा है, जिसे मैं सदैव अपने हाथ में धारण करता हूँ। 87. धर्म, अर्थ और इन्द्रियतृप्ति वे सुन्दर कंगन हैं, जो मेरे विश्वरूप की कलाइयों को सदा सुशोभित करते हैं। 88. गुणहीन ब्रह्म कही जाने वाली गर्दन में प्रथम अजन्मे की माला है। हे ब्रह्मा, आपके मानस पुत्रों ने इस माला का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। 89. ऋषिगण कहते हैं कि मेरा सनातन रूप मुकुट है। 90. परिवर्तनशील भौतिक जगत से ऊपर की दो वस्तुएँ मेरे दो जगमगाते कुण्डल हैं। 91. जो इस प्रकार ध्यान करता है, वह मुझे नित्य प्रिय है। वह मोक्ष प्राप्त करता है। वह मुक्त हो जाता है।

मैं उसे अपना अर्पण कर देता हूँ। 92. हे ब्रह्मा, मैंने अपने दो स्वरूपों के विषय में जो कुछ कहा है, वह कह दिया है: एक प्रकृति के गुणों से बना है, दूसरा प्रकृति के गुणों से परे है। 93. ब्रह्माजी ने कहा: आपने जिन देवताओं का वर्णन किया है, वे कौन से आभूषण धारण करते हैं? मरुत, रुद्र, ब्रह्मा, ब्रह्मा के पुत्र, विनायक, बारह आदित्य, वसु, अप्सराएँ और गंधर्व उनकी किस प्रकार पूजा करते हैं? वह देवता कौन है जो अपने धाम चला गया है? वह देवता कौन है जो अब अदृश्य है? वह देवता कौन है जिसकी मनुष्य पूजा करते हैं? 94. भगवान नारायण ने उनसे कहा: ये बारह अव्यक्त दिव्य देवता सभी ग्रहों, सभी देवताओं और सभी मनुष्यों में मौजूद हैं। 95. रुद्रों में रुद्र के रूप में, ब्रह्मा के अनुयायियों में ब्रह्मा के रूप में, देवताओं में देवता के रूप में, मनुष्यों में मनुष्य के रूप में, विनायकों में विघ्नों के नाश करने वाले (गणेश) के रूप में, आदित्यों में सूर्य नारायण के रूप में, गंधर्वों में गंधर्व के रूप में, अप्सराओं में अप्सरा के रूप में और वसुओं में वसु के

रूप में, मेरा वह रूप जो इच्छाओं को पूरा करता है, अदृश्य होने पर भी मौजूद है।

इस संसार में चाहे दृश्य हो या अदृश्य, मेरा रूप हमेशा मेरे ही धाम में रहता है। 96. मेरा रूप अज्ञान के देवता, रजोगुण के देवता और सतोगुण के देवता के रूप में भी मौजूद है। 97. मेरा मानव रूप, जो शाश्वत और दिव्य ज्ञान से पूर्ण है, भक्ति में उपस्थित है।

98. ॐ. उस परमात्मा को नमस्कार है, जो प्राणवायु में विद्यमान है। ॐ तत् सत्। भूः भुवः तथा स्वः। उस परमात्मा को नमस्कार है, जो प्राणवायु में विद्यमान है।

99. उन श्रीकृष्ण को नमस्कार है, जो गोविंदा और गोपीजनवल्लभ हैं, ॐ तत् सत्। भूर् भुवः तथा स्वः। उन परमात्मा को नमस्कार है, जो अपान वायु में विद्यमान है।

100. ॐ. उस परमात्मा को नमस्कार है, जो अपान वायु में विद्यमान है। ॐ तत् सत्। भूर् भुवः तथा स्वः। उन परमात्मा को नमस्कार है, जो अपान वायु में विद्यमान है।

101. ॐ. उन कृष्ण को नमस्कार है, जो वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं। ॐ तत् सत् । भूर् भुवः तथा स्वः । उनको नमस्कार है, नमस्कार है।

102. ॐ तत् सत् भूर् भुवः तथा स्वः । उनको नमस्कार है, नमस्कार है, जो सम वायु में विद्यमान हैं। ॐ तत् सत् भूर् भुवः तथा स्वः । उनको नमस्कार है, नमस्कार है, जो सम वायु में विद्यमान हैं।

103. ॐ तत् श्री कृष्ण को नमस्कार है, जो श्री राम हैं। ॐ तत् सत्
भूर् भुवः तथा स्वः । उनको नमस्कार है, नमस्कार है।

104. ॐ तत् उदान वायु में विद्यमान परमात्मा को नमस्कार है। ॐ तत् भूर् भुवः तथा स्वः । उनको नमस्कार है, नमस्कार है, जो सम वायु में विद्यमान हैं।105. ॐ तत् देवकी पुत्र कृष्ण को नमस्कार। ॐ तत् सत्। भूर् भुवः तथा स्वः। उनको नमस्कार, नमस्कार। 106. ॐ व्यान वायु में उपस्थित परमात्मा को नमस्कार। ॐ तत् सत्। भूर् भुवः तथा स्वः। उनको नमस्कार, नमस्कार, नमस्कार, जो व्यान वायु में उपस्थित हैं। 107. ॐ भगवान को नमस्कार, जिनका मूल स्वरूप ग्वाल बालक का है। ॐ तत् सत्। भूर् भुवः तथा स्वः। उनको नमस्कार, नमस्कार। 108. ॐ भगवान गोपाल परमात्मा हैं, जो आदि भौतिक ऊर्जा में उपस्थित हैं। ॐ तत् सत्। भूर् भुवः तथा स्वः। उनको नमस्कार, नमस्कार। 109. ओम. भगवान गोपाल परमात्मा हैं, जो इंद्रियों में विद्यमान हैं। ओम तत् सत्। भूर् भुवः तथा स्वः।

उनको नमस्कार, नमस्कार।

110. ओम. भगवान गोपाल परमात्मा हैं, जो भौतिक तत्वों में विद्यमान हैं। ओम तत् सत्। भूर् भुवः तथा स्वः। उनको नमस्कार, नमस्कार।
111. ओम. भगवान गोपाल परम पुरुष हैं। ओम तत् सत्। भूर् भुवः तथा स्वः। उनको नमस्कार, नमस्कार।
112. ओम. भगवान गोपाल परम ब्रह्म हैं। ओम तत् सत्। भूर् भुवः तथा स्वः। उनको नमस्कार, नमस्कार।
113. ओम. भगवान गोपाल सभी प्राणियों के हृदय में परमात्मा हैं। ओम तत् सत्। भूर् भुवः तथा स्वः।
उनको नमस्कार है, नमस्कार है।
114. ॐ। जाग्रत, सुषुप्ति तथा गहन निद्रा से परे, भगवान गोपाल निर्विशेषवादियों की श्रेष्ठता से परे हैं।
ॐ तत् सत्। भूर् भुवः तथा स्वः। उनको नमस्कार है, नमस्कार है।
115. भगवान का एक ही सर्वोच्च व्यक्तित्व हर चीज के भीतर छिपा हुआ है। वह सर्वव्यापी है। वह सबके हृदय में है। वह सबके कार्यों का साक्षी है। वह सबके हृदय में रहता है। वह साक्षी है।
वह चेतना है। वह पारलौकिकता है। वह प्रकृति के गुणों से परे है।
116. रुद्र को नमस्कार है। आदित्य को नमस्कार है। विनायक को नमस्कार है। सूर्य को नमस्कार है।

विद्या-देवी को नमस्कार है। इंद्र को नमस्कार है। अग्नि को नमस्कार है। यम को नमस्कार। निरति को नमस्कार। वरुण को नमस्कार। वायु को नमस्कार। कुबेर को नमस्कार। इसान को नमस्कार। ब्रह्मा को नमस्कार। सभी देवताओं को नमस्कार। 117. ब्रह्मा को ये परम पवित्र प्रार्थनाएँ देकर, जो भगवान के दिव्य रूप के ध्यान में लीन थे, और उन्हें ब्रह्मांड बनाने की क्षमता देकर, भगवान नारायण अंतर्ध्यान हो गए। 118. जैसा कि ब्रह्मा, ब्रह्मा के पुत्रों और नारद से ये निर्देश सुने गए थे, वैसे ही मैंने उन्हें कहा है। हे गंधर्वी (राधा), अब आप अपने घर जा सकती हैं। ॐ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें; हम अपनी आँखों से शुभ देखें, हे पूज्य! हम देवताओं द्वारा आवंटित जीवन की अवधि का आनंद लें अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

यशस्वी इंद्र हमें आशीर्वाद दें!सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!ॐ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ अथर्ववेद में निहित गोपाल-तपनियोपनिषद समाप्त होता है

096 - कृष्ण उपनिषद

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रभु इन्द्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

जब वन में रहने वाले ऋषिगण श्री रामचंद्र के दर्शन करने आए, जो सदा प्रसन्न रहने वाले भगवान के अवतार थे और अत्यंत सुंदर थे, तो वे आश्चर्यचकित हो गए और अपने आप को भूलकर बोले, "हे प्रभु, हम आपका आलिंगन करना चाहते हैं।" भगवान ने उनसे कहा, "जब मैं भगवान कृष्ण के रूप में पुनर्जन्म लूंगा, तो तुम गोपी के रूप में जन्म लोगे

और तब तुम मुझे गले लगा सकते हो।" [उनकी इच्छा कृष्णावतार में पूरी हुई।]

1 भगवान के कृष्ण के रूप में अवतार के समय, गोकुल वन स्वर्ग बन गया। जिन्होंने पहले तपस्या की थी, वे उस जंगल में पेड़ बन गए। कृपणता और क्रोध जैसे चरित्र असुर बन गए। कलि काल जो आने वाला था, वह पुनर्जन्म काल समाप्त होने तक स्थगित हो गया। वह हरि जो बहुत सुंदर था, उसने खुद को गोप बालक के रूप में पुनर्जन्म दिया। उनका चंचल स्वभाव (दुनिया के साथ खेलना) एक अनजाना रहस्य था। उसके कारण दुनिया मोहित हो गई। उपनिषद और वेदों के अंश 16108 युवतियों के रूप में आए। "दया" ने माता रोहिणी के रूप में जन्म लिया और "पृथ्वी माता" ने सत्यभामा के रूप में जन्म लिया।

"विनम्रता" ने कृष्ण के मित्र सुदामा के रूप में जन्म लिया। “इन्द्रिय संयम” ऋषि उद्धव के रूप में पैदा हुआ और “सत्य” ऋषि अक्रूर के रूप में पैदा हुआ। टूटे हुए दही के बर्तन कृष्ण के लिए दूध का सागर बन गए ताकि वे उसके साथ खेल सकें। यह पुनर्जन्म उनके शत्रुओं का नाश करने और अच्छे लोगों की रक्षा करने के लिए था। कृष्ण के हाथ में तलवार विनाश के देवता थे,महेश्वर स्वयं।

ऋषि कश्यप यशोदा के घर में ओखली के रूप में जन्मे और भगवान की माता अदिति वह रस्सी बनी जिसने कृष्ण को ओखली से बांधा। सभी शत्रुओं का नाश करने वाली काली गदा थी। सारंग नामक धनुष भगवान की माया थी। शारद की फसल का मौसम उनके घर का भोजन बन गया। उन्होंने जो कमल खेल-खेल में पकड़ा था, वह संसार का बीज था।

यद्यपि संसार इन सबसे भिन्न नहीं था, फिर भी ऐसा प्रतीत होता था मानो वह भिन्न है। इसी प्रकार स्वयं भगवान में भी कोई भेद नहीं था। और जो लोग स्वर्ग में रहते हैं, उनका वैकुंठ संसार में उतारा गया। जो लोग इसे सही रूप से समझ गए हैं, उन्हें अपने अच्छे कर्मों का फल मिलेगा। वे स्वयं को शरीर के बंधनों से मुक्त कर मोक्ष प्राप्त करेंगे। ॐ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ बातें सुनें; हम अपनी आँखों से शुभ बातें देखें, हे पूज्य! हम देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें !

प्रसिद्ध इंद्र हमें आशीर्वाद दें !

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें !

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें !

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें !

ॐ ! मुझमें शांति हो !मेरे वातावरण में शांति हो !मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो !

यहाँ अथर्ववेद में निहित कृष्णोपनिषद समाप्त होता है।

097 - याज्ञवल्क्य उपनिषद

ॐ ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है।
अनंत अनंत से ही निकलता है।
(तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर,
वह अनंत (ब्रह्म) ही रह जाता है।
ॐ ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. अब विदेह के राजा जनक ने आदरपूर्वक ऋषि याज्ञवल्क्य के पास जाकर कहा: 'पूज्यवर, मुझे त्याग का उपदेश दीजिए।' याज्ञवल्क्य ने कहा: ब्रह्मचारी की अवस्था पूरी करने के बाद कोई गृहस्थ बन सकता है। गृहस्थ की अवस्था से वह वनवासी (वानप्रस्थ) बन सकता है और फिर त्याग कर सकता है। अथवा वह ब्रह्मचारी विद्यार्थी, गृहस्थ अथवा वनवासी अवस्था से भिक्षुक बन सकता है। (यह भी प्रावधान है कि) कोई व्यक्ति सांसारिक जीवन का उसी दिन त्याग कर सकता है जिस दिन उसमें अरुचि उत्पन्न हो, चाहे वह (त्याग की अवस्था से पूर्व) व्रतों का पालन न कर रहा हो अथवा कर रहा हो, चाहे उसने अनुशासित विद्यार्थीवृत्ति पूर्ण करने पर निर्धारित स्नान किया हो अथवा नहीं, चाहे वह वह हो जिसने अपनी पत्नी की मृत्यु

के पश्चात अग्नि जलाना बंद कर दिया हो (उत्सन्नग्नि) अथवा वह हो जो अग्नि जलाता ही नहीं (अनाग्निका)।

2. कुछ (विधि निर्माता) द्विजों द्वारा संन्यास ग्रहण करने से पूर्व प्रजापत्य नामक यज्ञ (जिसके अधिष्ठाता ब्रह्मा हैं) का विधान करते हैं। किन्तु (यद्यपि ऐसा विहित है) वह ऐसा नहीं कर सकता। वह केवल अग्नियज्ञ करेगा (जिसके देवता अग्नि हैं, अग्नि के देवता)। क्योंकि अग्नि प्राण है। इस प्रकार वह प्राण को सहायता (बल) देता है। (तत्पश्चात) वह त्रैधात्वीय यज्ञ करेगा (जिसके देवता इन्द्र हैं)। इस यज्ञ से तीन प्राण द्रव्य अग्नि के समान बलवान हो जाते हैं, अर्थात् सत्व (वीर्य), रजस (रक्त) और तमस् (अंधकारमय)। (विहित रीति से यज्ञ करने के पश्चात वह पवित्र अग्नि को सूँघेगा, तथा निम्न मंत्र का उच्चारण करेगा): 'हे अग्नि, यह (प्राण श्वास) तुम्हारा स्रोत है; जैसे ही तुम उचित समय (वर्ष के) में जन्म लेते हो, तुम तेज धारण करते हो। उसे (आत्मा, अपने परम स्रोत को) जानकर तुम (परमात्मा में) विलीन हो जाओ।
प्राण, तुम्हारा स्रोत)। तुम हमारे (परम ज्ञान के) धन को बढ़ाओ।' इस प्रकार मंत्र पढ़ते हुए वह अग्नि को सूँघेगा। यह अग्नि का स्रोत है, यह प्राण वायु है। '(तुम) अग्नि (अपने स्रोत) में जाओ।स्वाहा'। केवल इतना ही मंत्र कहता है।

3. गाँव में (एक अच्छे वैदिक विद्वान के घर से) पवित्र अग्नि प्राप्त करने के बाद उसे पहले वर्णित अनुसार अग्नि को सूँघने के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए। यदि उसे अनुष्ठान की अग्नि नहीं मिलती है तो वह जल में आहुति दे सकता है। क्योंकि जल में सभी देवता (अध्यक्ष) हैं। 'मैं सभी देवताओं को आहुति देता हूँ, स्वाहा' का जाप करते हुए, उसे आहुति देनी चाहिए और (थोड़ा सा) आहुति का हिस्सा उठाकर, जो घी के साथ मिलाया गया है, उसे खाना चाहिए, क्योंकि यह लाभकारी है। (आहुति खाने से पहले वह मोक्ष मंत्र (ॐ) का जाप करेगा, जिसे वह तीनों वेदों का सार समझेगा। वह ब्रह्म (अस्तित्व, ज्ञान और आनंद) की पूजा करेगा। वह (ॐ से अभिप्रेत) के रूप में पूजा करेगा। केश और जनेऊ काटकर वह तीन बार कहेगा 'मैंने त्याग किया है।' (राजर्षि जनक ने इस व्याख्या को स्वीकार करते हुए कहा) 'हे याज्ञवल्क्य! ऐसा ही है।'

4. (तब राजा जनक के कहने पर) अत्रि ऋषि ने याज्ञवल्क्य से पूछा: जनेऊ (जिसे पहनकर ही कोई अनुष्ठान कर सकता है) के बिना कोई ब्राह्मण कैसे हो सकता है? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया: यही उनका जनेऊ (दृढ़ विश्वास) है, 'वह (स्वयं प्रकाशमान) आत्मा (मैं हूँ)'। तत्पश्चात् वह (अपनी शिखा

और जनेऊ को त्यागकर) विधिपूर्वक जल का तीन बार 'समुद्र तक पहुँचो, स्वाहा' मंत्र का उच्चारण करते हुए जल पीता है। संसार त्याग करने वालों के लिए यही विधि है।

5. तब (त्याग करने वालों के लिए) भिक्षुक गेरूए वस्त्र धारण करता है, सिर मुंडाता है, भोजन के अलावा कुछ भी ग्रहण नहीं करता, शुद्ध रहता है, किसी को भी (मन, वचन और कर्म से) कष्ट नहीं देता, भिक्षा पर रहता है, वह ब्रह्म को प्राप्त करने के योग्य हो जाता है। यह भिक्षुकों का मार्ग है। (क्षत्रिय तथा अन्य जो त्याग के अधिकारी नहीं हैं, वे वीरों के मार्ग से (युद्ध भूमि में मृत्यु को गले लगाकर) या उपवास (मृत्यु तक) करके, या जल में प्रवेश करके (फिर कभी न उठने के लिए), या अग्नि में प्रवेश करके या महायात्रा करके (जिसमें वे थककर गिर पड़ते हैं) मोक्ष की प्राप्ति कर सकते हैं। (त्याग के अधिकारी लोगों के लिए) यह मार्ग ब्रह्मा जी ने निर्धारित किया है; संसार का त्याग करने वाला संन्यासी इस मार्ग पर चलकर ब्रह्म को प्राप्त करता है। इस प्रकार (वेदान्त में कहा गया है)। 'ऐसा ही है, आदरणीय याज्ञवल्क्य', (राजर्षि जनक ने प्रशंसा की)।

6. परमहंस कहलाने वाले सुप्रसिद्ध ऋषि हैं (जैसे प्राचीन काल में ऋषिगण होते थे) संवर्तक, अरुणी, श्वेतकेतु, दुर्वासा, ऋभु, निदाघ, दत्तात्रेय, शुक, वामदेव, हरित इत्यादि, जिनके शरीर पर कोई चिन्ह नहीं था, जिनका आचरण सांसारिक लोगों की समझ से परे था और जो पूर्णतया स्वस्थ होने पर भी ऐसे आचरण करते थे मानो वे अपनी इंद्रियों से विहीन हों।

7. दूसरों की पत्नियों से विमुख और नगर में रहने की इच्छा रखने वाले तथा इन सबका परित्याग कर देने वाले अर्थात् बाँस की तीन डंडियाँ, जलपात्र, भोजन के लिए प्रयुक्त मिट्टी की थाली, जल से पवित्रीकरण, शिखा और जनेऊ, इन सबको भीतर-बाहर जल में 'भूः, स्वाहा' कहते हुए (परमहंस) आत्मा की खोज करेंगे।

८. नवजात शिशु (अर्थात वस्त्रहीन) जैसा रूप धारण करना, जो विपरीतताओं (जैसे सर्दी-गर्मी, सुख-दुख) से अप्रभावित हो; कुछ भी स्वीकार न करना (केवल जीविका के लिए भिक्षा के अलावा); ब्रह्म सत्य के मार्ग में स्थित होना; शुद्ध मन वाला; जीवन निर्वाह के लिए निर्धारित समय पर भिक्षा को मुख में (अर्थात पेट के पात्र में) ग्रहण करना, भिक्षा के लाभ-हानि में समभाव रखना, हाथ के पात्र या जल के पात्र से जल पीना, भिक्षा माँगना परंतु उसे पेट में रखना; अन्य किसी पात्र से रहित; जल देने का स्थान जल पात्र का काम करना; आश्रय लेने वाला, लाभ-हानि में

समभाव रखने वाला, अशांति रहित तथा एकान्त निवास में रहने वाला (जैसे) खाली घर, मन्दिर, घास का झुरमुट, चींटियों का टीला, वृक्ष की छाया, कुम्हार की झोपड़ी, अग्नि जलाने की झोपड़ी, नदी का रेतीला किनारा, पर्वत की झाड़ी, गुफा, वृक्ष की खोह, झरने के समीप या स्वच्छ भूमि का टुकड़ा, स्थिर निवास में निवास न करने वाला, लाभ-हानि के लिए प्रयत्न न करने वाला तथा शुभ-अशुभ कर्मों के नाश में तत्पर रहने वाला - ऐसा मुनि जो संन्यास अवस्था में शरीर त्याग देता है, वही परमहंस है। ऐसा कहा गया है।

9. जो भिक्षुक वस्त्रहीन है, किसी को नमस्कार नहीं करता, स्त्री या पुत्र की इच्छा नहीं रखता, तथा लक्ष्य और अलक्ष्य से परे है, वह परम भगवान हो जाता है।

श्लोक:

10. जो व्यक्ति पहले तपस्वी हो चुका है और जो गुणों में उसके समान है, उसे ही प्रणाम करना चाहिए, अन्य किसी को नहीं।

11. जो तपस्वी प्रमादी हैं, जिनका मन बाह्य काल्पनिक बातों में लगा रहता है, जो चुगलखोर हैं, जो झगड़ालू हैं और जिनके विचारों की वेद निंदा करते हैं, वे भी तपस्वी देखे जाते हैं।

12. यदि कोई तपस्वी नाम आदि से परे सर्वोच्च आत्म-प्रकाशमान ब्रह्म के साथ तादात्म्य में रहता है, तो वह आत्मा का ज्ञाता, किसको प्रणाम करे? तब उसे प्रणाम करने का कार्य नहीं करना चाहिए।

13. (यदि कोई तपस्वी यह विश्वास कर ले कि) सर्वोच्च ईश्वर ही प्राणियों में व्यक्तिगत आत्मा के रूप में प्रविष्ट हुआ है, तो वह कुत्ते, जातिच्युत, गाय या गधे के सामने पूरी तरह से भूमि पर दण्डवत कर सकता है।

14. जो स्त्री मांस की बनी गुड़िया है, जो यंत्रों द्वारा चलाए जाने वाले अंगों के पिंजरे में है तथा जो स्नायु, अस्थियों और जोड़ों का समूह है, उसमें क्या आकर्षण हो सकता है?

15. क्या चमड़ी, मांस, रक्त और आंसुओं में विच्छेदित होने के बाद (स्त्री की) आंखें आकर्षक लगती हैं? फिर तुम व्यर्थ ही क्यों मोहित होते हो?

16. इसी प्रकार, हे ऋषि, मेरु पर्वत की चमकती हुई ढलानों से नीचे गंगा के जल की धार में चमकती हुई मोतियों की माला दिखाई देती है।

17. सुदूर स्थानों में स्थित श्मशानों में स्त्री का वही स्तन कुत्ते समय के साथ ऐसे खा जाते हैं, जैसे वह भोजन का छोटा सा टुकड़ा हो।

18. सुन्दर केशों वाली, काजल लगाने वाली, स्पर्श करने में कठिन किन्तु आँखों को अच्छी लगने वाली स्त्रियाँ पाप की अग्नि की ज्वाला हैं, जो मनुष्यों को भूसे के समान जलाती हैं।

19. सुन्दर तथा क्रूर स्त्रियाँ नरक की अग्नि में ईंधन हैं, जो दूर से भी भड़क उठती हैं, तथा रसीली होने पर भी उनमें नमी (स्वाद) नहीं होती।

20. मूर्ख स्त्रियाँ कामदेव नामक शिकारी द्वारा पक्षियों के रूप में मनुष्यों के शरीरों को फँसाने के लिए बिछाए गए जाल हैं।

21. स्त्रियाँ दुष्ट प्रवृत्ति की डोरी में फँसा हुआ चारा है, जो सांसारिक जीवन के तालाब में रहने वाले तथा मन की कीचड़ में सक्रिय रहने वाले मछलियों के रूप में मनुष्यों को फँसाती है।

22. स्त्रियों से मुझे हमेशा के लिए बहुत हो गया, क्योंकि वे दुष्टता के सभी रत्नों को सुरक्षित रखने वाली मजबूत पेटियाँ हैं, तथा दुःख की जंजीरें हैं।

23. जिसके पास स्त्री है, वह भोग की इच्छा रखता है; स्त्री से रहित को भोग की क्या गुंजाइश? स्त्री का त्याग करना सांसारिक जीवन का त्याग करने के समान है; सांसारिक जीवन का त्याग करने पर मनुष्य सुखी हो जाता है।

24. अजन्मा पुत्र भावी माता-पिता को बहुत समय तक परेशान करता है; गर्भ में होने पर गर्भपात या प्रसव पीड़ा के कारण कष्ट देता है।

25. जब लड़का पैदा होता है, तो उसे बुरी योनियों, बीमारी आदि की चिंता रहती है, फिर वह बुरे कामों में प्रवृत्त होता है। जनेऊ धारण करने पर वह विद्वान नहीं बनता और यदि बुद्धिमान हो जाए, तो विवाह से इन्कार कर देता है।

26. युवावस्था में वह व्यभिचार आदि में लिप्त हो जाता है, और जब संतान होती है, तो दरिद्रता का अभिशाप पाता है। पुत्र के कारण चिंता का

कोई अंत नहीं होता और यदि वह धनवान हो, तो अचानक उसकी मृत्यु भी हो सकती है।

27. उत्तम तपस्वी के हाथ-पैर नहीं चंचल होते, उसकी आंखें अस्थिर नहीं होतीं, उसकी वाणी ढीली नहीं होती; वह अपनी इन्द्रियों को वश में करके ब्रह्म से एक हो जाता है।

28. जब विवेकशील पुरुष शत्रु, बंदी और अपने शरीर में समता और एकता देखता है, तब अपने शरीर के अंगों के प्रति क्रोध की क्या गुंजाइश?

29. यदि तुम अन्यायी के प्रति क्रोध करते हो, तो क्रोध के प्रति क्रोध क्यों नहीं करते, क्योंकि वह तो कर्तव्य, धन, प्रेम और मोक्ष का मार्ग ही रोक देता है?

30. क्रोध के प्रति क्रोध को मेरा नमस्कार है, जो अपने मूल को भली-भाँति प्रज्वलित कर देता है, जो वैराग्य प्रदान करता है और दोषों के प्रति जागृत करता है।

31. जहाँ लोग सदा सोये रहते हैं, वहाँ संयमी पुरुष जागता रहता है; जहाँ वे जागते रहते हैं, वहाँ हे बुद्धिमान्, योगियों में राजकुमार गहरी नींद में सोता है। इस बात पर विश्वास करो कि यहाँ चेतना है, कि यह सब केवल चेतना है और चेतना से व्याप्त है, कि तुम चेतना हो और मैं चेतना हूँ, और ये सभी जगत चेतना के हैं।

32. तपस्वियों को परमहंस होने का यही सर्वोच्च पद स्वीकार करना चाहिए। हे मुनिश्रेष्ठ! इससे बढ़कर कुछ भी नहीं है। इस प्रकार उपनिषद समाप्त होता है।

ॐ ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है।अनंत से अनंत की उत्पत्ति होती है।(तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर,वह केवल अनंत (ब्रह्म) ही रह जाता है।ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ शुक्ल-यजुर्वेद से संबंधित याज्ञवल्क्योपनिषद समाप्त होता है

098 - वराह उपनिषद

ॐ ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;
हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,
हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;
हम एक दूसरे से विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)।
ॐ ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

अध्याय - I

महान ऋषि ऋभु ने बारह देव (दिव्य) वर्षों तक तपस्या की। समय के अंत में, भगवान उनके सामने एक सूअर के रूप में प्रकट हुए। उन्होंने कहा: "उठो, उठो और अपना वरदान चुनो"। ऋषि उठे और उनके सामने खुद को झुकाते हुए कहा: "हे भगवान, मैं अपने सपने में भी आपसे उन चीजों की इच्छा नहीं करूंगा जो सांसारिक लोग चाहते हैं। सभी वेद, शास्त्र, इतिहास तथा अन्य विद्याओं के समूह, साथ ही ब्रह्मा तथा अन्य सभी देवता, आपके स्वरूप के ज्ञान से मुक्ति की बात कहते हैं।

अतः मुझे वह ब्रह्मविद्या प्रदान करें, जो आपके स्वरूप का वर्णन करती है। तब वराहरूपधारी भगवान ने कहाः

1. कुछ वाद-विवाद करने वाले चौबीस तत्त्व मानते हैं, कुछ छत्तीस, जबकि अन्य कहते हैं कि छियानबे तत्त्व हैं।

2. मैं उन्हें क्रम से बताऊंगा। ध्यानपूर्वक सुनो। ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच हैं, अर्थात् कान, त्वचा, आँख आदि।

3. कर्मेन्द्रियाँ पाँच हैं, अर्थात् मुँह, हाथ, पैर आदि। प्राण पाँच हैं, शब्द और अन्य (अर्थात् मूल तत्त्व) पाँच हैं।

4. मनस, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये चार हैं, इस प्रकार ब्रह्म को जानने वाले इन्हें चौबीस तत्त्व जानते हैं।

5. इनके अतिरिक्त, बुद्धिमान लोग पंचतत्त्वों को पाँच मानते हैं, अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश।

6. शरीर तीन हैं, अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म और कारण; चेतना की अवस्थाएँ तीन हैं, अर्थात् जाग्रत, स्वप्न और स्वप्नरहित सुषुप्ति।

7-8. मुनि तत्त्वों का कुल संग्रह छत्तीस (जीव सहित) जानते हैं। इन तत्त्वों के साथ, छह परिवर्तन हैं, अर्थात् अस्तित्व, जन्म, वृद्धि, परिवर्तन, क्षय और विनाश।

9. भूख, प्यास, शोक, मोह, बुढ़ापा और मृत्यु ये छः दुर्बलताएँ कही गयी हैं।

10. त्वचा, रक्त, मांस, मेद, मज्जा और अस्थि ये छः कोश कहे गये हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान और द्वेष ये छः प्रकार के शत्रु हैं।

11. विश्व, तैजस और प्रज्ञा ये जीव के तीन पहलू हैं। सत्व, रजस और तम ये तीन गुण हैं।

12. प्रारब्ध, संचित और आगमिन ये तीन कर्म हैं। बोलना, उठाना, चलना, मलत्याग और भोगना ये पाँच कर्मेन्द्रियों के हैं।

13. और विचार, निश्चय, अहंकार, दया, स्मृति (मनस आदि के कार्य), आत्मसंतुष्टि, सहानुभूति और उदासीनता भी हैं।

14. दिक् (क्षेत्र), वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनी देव, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र और मृत्यु;तथा फिर चन्द्रमा, चतुर्मुख ब्रह्मा, रुद्र, क्षेत्रज्ञ और ईश्वर।

15-16. इस प्रकार ये छियानवे तत्त्व हैं। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक मुझ वराह रूपी को पूजते हैं,जो इन तत्त्वों के समुच्चय से भिन्न हैं और क्षय रहित हैं, वे अज्ञान और उसके प्रभावों से मुक्त हो जाते हैं और जीवन्मुक्त हो जाते हैं।

17. जो मनुष्य इन छियानवे तत्त्वों को जानते हैं, वे किसी भी योनि में मोक्ष को प्राप्त करेंगे,चाहे उनके बाल जटा वाले हों, या मुंडे हुए हों, या केवल जटा

वाले हों। इसमें कोई संदेह नहीं है।इस प्रकार वराह उपनिषद का पहला अध्याय समाप्त होता है।

अध्याय - 2

1. महापुरुष ऋभु ने पुनः वराहरूपी लक्ष्मीपति से इस प्रकार कहाः "हे प्रभु! मुझे परम ब्रह्मविद्या की दीक्षा दीजिए।"

2-3. तब भक्तों के दुःख दूर करने वाले भगवान ने इस प्रकार पूछाः

"अपने वर्ण और धर्म के कर्तव्यों का पालन करने से, धार्मिक तपस्या से तथा गुरु की सेवा करने से मनुष्य में वैराग्य आदि चारों गुण उत्पन्न होते हैं। वे हैं - सनातन और अशाश्वत का भेद; इस और परलोक के भोगों के प्रति उदासीनता;

4-5(क)। साम आदि छः गुणों की प्राप्ति तथा मोक्ष की लालसा। इनका अभ्यास करना चाहिए। इन्द्रियों को वश में करके तथा सब विषयों में 'मेरा' भाव त्यागकर तू 'मैं' की चेतना मुझमें स्थापित कर (या अपने को मुझमें तादात्म्य कर) जो साक्षी चैतन्य है।

5(ख)-7(क)। मनुष्य जन्म लेना कठिन है - नर जन्म लेना उससे भी कठिन है - और ब्राह्मण जन्म लेना तो और भी कठिन है। फिर भी यदि मूर्ख वेदान्त के श्रवण आदि द्वारा सर्वव्यापक तथा सब वर्णों से परे सच्चिदानंद (ब्रह्म) के वास्तविक स्वरूप को न जाने, तो उसे मोक्ष कब मिलेगा?

7(ख)-8। मैं ही सुख हूँ। दूसरा कोई नहीं है। यदि दूसरा कहा जाए, तो वह सुख नहीं है। मेरे कारण के बिना प्रेम जैसी कोई वस्तु नहीं है। मेरे कारण जो प्रेम है, वह मेरे लिए स्वाभाविक नहीं है। चूँकि मैं परम प्रेम का स्थान हूँ, इसलिए 'मैं नहीं हूँ' भी नहीं है।

9. जिसे सभी लोग 'मैं ऐसा बन जाऊँ' कहकर खोजते हैं, वही मैं हूँ, सर्वव्यापी हूँ। अप्रकाश आत्मा को कैसे प्रभावित कर सकता है, जो स्वयं प्रकाशित है, जो स्वयं प्रकाश के अतिरिक्त कुछ नहीं है, जहाँ से 'मैं प्रकाश नहीं हूँ' शब्दों की उत्पत्ति होती है।

10-12(क)। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जो कोई भी निश्चित रूप से जानता है कि (आत्मा) जो स्वयं प्रकाशित है और जिसका स्वयं कोई आधार नहीं है, वह विज्ञान है। ब्रह्मांड, जीव, ईश्वर, माया और अन्य वास्तव में मेरे पूर्ण आत्मा के अलावा मौजूद नहीं हैं।

12(ख)-13(क)। मेरे पास उनके लक्षण नहीं हैं, कर्म जिसमें धारणा और अन्य गुण हैं और जो अंधकार और अज्ञान का रूप है, वह मुझ आत्मा को, जो स्वयं प्रकाशित हूँ, स्पर्श करने (या प्रभावित करने) के योग्य नहीं है।

13(ख)-14(क)। जो मनुष्य अपने आत्मा को, जो सर्व-साक्षी है, तथा समस्त वर्ण-जाति से परे है, ब्रह्मस्वरूप देखता है, वह स्वयं ब्रह्म हो जाता है। 14(ख)-15(क) जो कोई वेदान्त के प्रमाण से इस दृश्यमान जगत को परमपद के रूप में देखता है।जो ज्योतिस्वरूप है, वह तुरन्त मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

15(ख)-16(क)। जब वह ज्ञान जो इस विचार को दूर कर देता है कि यह शरीर ही आत्मा है, मन में दृढ़ता से उत्पन्न हो जाता है, जैसा कि इस ज्ञान से पहले था कि यह शरीर ही आत्मा है, तब वह व्यक्ति मोक्ष की इच्छा न करते हुए भी मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

16(ख)-17(क)। अतः जो व्यक्ति सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्म का आनन्द भोगता रहता है, जो अज्ञान से भिन्न है, वह कर्म से कैसे बँधेगा?

17(ख)-18। आध्यात्मिक नेत्र वाले व्यक्ति ब्रह्म को देखते हैं, जो तीनों अवस्थाओं का साक्षी है, जिसमें सत्, ज्ञान और आनन्द के लक्षण हैं, जो 'तू' (त्वम्) और 'मैं' (अहम्) शब्दों का अंतर्निहित अर्थ है और जो सभी कल्मषों से अछूता है।

19. जैसे अंधा चमकते हुए सूर्य को नहीं देख सकता, वैसे ही अज्ञानी व्यक्ति (ब्रह्म) को नहीं देख सकता। प्रज्ञान ही ब्रह्म है। सत्य और प्रज्ञान ही उसके लक्षण हैं।

20. इस प्रकार ब्रह्म को भली-भाँति जानने से मनुष्य अमर हो जाता है। जो अपने आत्मा को ब्रह्म के रूप में जानता है, जो आनंद है, द्वैत और गुणों से रहित है तथा जो सत्य और परम चेतना है, उसे किसी भी चीज़ का भय नहीं रहता।

21. जो केवल चेतना है, जो सर्वव्यापी है, जो शाश्वत है, जो सर्व-पूर्ण है, जो आनंदस्वरूप है और जो अविनाशी है, वही एकमात्र सच्चा ब्रह्म है।

22-23(अ)। ब्रह्मज्ञानियों का यह दृढ़ निश्चय है कि उसके अलावा कुछ भी नहीं है। जैसे अंधों को संसार अंधकारमय और नेत्रों वाले को प्रकाशमय दिखाई देता है, वैसे ही अज्ञानियों को अनेक प्रकार के दुखों से भरा हुआ यह संसार ज्ञानियों को सुखमय दिखाई देता है। मुझ वराहस्वरूप में, जो अनंत और परम चैतन्यस्वरूप हूं, यदि अद्वैतभाव की धारणा है, तो फिर बंधन कहां है? और किससे मुक्ति मिलनी है?

24(ब)-25(क)। समस्त देहधारी पदार्थों का वास्तविक स्वरूप सदैव परम चैतन्य ही है। आंखों से दिखाई देने वाले घड़े के समान शरीर और उसके समूह नहीं हैं (अर्थात् वास्तव में अस्तित्व नहीं रखते)।

25(ब)-26। आत्मा से भिन्न प्रतीत होने वाले समस्त गतिमान और अचल संसारों को आत्मा के रूप में जानकर, 'मैं ही हूं' इस प्रकार उनका ध्यान करता है। ऐसा पुरुष तब अपने वास्तविक स्वरूप का आनंद लेता है। आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई भोग्य वस्तु नहीं है।

27. यदि कोई वस्तु है, तो वह ब्रह्म ही है। जो ब्रह्मज्ञान में पूर्ण है, वह इस स्थित जगत् को सदैव देखता हुआ भी अपने आत्मा के अतिरिक्त उसे नहीं देखता।

28-30. मेरे स्वरूप को स्पष्ट रूप से जानने वाला मनुष्य कर्मों से नहीं बँधता। जो अपने अनुभव से शरीर और इन्द्रियों से रहित समस्त (ब्रह्माण्ड और ब्रह्म) को अपना वास्तविक स्वरूप जान लेता है, वही निडर पुरुष है - वही सर्वसाक्षी है - वही एक दिव्य विज्ञान है, वही आनन्दमय आत्मा है (जीवात्मा या निम्नतर आत्मा के विपरीत) और वही स्वयं तेजोमय है। उसे ही 'मैं' (स्वयं) जानना चाहिए। हे ऋभु, तू वही हो जा।

31. इसके पश्चात् संसार का अनुभव कभी नहीं होगा। तत्पश्चात् अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान सदैव होता रहेगा। जिसने इस आत्मा को पूर्णतः जान लिया है, उसे न तो मुक्ति है, न बंधन।

32. जो कोई अपने वास्तविक स्वरूप के ज्ञान द्वारा एक मुहूर्त (48 मिनट) भी उस सर्वसाक्षी रूप में नृत्य करने वाले का ध्यान करता है, वह सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है।

33. प्रणाम - मुझको प्रणाम है जो सभी तत्त्वों में हूँ, जो चिदात्म (अर्थात् ज्ञानस्वरूप आत्मा) हूँ, जो नित्य और मुक्त है तथा जो प्रत्यगत्मा हूँ।

34-35. हे देवता, आप मैं हूँ। मैं आप हूँ। मैं और आप अनंत हैं और चिदात्म हैं, मैं परम ईशा (भगवान) हूँ और आप शिव (कल्याणकारी स्वभाव वाले) हैं, इसलिए मुझे प्रणाम है। मुझे क्या करना चाहिए? मुझे कहाँ जाना चाहिए? मुझे क्या त्यागना चाहिए?

36. (कुछ नहीं, क्योंकि) यह जगत् मेरे द्वारा उसी प्रकार भरा हुआ है, जैसे प्रलय के जल से भरा हुआ है। जो बाहय प्रेम, आन्तरिक प्रेम तथा देह प्रेम को त्याग देता है और इस प्रकार समस्त सम्बन्धों को त्याग देता है, वह मुझमें ही लीन हो जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं है।

37. जो परमहंस संसार में रहते हुए भी मनुष्यों से सर्प के समान दूर रहता है, जो सुन्दर स्त्री को जीवित शव के समान तथा अनन्त विषय-वस्तुओं को क्षुद्र समझता है, वह मुझमें ही लीन हो जाता है।

38. यह सत्य है। यह सत्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अभी सत्य ही कहा जाता है। मैं ब्रहम हूँ, सत्य हूँ। मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

39. उपवास शब्द का तात्पर्य जीवात्मा और परमात्मा के निकट रहने (या मिलन) से है, न कि उपवास के द्वारा शरीर को क्षीण करने से।

40. अज्ञानी को शरीर के सूख जाने से क्या लाभ? साँप के बिल पर मारने से क्या यह कहा जा सकता है कि हमने भीतर के बड़े साँप को मार दिया।

41. जब मनुष्य यह जान लेता है कि ब्रहम है, तो उसे परोक्ष ज्ञान प्राप्त हो जाता है। परंतु जब वह यह जान लेता है कि मैं स्वयं ब्रहम हूँ, तब उसे साक्षात्कार (प्रत्यक्ष ज्ञान) प्राप्त होता है।

42. जब योगी अपने आत्मा को परम तत्व जान लेता है, तब वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

43. महात्माओं के लिए सदैव 'मैं ब्रहम हूँ' इस भाव में रहना मोक्ष प्रदान करता है। बंधन और मोक्ष दो शब्द हैं। वे हैं 'मेरा' और 'मेरा नहीं'।

44. मनुष्य 'मेरे' से बंधा है, परंतु 'मेरा नहीं' से मुक्त होता है। उसे बाह्य तथा आंतरिक विषयों से संबंधित सभी विचारों को त्याग देना चाहिए। हे ऋभु! सभी विचारों को त्यागकर, तुम्हें सदैव (अपनी आत्मा में) संतुष्ट रहना चाहिए।

45. संपूर्ण जगत संकल्प से ही उत्पन्न होता है। संकल्प से ही जगत प्रकट होता है। संकल्परूपी जगत को त्यागकर और निर्विकल्प में मन को स्थिर करके अपने हृदय में मेरे निवास का ध्यान कर।

46. हे परम बुद्धिमान्, मेरा ध्यान करने में, गीतों में मेरी महिमा करने में, एक दूसरे से मेरी चर्चा करने में अपना समय व्यतीत करो और इस प्रकार मुझ परमात्मा में ही अपना सर्वस्व समर्पित कर दो।

47. जगत में जो कुछ भी चित् है, वह चिन्मात्र ही है। यह जगत चिन्मय ही है। तुम चित् हो। मैं चित् हूँ; तुम भी चित्रूप से जगत का ध्यान करो।

48-49(अ)। कामनाओं को शून्य कर दो। सदा कलंकरहित रहो। फिर वेदों से उत्पन्न आत्मिक विज्ञान का प्रकाशमय दीपक कर्ता और कर्ता के अज्ञान से उत्पन्न कर्म से कैसे प्रभावित हो सकता है? अ-आत्मा को त्यागकर और उससे अप्रभावित होकर, केवल अपने भीतर स्थित चिन्मात्र में ही रमण करो, सदैव उस एक पर ही ध्यान लगाओ।

50(ख)-51(क)। जैसे घड़े का आकाश और घर का आकाश दोनों ही सर्वव्यापी आकाश में स्थित हैं, वैसे ही जीव और ईश्वर मुझ चिदाकाश (सार्वभौमिक चेतना का एक आकाश) से ही विकसित हुए हैं।

51(ख)-52(क)। अतः जो आत्मा (जीव) (और ईश्वर) के विकास के पहले अस्तित्व में नहीं था और जो अंत में (अर्थात् सार्वभौमिक जल-प्रलय में) त्याग दिया जाता है, उसे ब्रह्म-ज्ञानी अपने विवेक के द्वारा माया कहते हैं।

52(ख)-53(क)। यदि माया और उसके प्रभाव (ब्रह्मांड) नष्ट हो जाएं, तो ईश्वर की कोई स्थिति नहीं है, जीव की कोई स्थिति नहीं है। अतएव मैं वाहन रहित आकाश के समान शुद्ध और चित् हूँ।

53(ख)-54. जीव और ईश्वर रूप वाले जीवों की ईक्षण (विचार) से प्रवेश (प्रवेश) तक चेतन तथा अचेतन सृष्टि ईश्वर की सृष्टि (या भ्रम) के कारण

है; जबकि जाग्रत अवस्था से मोक्ष तक संसार (सांसारिक अस्तित्व) जीव की सृष्टि के कारण है।

55. अतः त्रिनाचक (जिसे कठोपनिषद् के नचिकेता के नाम से जाना जाता है) से लेकर योग तक के यज्ञ में विहित कर्म ईश्वर की भ्रांति पर आश्रित हैं; जबकि लोकायत (नास्तिक प्रणाली) से लेकर सांख्य तक की प्रणालियाँ जीव की भ्रांति पर टिकी हैं।

56. अतएव मोक्ष चाहने वाले साधकों को कभी भी जीव और ईश्वर के विवाद में नहीं पड़ना चाहिए। परंतु अविचल मन से ब्रह्मतत्त्व का अन्वेषण करना चाहिए।

57. जो लोग परब्रह्मतत्त्व को नहीं जानते, वे सभी मोहग्रस्त ही हैं।
फिर उन्हें मोक्ष कहाँ से मिलेगा? फिर उन्हें इस जगत में सुख कहाँ से मिलेगा?

58. यदि उनमें (ईश्वर और जीव की) श्रेष्ठता और हीनता के विचार हों, तो क्या होगा?

स्वप्नावस्था में जो प्रभुता और भिक्षावृत्ति (व्यक्ति द्वारा अनुभव की जाती है) उसे जागृत अवस्था में क्या प्रभावित करती है?

59. जब बुद्धि अज्ञान में लीन हो जाती है, तब उसे बुद्धिमान लोग निद्रा कहते हैं। फिर मुझ अज्ञान और उसके प्रभावों के बिना निद्रा कहाँ से आ गई?

60. जब बुद्धि पूर्ण विकसित होती है, तब उसे जाग्रत (जागृत अवस्था) कहते हैं। चूँकि मुझमें कोई परिवर्तन आदि नहीं है, इसलिए मेरी कोई जागृत अवस्था नहीं है।

61. सूक्ष्म नाड़ियों में बुद्धि का भ्रमण ही स्वप्नावस्था है। मेरे अन्दर भ्रमण के बिना स्वप्न नहीं आते।

62. फिर सुषुप्ति के समय जब सभी वस्तुएँ लीन हो जाती हैं, तमस् से आच्छादित हो जाती हैं, तब वह अदृश्य अवस्था में अपने स्वरूप के परम आनंद का आनंद लेता है।

63. यदि वह सब कुछ बिना किसी भेद के चित् रूप में देखता है, तो वही वास्तविक विज्ञानी है। वही शिव है। वे ही हरि हैं। वे ही ब्रह्म हैं।

64. यह संसार जो दुःख का सागर है, वह चिरकालिक स्वप्न, मन का भ्रम या मन का चिरकालिक शासन मात्र है। नींद से उठने से लेकर शयन तक एक ही ब्रह्म का चिन्तन करना चाहिए।
65. इस ब्रह्माण्ड को, जो कि एक अध्यारोपण मात्र है, लीन करके चित्त मेरे स्वभाव में भाग लेता है। छह प्रबल शत्रुओं का नाश करके, उनके नाश से तू गन्ध-हाथी के समान अद्वैतमय हो जा।

66. चाहे शरीर अभी नष्ट हो या चन्द्रमा और तारों की आयु तक रहे, मुझे इससे क्या फर्क पड़ता है कि मेरा शरीर केवल चित्त ही है? घड़े में स्थित आकाश को इससे क्या फर्क पड़ता है कि वह (घड़ा) अभी नष्ट हो या बहुत समय तक रहे।

67. जब सर्प का केंचुल अपने बिल में निर्जीव पड़ा रहता है, तब भी सर्प उसके प्रति कोई स्नेह नहीं प्रकट करता।

68. इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष अपने स्थूल और सूक्ष्म शरीरों से तादात्म्य नहीं करते। यदि आत्मज्ञान की अग्नि से कारण सहित भ्रमात्मक ज्ञान (कि जगत् सत्य है) नष्ट हो जाए, तो ज्ञानी पुरुष 'यह (ब्रह्म) यह नहीं है, यह यह नहीं है' इस भाव से शरीररहित हो जाता है।

69. शास्त्रों में सत्य (ब्रह्मांड) का ज्ञान नष्ट हो जाता है। सत्य के प्रत्यक्ष बोध से मनुष्य की (इस जगत् में) कर्म करने की योग्यता समाप्त हो जाती है। प्रारब्ध (इस जीवन में भोगा जा रहा पूर्व कर्म का अंश) के नष्ट होने से (ब्रह्मांड) की अभिव्यक्ति का विनाश हो जाता है। इस प्रकार माया तीन प्रकार से नष्ट हो जाती है।

70. यदि जीव के भीतर ब्रह्म के साथ तादात्म्य नहीं होता, तो जीव की पृथकता नष्ट नहीं होती। यदि अद्वैत का यथार्थ ज्ञान हो जाए, तो समस्त आसक्ति समाप्त हो जाती है।

71. प्रारब्ध के नष्ट होने पर शरीर की भी आसक्ति उत्पन्न होती है। अतः यह निश्चित है कि इस प्रकार माया का सर्वथा नाश हो जाता है। यदि कहा जाए कि समस्त जगत् है, तो केवल ब्रह्म ही सत्स्वरूप है।

72. यदि कहा जाए कि समस्त जगत् चमकता है, तो केवल ब्रह्म ही चमकता है। मरुद्यान में समस्त जल की मृगतृष्णा वास्तव में स्वयं मरुद्यान ही है। अपने आत्म-अनुसन्धान से तीनों लोक (ऊपर, नीचे और मध्य) केवल चित्स्वरूप हैं।

73. जो ब्रह्म एक है, जिसका स्वरूप परम चैतन्य है, जो जीव, ईश्वर और गुरु के भेदों से परे है, उसमें अज्ञान नहीं है। ऐसी स्थिति में, वहाँ जगत् का हेतु कहाँ है? वह ब्रह्म मैं ही हूँ, जो पूर्ण है।

74. जब ज्ञानरूपी पूर्ण चन्द्रमा की चमक मोहरूपी राहु के द्वारा छीन ली जाती है, तब ग्रहणकाल में किए गए स्नान, दान और यज्ञ आदि सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं।

75. जैसे जल में घुला नमक एक हो जाता है, वैसे ही आत्मा और मनस एक हो जाएँ, तो उसे समाधि कहते हैं।

76. उत्तम गुरु की कृपा के बिना विषय-वस्तुओं का त्याग बहुत कठिन है; वैसे ही सत्य का साक्षात्कार और वास्तविक स्थिति की प्राप्ति भी कठिन है। ७७. फिर जिस योगी में ज्ञान-शक्ति है, उसकी स्वयं की स्थिति स्वयं ही चमक उठती है।

78. पारे और मन में परिवर्तनशीलता स्वाभाविक है। यदि पारा बद्ध (या संचित) हो या मन बद्ध (या नियंत्रित) हो, तो इस पृथ्वी पर क्या नहीं हो सकता?

79. जो मूर्च्छा प्राप्त करता है, वह सभी रोगों को दूर कर देता है। मृतक पुनः जीवित हो जाते हैं। जिसने (अपने मन या पारे को) बद्ध कर लिया है, वह वायु में विचरण करने में समर्थ हो जाता है। इसलिए पारा और मन मिलकर ब्रह्मत्व प्रदान करते हैं।

80. इन्द्रियों (इन्द्रियों) का स्वामी मन है। मन का स्वामी प्राण है। प्राण का स्वामी लय (अवशोषण योग) है। इसलिए लय-योग का अभ्यास करना चाहिए।

81. योगियों के लिए लय (-योग) को क्रिया रहित और परिवर्तन रहित कहा गया है। मन की यह लय (अवशोषण) जो वाणी से परे है और जिसमें सभी

संकल्पों को त्यागना पड़ता है तथा सभी कर्मों को पूर्णतः त्याग देना पड़ता है, उसे अपने अनुभव से जानना चाहिए।

82. जैसे कोई अभिनेत्री संगीत, झांझ और काल के अन्य वाद्यों के अधीन (या उनके साथ ताल मिलाकर नृत्य करती हुई) होती है, तब भी उसका मन अपने सिर पर रखे कलश की रक्षा में लगा रहता है, वैसे ही योगी भी, यद्यपि कुछ समय के लिए विषयों में लगा रहता है, तब भी वह ब्रह्म का चिंतन करते हुए मन को कभी नहीं छोड़ता।

83. जो व्यक्ति योग की समस्त सम्पदा चाहता है, उसे चाहिए कि वह सभी विचारों को त्यागकर, केवल नाद (आध्यात्मिक ध्वनि) पर ही मन को एकाग्र करके अभ्यास करे। इस प्रकार वराह उपनिषद का दूसरा अध्याय समाप्त होता है।

अध्याय - III

1. "एक तत्त्व कभी भी अनेक रूप नहीं बना सकता। चूँकि मैं अविभाज्य हूँ, अतः मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं है।

2. जो कुछ दिखाई देता है और जो कुछ सुनाई देता है, वह ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मैं वह परब्रह्म हूँ, जो नित्य, निर्मल, मुक्त, एक, अखण्ड आनन्द, अद्वैत, सत्य, ज्ञान और अनन्त है।

3. मैं आनन्दस्वरूप हूँ, मैं अखण्ड ज्ञानस्वरूप हूँ, मैं परमसत्ताओं में भी परब्रह्म हूँ, मैं तेजस्वी परम चैतन्यस्वरूप हूँ। जैसे बादल आकाश को नहीं छूते, वैसे ही संसार में आने वाले दुःख मुझे प्रभावित नहीं करते।

4. दुःख के नाश से सब सुख जान और असत् के नाश से सब सत्स्वरूप जान। इस दृश्य जगत् में केवल चित्स्वरूप ही सम्बद्ध है। इसलिए मेरा स्वरूप अखण्ड है।

5. श्रेष्ठ योगी के लिए न तो जन्म है, न मृत्यु, न जाना है, न लौटना है; न कोई दाग है, न पवित्रता है, न ज्ञान है, बल्कि (ब्रह्मांड) उसके लिए परम चेतना के रूप में चमकता है।

6. हमेशा मौन का अभ्यास करें 'मैं (अर्थात् आप स्वयं हैं) पर-ब्रह्म हूँ' जो सत्य और परम चेतना है, जो अविभाजित और अद्वैत है, जो अदृश्य है, जो निष्कलंक है, जो शुद्ध है, जो द्वितीय है और जो कल्याणकारी है।

7. यह (ब्रह्म) जन्म और मृत्यु, सुख और दुख के अधीन नहीं है। यह जाति, कानून, परिवार और गोत्र (कुल) के अधीन नहीं है। मौन का अभ्यास करें - मैं चित्त हूँ, जो ब्रह्मांड का विवर्त-उपादान (अर्थात्, भ्रामक कारण) है।

8. सदा मौन का अभ्यास करो - मैं (अर्थात् तुम) ब्रह्म हूँ, अर्थात् पूर्ण, अद्वय, अविभाजित चेतना जिसका न तो इस जगत में कोई सम्बन्ध है, न कोई भेद है, तथा जो अद्वैत और परम सत् और चित् का सार है।

9. जो सदा है, तथा जो तीनों कालों में एक ही स्वभाव रखता है, किसी भी वस्तु से प्रभावित नहीं होता, वह मेरा सनातन सत् स्वरूप है।

10. जो सुख की अवस्था उपाधियों से रहित है, तथा जो सुषुप्ति से प्राप्त होने वाले सभी सुखों से श्रेष्ठ है, वह भी मेरा ही आनन्द है।

11. जैसे सूर्य की किरणों से घना अन्धकार शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, वैसे ही पुनर्जन्म का कारण अन्धकार हरि (विष्णु) अर्थात् सूर्य की प्रभा से नष्ट हो जाता है।

12. मेरे (हरि के) चरणों के ध्यान और पूजन से प्रत्येक व्यक्ति अपने अज्ञान से मुक्त हो जाता है। मेरे चरणों के ध्यान से ही जन्म-मृत्यु का नाश होता है।

13. जैसे धन का प्रेमी धनवान की स्तुति करता है, वैसे ही यदि कोई व्यक्ति सच्चे मन से जगत के कारण की स्तुति करे, तो कौन बंधन से मुक्त नहीं हो सकता?

14. जैसे सूर्य की उपस्थिति में जगत अपने आप ही अपने कार्य करने लगता है, वैसे ही मेरी उपस्थिति में सभी जगत कार्य करने के लिए प्रेरित होते हैं।

15. जैसे मोती के विषय में चांदी की भ्रांति मिथ्या रूप से आरोपित की गई है, वैसे ही महात् आदि से युक्त यह जगत भी माया द्वारा मिथ्या रूप से मुझमें आरोपित किया गया है।

16. मैं उन भेदों से सहमत नहीं हूँ, जो निम्न जाति के मनुष्यों के शरीर, गाय के शरीर, स्थिर शरीर, ब्राह्मण आदि के शरीर में (देखे जा सकते हैं)।

17. जिस प्रकार दिशाओं के भ्रम से मुक्त होने पर भी मनुष्य की दिशा का भ्रम बना रहता है, उसी प्रकार विज्ञान द्वारा नष्ट होने पर भी मेरे लिए जगत् है। अतः जगत् नहीं है।

18. मैं न तो शरीर हूँ, न इन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ, न प्राण, न मन, न बुद्धि, न अहंकार, न चित्त, न माया, न आकाश आदि सहित जगत्।

19. मैं न तो कर्ता हूँ, न भोक्ता हूँ, न भोग का कारण हूँ। मैं ही ब्रह्म हूँ, अर्थात् चित्, सत् और आनन्द हूँ, और वही जनार्दन (विष्णु) हैं।

20. जैसे जल के प्रवाह से सूर्य (उसमें प्रतिबिम्बित) गति करता है, उसी प्रकार अहंकार के साथ सम्बन्ध मात्र से आत्मा इस संसार में उत्पन्न होती है।

21. इस संसार का मूल चित्त है। इस (चित्त) को बार-बार प्रयास करके शुद्ध करना चाहिए। चित्त की महानता पर तुम्हें कैसे भरोसा है?

22. हाय, राजाओं का सारा धन कहाँ है! ब्राह्मण कहाँ हैं? सारे लोक कहाँ हैं? पुराने सब चले गए। बहुत से नए विकास हुए हैं।

23. कई करोड़ ब्रह्मा मर गए हैं। बहुत से राजा धूल के कणों की तरह उड़ गए हैं। ज्ञानी में भी आसुर (राक्षसी) स्वभाव के कारण शरीर का प्रेम उत्पन्न हो सकता है। यदि ज्ञानी में आसुर स्वभाव उत्पन्न हो जाए, तो उसका सत्य का ज्ञान निष्फल हो जाता है।

24. यदि हमारे भीतर उत्पन्न हुए राजस आदि विवेकशील (दिव्य) ज्ञान की अग्नि से जला दिए जाएँ, तो वे फिर कैसे अंकुरित हो सकते हैं?

25. जैसे बहुत बुद्धिमान व्यक्ति दूसरे के दोषों को देखकर प्रसन्न होता है, वैसे ही यदि कोई अपने दोषों को खोज ले (और उन्हें सुधार ले) तो कौन बंधन से मुक्त नहीं हो सकता?

26. हे मुनियों के स्वामी, जो आत्मज्ञान से रहित है और जो मोक्षप्राप्त नहीं है, वही सिद्धियों की अभिलाषा करता है। वह औषधि, (या धन), मंत्र, धार्मिक कार्य, समय और कौशल के द्वारा ऐसी सिद्धियाँ प्राप्त करता है।

27. आत्मज्ञानी की दृष्टि में ये सिद्धियाँ महत्वहीन हैं। जो आत्मज्ञानी हो गया है, जिसकी दृष्टि केवल आत्मा पर है, और जो आत्मा (या निम्न आत्मा) के द्वारा आत्मा (उच्चतर आत्मा) से संतुष्ट है, वह कभी अविद्या का पालन नहीं करता।

28. इस संसार में जो कुछ भी है, वह उसे अविद्या के स्वरूप का ही जानता है। फिर एक आत्म-ज्ञानी जिसने अविद्या को त्याग दिया है, वह उसमें कैसे लीन हो सकता है (या उससे प्रभावित हो सकता है)।

29. यद्यपि औषधि, मंत्र, धार्मिक कार्य, समय और कौशल (या रहस्यमय अभिव्यक्तियाँ) सिद्धियों के विकास की ओर ले जाते हैं, फिर भी वे किसी भी तरह से परमात्मा की सीट पाने में मदद नहीं कर सकते।

30. फिर जो आत्म-ज्ञानी है और जो अपने मन से रहित है, वह सिद्धियों का इच्छुक कैसे कहा जा सकता है, जबकि उसकी सभी इच्छाओं के कार्य नियंत्रित हैं? इस प्रकार वराह उपनिषद का तीसरा अध्याय समाप्त होता है।

अध्याय - IV एक अन्य अवसर पर निदाघ ने भगवान ऋभु से जीवनमुक्ति की विशेषताओं के बारे में उन्हें बताने के लिए कहा। जिस पर ऋभु ने सकारात्मक उत्तर दिया और निम्नलिखित कहा: "सात भूमिकाओं (या ज्ञान के विकास के चरणों) में जीवनमुक्ता के चार प्रकार हैं। इनमें से पहला चरण शुभेच्छा (अच्छी इच्छा) है; दूसरा है विचारना (पूछताछ);

तीसरा है तनुमनासि (या इससे संबंधित) चौथा है सत्त्वप्ति (सत्त्व की प्राप्ति); पांचवां है असम्शक्ति (अनासक्ति); छठा है पदार्थ-भावना (वस्तुओं का विश्लेषण) और सातवां है तुर्या (चौथी या अंतिम अवस्था)। भूमिका जो प्रणव (ॐ) के स्वरूप की है, वह अकार-'अ', उकार-'उ', मकार-'म' और अर्धमात्रा से बनी है (या इनमें विभाजित है)। स्थूल (स्थूल) सूक्ष्म, बीज (बीज या कारण) और साक्षी (साक्षी) के भेद से अकार आदि चार प्रकार के हैं। उनकी अवस्थाएँ चार हैं: जाग्रत, स्वप्न, स्वप्नरहित सुषुप्ति और तुर्या (चौथी)। जो अकार के स्थूल अंश (सार या भाग) में जाग्रत अवस्था में है (या उससे तादात्म्य करने वाली इकाई) उसका नाम

विश्व है; सूक्ष्म तत्त्व में उसे तैजस कहते हैं, बीज तत्त्व में उसे प्रज्ञा कहते हैं और साक्षी तत्त्व में उसे तुर्या कहते हैं।

उकार के स्थूल तत्त्व में जो स्वप्न अवस्था में है (या वह इकाई जो स्वप्न अवस्था के साथ अपनी पहचान करती है) वह विश्व है; सूक्ष्म तत्त्व में उसे तैजस कहते हैं, बीज तत्त्व में उसे प्रज्ञा कहते हैं और साक्षी तत्त्व में उसे तुर्या कहते हैं। मकार के स्थूल तत्त्व में जो सुषुप्ति अवस्था में है उसे विश्व कहते हैं; सूक्ष्म तत्त्व में उसे तैजस कहते हैं; बीज तत्त्व में उसे प्रज्ञा कहते हैं और साक्षी तत्त्व में उसे तुर्या कहते हैं। अर्धमात्रा के स्थूल तत्त्व में जो तुर्या अवस्था में है उसे तुर्या-विश्व कहते हैं।

सूक्ष्म तत्त्व में उसे तैजस कहते हैं; बीज तत्त्व में उसे प्रज्ञा कहते हैं; और साक्षी सार में उसे तुर्य-तुर्य कहा जाता है। अकार का तुर्य सार प्रथम, द्वितीय और तृतीय (भूमिकाएँ या सात में से चरण) को समाहित करता है। उकार का तुर्य सार चतुर्थ भूमिका को समाहित करता है। मकार का तुर्य सार पाँचवीं भूमिका को समाहित करता है। अर्धमात्रा का तुर्य सार छठी अवस्था है। इसके आगे सातवीं अवस्था है। जो (प्रथम) तीन भूमिकाओं में कार्य करता है उसे मुमुक्षु कहते हैं; जो चौथी भूमिका में कार्य करता है उसे ब्रह्मवित कहते हैं; जो पाँचवीं भूमिका में कार्य करता है उसे ब्रह्मविद्वर कहते हैं; जो छठी भूमिका में कार्य करता है उसे ब्रह्मविद्वरीय कहते हैं; और जो सातवीं भूमिका में कार्य करता है उसे ब्रह्मविद्वारिष्ठ कहते हैं। इसके संदर्भ में श्लोक हैं। वे हैं:

1. शुभेच्छा को प्रथम ज्ञान-भूमि (या बुद्धि की अवस्था) कहा गया है; विचारणा को द्वितीय; तनुमानसि को तृतीय;

2. सत्त्वपत्ती को चतुर्थ; तत्पश्चात् असमशक्ति को पंचम, पदार्थ-भावना को छठा तथा तुर्या को सातवाँ।

3. विशुद्ध वैराग्य (संकल्प) के द्वारा जो इच्छा उत्पन्न होती है कि 'क्या मैं अज्ञानी रहूँगा? मैं शास्त्रों और ज्ञानियों को दिखाई दूँगा' (या 'मैं पुस्तकों का अध्ययन करूँगा तथा ज्ञानियों के साथ रहूँगा') - उसे ज्ञानी शुभेच्छा कहते हैं।
4. ज्ञानियों और शास्त्रों की संगति तथा उदासीनता के अभ्यास से पूर्व सही मार्ग का अनुसरण विचारणा कहलाता है।

5. वह अवस्था जिसमें प्रथम तथा द्वितीय अवस्थाओं के माध्यम से विषय-वस्तुओं की लालसा कम हो जाती है, उसे तनुमानसि कहते हैं।

6. वह अवस्था जिसमें उपर्युक्त तीनों अवस्थाओं के अभ्यास से समस्त विषय-वस्तुओं के प्रति उदासीन होकर शुद्ध चित्त सत्स्वरूप आत्मा पर स्थित हो जाता है, उसे सत्त्वगुण कहते हैं।

7. उपर्युक्त चारों अवस्थाओं के अभ्यास से कर्मफल की इच्छा के बिना जो सत्त्वगुण का प्रकाश (या प्रकटीकरण) एक में दृढ़तापूर्वक स्थित हो जाता है, उसे असम्शक्ति कहते हैं।

8-9. वह अवस्था जिसमें उपर्युक्त पाँच अवस्थाओं के अभ्यास से आत्मा में आनन्द प्राप्त करके, अन्तः और बाह्य की कोई धारणा नहीं रहती (यद्यपि वह उसके सामने है) और जब दूसरे उसे करने के लिए प्रेरित करते हैं, तभी वह कर्म करता है, उसे पदार्थभावना कहते हैं, जो छठी अवस्था है।
10. जिस अवस्था में उपर्युक्त छह अवस्थाओं में बहुत अधिक अभ्यास करने के बाद मनुष्य (ब्रह्माण्ड के) भेद से रहित होकर केवल आत्मा के चिन्तन में स्थिर हो जाता है, वह सातवीं अवस्था है, जिसे तुर्या कहते हैं।

11. शुभेच्छा से प्रारम्भ होने वाली तीन अवस्थाएँ भेदों और अभेदों के साथ (या बीच में) प्राप्त कही गई हैं। (क्योंकि) जाग्रत अवस्था में मनुष्य जिस ब्रह्माण्ड को देखता है, उसे वह वास्तव में विद्यमान समझता है।

12. जब मन अद्वैत पर दृढ़तापूर्वक स्थिर हो जाता है और द्वैत की धारणा समाप्त हो जाती है, तब वह चौथी अवस्था के साथ एकाकार होकर इस जगत को स्वप्न के रूप में देखता है।

13. जैसे शरद ऋतु का बादल छंट जाता है, वैसे ही यह जगत नष्ट हो जाता है। हे निदाघ! ऐसा समझो कि ऐसे पुरुष में केवल सत्त्व ही शेष रहता है।

14. फिर सुषुप्तिपद नामक पाँचवीं अवस्था को प्राप्त करके वह समस्त भेदों से मुक्त होकर केवल अद्वैत अवस्था में रहता है।

15-16(क) बाह्य कर्मों में सदैव सहभागी रहते हुए भी जो इस (छठी अवस्था) के अभ्यास में लगे हुए हैं, वे थके हुए सोये हुए पुरुष के समान देखे जाते हैं (अर्थात् समस्त सम्बन्धों से मुक्त होकर)।

16(ख) (अंत में) सातवीं अवस्था जो प्राचीन है और जिसे गुढासुप्ति कहते हैं, वह सामान्यतः प्राप्त होती है।

17. तब मनुष्य उस परात्पर अवस्था में भय रहित रहता है और उसकी चेतना लगभग नष्ट हो जाती है, जहाँ न सत् है, न असत्, न आत्मा है और न अनात्मा।

18. आकाश में खाली घड़े की तरह, भीतर और बाहर दोनों जगह शून्यता है; समुद्र के बीच भरे हुए बर्तन की तरह, वह भीतर और बाहर दोनों जगह भरा हुआ है।

19. न तो ज्ञाता बनो और न ही ज्ञेय। तुम वह सत्य बनो जो सभी विचारों के त्याग के बाद भी शेष रहता है।

20. द्रष्टा, दृश्य और दृश्य के (सभी भेदों) को उनके सम्बन्धों सहित त्याग कर, केवल आत्मा का ध्यान करो जो परम प्रकाश के रूप में चमकता है।

21. वह जीवन्मुक्त (मुक्त व्यक्ति) कहा जाता है, जिसमें संसार के भौतिक कार्यों में भाग लेने पर भी अदृश्य आकाश की तरह ब्रह्मांड विद्यमान नहीं दिखता।

22. वह जीवन्मुक्त कहा जाता है, जिसके मन की ज्योति दुख या सुख में कभी अस्त या उदय नहीं होती और जो अपने साथ घटित होने वाली घटनाओं को बदलने की कोशिश नहीं करता (अर्थात अपने दुख को कम करना या अपने सुख को बढ़ाना)।

23. वह जीवन्मुक्त कहा जाता है, जो अपनी सुषुप्ति में जागृत रहता है और जिसे जाग्रत अवस्था अज्ञात होती है और जिसकी बुद्धि (वस्तुओं की) आसक्ति से मुक्त होती है।

24. वह जीवन्मुक्त कहा जाता है, जिसका हृदय प्रेम, घृणा, भय आदि के अनुरूप कार्य करने पर भी आकाश की तरह शुद्ध होता है।

25. जीवन्मुक्त वह कहलाता है, जिसे अपने कर्ता होने का बोध नहीं है और जिसकी बुद्धि भौतिक वस्तुओं में आसक्त नहीं है, चाहे वह कर्म करे या न करे।

26. जीवन्मुक्त वह कहलाता है, जिससे लोग डरते नहीं, जो लोगों से नहीं डरता और जिसने हर्ष, क्रोध और भय का त्याग कर दिया है।

27. जीवन्मुक्त वह कहलाता है, जो समस्त मायावी विषयों में भाग लेते हुए भी उनके बीच शांत रहता है और पूर्ण आत्मा है, मानो वे अन्यों के हैं।

28. हे मुनि, वह जीवन्मुक्त कहलाता है, जो अपने चित्त की समस्त इच्छाओं को मिटाकर, मुझमें, जो सबका आत्मा हूँ, संतुष्ट रहता है।

29. वह जीवन्मुक्त कहलाता है, जो उस परम शुद्ध धाम में, जो चिन्मात्र है और चित्त की समस्त वृत्तियों से मुक्त है, अविचल मन से विश्राम करता है।

30. वह जीवन्मुक्त कहलाता है जिसके चित्त में मैं, वह, तू तथा अन्य दृश्यमान और अवास्तविक का भेद नहीं होता।

31. गुरु और शास्त्र के मार्ग से शीघ्र ही सत् में प्रवेश करो - वह ब्रह्म जो अपरिवर्तनीय, महान, पूर्ण और विषयों से रहित है - और वहीं दृढ़तापूर्वक बैठो।

32. शिव ही गुरु हैं; शिव ही वेद हैं; शिव ही भगवान हैं; शिव ही मैं हूँ; शिव ही सब कुछ हैं। शिव के अलावा कोई नहीं है।

33. निडर ब्राह्मण को उन्हें (शिव को) जानकर ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। अधिक शब्द बोलने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे वाणी के अंग को चोट पहुँचाते हैं।

34. (ऋषि) शुक मुक्त (मुक्त व्यक्ति) हैं। (ऋषि) वामदेव मुक्त हैं। इन (अर्थात् इन दो ऋषियों के दो मार्गों) के अतिरिक्त अन्य कोई भी मोक्ष प्राप्त करने वाला नहीं है। जो वीर पुरुष इस संसार में शुक के मार्ग का अनुसरण करते हैं, वे सद्यो-मुक्त हो जाते हैं।तुरन्त बाद (शरीर क्षीण हो जाता है);

35. जो लोग इस संसार में सदैव वामदेव (अर्थात् वेदान्त) के मार्ग का अनुसरण करते हैं, वे बार-बार पुनर्जन्म के अधीन होते हैं तथा सत्व (गुण) से सम्बन्धित योग, सांख्य तथा कर्मों के द्वारा क्रम (क्रमिक) मुक्ति प्राप्त करते हैं।

36. इस प्रकार देवों के स्वामी ने दो मार्ग बताये हैं (अर्थात्, शुक और वामदेव मार्ग)। शुक मार्ग को पक्षी मार्ग कहा जाता है; जबकि वामदेव मार्ग को चींटी मार्ग कहा जाता है।

37-38. जो मनुष्य वेदों के आदेशात्मक और निषेधात्मक आदेशों, महावाक्यों के सत्य अर्थों की खोज, सांख्ययोग की समाधि अथवा असम्प्रज्ञात समाधि के द्वारा अपने आत्मा के वास्तविक स्वरूप को जान लेते हैं और इस प्रकार अपने को शुद्ध कर लेते हैं, वे शुक मार्ग से परमपद को प्राप्त करते हैं।

39-40. यम, आसन आदि के कष्टों सहित हठयोग के अभ्यास से अणिमा आदि सिद्धियों के कारण उत्पन्न होने वाली बाधाओं से ग्रस्त होकर तथा शुभ फल न पाकर, पुनः उत्तम कुल में जन्म लेता है और अपने पूर्व कर्मों के द्वारा योग का अभ्यास करता है।

41. फिर अनेक जन्मों तक योगाभ्यास करके वह वामदेव मार्ग से मोक्ष अर्थात् भगवान विष्णु के परमपद को प्राप्त करता है।

42. इस प्रकार ब्रह्म की प्राप्ति के लिए दो मार्ग हैं, जो कल्याणकारी हैं। एक तो तत्काल मोक्ष प्रदान करने वाला है और दूसरा धीरे-धीरे मोक्ष प्रदान करने वाला है। जो सबको एक ही ब्रह्म के रूप में देखता है, उसके लिए मोह कहाँ है? दुःख कहाँ है?

43. जिनकी बुद्धि केवल सत्य (ब्रह्म) में ही लगी हुई है, अर्थात् जो सब अनुभवों का लक्ष्य है, उनकी दृष्टि में जो हैं, वे सभी जघन्य पापों से मुक्त हो जाते हैं।

44. ब्रह्मविद्या के दर्शन में आने वाले स्वर्ग और पृथ्वी में रहने वाले सभी प्राणी करोड़ों जन्मों में किए गए पापों से तुरंत मुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार वराह उपनिषद का चौथा अध्याय समाप्त होता है।

अध्याय - पाँच तब निदाघ ने भगवान ऋभु से योग के अभ्यास के नियमों के बारे में ज्ञान देने के लिए कहा। तदनुसार उन्होंने (भगवान ने) इस प्रकार कहा:

1. "शरीर पाँच तत्वों से बना है। यह पाँच मंडलों से भरा हुआ है। जो कठोर है, वह पृथ्वी है, उनमें से एक है; जो तरल है, वह आपस है;

2. जो चमकीला है, वह तेजस है; गति वायु का गुण है; जो सब जगह व्याप्त है, वह आकाश है। योग के बाद साधक को इन सब बातों को जानना चाहिए।

3. इस शरीर में वायु-मंडल के फूँकने से दिन-रात 21,600 साँसें चलती हैं।

4. यदि पृथ्वी-मंडल में कमी हो, तो शरीर में सिलवटें पड़ जाती हैं; यदि आपस के सार में कमी हो, तो धीरे-धीरे बालों का सफेद होना शुरू हो जाता है;

5. यदि तेजस के सार में कमी हो, तो भूख और चमक कम हो जाती है; यदि वायु के सार में कमी हो, तो लगातार कंपन होता है;

6. आकाश के तत्व में कमी होने पर मनुष्य मर जाता है। इन तत्वों को धारण करने वाला जीवात्मा (अर्थात प्राण) इन तत्वों के कम होने के कारण (शरीर में) विश्राम करने का स्थान न पाकर, पक्षियों की भाँति ऊपर उठ जाता है।

7. इसी कारण इसे उदयन (ऊपर उड़ना) कहते हैं। इसी के सम्बन्ध में बन्ध कहा गया है (बंधन, जिसका अर्थ उदयन-बन्ध भी है, जिससे इस उड़ान को रोका जा सकता है)। यह उदयन-बन्ध मृत्यु को दूर करने वाला है, जैसे सिंह हाथी को।

8. इसका अनुभव शरीर में होता है, तथा बन्ध भी। इसका (शरीर में) बंधन दुःखदायी है। यदि पेट में अग्नि प्रज्वलित हो, तो बहुत पीड़ा होगी।

9. इसलिए इस (उद्यान-बंध) का अभ्यास उस व्यक्ति को नहीं करना चाहिए जो भूखा हो या जिसे पानी पीने या मल त्यागने की तीव्र इच्छा हो। उसे उचित और संयमित भोजन कई बार थोड़ी मात्रा में लेना चाहिए।

10. उसे मंत्र-योग का अभ्यास करना चाहिए। लय-योग और हठ-योग, क्रमशः सौम्य, मध्यम और पारलौकिक विधियों (या अवधियों) के माध्यम से। लय, मंत्र और हठ-योग में प्रत्येक के आठ (समान) उपासक हैं।

11-12(क)। वे हैं यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

12(ख)-13(क)। (इनमें से, यम दस प्रकार के हैं। वे हैं अहिंसा, सत्य, लोभ न करना, संयम, दया, सरलता, धैर्य, साहस, संयमित भोजन और पवित्रता (शारीरिक और मानसिक)।

13(ख)-14। नियम दस प्रकार के होते हैं। वे हैं तप, संतोष, ईश्वर या वेदों के अस्तित्व में विश्वास, दान, ईश्वर (या भगवान) की पूजा, धार्मिक सिद्धांतों की व्याख्या सुनना, विनय, अच्छी बुद्धि, जप (प्रार्थनाओं का उच्चारण) और व्रत (धार्मिक अनुष्ठान)।

15-16. ये चक्र से शुरू होने वाले ग्यारह आसन हैं। चक्र, पद्म, कूर्म, मयूर, कुक्कुट, वीर, स्वस्तिक, भद्र, सिंह, मुक्ता और गोमुख वे आसन हैं जिन्हें योग के जानकारों ने गिनाया है।

17. बाएं टखने को दाईं जांघ पर और दाएं टखने को बाईं जांघ पर रखना और शरीर को सीधा रखना (बैठते समय) चक्र आसन है।

18. प्राणायाम का अभ्यास बार-बार निम्नलिखित क्रम से करना चाहिए, अर्थात प्रेरणा, श्वास का संयम और निःश्वसन। प्राणायाम नाड़ियों के माध्यम से किया जाता है। इसलिए इसे स्वयं नाड़ियाँ कहा जाता है।

19. प्रत्येक चेतन प्राणी का शरीर छियानबे अंगुल लंबा होता है। शरीर के मध्य में, गुदा के ऊपर दो अंगुल और जननेन्द्रिय के नीचे दो अंगुल, शरीर का केन्द्र (जिसे मूलाधार या त्रिक जाल कहते हैं) होता है।

20-21. जननांगों के ऊपर नौ अंगुलियों पर, नाड़ियों का काण्ड होता है जो अंडाकार, चार अंगुल ऊँचा और चार अंगुल चौड़ा होता है। यह चर्बी, मांस, अस्थि और रक्त से घिरा होता है।

22. इसमें बारह तीलियों वाला नाड़ी-चक्र स्थित होता है। कुण्डली जिसके द्वारा यह शरीर टिका हुआ है, वहीं है।

23. यह अपने मुख से सुषुम्ना के ब्रह्मरंध्र (अर्थात ब्रह्मा का छिद्र) को ढकता है। सुषुम्ना के बगल में अलम्बुषा और कुहु नाड़ियाँ हैं।

24. अगली दो (तीलियों) में वरुण और यशस्विनी हैं। सुषुम्ना के दक्षिण की तीलियों में पिंगला नियमित रूप से बहती है।

25. अगली दो तीलियों में पूषा और पयस्विनी हैं। सुषुम्ना के पश्चिम की तीलियों में सरस्वती नामक नाड़ियाँ हैं।

26. अगली दो तीलियों में शंखिनी और गांधारी हैं। सुषुम्ना के उत्तर में इडा है;

27-28. अगली तीलियों में हस्तिजिह्वा है; अगली तीलियों में विश्वोदर है। पहिये की इन तीलियों में बारह नाड़ियाँ बारह वायु को बाएँ से दाएँ (शरीर के विभिन्न भागों में) ले जाती हैं। नाड़ियाँ कपड़े के ताने-बाने की तरह बुनी हुई हैं। कहा जाता है कि वे अलग-अलग रंगों की होती हैं।

29-30. वस्त्र के मध्य भाग (यहाँ नाड़ियों का संग्रह) को नाभि चक्र कहते हैं। ज्वलन्ती, नादरूपिणी, पररन्ध्र और सुषुम्ना को नाद (आध्यात्मिक ध्वनि) का (आधार) आधार कहा गया है। ये चार नाड़ियाँ माणिक्य रंग की हैं। ब्रह्मरन्ध्र का मध्य भाग बार-बार कुण्डली से ढका रहता है।

31-33(क)। इस प्रकार इन नाड़ियों में दस वायु विचरण करते हैं। नाड़ियों और वायु के मार्ग को समझने वाले बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह अपनी गर्दन और शरीर को सीधा रखकर, मुँह बंद करके, अपनी नासिका के अग्रभाग में, हृदय के मध्य में और बिन्दु के मध्य में तुर्यक (आत्मा) का स्थिरचित्त से ध्यान करे और वहाँ से बहते हुए अमृत को (मानसिक) नेत्रों से शान्त मन से देखे।

33(ख)-34। गुदाद्वार को बंद करके वायु को ऊपर खींचकर प्रणव (ॐ) के द्वारा उसे ऊपर की ओर ले जाकर श्रीबीज से पूर्ण करना चाहिए। उसे अपनी आत्मा का श्री (या पराशक्ति) के रूप में तथा अमृत से नहाया हुआ ध्यान करना चाहिए।

35. यह कालवंचना (शाब्दिक अर्थ, कालभ्रम) है। इसे सबसे महत्वपूर्ण कहा गया है। मन द्वारा जो कुछ भी सोचा जाता है, वह मन द्वारा ही पूरा होता है।

36. (तब) अग्नि जल में प्रज्वलित होगी और अग्नि की ज्वाला में शाखाएँ और फूल उत्पन्न होंगे। तब ब्रह्मांड के संबंध में बोले गए शब्द और किए गए कार्य व्यर्थ नहीं जाते।

37. मार्ग में बिन्दु को रोककर, जल में अग्नि की ज्वाला को जगाकर तथा जल को सुखाकर शरीर को दृढ़ बनाया जाता है।

38. गुदा और योनि को एक साथ सिकोड़कर अपान को ऊपर खींचकर उसके साथ समान को मिला देना चाहिए।

39. अपनी आत्मा को शिव के रूप में तथा फिर अमृत से नहाए हुए के रूप में चिन्तन करना चाहिए। योगी को प्रत्येक तीली के मध्य भाग में बल (इच्छा या शक्ति) को केन्द्रित करना आरम्भ करना चाहिए।

40. प्राण और अपान के संयोग से उसे ऊपर जाने का प्रयत्न करना चाहिए। यह परम महत्वपूर्ण योग शरीर में सिद्धियों का मार्ग प्रशस्त करता है।

41. जैसे जल पर बाँध बाढ़ को रोकता है, वैसे ही योगियों को यह सदैव ज्ञात होना चाहिए कि शरीर की छाया जीव की है।

42. यह बन्ध सभी नाड़ियों के लिए कहा जाता है। इस बन्ध की कृपा से देवता प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

43. चार पैरों वाला यह बन्ध तीनों मार्गों पर अंकुश लगाता है। इससे वह मार्ग प्रकाशित होता है, जिससे सिद्धों ने सिद्धियाँ प्राप्त की थीं।

44. यदि प्राण के साथ उदान को शीघ्र ऊपर चढ़ाया जाए, तो यह बन्ध सभी नाड़ियों को रोककर ऊपर चढ़ जाता है।

45. इसे सम्पुट-योग या मूल-बन्ध कहते हैं। इस योग के अभ्यास से तीनों बन्धों पर विजय प्राप्त होती है।

46. दिन-रात रुक-रुककर या किसी सुविधाजनक समय पर अभ्यास करने से वायु उसके वश में आ जाएगी।

47. वायु के वश में होने से शरीर में अग्नि (जठराग्नि) प्रतिदिन बढ़ती जाएगी। अग्नि के बढ़ने से भोजन आदि आसानी से पच जाएगा।

48. भोजन ठीक से पचने पर रस (भोजन का सार) की वृद्धि होती है। रस की प्रतिदिन वृद्धि के साथ धातुओं (आध्यात्मिक पदार्थों) की वृद्धि होती है।

49. धातुओं की वृद्धि के साथ शरीर में बुद्धि की वृद्धि होती है। इस प्रकार करोड़ों जन्मों में एकत्रित सभी पाप भस्म हो जाते हैं।

50. गुदा और जननांग के मध्य में त्रिभुजाकार मूलाधार है। यह बिंदु रूपी शिव के स्थान को प्रकाशित करता है।

51. वहाँ कुंडलिनी नामक पराशक्ति स्थित है। उस स्थान से वायु उत्पन्न होती है। उस स्थान से अग्नि बढ़ती है।

52. उस स्थान से बिंदु की उत्पत्ति होती है और नाद बढ़ता है। उस स्थान से हंस उत्पन्न होता है। उस स्थान से मनस उत्पन्न होता है।

53. मूलाधार से प्रारंभ होने वाले छह चक्रों को शक्ति (देवी) का स्थान कहा गया है। गर्दन से लेकर सिर के ऊपर तक शम्भू (शिव) का स्थान कहा गया है।

54. नाड़ियों के लिए शरीर आधार (या वाहन) है; प्राण के लिए नाड़ियाँ आधार हैं; जीव के लिए प्राण निवास स्थान है; हंस के लिए जीव आधार है;

55. शक्ति के लिए हंस स्थान, गति और स्थिर ब्रह्माण्ड है। विचलित न होकर और शांत मन से प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

56. तीनों बन्धों के अभ्यास में निपुण व्यक्ति को भी सदैव सच्चे हृदय से उस तत्त्व को जानने का प्रयास करना चाहिए, जिसे जानना चाहिए और जो सभी वस्तुओं और उनके गुणों का कारण है।

57. निःश्वसन और प्रेरणा दोनों को (केवल) श्वास के संयम में रोककर विश्राम देना चाहिए। उसे केवल ब्रह्म पर ही निर्भर रहना चाहिए, जो सभी दृश्यमानों का सर्वोच्च लक्ष्य है।

58. समस्त बाह्य वस्तुओं को त्यागना रेचक (प्राण छोड़ना) कहलाता है। शास्त्रों का ज्ञान ग्रहण करना पूरक (प्रश्वास) कहलाता है और ज्ञान को अपने पास रखना कुम्भक (सांसों का संयम) कहलाता है।

59. जो इस प्रकार चित्त का अभ्यास करता है, वह मुक्त पुरुष है। इसमें कोई संदेह नहीं है। कुम्भक के द्वारा ही उसे (मन को) सदैव अन्दर लेना चाहिए और कुम्भक के द्वारा ही उसे अन्दर भरना चाहिए।

60. कुम्भक के द्वारा ही कुम्भक को दृढ़तापूर्वक वश में करना चाहिए। उसके अन्दर परम शिव हैं।जो वायु स्थिर है, उसे कंठ-मुद्रा द्वारा पुनः हिलाना चाहिए।

61-62. वायु के मार्ग को रोककर, निःश्वसन और श्वास-निरोध के अभ्यास में पारंगत होकर तथा दोनों हाथों और दोनों पैरों को भूमि पर समान रूप से स्थापित करके, तीनों योगों द्वारा वायु के द्वारा चारों आसनों को भेदना चाहिए। वायु के मुख पर प्रकोटि (बल) की सहायता से महामेरु को हिलाना चाहिए।

63. दोनों पुटों (गुहाओं) के खिंच जाने पर वायु तेजी से धड़कती है। अमृत के कारण चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि का मिलन जानना चाहिए।

64. मेरु की गति से मेरु के मध्य में स्थित देवता गति करते हैं। पहले उसकी ब्रह्म-ग्रन्थि में शीघ्र ही एक छिद्र (या मार्ग) उत्पन्न हो जाता है। 65. फिर ब्रह्मग्रंथि को छेदकर वह विष्णुग्रंथि को छेदता है, फिर रुद्रग्रंथि को छेदता है।

66-67(क)। फिर योगी को मोह के मल से मुक्ति के द्वारा, विभिन्न जन्मों में किए गए धार्मिक अनुष्ठानों के द्वारा, गुरुओं और देवताओं की कृपा के द्वारा तथा योगाभ्यास के द्वारा वेध (छेदन) प्राप्त होता है।

67(ख)-68. इड़ा और पिंगला के बीच स्थित सुषुम्ना के मंडल (क्षेत्र या क्षेत्र) में वायु को मुद्रा-बंध नामक रेखा के द्वारा ऊपर उठाना चाहिए। प्रणव का संक्षिप्त उच्चारण पापों से मुक्ति दिलाता है, इसका दीर्घ उच्चारण मोक्ष प्रदान करता है।

69-70. इसी प्रकार आप्यायण या प्लूट स्वर में भी इसका उच्चारण किया जाता है। वह वेद का ज्ञाता है, जो उपर्युक्त तीन उच्चारण विधियों से उस

प्रणव के अन्त को जानता है, जो वाणी की शक्ति से परे है, जैसे तेल का कभी न रुकने वाला प्रवाह या घण्टाध्वनि। लघु स्वर बिन्दु को जाता है। दीर्घ स्वर ब्रह्मरन्ध्र को जाता है; प्लूट स्वर द्वादशान्त को जाता है। मन्त्र सिद्धि प्राप्त करने के लिए मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिए।

71-72(अ)। यह प्रणव (ॐ) सभी बाधाओं को दूर करने वाला है। यह सभी पापों को दूर करने वाला है। इसकी चार भूमिकाएँ (अवस्थाएँ) बताई गई हैं, अर्थात् आरम्भ, घट, परिचय और निष्पत्ति।

72(ब)-73(अ)। आरम्भ वह अवस्था है, जिसमें मनुष्य तीनों इन्द्रियों (मन, वाणी और शरीर) द्वारा किए जाने वाले बाह्य कर्मों को त्यागकर सदैव मानसिक कर्म में ही लगा रहता है।

73(ख)-74(क)। बुद्धिमानों ने कहा है कि घट अवस्था वह है जिसमें वायु पश्चिम दिशा में छेद करके और पूर्ण होकर, वहाँ दृढ़ता से स्थित हो जाती है।

74(ख)। परिचय अवस्था वह है जिसमें वायु आकाश में दृढ़ता से स्थित हो जाती है, न तो जीव से संबंधित होती है और न ही नहीं, जबकि शरीर अचल है।

75. कहा जाता है कि निष्पत्ति अवस्था वह है जिसमें आत्मा के द्वारा सृष्टि और प्रलय होता है या वह अवस्था जिसमें योगी जीवन्मुक्त होकर बिना प्रयास के योग करता है। जो कोई इस उपनिषद का पाठ करता है, वह अग्नि की तरह निष्कलंक हो जाता है। वायु की तरह वह पवित्र हो जाता है। वह शराब पीने के पाप से मुक्त हो जाता है। वह सोने की चोरी के पापों से मुक्त हो जाता है। वह जीवन्मुक्त हो जाता है। ऐसा ऋग्वेद में कहा गया है।

जैसे आकाश में व्याप्त नेत्र (बिना प्रयास के ऊपर सब कुछ देखना) के समान बुद्धिमान व्यक्ति (सदैव) भगवान विष्णु के परमपद को देखता है। जिन ब्राह्मणों के आध्यात्मिक नेत्र सदैव खुले रहते हैं, वे भगवान विष्णु के आध्यात्मिक पद की स्तुति करते हैं तथा उसे विविध प्रकार से प्रकाशित करते हैं। ॐ, ऐसा उपनिषद है। इस प्रकार वराह उपनिषद का पाँचवाँ अध्याय समाप्त होता है। ॐ! वे हम दोनों की एक साथ रक्षा करें;

वे हम दोनों का एक साथ पोषण करें; हम महान ऊर्जा के साथ मिलकर काम करें, हमारा अध्ययन सशक्त और प्रभावी हो; हम परस्पर विवाद न

करें (या किसी से द्वेष न करें)। ॐ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित वराह उपनिषद यहीं समाप्त होता है।

099 - सत्ययानीय उपनिषद्

ॐ ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है।
अनंत से अनंत की उत्पत्ति होती है।
(तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर,
वह अनंत (ब्रह्म) ही रह जाता है।
ॐ ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. मन ही लोगों के बंधन और मोक्ष का कारण है; (मन) इंद्रियों के विषयों में आसक्त होकर उन्हें बंधन में ले जाता है; विषयों से मुक्त होकर उन्हें मोक्ष में ले जाता है। (इस प्रकार) यह घोषित किया गया है।

2. यदि किसी व्यक्ति के मन की इंद्रियों के विषयों में आसक्ति ब्रह्म की ओर निर्देशित हो, तो कौन बंधन से मुक्त नहीं होगा?

3. मन (चित्त) ही सांसारिक जीवन है; इसलिए इसे प्रयास करके शुद्ध करना चाहिए। जैसा मन होता है, वैसा ही मनुष्य बन जाता है। यही शाश्वत रहस्य है।

4. जो वेद को नहीं जानता, वह उस सर्वव्यापी एक (ब्रह्म) को नहीं जानता; जो ब्रह्म को नहीं जानता, वह उस परम धाम को नहीं प्राप्त करता। जो यह जान लेता है कि सर्वव्यापी भगवान (विष्णु), सर्वज्ञ, सबके आश्रय (वासुदेव) (वही हैं), वह तत्वदर्शी मुनि, जीते जी ज्ञान की स्थिति (विप्रत्वम्) को प्राप्त कर लेता है।

5. तब (चार विद्याओं का पालन करते हुए) वे वेद में पारंगत और कामनाओं से अछूते ब्राह्मण, जो शाश्वत परब्रह्म का चिन्तन करते हैं, (ब्रह्म को प्राप्त करते हैं)। (मुक्ति चाहने वाला व्यक्ति) जो शांतचित्त, आत्म-संयमी, सभी इंद्रिय सुखों का त्याग करने वाला, धैर्यवान, शास्त्रों का अच्छा जानकार, समदर्शी कहलाता है, जिसने मूल इच्छाओं (धन, स्त्री और संतान) को त्याग दिया है और जो ऋणों (पितृ ऋण आदि) से मुक्त है, वह आत्मा को प्राप्त कर लेता है, वह जीवन की किसी न किसी अवस्था में मौन रहकर कुटीचक (या परमहंस) के रूप में जीवन व्यतीत करेगा।

6. फिर जीवन की अंतिम अवस्था (अर्थात संन्यास) में प्रवेश करके वह पाँच (छोटी) वस्तुओं (मात्राओं) को धारण कर सकता है, जैसा कि उचित है।

7. जब तक वह जीवित रहे, उसे (पाँच वस्तुएँ) धारण करनी चाहिए अर्थात् तीन गुना दंड (बाँस का), पवित्र धागा, लंगोटी वाला वस्त्र, गोफन और पवित्र घास की पवित्र अंगूठी।

8. ये अग्नि एक तपस्वी (कुटीचक संप्रदाय के) से संबंधित वस्तुएँ हैं; (सभी तपस्वियों के लिए आंतरिक वस्तुएँ पाँच हैं अर्थात् 'अ', 'उ', 'म', बिन्दु और नाद जो ॐ का निर्माण करते हैं।) यह मात्रा (पाँच घटक) प्रणव (ब्रह्म) में सुनी जाती है। अंतिम निकास (प्राण श्वास के) तक तपस्वी (दो गुना पाँच मात्राओं) को नहीं छोड़ेगा; यहाँ तक कि मृत्यु के समय (पाँच बाह्य मात्राएँ) उसके साथ दफन हो जाएँगी।

9. विष्णु का चिन्ह (अर्थात् मोक्ष की ओर ले जाने वाला साधन) दो गुना कहा गया है, बाह्य और आंतरिक। यदि उनमें से एक को त्याग दिया जाए (तपस्वी) तो निस्संदेह पतित हो जाता है।

10. त्रिगुणात्मक दण्ड भगवान विष्णु का प्रतीक है; यह विद्वान ब्राह्मणों द्वारा तपस्वी के रूप में मोक्ष प्राप्त करने का साधन है। यह समस्त सांसारिक लक्षणों का लोप है - इस प्रकार वैदिक शिक्षा चलती है।

11-12. तो हे ब्राह्मण! निश्चय ही तपस्वी चार प्रकार के हैं - कुटीचक, बहुदक, हंस और परमहंस। ये सभी भगवान विष्णु के लक्षण धारण करते हैं (अर्थात वे मोक्ष के लिए प्रयास करते हैं), शिखा और जनेऊ धारण करते हैं, मन से शुद्ध होते हैं, अपने आप को ब्रह्म मानते हैं, शुद्ध चेतना के रूप में (भगवान की) पूजा करने के लिए तत्पर रहते हैं, प्रार्थना और मुख्य और

गौण अनुशासन (यम और नियम) का अभ्यास करते हैं, अच्छे आचरण वाले होते हैं और (इस प्रकार) श्रेष्ठ बन जाते हैं।

यह एक वैदिक श्लोक में घोषित किया गया है: कुटीचक, बहुदक, हंस और परमहंस तपस्वी अपने जीवन के तरीके में भिन्न हैं; इन सभी में विष्णु के बाह्य और आंतरिक लक्षण हैं, जो हमेशा दृश्यमान और अदृश्य (क्रमशः) हैं। पाँच भक्ति कर्म (यज्ञ) का अभ्यास करते हुए, वेदान्त में प्रवेश करते हुए, अनुष्ठानों का पालन करते हुए (जीवन में स्थिति के अनुसार), आध्यात्मिक विद्या का सहारा लेते हुए, (सांसारिक जीवन के) वृक्ष को त्याग कर उसके मूल-कारण (अर्थात ब्रह्म) का सहारा लेते हुए, (अनुष्ठानों के) उसके फूलों को त्याग कर उसके (सच्चे) सार का आनंद लेते हुए, विष्णु में क्रीड़ा करते हुए (अर्थात आध्यात्मिक जीवन जीते हुए), विष्णु में आनंदित होते हुए, (बाह्य पूजा से मुक्त होकर), विष्णु के साथ अपनी पहचान बनाते हुए, वे सर्वव्यापी विष्णु को प्राप्त करते हैं।

13. दिन के तीन समयों (संध्या) में यथाशक्ति स्नान, पितरों को जल का अर्घ्य देना, स्नान करना (अर्थात जल से पवित्र होना), देवताओं की सेवा करना - ये पाँच भक्ति कर्म (कुटीचक) मृत्युपर्यन्त करने चाहिए।

14. दस प्रणवों तथा सात व्याहृतियों से युक्त चतुर्भुजी गायत्री अपने 'सिर' सहित तीन संध्याओं में जपने योग्य प्रार्थना है।

15. योगाभ्यास में भगवान विष्णु की निरंतर एकचित्त समर्पित सेवा शामिल है; वचन, विचार तथा कर्म से किसी को चोट न पहुँचाना तप (तपोयज्ञ) है।

16. शास्त्राध्ययन (स्वाध्याय-यज्ञ) का भक्ति कर्म विभिन्न उपनिषदों का पाठ करना बताया गया है। ॐ का ध्यानपूर्वक जप करने से (व्यक्ति की) आत्मा (अद्वैत) ब्रह्म की अग्नि में समर्पित हो जाती है।

17. आध्यात्मिक ज्ञान (ज्ञान-यज्ञ) प्राप्त करने का भक्तिमय कार्य सभी यज्ञों में सर्वश्रेष्ठ है। (परमहंस) अपने दण्ड के लिए ज्ञान, शिखा के लिए ज्ञान और जनेऊ के लिए ज्ञान रखते हैं।

18. जिसके शिखा में ज्ञान है और जनेऊ भी उसी का है, उसमें ब्राह्मण के सभी लक्षण होते हैं - ऐसा वेद का आदेश है।

19. तब हे ब्राह्मण! ये भिक्षुक वैसे ही हैं जैसे दिखाई देते हैं (अर्थात् वे जन्म के समय जैसे वस्त्रहीन थे)। उन्हें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मिथ्या अभिमान, मद, ईर्ष्या, 'अपनापन' और अहंकार से परे होकर वृक्ष की तरह रहने की इच्छा करनी चाहिए; मान-अपमान, निन्दा और प्रशंसा को त्यागकर, काटे जाने पर भी वे शिकायत नहीं करते। इस प्रकार ये बुद्धिमान पुरुष यहीं (इस लोक में) अमर हो जाते हैं।

वैदिक श्लोक में कहा गया है कि अपने स्वजनों और पुत्र को सदिच्छा से विदा करके, उन्हें फिर न देखकर, शीत-ताप आदि विपरीत परिस्थितियों को सहन करके, शान्तचित्त होकर पूर्व या उत्तर की ओर मुड़कर पैदल चले। जलपात्र और लाठी से सुसज्जित, सामने केवल चार हाथ भूमि देखकर, जनेऊ और जटा धारण किए हुए अथवा मुण्डाए हुए, शरीर से ही परिवार रखने वाले, लोगों से बिना मांगे या केवल जीविका के लिए भिक्षा लेने वाले, मिट्टी का पात्र रखने वाले,लकड़ी, लौकी या पत्तों को मूल रूप से दिए अनुसार बाँधकर, भांग, रेशम, घास, चिथड़े, मृग-चर्म या पत्तों के बने हुए या बिना चिथड़े के वस्त्र पहनकर, ऋतुओं के संधिकाल में अकेले सिर मुँड़ाकर, नीचे के बाल नहीं हटाते हुए, काँख के नीचे के बाल नहीं हटाते हुए, शिखा नहीं हटाते हुए, वह चार महीने (वर्षा ऋतु के) एक निश्चित स्थान पर निवास करेगा, जिस दौरान अन्तरात्मा, सर्वव्यापी पुरुष (विष्णु) (दूधिया सागर में) सोए रहते हैं।

23. जब (भगवान, विष्णु) नींद से उठ जाते हैं, तो तपस्वी शेष आठ महीने अपने कार्य (जैसे अध्ययन, ध्यान या समाधि) करने के लिए एक स्थान पर निवास कर सकता है, या वह (भिक्षु बनकर) घूम सकता है। (यात्रा के दौरान) वह किसी मंदिर में, किसी कुटिया में, जहाँ अग्नि रखी जाती है, किसी वृक्ष की छाया में, या किसी गुफा में, आसक्ति रहित होकर तथा लोगों की नजरों से बचकर (थोड़े समय के लिए) ठहर सकता है।

वह ईंधन समाप्त हो जाने पर अग्नि के समान शान्त रहेगा और कहीं भी किसी को कष्ट नहीं देगा या कष्ट नहीं देगा। (किसी को अपने बराबर या अपने से हीन देखकर वह न तो पीछे हटेगा और न ही किसी को अपने से भिन्न मानेगा)।

24. यदि किसी व्यक्ति ने यह जान लिया है कि वह विश्वात्मा से भिन्न नहीं है, तो वह क्या कामना कर सकता है और किस कामना की पूर्ति के लिए उसे अपने शरीर को (विभिन्न प्रकार की तपस्याओं द्वारा) कष्ट देने की आवश्यकता है?

25. इस (सत्य) को जानने वाला तथा इस प्रकार ब्रह्म को जानने वाला बुद्धिमान व्यक्ति इस चेतना को प्राप्त करेगा। वह बहुत से शब्दों से अपने को परेशान नहीं करेगा, क्योंकि वे कष्ट देने वाली भाषा ही हैं।

26. ब्रह्मज्ञान को जानकर वैराग्य से रहने की इच्छा करनी चाहिए; ब्रह्मज्ञान और वैराग्य से युक्त होकर मुनि ने आत्मा को प्राप्त कर लिया है।

27. जब हृदय में लगी हुई सब कामनाएँ छूट जाती हैं, तब मनुष्य अमर हो जाता है और यहीं ब्रह्म का आनन्द भोगता है।

28. तब हे ब्रह्म! जो इस परम आध्यात्मिक जीवनरूपी तप को त्याग देता है, वह बालहत्यारा, ब्राह्मण का हत्यारा, भ्रूण का हत्यारा और महापापी हो जाता है। जो इस विष्णुमय स्थिर जीवन को त्याग देता है, वह चोर, गुरु की पत्नी को बहकानेवाला, मित्र से विश्वासघात करनेवाला, कृतघ्न हो जाता है; वह सभी (शुभ) लोकों से वंचित हो जाता है। वैदिक श्लोक में कहा गया है - चोर, मद्य पीने वाला, गुरु की पत्नी को बहकाने वाला तथा मित्र से विश्वासघात करने वाला प्रायश्चित करने से शुद्ध हो जाता है; परन्तु जो अपने धारण किये हुए बाह्य अथवा आन्तरिक विष्णु चिन्ह को त्याग देता है, वह अनेक प्रकार के प्रयत्नों के बाद भी कभी शुद्ध नहीं होता।

29. जो बाह्य अथवा आन्तरिक विष्णु-पूजा के चिन्ह को त्यागकर अपनी जीवन-अवस्था को ही ग्रहण कर लेता है अथवा किसी भी अवस्था को नहीं ग्रहण करता अथवा त्याग से पूर्व की अपनी जीवन-पद्धति को ही ग्रहण कर लेता है - उस महामूर्ख को (तथा उसके समान लोगों को) करोड़ों कल्पों में भी मुक्ति नहीं मिलती।

30. बुद्धिमान पुरुष को जीवन की अन्य सब अवस्थाओं को त्यागकर मोक्ष की अवस्था में दीर्घकाल तक रहना चाहिए। जो परम आनन्द की अवस्था से च्युत हो गया है, उसके लिए मोक्ष सम्भव नहीं है।

31. तप को धारण करने के पश्चात् यदि कोई उसके नियमों का पालन नहीं करता, तो उसे 'अरुधाच्युत' कहा जाता है - ऐसा वैदिक आदेश है।

32. हे ब्राह्मण! जब कोई बुद्धिमान व्यक्ति इस युगों पुराने भगवान विष्णु के आध्यात्मिक जीवन को धारण कर लेता है और उसका उल्लंघन

नहीं करता, तो वह संयमी, शुभ स्मरण के योग्य, जगत् का (सच्चा) ज्ञाता, वेदान्त का ज्ञाता, ब्रह्म का ज्ञाता, सर्वज्ञ, स्वयं प्रकाशवान हो जाता है; वह परम ब्रह्म भगवान हो जाता है, वह अपने पूर्वजों, विवाह सम्बन्धियों, अन्य स्वजनों, सहयोगियों और मित्रों को सांसारिक जीवन के दुःखों से मुक्त कर देता है।

33. जब कोई बुद्धिमान व्यक्ति संसार का त्याग कर देता है, तो उसके परिवार के लोग, उससे सौ पीढ़ी पहले और तीन सौ पीढ़ी बाद के लोग इस संसार में धन्य हो जाते हैं।

34. शास्त्र कहते हैं कि एक बहुत ही पवित्र भिक्षु अपने परिवार की तीस पीढ़ियों को, अपने से पहले की तीस पीढ़ियों को और उनके बाद की तीस पीढ़ियों को (पहले तीस पीढ़ियों को) मोक्ष प्रदान करता है।

35. वैदिक शिक्षा यह है कि (एक बुद्धिमान व्यक्ति) के पूर्वजों को मोक्ष प्राप्त होता है यदि वह कहे कि उसने त्याग किया है, भले ही उसकी अंतिम सांस उसके गले में हो (यानी मृत्यु से ठीक पहले)।
36. इसलिए, हे ब्राह्मण, बुद्धिमान पुरुषों ने कहा है कि आत्मा की यह सदियों पुरानी विद्या, विष्णु से संबंधित अनुशासन, तब तक व्याख्या नहीं की जानी चाहिए जब तक कि व्यक्ति स्वयं (लक्ष्य) को प्राप्त न कर ले और (वह) उस व्यक्ति के लिए नहीं जिसने (लक्ष्य) को प्राप्त कर लिया है।

जिसने वेद का अध्ययन नहीं किया है, आत्मा का विश्वास नहीं किया है, आसक्ति से मुक्त नहीं हुआ है, शुद्ध नहीं हुआ है, (स्वयं से प्राप्त करने के लिए) समीप नहीं गया है, तथा जिसने (उन्हें जानने के लिए) गंभीर प्रयास नहीं किए हैं। यह एक वैदिक श्लोक में भी कहा गया है:

एक बार (ब्रह्म-)विद्या ब्रह्मा के पास गई और बोली: 'मेरी रक्षा करो, मैं आपकी निधि हूँ। मुझे किसी ईर्ष्यालु, कुटिल या चालाक व्यक्ति के सामने प्रकट मत करो। इस प्रकार मैं प्रबल शक्तिवान हो जाऊँगी।'

37. विष्णु से संबंधित यह आत्मा की विद्या (अर्थात् ब्रह्म को प्राप्त करने की यह विद्या) एक व्यक्ति को सावधानीपूर्वक जांचने के बाद बताई जानी चाहिए कि क्या वह शुद्ध आचरण वाला, सचेत, बुद्धिमान, ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला है और (शिक्षा प्राप्त करने के लिए) गुरु के पास गया है।

38. जो तपस्वी गुरु से शिक्षा प्राप्त करके मन, वचन और कर्म से गुरु का आदर नहीं करते, उनके साथ गुरु भोजन नहीं करते; वैसे ही अच्छे तपस्वी भी उन घरों का अन्न नहीं खाते, जहाँ दुष्ट लोग दान लेते हैं। ऐसा शास्त्र का आदेश है।

39. गुरु ही परम धर्म है; गुरु ही एकमात्र साधन है। जो गुरु को, जो एक अक्षर (ॐ जो ब्रह्म है) देकर दीक्षा देता है, सम्मान नहीं करता, उसका सारा शास्त्र-ज्ञान, तप और ज्ञान कच्चे बर्तन से जल की तरह बह जाता है।
40. जो भगवान पर परम श्रद्धा रखता है और गुरु पर भी वही श्रद्धा रखता है, वह ब्रह्म को जानने वाला है, वह परम सुख को प्राप्त करता है। ऐसी वेद की शिक्षा है। इस प्रकार उपनिषद् समाप्त होता है।

ॐ ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है। अनंत अनंत से ही निकलता है। (तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर, वह केवल अनंत (ब्रह्म) ही रह जाता है। ॐ ! मुझमें शांति हो ! मेरे वातावरण में शांति हो ! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो !

यहाँ शुक्ल-यजुर्वेद से संबंधित सत्ययानियोपनिषद् समाप्त होता है।

<u>100 - हयग्रीव उपनिषद</u>

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रसिद्ध इंद्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

पहला अध्याय

हरि ओम। नारद भगवान ब्रह्मा के पास गए और उनसे अनुरोध किया, "हे भगवान, कृपया मुझे ब्रह्म का वह ज्ञान सिखाएँ जिससे सभी पाप शीघ्र नष्ट हो जाएँ और ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त हो और सभी ऐश्वर्यों की प्राप्ति हो।" भगवान ब्रह्मा ने इस प्रकार कहा:

जो व्यक्ति भगवान हयग्रीव के मंत्रों का स्वामी है, उसे श्रुति (सुना हुआ ज्ञान), स्मृति (कंठस्थ ज्ञान), इतिहास (इतिहास) और पुराण (महाकाव्य) का ज्ञान हो जाता है और उसे सभी प्रकार की सम्पत्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। वे मंत्र इस प्रकार हैं:

1.1 हे भगवान हयग्रीव, जो पवित्र मन के स्वरूप हैं, जो सबका उद्धार करते हैं और जो ज्ञान के राजा हैं, आपको नमस्कार है, स्वाहा, स्वाहा।

1.2 हे भगवान हयग्रीव, जो ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के स्वरूप हैं, जिन्होंने इन वेदों को पृथ्वी पर लाया, जो प्रणव के गायन के समान आकार वाले हैं और जिनके सिर घोड़े के समान हैं, आपको नमस्कार है,स्वाहा, स्वाहा।

1.3 हे भगवान हयग्रीव, जो प्रणव के गीत द्वारा गाए जा रहे हैं, जो उन सभी शब्दों के देवताओं के देवता हैं, जो सभी वेदों के साक्षातकर्ता हैं, और जो विचार से परे हैं, हमें सब कुछ सिखाएँ।आपको नमस्कार है, स्वाहा, स्वाहा।

1.4 हयग्रीव के 29 अक्षरों वाले मंत्र के लिए ब्रह्मा, अत्रि, सूर्य और भार्गव ऋषि हैं, गायत्री, तृष्टुप और अनुष्टुप छंद हैं, भगवान स्वयं हयग्रीव हैं, मूल ध्वनि "लौं" है, शक्ति होहम है, कीलग (कील) लूं (शूं) है, विनियोग भोग है, मोक्ष और हाथों से प्रतीकात्मक संस्कार अक्षर आ, ऊ और म हैं। प्रार्थना है: मैं उस हयग्रीव का ध्यान करता हूँ,जिनके पास पूर्णिमा की चमक है,जो अपने हाथों में शंख, चक्र, महामुद्रा और पुस्तक धारण करते हैं।

29 अक्षरों वाला हयग्रीव मंत्र है:ओम श्रीम, लोम (हसौम), ओम नमो भगवते, हयग्रीवया, विष्णवे, मह्यम, मेधम,प्रज्ञं, प्रयश्च स्वाहा! 1.5 28 अक्षरों वाला हयग्रीव मंत्र है:ओम, श्रीम, इँ, इँ, इँ, क्लीं, क्लीं, सो, सो, ह्रीं, ओम नमो भगवते, मह्यम,मेधम प्रज्ञं, प्रयश्च स्वाहा!

1.6 दूसरा अध्याय

अब मैं तुम्हें ब्रह्म का वह ‘हयग्रीव ज्ञान’ बताऊँगा जो एक अक्षर का है। वह मूल अक्षर लोम (हसौम) है। सभी मूलों में यह हयग्रीव एकाक्षर मूल मंत्रों का राजा है।

2.1 “लौं (हसौं) अमृतं कुरु स्वाहा!” मंत्र का जाप करने से शब्द, धन और आठ गुप्त शक्तियों पर महारत हासिल होती है।

2.2 “लौं (हसौं) सकल साम्राज्य सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा” मंत्र हमें “प्रज्ञानं आनंदं ब्रह्म (ब्रह्म ही वास्तविक सुख है)”, “तत् त्वं असि (तुम ही हो)”, “अयं आत्मा ब्रह्म (मेरी आत्मा ही ब्रह्म है)” और “अहम ब्रह्मास्मि (मैं ब्रह्म हूँ)” जैसे महान वैदिक कथनों का रहस्य बताता है। एक ही अक्षर “लौं” और “हसौं” अलग-अलग होते हुए भी एक ही स्वर हैं और क्रमशः सांसारिक सुख और मोक्ष देते हैं।

2.3 हयग्रीव मंत्र के जाप के बाद, 1. यद् वाक् वदंति... 2. गौरीमाया... 3 ओष्टपीढना और 4. सा सर्परीरामथिम्...

2.4-2.7 जो व्यक्ति एकादशी के दिन ब्रह्म के इस 'हयग्रीव ज्ञान' का पाठ करता है, वह हयग्रीव के आशीर्वाद से महान व्यक्ति बन जाता है। उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। उपनिषद में कहा गया है, "ब्रह्म का ज्ञान जो 'ओम नमो ब्रह्मणे' के साथ मंत्र के अंत में पढ़ाया जाता है, वह उसके हृदय से कभी नहीं जाता"।ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से वही सुनें जो शुभ है हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ को देखें!

देवताओं द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!प्रसिद्ध इंद्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ अथर्ववेद में निहित हयग्रीवोपनिषद समाप्त होता है।

101 - दत्तात्रेय उपनिषद

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रसिद्ध इंद्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

एक बार सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने भगवान नारायण से तारक-मंत्र की प्रभावकारिता के बारे में पूछा, जिस पर उत्तर में उत्तर दिया गया:"हमेशा मेरा और मेरी महिमा का चिंतन करो, और 'मैं दत्त हूँ, महान भगवान' की भावना से मेरे साथ संवाद करो।' जो लोग इस प्रकार ध्यान करते हैं, वे सांसारिक जीवन के आवर्ती क्रम में नहीं भटकते।" तदनुसार, भगवान विष्णु (दत्तात्रेय) का ध्यान करने के बाद, ब्रह्मा ने कहा: "हाँ। ब्रह्म जो अनंत और अद्‌वितीय है, वही बाकी सब कुछ के निषेध के बाद अवशेष के रूप में रहता है।" दत्तात्रेय के एक-, छह-, आठ-, बारह- और सोलह-अक्षर के मंत्र: तारक एकाक्षर 'दाम' है।

वह सभी प्राणियों में स्थापित हंस है। दीर्घ रूप में 'दाम' परमात्मा है। छह अक्षर वाला 'ओम, श्रीं, ह्रीं, क्लीं, ग्लौं, द्रां' है। आठ अक्षरों वाला सूत्र है 'द्रम्' या 'द्राम्' और फिर इसमें अक्षर जोड़ते हैं 'दा, तत्, त्रे, य, य, न, मह।' 'दत्तात्रेय' भाग ज्ञान, अस्तित्व और आनंद का प्रतीक है, और नमः भाग पूर्ण आनंद का प्रतीक है। बारह अक्षरों वाला सूत्र है 'ॐ, आम, ह्रीं, क्रोम, एहि दत्तात्रेय स्वाहा।' सोलह अक्षरों वाला सूत्र है 'दत्तात्रेय' भाग ज्ञान, अस्तित्व और आनंद का प्रतीक है, और नमः भाग पूर्ण आनंद का प्रतीक है।

सूत्र है ओम, ऐं, क्रॉम, क्लीम, क्लौम, ह्रम, ह्रीम, ह्रौम, सौह (नौ) और पांच अक्षर हैं जो दत्तात्रेयाय बनाते हैं, और जुड़वां अक्षर स्वाहा है। पूरा सूत्र है 'ओम, ऐं, क्रॉम, क्लीम, क्लौम, ह्रम, ह्रीं ह्रौं, सौः दत्तात्रेयाय स्वाहा।'
दत्तात्रेय का अनुष्टुभ-मंत्र मंत्र के सभी भागों को 'दत्तात्रेय हरे कृष्ण उन्मतानंद-दायक, दिगंबर, मुने, बाला, पिशाच, ज्ञान सागर' के माध्यम से वाचिक रूपों में कहा जाता है। दत्तात्रेय का मूलमंत्र. फिर इसे इस प्रकार दिया जाता है: 'ओम नमो भगवते दत्तात्रेयाय, स्मरण-मात्र-समुष्टाय!

ओम भगवान दत्तात्रेय को नमस्कार है जो स्मरण (भक्ति) से प्रसन्न होते हैं,

महा-भय-निर्वाणाय, महा-ज्ञान-प्रदाय, चिदानंदात्मने - वे महान भय को दूर करने वाले हैं,जो चेतना और आनंद का सर्वोच्च चरित्र प्रदान करते हैं। बालोंमत्ता-पिशाच- वेषया - जो बालक, पागल, शैतान का वेश धारण किए हुए है।इस प्रकार:महायोगिनी अवधूताय, अनसूयान्नद-वर्धनयात्री-पुत्रया - एक महान योगी, अनसूया (उनकी माता) के आनंद को बढ़ाने वाला है, ऋषि अत्रि के पुत्र।

सर्व-काम-फल-प्रदाय, भव-बंध-मोचनाय - जो भक्त के हृदय की सभी इच्छाओं का फल प्रदान करते हैं, सांसारिक अस्तित्व के बंधनों से मुक्ति दिलाते हैं। सकल-विभूति-दया साध्यकर्षणाय सर्व-मनः-क्षोभनाय, चिरं-जीवने वाशि-कुरु, वाशि-कुरु, आकर्षय-अकर्षाय, विद्वेषाय, विद्वेषाय, उच्चताय-उच्चताय, स्तम्भय स्तम्भय, मारय-माराय नमः, सम्पन्नाय, नमः सम्पन्नाय, स्वाहा पोषाय , पोषाय, परा-मंत्र, परा-यंत्र, परा-तंत्रांश चिंधि, चिंधि!
ग्रहण निवारया; निवारया; व्याधिं निवारय, निवारय; दुखम हरया, हरया; दरिद्रियं विद्रवया, देहं पोषाय, पोषाय; चित्तम तोषाया, तोषाहाय!

आप ग्रहों के बुरे प्रभावों का प्रतिकार करें, बीमारियों को ठीक करें, पीड़ा को दूर भगाएँ, सभी दरिद्रता को दूर करें, मन को आनंद से भर दें। सर्व मंत्र सर्व यंत्र सर्व तंत्र सर्व पल्लव स्वरूपाय इति ओम नमः शिवाय ओम! वास्तविक स्वरूप वाले आप के लिए मंत्रों, सभी रहस्यमय प्रतीकों और शक्तियों आदि का। ओम नमस्कार!
ओम भगवान दत्तात्रेय को नमस्कार है जो स्मरण (भक्ति) से प्रसन्न होते हैं, जो महान भय को दूर करने वाले हैं, जो चेतना और आनंद के उच्चतम चरित्र को प्रदान करते हैं और जो बालक का वेश धारण करने वाला, पागल, शैतान, महान योगी, अनसूया (अपनी माता) के आनंद को बढ़ाने वाला, ऋषि अत्रि का पुत्र, जो भक्त के हृदय की सभी इच्छाओं का फल प्रदान करता है सांसारिक अस्तित्व के बंधनों से मुक्ति दिलाने वाले। हे प्रभु! मेरे शरीर को पोषण दो, ग्रहों के बुरे प्रभावों का प्रतिकार करो, रोगों को ठीक करो, पीड़ा को दूर करो, सारी दरिद्रता को दूर करो, मन को आनंद से भर दो...मंत्रों का वास्तविक रूप, सभी रहस्यमय प्रतीक और शक्तियाँ, आदि। ॐ नमस्कार!

जो इस विद्या के बारे में सब कुछ जानता है और इसका अभ्यास करता है, वह पवित्र हो जाता है, और वह गायत्री, महा रुद्र और प्रणव का असंख्य बार जाप करने का फल प्राप्त करता है, और वह अपने सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ बातें सुनें;
हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ बातें देखें!
हम देवताओं द्वारा आवंटित जीवन की अवधि का आनंद लें,
अपने शरीर और अंगों को स्थिर करके उनकी स्तुति करें!
महान इंद्र हमें आशीर्वाद दें!
सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!
बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!
बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ अथर्ववेद में निहित दत्तात्रेयोपनिषद समाप्त होता है

102 - गरुड़ उपनिषद

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रसिद्ध इंद्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

ॐ ! वह (संसार) पूर्ण है। यह (संसार) भी पूर्ण है। पूर्ण से ही (दूसरा) पूर्ण उत्पन्न हुआ। (दूसरा) पूर्ण से पूर्ण को अलग करने पर भी पूर्ण अपरिवर्तित और अविचलित रहता है।

ॐ शांति! शांति! शांति!
मैं ब्रह्म-विज्ञान का उपदेश दूंगा। ब्राह्मण ने इसे नारद को सिखाया, नारद ने बृहत्सेना को, बृहत्सेना ने इंद्र को, इंद्र ने भारद्वाज को, भारद्वाज ने अपने शिष्यों को जो अपना जीवन बचाना चाहते थे।

(उन्होंने उन्हें वह विज्ञान सिखाया) जो इसे प्राप्त करता है, जो अच्छाई प्राप्त करता है, विष को दूर करता है, विष को नष्ट करता है, विष पर विजय प्राप्त करता है और विष को नष्ट करता है:“विष मारा जाता है, विष नष्ट हो जाता है, विष नष्ट हो जाता है; यह अंतर के वज्र से मारा जाता है, स्वाहा! यह सांपों से, वाइपर से, बिच्छुओं से, कैंकर से, सैलामैंडर से, उभयचर जानवरों से या चूहों से उत्पन्न हो”।
“आप अनंतक के दूत बनें, या स्वयं अनंतक बनें! आप वासुकि के दूत बनें, या स्वयं वासुकि बनें! आप तक्षक के दूत बनें, या स्वयं तक्षक बनें! आप कर्कोटक के दूत बनें, या स्वयं कर्कोटक बनें! आप संखपुलिका के दूत बनें, या स्वयं संखपुलिका बनें! आप पद्मक के दूत बनें, या स्वयं पद्मक बनें! आप महा पद्मक के दूत बनें, या स्वयं महा पद्मक बनें! आप एलापत्रक के दूत बनें, या स्वयं एलापत्रक बनें! आप महालपत्रक के दूत बनें, या स्वयं महालपत्रक बनें! आप कालिका के दूत बनें दूत बनो, या स्वयं कालिका बनो!

तुम कुलिका के दूत बनो, या स्वयं कुलिका बनो! तुम कम्बलश्वतर के दूत बनो, या स्वयं कम्बलश्वतर बनो!” जो अमावस्या की रात को इस महान विद्या को सुनता है, उसे बारह वर्ष तक साँप नहीं काटते। जो अमावस्या की रात को इस महान विद्या का पाठ करके इसे (ताबीज की तरह) धारण करता है, उसे साँप जीवन भर नहीं काटते। जो इसे आठ ब्राह्मणों को

सिखाता है, वह घास, लकड़ी के टुकड़े, राख के स्पर्श मात्र से (साँप के काटने के प्रभाव से) मुक्त हो जाता है।

जो इसे सौ ब्राह्मणों को सिखाता है, वह एक दृष्टि मात्र से मुक्त हो जाता है। जो इसे एक हजार ब्राह्मणों को सिखाता है, वह मात्र विचार से मुक्त हो जाता है - वह मात्र विचार मात्र से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार महान ब्रह्म ने कहा - महान ब्रह्म। यह गरुड़ उपनिषद का सार है। ॐ! वह (संसार) पूर्ण है। यह (संसार) भी पूर्ण है। पूर्ण पूर्ण से ही (दूसरा) पूर्ण पूर्ण उत्पन्न हुआ। (दूसरा) पूर्ण पूर्ण से पूर्ण को निकाल देने पर भी पूर्ण पूर्ण अपरिवर्तित और अविचलित रहता है।

ॐ शांति! शांति! शांति!ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!हम देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!
प्रभु इन्द्र हमें आशीर्वाद दें!सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!
अशुभों के वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहां अथर्ववेद में निहित गरुड़ उपनिषद् समाप्त होता है।

<u>103 - काली संतराना उपनिषद</u>

ॐ ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;

हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,

हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;

हम एक दूसरे से विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)।

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

हरि ओम! द्वापर युग के अंत में नारद ब्रह्मा के पास गए और उनसे इस प्रकार कहा: "हे प्रभु, मैं पृथ्वी पर घूमते हुए काली को कैसे पार कर पाऊंगा?" जिस पर ब्रह्मा ने इस प्रकार उत्तर दिया: "ठीक पूछा।

उसकी बात सुनो जिसे सभी श्रुतियाँ (वेद) गुप्त और गुप्त रखती हैं, जिसके द्वारा कोई काली के संसार (सांसारिक अस्तित्व) को पार कर सकता है। वह भगवान नारायण के नाम के उच्चारण मात्र से काली (के बुरे प्रभावों) को दूर कर देता है, जो आदि पुरुष हैं"। फिर नारद ने ब्रह्मा से पूछा: "नाम क्या है?" हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) ने इस प्रकार उत्तर दिया:

1. हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

2. ये सोलह नाम (शब्द) कलि के बुरे प्रभावों का नाश करने वाले हैं। इससे बेहतर कोई साधन सभी वेदों में नहीं देखा जा सकता। ये (सोलह नाम) सोलह कलाओं (किरणों) से घिरे जीव के आवरण (या अभिकेन्द्रीय बल जो वैयक्तिकता की भावना उत्पन्न करता है) को नष्ट कर देते हैं। फिर जैसे सूर्य का क्षेत्र बादलों के छंट जाने के बाद पूरी तरह चमकता है, वैसे ही परब्रह्म (अकेला) चमकता है।" नारद ने पूछा: 'हे प्रभु, इसके संदर्भ में क्या नियम पालन करने चाहिए?" ब्रह्मा ने उत्तर दिया कि इसके लिए कोई नियम नहीं हैं। जो कोई शुद्ध या अशुद्ध अवस्था में इनका सदैव उच्चारण करता है, वह उसी लोक, समीपता, समान रूप या ब्रह्म में लीनता को प्राप्त करता है।

जो कोई सोलह नामों (या शब्दों) से युक्त इस मंत्र का साढ़े तीन करोड़ (या पैंतीस लाख) बार उच्चारण करता है, वह ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है। वह सोने की चोरी के पाप से शुद्ध हो जाता है। वह निम्न जाति की स्त्री के साथ सहवास के पाप से शुद्ध हो जाता है। वह पितरों, देवताओं और मनुष्यों के प्रति किए गए गलत कार्यों के पापों से शुद्ध हो जाता है। वह सभी धर्मों को त्याग कर,

वह तुरन्त ही सभी पापों से मुक्त हो जाता है। वह तुरन्त ही सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है। वह तुरन्त ही सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है, यही उपनिषद है। हरि ओम तत् सत् ! ओम ! वह हम दोनों की एक साथ रक्षा करें; वह हम दोनों का एक साथ पोषण करें; हम महान ऊर्जा के साथ मिलकर काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो; हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से घृणा न करें)। ओम ! मुझमें शांति हो ! मेरे वातावरण में शांति हो ! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो !

कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित कलिसंतरण उपनिषद यहीं समाप्त होता है।

104 - जाबालि उपनिषद

ॐ ! मेरे अंग-प्रत्यंग, वाणी, प्राण, नेत्र, कान, प्राणशक्ति
और सभी इन्द्रियाँ बलवान हों।
समस्त अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है।
मैं कभी ब्रह्म को अस्वीकार न करूँ, न ब्रह्म मुझे अस्वीकार करे।
कोई भी अस्वीकार न हो:
कम से कम मेरी ओर से तो कोई अस्वीकार न हो।
उपनिषदों में जिन गुणों की घोषणा की गई है, वे मुझमें हों,
जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।
ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

ऋषि पिप्पलाद ने ऋषि जाबालि के पास जाकर उनसे पूछा, “हे देवतुल्य ऋषि, कृपया मुझे परम दर्शन का रहस्य बताइए। तत्त्व (सिद्धांत) क्या है? जीव (अस्तित्व) कौन है? पशु क्या है?

ईश्वर कौन है? और मोक्ष की विधि क्या है?” इस प्रकार पूछे जाने पर ऋषि जाबालि ने उन्हें सब कुछ इस प्रकार समझायाः जीव और कुछ नहीं, बल्कि स्वयं भगवान (सभी प्राणियों के स्वामी - पशुपति) हैं, जो अहंकार की भूमिका निभा रहे हैं। वह जीव पशु है। पशुपति वह है, जो सब कुछ जानता है, जो सृष्टि आदि पाँच कार्य करता है, और जो सभी प्राणियों का स्वामी है।

पशु (सामान्य भाषा में) वे पशु हैं, जो घास खाते हैं, जिनमें विवेक (भेद करने का ज्ञान) नहीं है, जो दूसरों द्वारा चलाए जाते हैं, जो कृषि आदि कार्यों में लगाए जाते हैं और जो बहुत कष्ट सहते हैं। ऐसे पशुओं के स्वामी के समान ही भगवान पशुपति हैं, जो सभी प्राणियों पर शासन करते हैं। इस प्रश्न के उत्तर में कि, "ऐसा ज्ञान प्राप्त करने की क्या युक्ति है?" जाबालि ने उत्तर दिया, "पवित्र भस्म धारण करके"। उन्होंने आगे बताया, "पवित्र भस्म को हाथ में लेकर 'सत्योजातम्' से शुरू होने वाले पाँच ब्रह्मा मंत्रों का पाठ करके और "अग्निरीति वासमा (होय भस्म अग्नि है)" का जाप करके, इसे पानी में मिलाएँ।

मनस्थोके का जाप करें और फिर पवित्र भस्म को तीन पंक्तियों में सिर, माथे और कंधों पर तीन मंत्रों त्रयायुषम् का जाप करते हुए धारण करें। इसके बाद त्रयायुषम् से शुरू करके तीन मंत्रों का जाप करके इन्हें धारण करें और त्रयम्बकम मंत्र को सम्भव तप कहते हैं। वेद के जानकार कहते हैं कि सभी वेदों में ऐसा कहा गया है। पुनर्जन्म से बचने के लिए सनातन बुद्धि वाले लोगों को इसे अपनाना चाहिए। तीन पंक्तियों में पहली है गार्हपत्य (घरेलू अग्नि), अक्षर आ, रजस का गुण, पृथ्वी, जीवात्मा (प्राणियों की आत्मा), सृजन की शक्ति, ऋग्वेद, भोर का समय और इसके देवता हैं भगवान ब्रह्मा। दूसरी रेखा है दक्षिणाग्नि (दक्षिण की अग्नि), अक्षर उ, सत्व का गुण, वातावरण, शरीर के अंदर आत्मा, इच्छा की शक्ति, यजुर्वेद, मध्याह्न का समय, तथा इसके देवता हैं भगवान विष्णु।

तीसरी रेखा है आहवानी अग्नि (सूर्य की अग्नि), अक्षर म, तमस का गुण, देवताओं का स्थान, परमात्मा, ज्ञान की शक्ति, सामवेद, संध्या का समय, तथा इसके देवता हैं शिव। जो व्यक्ति पवित्र भस्म धारण करता है, चाहे वह ब्रह्मचारी हो या संन्यासी, वह बड़े और छोटे पापों से मुक्त हो जाता है। वह सभी देवताओं की पूजा करने के योग्य हो जाता है; वह सभी पवित्र जल में स्नान करने वाला और सभी रुद्र मंत्रों का जाप करने वाला बन जाता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

यह उपनिषद बताता है कि, यह शपथ ली जाती है कि उसका पुनर्जन्म नहीं होगा। मेरे अंग और वाणी, प्राण, आंखें, कान, प्राण और सभी इंद्रियां शक्तिशाली बनें। सारा अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है। मैं कभी ब्रह्म को अस्वीकार न करूं, न ब्रह्म मुझे अस्वीकार करे। बिलकुल भी अस्वीकार न हो: कम से कम मेरी ओर से तो कोई अस्वीकार न हो। उपनिषदों में जिन गुणों की घोषणा की गई है, वे मुझमें हों, मैं आत्मा के प्रति समर्पित हूं; वे

मुझमें निवास करें। ॐ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहां सामवेद में शामिल जाबालि उपनिषद समाप्त होता है।

105 - सौभाग्य लक्ष्मी उपनिषद

ओम ! वाणी मेरे विचार (मन) में निहित है और मेरा विचार मेरी वाणी में निहित है।

मेरे लिए प्रत्यक्ष बनो, प्रत्यक्ष बनो; तुम दोनों मेरे लिए वेद के आधार बनो।

वैदिक विद्या मुझे न छोड़े।

इस सिद्ध विद्या के साथ, मैं दिन को रात से जोड़ता हूँ।

मैं वही बोलूँगा जो सही है; मैं वही बोलूँगा जो सत्य है।

वह मेरी रक्षा करे; वह वक्ता की रक्षा करे।

वह मेरी रक्षा करे।

वह वक्ता की रक्षा करे, वक्ता की रक्षा करे !

ओम ! शांति ! शांति ! शांति !

I-1: तब देवताओं ने भगवान से कहा: हे प्रभु ! हमारे लिए समृद्धि की देवी का विज्ञान समझाइए।

I-2: भगवान, आदि नारायण ने उत्तर दिया: ऐसा ही हो। हे देवताओं, तुम सब एकाग्र मन से सुनो !

'हिरण्यवर्णम्' (सोने के समान रंग) आदि श्लोकों से प्रारम्भ होने वाले पन्द्रह श्लोकों की सहायता से चतुर्भुजी श्री (समृद्धि की देवी) का ध्यान करो, जिनका स्वरूप चतुर्थ का है, जो चतुर्थ से भी परे हैं, जो सब पर श्रेष्ठ हैं, जो सभी प्रतिष्ठित आसनों में विद्यमान हैं, तथा जो प्रमुख तथा गौण आसनों की देवियों से परिवेष्टित हैं।

1-3: अब, श्री पर आधारित पन्द्रह श्लोकों वाले स्तोत्र के द्रष्टा आनन्द, कर्दम, चिक्लिता तथा इन्द्रसुत हैं। प्रथम श्लोक के द्रष्टा श्री हैं। (अगले) चौदह श्लोकों के द्रष्टा आनन्द आदि हैं। प्रथम तीन श्लोकों, 'हिरण्यवर्णम्' आदि का छन्द अनुस्तुभ है। 'कामसोऽस्मि' छंद का छन्द बृहति है, अन्य दो का त्रिस्तुभ (छन्द है); अगले आठ का अनुस्तुभ है। शेष का छन्द प्रस्तरपंक्ति है। देवत्व अग्नि है जो श्री है। बीज है 'हिरण्यवर्णम्'। शक्ति है 'कामसोऽस्मि'। अंगों का अभिषेक शब्दों से किया जाता है हिरण्मय चन्द्र रजतसराज हिरण्यसराज हिरण्य हिरण्यवर्ण, ॐ से शुरू होकर नमः (अर्थात् नमस्कार) पर समाप्त होता है, और संज्ञाओं को मूल भाव में अस्वीकार कर दिया जाता है। इसके बाद अंगों का अभिषेक मुखों के त्रिक से किया जाता है। श्रीसूक्त के श्लोकों से क्रमशः सिर, आंख, कान, नाक, मुख, गर्दन, दोनों भुजाएं, हृदय, नाभि, गुप्तांग, जांघ, घुटने और पिंडलियों को पवित्र करें

I-4: निष्कलंक कमल पर विराजमान पराग के ढेर के समान रंग वाली अपनी कमल हथेलियों में कमल युग्म धारण किए हुए तथा भय दूर करने तथा वरदान देने का प्रतीक वचन;रत्नजड़ित मुकुट तथा विविध आभूषणों से सुसज्जित अद्भुत रूप से सुशोभित - श्री,सम्पूर्ण जगत की माता,सदैव हमारे सौभाग्य को उन्नत करें।

I-5: उनका आसन: लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, पेरिकार्प में श्री का बीजाक्षर स्थापित करें; तथा आठ पंखुड़ियों वाले, बारह पंखुड़ियों वाले तथा सोलह पंखुड़ियों वाले कमल में श्रीसूक्त (श्री पर भजन) के आधे श्लोक रखें; उसके बाहर (सोलह पंखुड़ियों वाले कमल) 'यः सुचिः' आदि श्लोक, साथ में (अ से ला तक) अक्षर रखें; (तथा बाहर, तथा चारों ओर) श्री का बीजाक्षर स्थापित करें। साथ ही, चित्र के दस अंग भी बनाएं। फिर देवी श्री का आह्वान करें।

I-6: अंगों से (जैसे 'हृदय को नमस्कार') पहला आवरण (संपन्न होता है);

पद्म आदि से दूसरा आवरण;

विश्व के स्वामियों के मंत्रों से तीसरा आवरण;

उनके शस्त्रों से चौथा आवरण।

श्री के स्तोत्र से आहवान आदि (करने चाहिए)।

स्तोत्र के सोलह हजार उच्चारण (करने चाहिए)।

I-7:समृद्धि की देवी राम के एकाक्षरी मंत्र के द्रष्टा, छंद और देवता

भृगु, निचिर्द-गायत्री और श्री हैं।बीज की शक्ति साम है।छह अंग श्रीम आदि हैं।

I-8:कमल में निवास करने वाली,कमल-नेत्र वाली,उनका निवास श्री पद्मनाभ का वक्षस्थल है;कमल के जोड़े के हाथ उसे थामे रखते हैं,और उपहारों और भय की गारंटी को भंग कर देते हैं।चमकते हुए सोने की तरह घड़ों में रखे पानी में नहाते हुए हाथी के जोड़े की सूंड से चमकते हुए सफेद और बेदाग बादलों की तरह;रत्नों के गुच्छों से सजा हुआ उसका मुकुट अत्यंत शुद्ध रेशम में लिपटा हुआ मीठे उबटन से अभिषेक किया हुआ श्री हमारा कल्याण अभी भी बढ़ाएँ।

I-9: उनका आसन: राम (समृद्धि की देवी) का आसन आठ पंखुड़ियों, तीन वृत्तों, बारह घरों वाले विभाजनों और चार भुजाओं से बना है। परिकारप में श्री का बीज अंकित है, लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए। नौ शक्तियों की पूजा 'समृद्धि', 'उन्नति', 'महिमा', 'सृजन', 'सम्मान', 'विनम्रता', 'व्यक्तित्व', 'उत्थान' और 'कल्याण' शब्दों से करें, जिनमें से प्रत्येक के आरंभ में ॐ और अंत में नमः (प्रणाम) हो।

I-10: पहला आवरण अंगों से किया जाता है; दूसरा वासुदेव आदि से; तीसरा बलाकी आदि से; चौथा इंद्र आदि से। (मंत्र का उच्चारण) बारह लाख बार करना होता है।

I-11: श्री लक्ष्मी, वरदान देने वाली, भगवान विष्णु की पत्नी, धन की दाता, स्वर्ण रूप वाली, सोने की माला और चांदी के हार से सुसज्जित है। वह सोने की चमक वाली है, सोने के किले में है और कमल में निवास करती है। वह अपने हाथ में कमल रखती है और कमल से प्रेम करती है। मोती उसे

सुशोभित करता है। वह चंद्रदेवी और सूर्यदेवी है, बिल्वपत्रों की प्रिय है और शक्तिशाली है। वह आनंद, मुक्ति, समृद्धि, वृद्धि, सच्ची वृद्धि, हल (और) विकास है। वह धन देने वाली और धन की स्वामिनी है।

वह श्रद्धा है, भोगों से भरपूर है, भोगों को देने वाली है, पालन करने वाली है, विधाता है - ये और इसी तरह के शब्द, जिनके आरंभ में ॐ और अंत में नमः है, मंत्र हैं। इस आसन के आठ अंग हैं जिन पर एकाक्षर अंकित है। मंत्रों के उच्चारण एक लाख होते हैं। प्रस्ताव दसवें हिस्से से किया जाता है। आहुति इस प्रकार है:सौवें भाग से बनता है। द्विजों की तृप्ति हजारवें भाग से होती है।

I-12: श्रीविद्या में निपुणता केवल उन लोगों के लिए है जो इच्छाओं से मुक्त हैं, उन लोगों के लिए नहीं जो इच्छाओं को पालते हैं।

II-1: तब देवताओं ने उनसे कहा: चौथी (अर्थात अंतिम) माया द्वारा बताए गए सिद्धांत की व्याख्या करें। उन्होंने कहा:

योग के द्वारा योग को जानना चाहिए;योग से योग बढ़ता है;जो योग के द्वारा सदैव सजग रहता है,वह योगी उसमें दीर्घकाल तक आनंदित रहता है।

II-2: नींद से जागकर, थोड़ा-बहुत खाकर जब खाया हुआ भोजन ठीक से पच जाए,आराम से एकांत स्थान पर बैठो,कीटों से अप्रभावित रहो,इतनी ही मेहनत है। अन्यथा श्वास को रोको और अभ्यास के मार्ग से विचलित मत हो।

II-3: मुख को श्वास से भरकर अग्नि के आसन पर श्वास को नीचे की ओर खींचकर, वहाँ पर रोककर,हाथों की छः अंगुलियों से, अंगूठों से शुरू करके कान, आँख और नासिका को भी बंद करके,योगी इस मार्ग पर आंतरिक प्रकाश को देखते हैं; उनके मन पवित्र ॐ पर विभिन्न चिंतन के मार्ग में लिपटे रहते हैं।

II-4: कान, मुँह, आँख और नासिका को, अनिवार्यतः,योग द्वारा रोका जाना चाहिए;तब शुद्ध और दोषरहित स्वर सुनाई देता है शुद्ध सुषुम्ना नाड़ी में।

II-5: तब अनाहत में,अनोखी ध्वनियों से गूंजती हुई, एक ध्वनि सुनाई देती है।योगी का शरीर पवित्र हो जाता है; इस प्रकार उसमें वैभव और स्वर्गीय गंध भर जाती है वह अब बीमार नहीं रहता;

II-6: उसका हृदय भर जाता है;जब हृदय-स्थान गूंजता है, तो वह योगी बन जाता है; दूसरी गाँठ को तोड़कर,तुरंत श्वास मध्य क्षेत्र में प्रवाहित होती है।
II-7: कमल के आसन पर और अन्य आसनों पर भी,योगी को दृढ़ निश्चयी होना चाहिए।विष्णु की गाँठ, फिर फट जाती है परम आनन्द उमड़ता है।

II-8: अनाहत के परे, 'अखंड स्वर',ढोल की गूंज उठती है;ऊर्जा के साथ, रुद्र की गाँठ को भेदते हुए मद्दल का स्वर सुनाई देता है।

II-9: प्राण सबसे बड़े स्थान की ओर बढ़ता है,सभी सिद्धियों का निश्चित निवास; वहाँ से,मन के आनन्द को अनदेखा करते हुए, श्वास सभी योग आसनों में व्याप्त हो जाती है।

II-10: योग की प्राप्ति, सर्वव्यापी ध्वनि झनझनाता है और इसीलिए इसे 'झनझनाने वाला' कहा जाता है।तब, एकीकृत होकर, मन की पूजा की जाती है सनक जैसे ऋषियों और बाकी लोगों की।

II-11: सीमित को अनंत से पहचानते हुए,खंडों को संपूर्ण से पहचानते हुए, व्यक्ति विशाल स्रोत पर ध्यान करता है; इस प्रकार पूर्णता प्राप्त होती है एक अमर बन जाता है।

II-12: स्वयं के साथ एकता के माध्यम से, दूसरों के साथ संपर्क को रोकें; इसी तरह, स्वयं के अस्तित्व के माध्यम से किसी और के स्वयं का विरोध करें; इस प्रकार, बन जाना सत्य सर्वोच्च, सभी द्वंद्वों से मुक्त,सर्वोच्च हमेशा के लिए एक है।

II-13: मैं की भावना का त्याग करें; हाँ,इस दुनिया का, दिखने में इतना अलग।ऋषि के लिए फिर कभी दुःख नहीं होता,सत्य में निहित पारलौकिक।

II-14: जैसे पानी में नमक पिघल जाता है और मिल जाता है,वैसे ही एकता में स्वयं और मन मिश्रित हो जाते हैं।उस एकाग्रता को कहा जाता है।

II-15: श्वास क्षीण हो जाती है और मन विलीन हो जाता है और एकरस आनंद मिलता है।यह एकाग्रता है।

II-16: निम्न और उच्चतर आत्मा का विलय सभी कल्पनाओं से मुक्त,इसे एकाग्रता कहते हैं।

II-17: जागृति के प्रकाश से मुक्त,और स्वप्न देखने वाले मन से मुक्त;अन्य किसी को न जानने वाली नींद से मुक्त,सभी पीड़ाओं से मुक्त;प्रतिबिंबों से रहित पूर्ण शून्य ऐसी एकाग्रता है।

II-18: निरंतर एकाग्र दृष्टि से जब शरीर के बारे में सोचा जाता है तो कुछ नहीं रहता;तब अविचल आत्मा का बोध होता है इसे एकाग्रता कहते हैं।

II-19: जहाँ भी मन भटकता है वहाँ, बस वहीं, परम निवास है;वहाँ, बस वहीं, परम ब्रह्म है जो हर जगह समान रूप से निवास करता है।

III-1: इसके बाद, देवताओं ने उससे कहा: हमें नौ पहियों को पहचानने की शिक्षा दो। 'ऐसा ही हो', उन्होंने कहा:मूल में तरंगों के त्रिगुण चक्र के समान ब्रह्म का चक्र है। उस मूल में एक शक्ति है।उसका अग्नि रूप में ध्यान करना चाहिए। वहीं कामनाओं का आसन है; वह समस्त कामनाओं की वस्तुओं को प्रदान करता है। ऐसा मूल चक्र है।

III-2: दूसरा स्वाधिष्ठान चक्र है; इसमें छह पंखुड़ियाँ हैं। इसके मध्य में पश्चिमाभिमुख लिंग है। इसका ध्यान मूंगे के अंकुर के समान करना चाहिए। यहीं 'करधनी का आसन' है, जो संसार को आकर्षित करने की शक्ति प्रदान करता है।

III-3: तीसरा नाभि चक्र है, जो सर्प के समान टेढ़े आकार वाला एक विस्तृत भँवर है।इसके मध्य में 'सर्प शक्ति' का ध्यान करें, जो करोड़ों उगते सूर्यों के समान तेजस्वी है और बिजली। इसमें योग्यता की शक्ति है और यह सभी सिद्धियाँ प्रदान करता है। यह चक्र (जिसे) मणिपूरक कहा जाता है।
III-4: हृदय के चक्र में आठ पंखुड़ियाँ हैं और यह नीचे की ओर है। इसके केंद्र में, प्रकाश के लिंग पर, ध्यान करना चाहिए। यहाँ (दिव्य शक्ति का) प्रतीक हंस है। वह सभी की प्रिय है और सभी लोकों को मोहित करती है।

III-5: गले का चक्र चार अंगुल की चौड़ाई तक फैला हुआ है। वहाँ बाईं ओर इडा, चंद्र-तंत्रिका है; दाईं ओर पिंगला, सूर्य-तंत्रिका है। इसके केंद्र में, गोरे

रंग की सुषुम्ना पर, ध्यान करना चाहिए। जो इस प्रकार जानता है वह अनाहत ('अनस्ट्रंक नोट') की पूर्णता का दाता बन जाता है।

III-6: तालु का चक्र: वहाँ अमर अमृत बहता है; छोटी घंटी की छवि उस छिद्र में है जहाँ से दसवाँ द्वार 'राजकीय दाँत' (उवुला) लटका हुआ है। वहाँ शून्य का ध्यान करना चाहिए। मन-पदार्थ का विलय होता है।

III-7: सातवाँ, भौंह का चक्र, अँगूठे के नाप का है। वहाँ, ज्ञान की आँख पर, जो ज्वाला की जीभ के आकार का है, ध्यान करना चाहिए। वह कपाल की जड़ है, आज्ञा का चक्र, शब्दों पर शक्ति देने वाला।

III-8: ब्रह्म-छिद्र निर्वाण का चक्र है। वहाँ धुएँ के धागे के आकार के छिद्र का ध्यान करना चाहिए, जो सुई से भी पतला है। वहाँ जालों का स्थान है, जो मुक्ति प्रदान करता है। इसलिए, यह परम ब्रह्म का चक्र है।

III-9: नौवाँ अन्तरिक्ष का चक्र है। वहाँ सोलह पंखुड़ियों वाला कमल है, जो ऊपर की ओर है। इसका मध्य भाग 'लहरदार चोटियों' (भौंहों के मध्य) के समान है। इसके मध्य में ऊपर जाने वाली शक्ति, परम शून्य का ध्यान करना चाहिए। वहाँ वास्तव में 'पूर्ण पर्वत' का आसन है, जो सभी इच्छाओं की पूर्ति का साधन है।

III-10: जो कोई इस उपनिषद का निरंतर अध्ययन करता है, वह अग्नि और वायु से शुद्ध हो जाता है; वह सभी धन, अनाज, अच्छे पुत्र, पत्नी, घोड़े, भूमि, हाथी, पशु, भैंस, दासियाँ, योग और ज्ञान प्राप्त करता है। वह फिर कभी वापस नहीं आता। ऐसा रहस्यवादी सिद्धांत है।

ॐ! वाणी मेरे विचार (मन) में निहित है और मेरा विचार मेरी वाणी में निहित है। मेरे लिए स्पष्ट, स्पष्ट बनो; तुम दोनों मेरे लिए वेद की आधारशिला बनो। वैदिक विद्या मुझे न छोड़े। इस सिद्ध विद्या के साथ, मैं दिन को रात से जोड़ता हूँ। मैं वही बोलूँगा जो सही है; मैं वही बोलूँगा जो सत्य है।वही मेरी रक्षा करे; वही बोलने वाले की रक्षा करे।
वही मेरी रक्षा करे।वही बोलने वाले की रक्षा करे, बोलने वाले की रक्षा करे!
ॐ ! शांति ! शांति ! शांति !

यहाँ ऋग्वेद में शामिल सौभाग्य-लक्ष्मी उपनिषद समाप्त होता है।

106 - सरस्वती-रहस्य उपनिषद

ॐ ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;
हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,
हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;
हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से द्वेष न करें)।
ॐ ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. ऋषियों ने, वास्तव में, उचित श्रद्धा के साथ, पवित्र अश्वलायन से पूछा: वह ज्ञान कैसे प्राप्त होता है जो शब्द के सार को प्रकाशित करता है? हे पवित्र महोदय, हमें वह बताएं जिसके ध्यान से आप सत्य को जानते हैं।

2. मुनिश्रेष्ठ! मैंने सरस्वती पर दस श्लोकों के पाठ के साथ-साथ 'बीज-अक्षरों' के साथ ऋचा छंदों का उच्चारण करके सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त की।

3. ऋषियों ने कहा: हे समर्पित जीवन के ऋषि, किस ध्यान से सरस्वती का सत्य जीता जाता है? महान और पवित्र देवी सरस्वती को क्या प्रसन्न करता है? बोलो।

4. तब अश्वलायन बोले: सरस्वती पर दस श्लोकों वाले इस महान मंत्र का मैं, अश्वलायन, द्रष्टा हूँ। आठ अक्षरों वाला अनुस्तुभ छन्द है, पवित्र वागीश्वरी देवत्व है, यद्वक् बीज है, देवीम् वाचं शक्ति है, प्र नो देवी आधार है, उसे प्रसन्न करने के लिए इस मंत्र का प्रयोग किया जाता है, श्रद्धा, बुद्धि, ज्ञान, स्मृति, वाणी की देवी और महासरस्वती का आह्वान करके अंगों का अभिषेक किया जाता है।

5. वाणी की पूर्णता प्राप्त करने के लिए मैं अपने हृदय में देवी सरस्वती को नमस्कार करता हूँ, जो हिम, मोती, कपूर और चंद्रमा के समान चमकती हैं; जो शुभ आशीर्वाद प्रदान करती हैं; स्वर्ण चम्पक पुष्पों की मालाओं से सुसज्जित हैं; तथा अपने ऊँचे, गोल वक्षस्थल से मन को मोहित करती हैं।

6. इस मंत्र (प्र नो देवी) के द्रष्टा भारद्वाज हैं; छन्द गायत्री है; देवी श्री सरस्वती हैं; ॐ बीज, शक्ति तथा आधार है; इसका प्रयोग इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिए है; मंत्र द्वारा अभिषेक किया जाता है।

7. उनका स्वरूप वेदान्त के अर्थ का सार है।वह सर्वोच्च अधिपति,नाम और रूप में प्रकट सरस्वती मेरी रक्षा करें!

8. ओम!देवी सरस्वती,पोषण देने वाली,विचारों की संरक्षक,सदैव हमारी रक्षा करें!

9. इस मंत्र (अ नो दिवा) के, अत्रि द्रष्टा हैं; त्रिस्तुभ, छन्द; सरस्वती, देवत्व; ह्रीं,बीज, शक्ति और आधार; इसका प्रयोग जो कुछ भी वांछित है उसे प्राप्त करने के लिए है; इसका प्रयोग जो कुछ भी वांछित है उसे प्राप्त करने के लिए है; अंगों का अभिषेक मंत्र के साथ होता है।

10. वेदों में केवल एक ही प्रशंसित और उनके सहायक; ब्रह्म की अद्वैत शक्ति - वह, दिव्य सरस्वती, मेरी रक्षा करें!

11. ह्रीं स्वर्ग से, विशाल बादलों से,पवित्र सरस्वती हमारे यज्ञ में आएँ; जल की रानी हमारी मधुर वाणी को सहर्ष सुनें!

12. इस मंत्र (पावक नः) के द्रष्टा मधुच्छन्दस हैं; गायत्री छंद है; सरस्वती देवत्व है; श्रीम बीज, शक्ति और आधार है; इसका प्रयोग इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिए है; मंत्र के साथ अभिषेक है।

13. केवल अर्थ, वाक्य, शब्द और अक्षर के रूप में विद्यमान, आदि और अंत के बिना वह, अनंत सरस्वती मेरी रक्षा करें!

14. श्रीम शुद्धि करने वाली सरस्वती, पोषण देने वाली, बुद्धि का भण्डार वह हमारी बलि स्वीकार करें!

15. इस मंत्र (चोदयित्री) के द्रष्टा मधुच्छन्दस हैं; गायत्री छंद है; सरस्वती देवत्व है; ब्लम बीज, शक्ति और आधार है; मंत्र के साथ अभिषेक है।

16. देवताओं में, स्वयं में, देवताओं की स्वामिनी, अंतर में निवास करती है, और कहती है कि सरस्वती मेरी रक्षा करें!

17. ब्लम सत्य वचनों की प्रेरणा देने वाली, श्रेष्ठ मन को जागृत करने वाली, सरस्वती पूजा प्राप्त करती हैं।

18. इस मंत्र (महो अर्णः) के द्रष्टा मधुच्छंद हैं, छन्द गायत्री है, देवी सरस्वती हैं, सौः बीज, शक्ति और आधार हैं, मंत्र से अभिषेक होता है।

19. वे आंतरिक नियंत्रक के रूप में तीनों लोकों पर शासन करती हैं, रुद्र, सूर्य और अन्य के रूप में निवास करती हैं, वे सरस्वती मेरी रक्षा करें

20. सौःसरस्वती बहुत चमकती हैं जल की विशाल चादर - जो बुद्धि प्रदान करती हैं और सभी विचारों को जीवंत करती हैं।

21. इस मंत्र (चत्वारि वाक) के द्रष्टा हैं उच्चत्यपुत्र; त्रिष्टुभ, छंद; सरस्वती, दिव्यता;ऐम, बीज, शक्ति और आधार; अभिषेक मंत्र के साथ है।

22. प्रकट होने के कारण, वह अनुभव की जाती है अंदर की ओर देखने वाले ऋषियों द्वारा;

व्यापक, एक, जागरूकता का रूप,सरस्वती मेरी रक्षा करें!

23. ऐम वाणी चार शब्दों के समूहों तक सीमित है।ये, बुद्धिमान ब्राह्मण जानते हैं।गुफा में छिपे हुए, तीन हिलते नहीं हैं -चौथे समूह के लोग बोलते हैं।

24. इस मंत्र (यादवाक) के द्रष्टा हैं भार्गव; त्रिष्टुभ, छंद; सरस्वती, दिव्यता; क्लिम, बीज, शक्ति और आधार; मंत्र के साथ अभिषेक होता है।

25. अष्टांगिक रूप में गर्भाधान होने के कारण, सामान्य और इसी तरह के नामों में, वह अभिन्न रूप में प्रकट होती है। वह, सरस्वती, मेरी रक्षा करें!

26. क्लिम, वह जड़ वस्तुओं का शब्द है; देवताओं की रानी चुपचाप निवास करती है; शक्ति चार ऊर्जा धाराओं को दुहती है; उसका सर्वोच्च रूप कहाँ चला गया है?

27. इस मंत्र (देविम वाचं) के द्रष्टा भार्गव हैं; त्रिस्तुभ, छंद; सरस्वती, देवत्व; सौः, बीज, शक्ति और आधार; मंत्र के साथ अभिषेक होता है।

28. जिसे वेद और अन्य सभी स्पष्ट या अस्पष्ट भाषण बोलते हैं - वह गाय जो सभी इच्छाओं को पूरा करती है, वह सरस्वती मेरी रक्षा करे!

29. सौःदेवताओं ने दिव्य वाणी उत्पन्न की है!उससे सभी प्रकार के पशु बोलते हैं;वह गाय जो मीठा पेय और ओज देती है हमारे लिए प्रशंसनीय वाणी प्रकट हो!

30. इस मंत्र (उता त्वः) के द्रष्टा बृहस्पति हैं; त्रिस्तुभ छन्द है; सरस्वती देवी हैं; साम बीज, शक्ति और आधार है; मंत्र से अभिषेक होता है।

31. जिसे जानकर सभी बंधन कट जाते हैं;सभी मार्गों से जानने वाला जाता है;उस परम धाम की ओर – (मुक्ति) वह, हे सरस्वती, मेरी रक्षा करें!

32. साम देखते हुए भी कोई वाणी नहीं देख सकता; सुनते हुए भी कोई सुन नहीं सकता;वह अपने को प्रकट करती है,जैसे प्रेम में सजी हुई पत्नी अपने स्वामी को प्रकट करती है 33. इस मंत्र (अम्बितमे) का द्रष्टा गृत्समद है; अनुस्तुभ छन्द है; सरस्वती देवत्व है;ऐम, बीज, शक्ति और आधार है; अभिषेक मंत्र से होता है।

34. नाम और रूप की वस्तुओं को उसमें समर्पित करके, उसका ध्यान करो,जिसका रूप एक ब्रहम है,वह सरस्वती मेरी रक्षा करे!

35. ऐम प्यारी माँ! नदियों में सर्वश्रेष्ठ!महानतम देवी! सरस्वती!हम लगभग अप्रतिष्ठित हैं माँ! हमारे लिए महान नाम बनाओ!

36. झुंड के बीच मादा हंस चार मुख वाले भगवान के मुखों में से पूरी तरह से सफ़ेद सरस्वती मेरे मन में हमेशा के लिए क्रीड़ा करें!
37. आपको नमन, शारदा! कश्मीर नगरी में निवास करने वाली,मैं सदा के लिए प्रार्थना करता हूँ मुझे सही ज्ञान का वरदान दो!

38. अपने हाथों में माला, अंकुश, पाश, पुस्तक धारण करो,मोतियों की माला पहनो,मेरी वाणी में सदा निवास करो!39. तुम्हारी गर्दन शंख के समान है; तुम्हारे होंठ गहरे लाल हैं; सभी आभूषणों से सुसज्जित हैं क्या तुम, देवी सरस्वती हो!महान! मेरी जिहवा पर निवास करो!

40. श्रद्धा, समझ, बुद्धि तुम हो,वाणी की देवी, ब्रह्मा की पत्नी;तुम्हारा घर, भक्त आत्माओं की जिह्वा है; तुम मन की गतिविधियों के संयम जैसे गुणों की दाता हो।

41. हे भवानी, तुम्हें प्रणाम है!जिनकी जटाएँ अर्धचंद्र को सुशोभित करती हैं।तुम अमृत की धारा हो जो संसार की गर्मी को बुझाती है। 42. जो व्यक्ति दोषरहित काव्य का दान,और आनंद तथा स्वतंत्रता चाहता है,इन दस श्लोकों से,नित्य आराधना करता हुआ,सरस्वती की भरपूर स्तुति करता है,

43. जो व्यक्ति इस प्रकार अविचलित रूप से सरस्वती की पूजा और स्तुति करता है,जिसमें विश्वास और भक्ति दोनों हैं,उसे छह महीने में ही विश्वास आ जाता है।

44. उससे सरस्वती प्रवाहित होती है स्वतःस्फूर्त, सुंदर अक्षरों वाली,काव्य और गद्य की ध्वनियों में सत्य और अपरिमित महत्व की।

45. कवि एक अनसुनी लिपि को समझ लेता है;वह सरस्वती के अस्तित्व को साझा करता है।

46. सरस्वती ने इस प्रकार कहा:मेरे द्वारा ब्रह्मा ने भी सनातन आत्म-ज्ञान प्राप्त किया;सदा सत्य, ज्ञान, आनंद,मेरा नित्य ब्रह्मत्व है,बिना किसी बाधा या रोक के।

47. तत्पश्चात् गुणों,सत्व,रज, तम,के संतुलन द्वारा मैं प्रकृति बन जाती हूँ;मुझमें चित् का प्रतिबिम्ब चमकता है,जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब चमकता है।

48.एक बार फिर,प्रकृति चित् के उस प्रतिबिम्ब के माध्यम से तीन गुना चमकती है;और प्रकृति द्वारा निर्धारित,मैं भी पुरुष हूँ।

49.अजन्मा, माया में जिसमें शुद्ध सत्व राज्य करता है,प्रतिबिंबित होता है;
माया,प्रकृति है,जिसमें सत्व प्रधान है।

50.वह माया सहायक है,सर्वज्ञ ईश्वर के पूर्णतः अधीन है;क्योंकि, उसकी एकता, माया पर प्रभुता और सर्वज्ञता, वास्तव में है।

51. सत्व से निर्मित, सार रूप में सामूहिक, संसारों का दर्शक, वह ईश्वर है जिसके पास शक्ति है ब्रह्मांड को बनाने, बिगाड़ने या अन्यथा बनाने की; उसके पास सर्वज्ञता जैसे गुण हैं।

52. माया के पास दो शक्तियाँ हैं; एक प्रक्षेपण, दूसरा, छिपाव: पहला प्रक्षेपण संसार - जो सूक्ष्म है और जो स्थूल है।

53. दूसरा आवरण, भीतर, द्रष्टा और दृश्य के बीच की खाई को ढकता है; बाहर, सृष्टि और ब्रह्म के बीच की खाई को। माया अनंत ब्रह्मांडीय प्रवाह का कारण बनती है।

54. अविद्या साक्षी-प्रकाश में प्रकट होती है, सूक्ष्म शरीर से जुड़कर, आत्मा और मन वहाँ सह-निवास करते हुए, अभूतपूर्व जीव बन जाते हैं।

55. उसका जीवत्व, आरोपण के माध्यम से भी चमकता है साक्षी-प्रकाश में; साथ ही जो छिपा है उसका पतन, और इस प्रकार, भेद का चमकना, वह (जीवत्व) भी लुप्त हो जाता है।

56. इसी प्रकार, ब्रह्म के अधीन होने से, जो शक्ति ब्रह्मांड से उसके भेद को छिपाती है, ब्रह्म परिवर्तन में चमकता है।

57. यहाँ भी, ब्रह्म और ब्रह्मांड के बीच का भेद प्रकट नहीं होता, एक बार माया की शक्ति जो छिपाती है, कम हो जाती है; उनका भेद सृजन में है; ब्रह्म में कभी नहीं।

58. यहाँ पाँच कारक हैं; अस्तित्व, चमक, प्रेम, रूप और नाम भी; पहले तीन ब्रह्म से संबंधित हैं; अन्य दो मिलकर संसार बनाते हैं।

59. अंतिम दो कारकों को छोड़ दें, पहले तीन पर ध्यान केंद्रित करें; या तो हृदय में, या बाहर, हमेशा एकाग्रता का अभ्यास करें।

60-63. मानव हृदय में एकाग्रता दो तरह की होती है: पहलुओं के साथ या बिना; वह पहलुओं के साथ, फिर,दोहरा है, ‘शब्द’ के अनुरूप और ‘वस्तु’; इच्छा और उसका क्रम मन की वस्तुएँ हैं; उनमें से,दर्शक के रूप में,चेतना पर ध्यान करें: वह एकाग्रता वस्तुओं के अनुरूप है। ‘मैं बिना कलंक के हूँ; मैं हूँ, जानता हूँ, प्यार करता हूँ; मैं स्वयं चमकता हूँ, द्वैत से रहित हूँ’: ‘शब्द’ के अनुरूप है।

इस प्रकार पहलुओं के साथ एकाग्रता।'वस्तुओं' और 'शब्दों' को त्यागकर गहन आत्म-अनुभव के आनंद के लिए,व्यक्ति बिना पहलुओं के एकाग्रता जीतता है: हवा रहित स्थान में एक लौ।

64. एकाग्रता की तरह हृदय में, बाहर भी, किसी वस्तु में दोहरी एकाग्रता शुद्ध सत्ता से नाम और रूप के विवेक के साथ होती है।

65. तीसरा, जैसा कि ऊपर कहा गया है, तब होता है जब आनंद का स्वाद मौन की ओर ले जाता है;समय, बिना किसी ब्रेक के, इन छह सांद्रताओं में अच्छी तरह से बिताया जा सकता है।

66. शरीर का अहंकार समाप्त हो गया, और परम आत्मा का साक्षात्कार हो गया,जहाँ भी मन भटकता है वहाँ अमरता रहती है।हृदय की गाँठ कट जाती है तथा सभी संदेह नष्ट हो जाते हैं;

67. सभी कर्म-पद्धतियाँ क्षीण हो जाती हैं जब परम आत्मा का दर्शन होता है।

68. एक सीमित आत्मा, सर्वोच्च ईश्वर ये धारणाएँ मुझ पर आरोपित हैं।वे वास्तविक नहीं हैं - जो यह जानता है,वास्तव में, वह मुक्त है - संदेह नहीं है।
यह गुप्त ज्ञान है।ओम! वह हम दोनों की रक्षा करे; वह हम दोनों का पोषण करे;हम महान ऊर्जा के साथ मिलकर काम करें,हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से घृणा न करें)।

ओम! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

कृष्ण-यजुर्वेद में शामिल सरस्वती-रहस्योपनिषद यहीं समाप्त होता है।

107 - बहवृचा उपनिषद

ओम! वाणी मेरे विचार (मन) में निहित है और मेरा विचार मेरी वाणी में निहित है।

मेरे लिए प्रत्यक्ष बनो, प्रत्यक्ष बनो; तुम दोनों मेरे लिए वेद के आधार बनो।

वैदिक विद्या मुझे न छोड़े।

इस सिद्ध विद्या से मैं दिन को रात से जोड़ता हूँ।

मैं वही बोलूँगा जो सही है; मैं वही बोलूँगा जो सत्य है।

वह मेरी रक्षा करे; वह वक्ता की रक्षा करे।

वह मेरी रक्षा करे।

वह वक्ता की रक्षा करे, वक्ता की रक्षा करे!

ओम! शांति! शांति! शांति!

1. ओम। देवी वास्तव में शुरुआत में एक थी। अकेले उसने विश्व-अंडा उत्सर्जित किया। (वह) प्रेम का अंश (इम) के रूप में जानी जाती है। (वह) ओम के बाद के आधे अक्षर के रूप में जानी जाती है।

2. उससे ब्रह्मा पैदा हुए; विष्णु पैदा हुए; रुद्र पैदा हुए। सभी वायुदेवता उत्पन्न हुए, दिव्य गायक, अप्सराएँ, वाद्य बजाने वाले अर्ध-मानव प्राणी, चारों ओर (उससे) उत्पन्न हुए। जो भोग्य है, वह उत्पन्न हुआ; सब कुछ (उससे) उत्पन्न हुआ। शक्ति का सब कुछ (उससे) उत्पन्न हुआ। अण्डा, पसीने से उत्पन्न, बीज से उत्पन्न, गर्भ से उत्पन्न, यहाँ जो भी साँस लेता है, स्थिर और चलायमान, और मनुष्य (उससे) उत्पन्न हुए।

3. वह, यहाँ, सर्वोच्च शक्ति है। वह, यहाँ, शम्भू की विद्या है, (या तो क से प्रारम्भ होने वाली विद्या के रूप में, या ह से प्रारम्भ होने वाली विद्या के रूप में, या स से प्रारम्भ होने वाली विद्या के रूप में जानी जाती है। यह ॐ शब्द में निहित गुप्त ॐ है।

4. तीन पुरों, तीन शरीरों में व्याप्त होकर, भीतर और बाहर प्रकाशित करने वाली, वह, भीतर की चेतना, देश, काल और वस्तुओं से संबद्ध होकर महा-त्रिपुर-सुंदरी बन जाती है।

5. वह अकेली आत्मा है। उसके अलावा असत्य है, अ-आत्मा है। इसलिए वह ब्रह्म-चेतना है, जो अस्तित्व और अ-अस्तित्व के एक रंग से भी मुक्त है। वह चेतना का विज्ञान है, अद्वैत ब्रह्म चेतना है, सत्ता-चेतना-आनंद की एक लहर है। तीन-महानगरों की सुंदरता, बाहर और भीतर घुसने वाली, दीप्तिमान, अद्वैत, स्वयंभू है। जो है, वह शुद्ध सत्ता है; जो चमकता है वह शुद्ध चेतना है; जो प्रिय है वह आनंद है। तो यहाँ महा-त्रिपुर-सुंदरी है जो सभी रूप धारण करती है। आप और मैं और सारा जगत् और सभी देवता तथा अन्य सभी महा-त्रिपुर-सुंदरी हैं। एकमात्र सत्य वह है जिसे 'सुंदर' कहा जाता है। यह अद्वैत, अभिन्न, सर्वोच्च ब्रह्म है।

6. पंचगुण रूप त्याग दिया गया और अंतरिक्ष जैसे प्रभाव पार हो गए,वही एक, महान सत्ता,परम आधार, एकमात्र सत्य रह गया।

7. या तो यह घोषित किया जाता है कि 'ब्रह्म चेतना है' या कि 'मैं ब्रह्म हूँ'। संवाद में कहा जाता है:'तू वह है'; या 'यह आत्मा ब्रह्म है'; या 'मैं ब्रह्म हूँ'; या 'केवल ब्रह्म ही मैं हूँ'।

8. वह जो 'वह जो मैं हूँ' या 'मैं वही हूँ' या 'वह जो है वही मैं हूँ' के रूप में चिंतन की जाती है, वह सोदसी है, श्री का विज्ञान, पंद्रह-अक्षरों वाला (विज्ञान), पवित्र महा-त्रिपुरा-सुंदरी, कुमारी, माँ, बगला, मातंगी, वह शुभ जो अपना साथी स्वयं चुनती है, दुनिया की स्वामिनी, चामुंडा, चंडा, सूअर की शक्ति, वह जो घूंघट करती है, राजसी मातंगी, तोते की तरह काली, हल्की काली, घोड़े पर सवार; अंगिरस के विपरीत; धुएँ की पताका वाली; सवितुर, सरस्वती, गायत्री की शक्ति, ब्रह्मिक आनंद का हिस्सा।

9. स्तुति के गीत उच्चतम क्षेत्र में रहते हैं जहाँ सभी देवता रहते हैं; ऋच के साथ वह क्या करेगा जो इसे नहीं जानता? जो इसे अच्छी तरह से जानते हैं, वे ठीक से रहते हैं; यह गुप्त विज्ञान है। ॐ! वाणी मेरे विचार (मन) में निहित है और मेरा विचार मेरी वाणी में निहित है।

मेरे लिए स्पष्ट, स्पष्ट बनो; तुम दोनों मेरे लिए वेद की आधारशिला बनो।वैदिक विद्या मुझे न छोड़े।इस निपुण विद्या के साथ, मैं दिन को रात से जोड़ता हूँ।मैं वही बोलूँगा जो सही है; मैं वही बोलूँगा जो सत्य है।वह

मेरी रक्षा करे; वह वक्ता की रक्षा करे।वह मेरी रक्षा करे।वह वक्ता की रक्षा करे, वक्ता की रक्षा करे !

ॐ! शांति ! शांति ! शांति !

यहाँ ऋग्वेद में शामिल बहवृचोपनिषद समाप्त होता है।

108 - मुक्तिका उपनिषद्

ॐ ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है।
अनंत से अनंत की उत्पत्ति होती है।
(तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर,
वह अनंत (ब्रह्म) ही रह जाता है।
ॐ ! मुझमें शांति हो!
मेरे वातावरण में शांति हो!
मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1-1-6. अयोध्या के सुंदर नगर में, रत्नजटित मंडप के मध्य में, सीता, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के साथ, राम बैठे थे, जिनका दिन-रात सनक, वसिष्ठ और शुक जैसे ऋषियों और अन्य भक्तों द्वारा महिमामंडन किया जा रहा था, वे बुद्धि के हजारों परिवर्तनों के साक्षी थे, और अपने स्वरूप का चिंतन करने में प्रसन्न थे। इस समाधि के अंत में हनुमान ने भक्तिपूर्वक पूछा, 'हे राम! आप सत्, चिद् और आनन्द स्वरूप परब्रह्म हैं। मैं मुक्ति के लिए आपके स्वरूप को जानना चाहता हूँ। कृपया मुझे बताइए कि मैं बिना कष्ट के बंधन से कैसे मुक्त हो सकता हूँ।'

1-1-7-14. राम: ठीक पूछा। मैं आपको बताता हूँ। मैं वेदान्त में पारंगत हूँ। हनुमान: वेदान्त क्या है और कहाँ है? राम: वेद अपने व्यापक विस्तार में मेरे प्राण हैं, वेदान्त उनमें इस प्रकार समाया हुआ है, जैसे तिल में तेल।

हनुमान: वेद कितने हैं और उनकी कितनी शाखाएँ हैं? इनमें से उपनिषद कौन-कौन से हैं? राम: वेद चार हैं, ऋग्वेद आदि, उनकी अनेक शाखाएँ और उपनिषद हैं। ऋग्वेद की २१ शाखाएँ हैं, यजुस् की १०९, साम की १००० तथा अथर्व की ५०। प्रत्येक शाखा में एक उपनिषद् है। भक्तिपूर्वक इनका एक श्लोक पढ़ने से भी मुझमें एकत्व की प्राप्ति होती है, जो ऋषियों के लिए भी पाना कठिन है। हनुमान: राम, ऋषिगण भिन्न-भिन्न प्रकार से कहते हैं: कुछ कहते हैं कि मुक्ति एक ही प्रकार की है। अन्य कहते हैं कि यह आपके नाम की आराधना तथा काशी में तारक मंत्र के जाप से प्राप्त हो सकती है। अन्य लोग सांख्य-योग तथा भक्ति-योग, वेदान्त-वाक्यों के अन्वेषण आदि की बात करते हैं।

1-18-23. राम: मुक्ति चार प्रकार की है: सालोक्य आदि। लेकिन एकमात्र वास्तविक प्रकार कैवल्य है। कोई भी व्यक्ति दुष्ट जीवन जीते हुए भी मेरे नाम की पूजा करके सालोक्य को प्राप्त करता है, अन्य लोकों को नहीं। काशी में पवित्र ब्रह्मनाल में मरने पर उसे तारक-मंत्र मिलेगा और पुनर्जन्म के बिना मोक्ष भी मिलेगा। काशी में कहीं भी (अन्यत्र) मरने पर, महेश्वर उसके दाहिने कान में तारक-मंत्र का उच्चारण करेंगे। वह मेरे साथ सारूप्य प्राप्त करता है क्योंकि उसके पाप धुल जाते हैं। इसे सालोक्य और सारूप्य कहा जाता है। अच्छे आचरण में लगे हुए, मुझमें मन को स्थिर करके, मुझे सभी की आत्मा के रूप में प्यार करते हुए, द्विज मेरे निकट हो जाता है - इसे मुक्ति के तीन रूप कहा जाता है। सालोक्य, सारूप्य और सामीप्य।

1-1-24-25. गुरु के बताए अनुसार मेरे सनातन स्वरूप का ध्यान करने से मनुष्य अवश्य ही मेरे साथ तादात्म्य प्राप्त कर लेगा, जैसे कीट मधुमक्खी में बदल जाते हैं। यही तादात्म्य मुक्ति (सायुज्य) है, जिससे ब्रह्म का आनन्द प्राप्त होता है। ये चारों प्रकार की मुक्ति मेरी भक्ति से प्राप्त होगी।

1-1-26-29। किन्तु कैवल्य प्रकार का मोक्ष किस उपाय से प्राप्त होता है? माण्डूक्य ही पर्याप्त है, यदि उससे ज्ञान न मिले, तो दस उपनिषदों का अध्ययन करो। शीघ्र ही ज्ञान प्राप्त करके तुम मेरे धाम को प्राप्त हो जाओगे। यदि तब भी निश्चय न मिले, तो 32 उपनिषदों का अध्ययन करो और रुक जाओ। यदि शरीर के बिना मोक्ष की इच्छा हो, तो 108 उपनिषदों का अध्ययन करो। उनका क्रम सुनो।

1-1-30-39। 1. ईसा 2. केन 3. कठ 4. प्रसन्न 5. मुण्ड 6. माण्डूक्य 7. तैत्तिर 8. ऐतरेय 9. छान्दोग्य 10. बृहदारण्यक 11. ब्रह्मा 12. कैवल्य 13.

जाबाला 14. श्वेतश्व 15. हंस 16. अरुणि 17. गर्भ 18. नारायण 19. परमहंस 20 21. अमृतानदा 22. अथर्वशिरः 23. अथर्वशिखा 24. मैत्रायिनी 25. कौशितकीब्राह्मण 26. बृहज्जाबाला 27. नृसिंहतापिनी 28. कालाग्निरुद्र 29. मैत्रेय 30. सुबाला 31. क्षुरिका 32. मांत्रिका 33. सर्वसार 34. निरालाम्बा 35. शुक्रहस्य 36. वज्रसुचिका 37. तेजोबिन्दु 38. नादबिन्दु 39. ध्यानबिन्दु 40. ब्रह्मविद्या 41. योगतत्त्व 42. आत्मबोध 43. नारदपरिव्राजका 44. त्रिसिखी 45. सीता 46. योगचूड़ामणि 47. निर्वाण 48. मंडलब्राह्मण 49. दक्षिणामूर्ति 50. साराभ 51. स्कंद 52. त्रिपादविभूति-महानारायण 53. अद्वयतारक 54. रामरहस्य 55. रामतापनी 56. वासुदेव 57. मुद्गल 58. सांडिल्य 59. पिंगला 60. भिक्षु 61. महत् 62. शरीरारक 63. योगशिखा 64. तुरीयतीत 65. संन्यास 66. परमहंसपरिव्राजक 67. अक्षमालिका 68. अव्यक्त 69. एकाक्षर 70. अन्नपूर्णा 71. सूर्य 72. अक्षी 73. अध्यात्म 74. कुंडिका 75. सावित्री 76. आत्मा 77. पाशुपत 78. परब्रह्म 79। 95. गोपालतापिनी 96. कृष्ण 97. याज्ञवल्क्य 98. वराह 99. सत्यायनी 100. हयग्रीव 101. दत्तात्रेय 102. गरुड़ 103. कालीसमतरना 104. जाबालि 105. सौभाग्यलक्ष्मी 106। सरस्वतीरहस्य 107. बहवृचा 108. मुक्तिका

1-1-40-43. ये तीन प्रकार की भावनाएँ नष्ट करते हैं, जो क्रमशः शरीर, इन्द्रियाँ और मन हैं, जो आत्मा से सम्बन्धित हैं। श्रेष्ठतम ब्राह्मण यदि प्रारब्ध के नाश तक का अध्ययन करें, तो वे जीवन्मुक्त हो जाएँगे। गुरु से 108 उपनिषदों का पाठ तथा शांतिपाद का पाठ। फिर, समय के साथ उन्हें वेदेह-मुक्ति अवश्य प्राप्त होगी।

1-1-44-52. ये 108 उपनिषद सभी उपनिषदों का सार हैं तथा इनके श्रवण मात्र से ही सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। एक बार। ये रिलीज का कारण बनते हैं चाहे ज्ञान के साथ या बिना पढ़े। राज्य, धन आदि मांगने वाले को दिया जा सकता है, किन्तु ये 108 किसी को भी नहीं दिए जा सकते - नास्तिक, कृतघ्न, बुरे आचरण वाले, मेरी भक्ति के विरुद्ध, गलत शास्त्र से मोहित या भक्तिहीन को। गुरु को। लेकिन उन्हें सेवा के प्रति समर्पित, भक्त, अच्छे आचरण, जन्म और बुद्धि वाले व्यक्ति को सिखाया जाना चाहिए। उसे अच्छी तरह से परखा जाना चाहिए। इस पर एक ऋक छंद: ज्ञान की देवी एक ब्राह्मण के पास आई और कहा 'मेरी रक्षा करो मैं तुम्हारा खजाना हूँ, मुझे ईर्ष्यालु, बेईमान और धोखेबाज को मत सिखाओ - तब मैं शक्तिशाली हो जाऊँगा, बल्कि इसे किसी विद्वान, सावधान, बुद्धिमान और ब्रह्मचारी को दे दो, उसकी जाँच करने के बाद। . तब मारुति ने श्री रामचंद्र से इस प्रकार पूछा: कृपया मुझे विभिन्न वेदों, ऋग्वेद आदि के

शांति-मंत्र अलग-अलग सुनाएँ। तब श्री राम ने कहा: "मेरी वाणी मेरे मन पर टिकी है..." [वन्मे-मानसी...]। यही शांति मंत्र है। -ऋग्वेद का हिस्सा बनने वाले निम्नलिखित दस उपनिषदों में से मंत्र: 1. ऐतरेय 2. कौशितकिब्राह्मण 3. नादबिंदु 4. आत्मबोध 5. निर्वाण 6. मुद्गल 7. अक्षमालिका 8. त्रिपुरा 9. सौभाग्यलक्ष्मी 10. बहवृचा I-ii-2। "वह (जो परे है) पूर्ण है" [पूर्णमदा ....] - और इसी तरह: यह निम्नलिखित उन्नीस उपनिषदों का शांति-मंत्र है, जो शुक्ल-यजुर-वेद का हिस्सा है: 1. ईशावास्य 2. बृहदारण्यक 3. जाबाला 4. हंस 5. परमहंस 6. सुबाला 7. मांत्रिका 8. निरालाम्बा 9. त्रिशिखिब्राह्मण 10. मंडलब्राह्मण 11. अद्वैतरक 12. पिंगला 13. भिक्षु 14. तुरीयातिता 15. अध्यात्म 16. तारासार 17. याज्ञवल्क्य 18. सत्ययानी 19. मुक्तिका प्रथम -ii-3. "(उपनिषदों का ब्राह्मण) हम दोनों की रक्षा करें" [सहनाववतु...] - और इसी तरह: यह निम्नलिखित बत्तीस उपनिषदों का शांति-मंत्र है, जो कृष्ण-यजुर-वेद का हिस्सा है: 1. कथावल्ली 2 तैत्तिरीयक 3. ब्रह्मा 4. कैवल्य 5. श्वेताश्वतर 5. गर्भ 6. नारायण 7. अमृतबिंदु 8. अमृतानंद 9. कालाग्निरुद्र 10. क्षुरिका 11. सर्वसार 12. शुक्रहस्य 13. तेजोबिन्दु 14. ध्यानबिंदु 15. ब्रह्मविद्या 16. योगतत्त्व।17. दक्षिणामूर्ति 18. स्कंद 19. शरीरारक 20. योगशिखा 21. एकाक्षर 22. अक्षी 23. अवधूत 24. कथारुद्र 25. रुद्रहृदय 26. योग-कुंडलिनी 27. पंचब्रह्मा 28. प्राणाग्निहोत्र 29. वराह 30. कालीसमतरना 31. सरस्वतीरहस्य I-ii -4. "अदृश्य शक्तियां पोषण करें" [अप्ययंतु...] - और इसी तरह: यह साम-वेद का हिस्सा बनने वाले निम्नलिखित सोलह उपनिषदों का शांति-मंत्र है: 1. केना 2. छांदोग्य 3. अरुणि 4. मैत्रायणी 5. मैत्रेय 6. वज्रसूचिका 7. योगचूड़ामणि 8. वासुदेव 9. महत् 10. संन्यास 11. अव्यक्त 12. कुंडिका 13. सावित्री 14. रुद्राक्षजाबाला 15. दर्शन 16. जाबालि I-ii-5. "क्या हम अपने कानों से वेदांत के शुभ सत्य सुन सकते हैं" [भद्रम-कर्णेभिः...] - और इसी तरह: यह अथर्ववेद के निम्नलिखित इकतीस उपनिषदों का शांति-मंत्र है: 1. प्रश्न 2. मुंडका 3. माण्डूक्य 4. अथर्वशिरस 5. अथर्वशिख 6. बृहज्जाबाला 7. नृसिंहतापिनी (पूर्वोत्तरा) 8. नारदपरिव्राजक 9. सीता 10. साराभा 11. त्रिपादविभूति-महानारायण 12. रामरहस्य 13. रामतापिनी (पूर्वोत्तरा) 14. सांडिल्य 15. परमहंसपरिव्राजक 16. अन्नपूर्णा 17. सूर्य 18. आत्मा 19. पाशुपतब्राह्मण 20. परब्रह्म 21. त्रिपुरातापिनी 22. देवी 23. भावना 24. भस्मजबाला 25. गणपति 26. महावाक्य 27. गोपालतापिनी (पूर्वोत्तरा) 28. कृष्णा 29. हयग्रीव 30 . दत्तात्रेय 31.

गरूड़ I-ii-6. जो पुरुष मुक्ति के इच्छुक हैं और चार आवश्यक साधनों से सुसज्जित हैं!उचित रूप से, हाथों में उपहार लेकर, समर्पित, अच्छे कुल से

संबंधित, वेदों में पारंगत, शास्त्रों में रुचि रखने वाले, अच्छे गुणों वाले, सीधे, सभी प्राणियों के कल्याण में रुचि रखने वाले, दयालु और ज्ञानी गुरु के पास जाओ। एक सौ आठ उपनिषदों को विधिपूर्वक सीखो, उनका श्रवण, मनन और गहन मनन द्वारा निरंतर अध्ययन करो, संचित कर्म नष्ट हो जायेंगे, स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों प्रकार के शरीर छूट जायेंगे और आकाश के समान हो जायेंगे। जब बर्तन अपनी उपाधि से मुक्त हो जाता है, तो वह पूर्णता के स्तर तक पहुँच जाता है जिसे विदेह-मुक्ति कहते हैं। यह वास्तव में पूर्ण मुक्ति (कैवल्य-मुक्ति) है। यही कारण है कि ब्रह्म-लोक में रहने वाले लोग भी उपनिषदों को सुनकर ब्रह्म से तादात्म्य प्राप्त कर लेते हैं। उनके मुख से निकला। और सभी के लिए परम मुक्ति केवल ज्ञान के माध्यम से (प्राप्त करने योग्य) बताई गई है; कर्म अनुष्ठानों के माध्यम से नहीं, सांख्य-योग या पूजा के माध्यम से नहीं। इस प्रकार उपनिषद।

II-i-1. तब हनुमान ने रामचंद्र से पूछा: यह जीवनमुक्ति, विदेह-मुक्ति क्या है? इसका अधिकार, सफलता का साधन और उद्देश्य क्या है? राम ने कहा: एक व्यक्ति के लिए कर्तापन, भोक्तापन से बंधन है -शरीर में सुख, दुःख आदि का निवारण ही मुक्ति है। विदेह मुक्ति (शरीर से मुक्ति) प्रारब्ध कर्म के नाश से होती है, जैसे बर्तन में रखा स्थान बंधनों से मुक्त हो जाता है। दोनों के लिए १०८ उपनिषद ही प्रमाण हैं। उद्देश्य कर्तापन आदि के दुखों के निवारण से शाश्वत सुख की प्राप्ति है। यह मानवीय प्रयास से प्राप्त किया जा सकता है जैसे पुत्र-काम यज्ञ से पुत्र, धन-संपत्ति प्राप्त होती है। व्यापार आदि से, और स्वर्ग से ज्योतिषतोम.

II-ii-1-9. ये श्लोक हैं: मानव प्रयास दो प्रकार के कहे गए हैं: शास्त्रों के पक्ष में और विरुद्ध - पहला विनाश देता है, दूसरा परम सत्य। सच्चा ज्ञान संसार, शास्त्रों और संसार के माध्यम से अव्यक्त संस्कारों से नहीं आता है। शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव दो प्रकार के होते हैं: अच्छे और बुरे; यदि आप अच्छे प्रभावों से प्रेरित हैं, तो आप धीरे-धीरे लेकिन जल्दी ही मुझ तक पहुँच जाएँगे; बुरे प्रभाव परेशानी का कारण बनते हैं और उन्हें प्रयास से दूर किया जाना चाहिए। अच्छे प्रभावों से बहने वाली छापों की नदी और बुरे रास्तों को मानवीय प्रयास से अच्छे रास्ते में बदलना चाहिए - मानवीय प्रयास से मन के बच्चे को दुलारना चाहिए। जब अभ्यास के माध्यम से अच्छे संस्कार उत्पन्न होते हैं, तो अभ्यास फलदायी होता है। भले ही यह संदेह में हो, केवल अच्छी प्रवृत्तियों का अभ्यास करो - कोई दोष नहीं होगा।
II-II-10-15. संस्कारों का नाश, ज्ञान की खेती और मन का नाश, जब लंबे समय तक एक साथ अभ्यास किया जाता है तो फल मिलता है। यदि इनका एक साथ अभ्यास न किया जाए तो सैकड़ों वर्ष बाद भी सफलता

नहीं मिलेगी, जैसे मंत्र बिखरे हुए होते हैं। जब इन तीनों का लंबे समय तक अभ्यास किया जाता है, तो हृदय की गांठें कमल के रेशे और डंठल की तरह अवश्य ही टूट जाती हैं। सांसारिकता का मिथ्या आभास जीवन एक में मिल गया है 1. मन के संस्कारों का नाश करने का अभ्यास करो।

2. 2. 16. बुद्धिमान जानते हैं कि मन संस्कारों से बंधा हुआ है, उनसे मुक्त होने पर वह मुक्त हो जाता है। इसलिए हे हनुमान! जल्दी से जल्दी संस्कारों का नाश करो।

2. 2. 17. 18. जब संस्कार नष्ट हो जाते हैं, तो मन दीपक की तरह बुझ जाता है। जो कोई भी संस्कारों को त्याग देता है और बिना किसी तनाव के मुझ पर एकाग्र होता है, वह आनंद को प्राप्त होता है।

2. 2. 19. 23. चाहे वह कर्मों पर ध्यान लगाए या न लगाए, जब वह हृदय की सभी इच्छाओं से दूर रहता है, तो वह निस्संदेह मुक्त हो जाता है। उसे कर्म या अकर्म से कुछ भी लाभ नहीं होता। यदि उसका मन संस्कारों से मुक्त नहीं है, तो समाधि और जप भी फल नहीं दे सकते। संस्कारों से मुक्त मौन के बिना सर्वोच्च स्थान नहीं मिल सकता। नेत्र आदि इन्द्रियाँ बाह्य विषयों की ओर बिना किसी ऐच्छिक संस्कार के जाती हैं, किन्तु जैसे नेत्र बाह्य विषयों पर बिना आसक्ति के स्वेच्छा से जाता है, वैसे ही ज्ञानी पुरुष भी अपने अव्यक्त संस्कार के कारण ही कर्म में प्रवृत्त होता है। ऋषिगण जानते हैं कि वासना में वे सभी विषय सम्मिलित हैं, जो मन की सृजनात्मक क्षमता द्वारा उन्हें प्राप्त करने या उनसे बचने के लिए उत्पन्न होते हैं।

यह अत्यन्त चंचल मन, जो जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु का कारण है, विषयों की अधिक इच्छा से उत्पन्न होता है। वासना के प्रभाव से प्राण का स्पंदन होता है, उससे बीज और अंकुर के समान वासना उत्पन्न होती है। मानव मन रूपी वृक्ष के लिए स्पंदन और वासना दो बीज हैं - एक के मर जाने पर दोनों ही मर जाते हैं। अनासक्त आचरण, सांसारिक विचारों से बचने और शरीर को नश्वर समझने से अव्यक्त संस्कार कार्य करना बंद कर देते हैं। वासनाओं को त्याग देने से मन अनासक्त हो जाता है। जब मन विचार नहीं करता, तब अचेतनता उत्पन्न होती है, जो महान शांति देती है; जब तक तुम्हारा मन पूर्ण विकसित न हो जाए, तब तक परम तत्व से अनभिज्ञ होकर गुरु, शास्त्र तथा अन्य स्रोतों द्वारा बताए अनुसार आचरण करो। फिर अशुद्धता के पक जाने (और नष्ट हो जाने) तथा सत्य के समझ में आ जाने पर तुम्हें अच्छे संस्कारों का भी त्याग कर देना चाहिए।

जीवन्मुक्त में मन का नाश रूप से होता है - विदेहमुक्त में निराकार होता है - जब तुम इसे प्राप्त कर लोगे, तो मैत्री आदि गुणों से युक्त मन अवश्य ही शांति प्राप्त कर लेगा।

जीवन्मुक्त का मन पुनर्जन्म नहीं लेता। मन संसार रूपी वृक्ष की जड़ है, जिसमें हजारों अंकुर, शाखाएँ, फल आदि होते हैं। मैं मन को निर्माण के अतिरिक्त कुछ नहीं मानता; इसे इस प्रकार सुखा दो कि वृक्ष भी सूख जाए। मन को वश में करने का एक ही उपाय है। मन का उगना ही विनाश है, उसका नाश ही सौभाग्य है। ज्ञानी का मन नष्ट हो जाता है, अज्ञानी के लिए वह बंधन है। जब तक दृढ़ अभ्यास द्वारा मन को परास्त नहीं किया जाता, तब तक संस्कार रात्रि में भूतों की भाँति हृदय में उछलते रहते हैं।

जिसका मान कम हो गया है और इन्द्रियाँ-शत्रु-पराजित हो गई हैं, उसके भोग के संस्कार शीतकाल में कमल के समान नष्ट हो जाते हैं। पहले मन को जीत लेना चाहिए, हाथों को हाथों में, दाँतों को दाँतों पर और अंगों को वश में कर लेना चाहिए। दोषरहित तर्क (विधियों) के बिना केवल बैठने से मन को नहीं जीता जा सकता, जैसे बिना अंकुश के हाथी को जीता नहीं जा सकता। मन-विजय में सुपोषित कारण (विधियाँ) हैं वेदान्त का ज्ञान, अच्छे लोगों का सम्पर्क, संस्कारों का त्याग और प्राण का स्पंदन रोकना।

जो लोग इनकी उपेक्षा करके बलपूर्वक मन को वश में करते हैं, दीपक को फेंक देते हैं और अन्धकार में कालिख के द्वारा खोज करते हैं, वे कमल के रेशे से हाथी को भी बाँधने का प्रयत्न करते हैं। II-ii-48-50. विचार की लताओं का भार वहन करने वाले मन के वृक्ष में दो बीज हैं: प्राण का स्पंदन और प्रबल संस्कार। प्राण के स्पंदन से सर्वव्यापक चेतना हिल जाती है - इसके विपरीत एकाग्रता से ज्ञान उत्पन्न होता है। अब ध्यान, इसका साधन, प्रदान किया जाता है। विचारों को विपरीत क्रम में पूर्णतया विलीन करके केवल शेष शुद्ध चेतना का ही चिन्तन करो।

II-ii-51-56. अपान के अस्त होने के पश्चात तथा हृदय में प्राण के उदय होने के पूर्व योगियों द्वारा अनुभव की जाने वाली कुम्भक (स्थिरता) अवस्था होती है। बाह्य रूप में कुम्भक प्राण की पूर्णता है, जब श्वास अन्दर की ओर जाती है और श्वास बाहर की ओर आती है। निरहंकार भाव से ब्रह्म का ध्यान बार-बार करने से सम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त होती है। योगियों द्वारा प्रिय असम्प्रज्ञात समाधि, मन से आती है, जो सभी मानसिक वृत्तियों (विचारों) के समाप्त हो जाने के पश्चात परम आनन्द प्रदान करती है। ऋषियों द्वारा इसे महत्व दिया गया है, क्योंकि यह आत्मा

(अहंकार की) ज्योति, (स्वप्न की) बुद्धि और (गहरी नींद में) बुद्धि से रहित है। यह एकाग्रता उससे भिन्न है जो ब्रह्म नहीं है। ऊपर, नीचे और बीच में पूर्ण सार है।
उपनिषदों द्वारा निर्दिष्ट यह अवस्था परम सत्य है।

II-ii-57-60. अव्यक्त संस्कार, निरंतर कल्पना द्वारा वस्तुओं को बिना परखे ग्रहण करना है। जो कुछ भी व्यक्ति अपने द्वारा तीव्र वैराग्य के माध्यम से अस्तित्व में लाता है, वह विपरीत संस्कारों से रहित होकर शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है। संस्कारों से प्रभावित होकर व्यक्ति संस्कारों की विशिष्टता के कारण उन वस्तुओं को वास्तविकता के रूप में देखता है, अज्ञानी व्यक्ति आत्मा को गलत तरीके से देखता है, यद्यपि वह अपना स्वरूप नहीं खोता है।

II-ii-61-68. अशुद्ध संस्कार बांधता है, शुद्ध जन्म को नष्ट करता है। अशुद्ध अज्ञान और अहंकार है, जो पुनर्जन्म का कारण बनता है। विश्राम की स्थिति भुने हुए बीज के समान है, जो पुनर्जन्म (अंकुर) को छोड़ देता है। क्या बहुत से शास्त्रों को व्यर्थ चबाने से आंतरिक प्रकाश की खोज की जा सकती है? जो बोध और अबोध दोनों को त्यागकर अकेला रहता है, वही ब्रह्म है। केवल चार वेद और शास्त्रों को पढ़कर मनुष्य ब्रह्म को नहीं जान सकता, जैसे चमच्च अन्न का स्वाद नहीं ले सकता। यदि मनुष्य को अपने शरीर की दुर्गन्ध से वैराग्य नहीं मिलता, तो उसे वैराग्य का दूसरा कौन-सा कारण सिखाया जा सकता है? शरीर तो बहुत अशुद्ध है, आत्मा तो शुद्ध है। जब भेद जान लिया, तो फिर किस शुद्धि की आवश्यकता है? बंधन संस्कारों से है, मोक्ष उनका नाश है। तुम उन्हें और मोक्ष की इच्छा को भी त्याग दो।

II-II-69-71। विषयों के मानसिक संस्कारों को त्याग दो और मैत्री आदि शुद्ध संस्कारों को विकसित करो। फिर उनके अनुसार आचरण करते हुए उन्हें भी त्यागकर, सब इच्छाओं को त्यागकर, केवल चैतन्य का संस्कार रखो। मन और बुद्धि सहित इन्हें भी त्याग दो, केवल मुझमें ध्यान लगाओ।

II-II-72-77। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध से रहित, शाश्वत, अविनाशी, नाम और कुल से रहित, सभी दुखों का नाश करने वाला, आकाश के समान दृष्टि का स्वरूप, एक अक्षर वाला, सर्वव्यापी होते हुए भी अव्यक्त, अद्वितीय, बंधन से रहित, आगे, पार, ऊपर, नीचे, मैं सब जगह व्याप्त हूँ, ऐसा मेरा चिन्तन करो। अजन्मा, अजर, स्वयं प्रकाशित, न कारण, न

प्रभाव, शरीर के मर जाने पर भी सदैव संतुष्ट, जीवन्मुक्त अवस्था को त्यागकर व्यक्ति विदेहमुक्ति अवस्था में प्रवेश करता है। ऋचा कहती है: विष्णु का वह परम स्थान जिसे मुनिगण सदैव देखते हैं - स्वर्ग में फैली हुई आँख के समान। बुद्धिमान और जागृत व्यक्ति, भावनाओं से मुक्त होकर, उसे प्रकाशित रखते हैं। ॐ - यह उपनिषद है। ॐ ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है। अनंत अनंत से निकलता है। (तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर,वह अनंत (ब्रह्म) ही रह जाता है।

ओम! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यजुर्वेद के शुक्ल-मुक्तिकोपनिषद का यहीं अंत होता है।

108 उपनिषदों का अंत